दीनदयाल उपाध्याय

संपूर्ण वाङ्मय

खंड पाँच

CC-0. Na... gitized by eGangotri

एकात्म मानवदर्शन
अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान

क्या बाजारवाद (पूँजीवाद) तथा राज्यवाद (साम्यवाद) विचारधाराएँ आधुनिक मानव को भीतरी सुख दिला सकती हैं? क्या इस देश के करोड़ों लोग पश्चिमी अवधारणाओं के अनुसार ही जीवन जीने को अभिशप्त हैं? क्या भारत की प्रजा के पास इसका कोई समाधान नहीं है? भारत के एक युगऋषि पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने इन सवालों, इन खतरों को दशकों पहले ही भाँप लिया था और भारतीय परंपराओं के खजाने में ही इनके उत्तर भी खोज लिये थे। उन्होंने व्यष्टि बनाम समष्टि के पाश्चात्य समीकरण को अमानवीय बताया था तथा व्यष्टि एवं समष्टि की एकात्मता से ही मानव की पहचान की थी। उन्होंने इस पहचान के लिए 'एकात्म मानवदर्शन' के रूप में एक दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की थी।

पर विडंबना, उनकी यह खोज, उनका यह दर्शन आगे न बढ़ सका। प्रयास कुछ अधूरे रहे। दोष शायद परिस्थितियों का रहा। लेकिन इस शताब्दी के प्रारंभ में कुछ सामाजिक व अकादमिक कार्यकर्ताओं ने इस धारा को आगे बढ़ाने का संकल्प लिया। इस समूह का अनुभव रहा कि गहन अनुसंधान एवं व्यावहारिक परियोजनाओं का सूत्रपात करने से ही इसे आगे बढ़ाया जा सकता है। उसी विचार व अनुभव में से उत्पत्ति हुई 'एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान' की। इसके विभिन्न आयामों व पहलुओं पर नियमित परिचर्चाओं व प्रकाशनों के माध्यम से जो वातावरण बना, उसके परिणाम सामने आने लगे हैं। 'एकात्म मानवदर्शन' देश में वैचारिक बहस की मुख्यधारा का अहम हिस्सा बन गया है। प्रतिष्ठान के सामने अब लक्ष्य है, उसे वैश्विक स्तर पर ले जाने का।
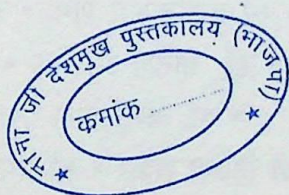
CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

दीनदयाल उपाध्याय
संपूर्ण वाङ्मय

नाना जी देशमुख पुस्तकालय (भाजपा)
क्रमांक ....

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

दीनदयाल उपाध्याय
संपूर्ण वाङ्मय

खंड पाँच

संपादक

डॉ. महेश चंद्र शर्मा

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रकाशक • **प्रभात प्रकाशन**
4/19 आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-110002
संकलन व संपादन • **डॉ. महेश चंद्र शर्मा**
अध्यक्ष, एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान, एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002
© एकात्म मानवदर्शन
अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान
संस्करण • प्रथम, 2016
लेआउट व आवरण • दीपा सूद
मूल्य • चार सौ रुपए (प्रति खंड)
छह हजार रुपए
(पंद्रह खंडों का सैट)
मुद्रक • आर-टेक ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली

DEENDAYAL UPADHYAYA SAMPOORNA VANGMAYA (VOL. V)
(Complete Works of Pandit Deendayal Upadhyaya)
Published by Prabhat Prakashan, 4/19 Asaf Ali Road, New Delhi-2
e-mail: prabhatbooks@gmail.com
in association with
Research and Development Foundation for Integral Humanism,
Ekatm Bhawan, 37, Deendayal Upadhyaya Marg, New Delhi-2
Vol. V ₹ 400.00 ISBN 978-93-86231-20-8
Set of Fifteen Vols. ₹ 6000.00 ISBN 978-93-86231-31-4
CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

समर्पण
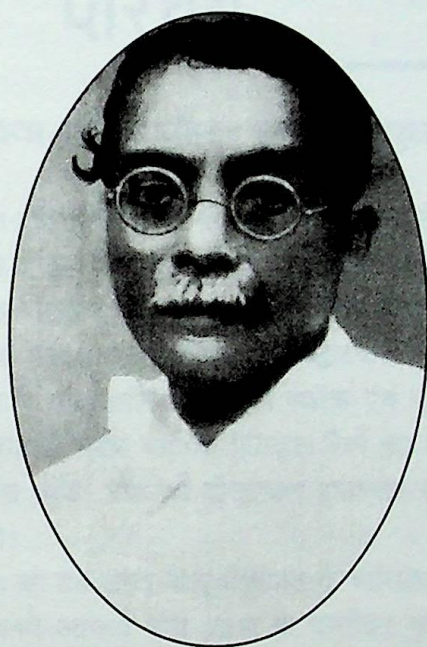
आचार्य देवा प्रसाद घोष

(1894-1985)

को समर्पित

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

परिचय

आचार्य देवा प्रसाद घोष : एक अद्‌भुत व्यक्तित्व

अपने कर्तव्य एवं प्रतिभा से राष्ट्र एवं संपूर्ण मानवता की सेवा करने वाली संतानों को भारतमाता ने जन्म दिया है, उनमें से एक प्रतिभाशाली व्यक्तित्व आचार्य देवा प्रसाद घोष थे। वे एक विलक्षण गणितज्ञ, कुशल प्रशासक, द्रष्टा, शिक्षाविद्, ज्ञानकोषीय विद्वान्, शोधक, प्रभावी वकील, एक स्वाभिमानी, सिद्धांतवादी एवं अध्ययनशील राजनेता थे। इससे भी बढ़कर वे समकालीन स्थिति का सटीक एवं सूक्ष्म परीक्षण करने वाले अध्येता थे, जिनमें वेगवती मुख्य धारा के प्रतिकूल तैरने का साहस था। ऐसे अनुपम व्यक्तित्व आचार्य देवा प्रसाद घोष को दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ् मय का यह चतुर्थ खंड समर्पित है।

15 मार्च, 1894 को उस समय के पूर्वी बंगाल के बारिसाल (बेकरगंज) ज़िले के रामचंद्रपुर गाँव में जनमे आचार्य घोष, गाभा के दस्तीदार कुल के वंशज हैं। पिता क्षेत्रनाथ घोष बारिसाल के ब्रजमोहन महाविद्यालय में दर्शनशास्त्र के आचार्य थे। माता आनंद सुंदरी देवी एक कवयित्री थीं। ब्रजमोहन महाविद्यालय उन दिनों स्वदेशी आंदोलन का अभिकेंद्र था। आचार्य घोष ने भी अपनी प्राथमिक शिक्षा बारिसाल, देवघर एवं कोलकाता में प्राप्त कर उच्च शिक्षा के लिए यहीं प्रवेश प्राप्त किया।

ब्रजमोहन महाविद्यालय जैसे राष्ट्रवादी संस्थान से संबद्ध होने के कारण 1908 में कोलकाता विश्वविद्यालय की प्रवेश परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करने के बावजूद उन्हें सरकार ने छात्रवृत्ति देने से इनकार कर दिया। 1910 के इंटर की परीक्षा में वे पुन: प्रथम आए। प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद इसके बाद वे प्रत्येक परीक्षा में प्रथम आए, लेकिन स्वदेशी आंदोलन से जुड़े विद्यालय एवं महाविद्यालय से संबद्ध होने के कारण उन्हें छात्रवृत्ति से वंचित रखा गया। 1912 में देवा प्रसाद ने सिटी कॉलेज कोलकाता से स्नातकीय परीक्षा (गणित) उत्तीर्ण की तथा उन्हें इशान छात्रवृत्ति दी गई। 2014 में

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

उन्होंने गणित में अधिस्नातकीय अध्ययन पूर्ण किया तथा रिपन कॉलेज (अब सुरेंद्रनाथ कॉलेज) में प्राध्यापक के रूप में नियुक्ति प्राप्त की, वहीं उनका संपर्क सर सुरेंद्रनाथ बैनर्जी और आचार्य रामेंद्रसुंदर त्रिवेदी से हुआ।

उनके अध्यापन के शुरुआती काल में ही एक विचित्र प्रसंग हुआ। कुलपति के निर्देश के अनुसार रिपन महाविद्यालय में विख्यात विधि (क़ानून) की शिक्षा का केंद्र बंद करने की स्थिति आई। इससे निकलने का एक ही मार्ग था। आनेवाले वर्ष के विधि की परीक्षा में रिपन महाविद्यालय का कोई छात्र प्रथम आए। अपने प्रथम आने के अभ्यास के लिए, जिनसे सब परिचित थे, ऐसे आचार्य घोष को संस्थान के अधिकारियों ने विधि (लॉ फैकल्टी) में प्रवेश लेने के लिए मना लिया। उन्होंने गणित पढ़ाते-पढ़ाते केवल विधि पाठ्यक्रम में प्रवेश ही नहीं लिया, अपितु एक छात्र के नाते कक्षा में बैठे और परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त कर अपने संस्थान की विधि शाखा की मान्यता को भी बचाया। 1941 तक उन्होंने रिपन कॉलेज को अपनी सेवाएँ दीं। अपने क़ानूनी ज्ञान का सही समय पर राष्ट्रीय कार्य के लिए कोलकाता उच्च न्यायालय में उपयोग भी किया। 1941-1950 तक रंगपुर कार्मिकेल महाविद्यालय में प्राचार्य के नाते सेवा देकर वे अपने अध्यापक जीवन से निवृत्त हुए।

उनके दिवंगत होने के बाद एक दृढव्रती शिक्षक के नाते उनकी भूमिका एवं उनके स्थान को भारत के पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने उन्हें श्रद्धांजलि देते हुए बहुत ही सटीक शब्दों में वर्णित किया है, ''जब भी मैं प्रवास पर उनके साथ जाता था, मैंने हर स्थान पर देखा कि आचार्य घोष के पूर्व छात्र जो बड़े पदों पर प्रतिष्ठित थे, उन्हें अपना सम्मान अर्पित करने के लिए मिलने आते थे। अध्यापक के नाते आचार्य देवा प्रसाद घोष ने अपने छात्रों की गहरी श्रद्धा प्राप्त की थी।''

परंतु उनका प्रभूत एवं घनीभूत योगदान केवल शिक्षा के क्षेत्र तक सीमित नहीं था। 1920 में उन्होंने श्यामसुंदर चक्रवर्तीजी को 'सर्वेंट' नाम का एक वृत्तपत्र शुरू करने में सहायता की थी, जो बंगाल में असहयोग आंदोलन की बुलंद आवाज़ बना। समय-समय पर समकालीन राजनीतिक विषयों पर उन्होंने जो लेख लिखे, वे एक निपुण संशोधन तथा निर्भय आलोचना के मिसाल आलेखन हैं। यही कारण है कि उनकी इतिहास, अंतरराष्ट्रीय संबंध, साहित्य, शिक्षा, युद्ध, भारतीय राजनीति तथा समकालीन विषयों पर की गई टिप्पणियाँ आज भी उतनी ही ताज़गी लिये हुए हैं। कालक्रम के कारण उनमें बासीपन नहीं आया है। भारतीय इतिहास के सर्वाधिक उथल-पुथल वाले समय पर तीखी टिप्पणी करने वाले आचार्य घोष के लेखों का संग्रह 'शिफ्टिंग सीन्स' इसका उत्कृष्ट नमूना है। वे बंगाल के तत्कालीन अनेक सामाजिक और शैक्षिक संस्थानों से जुड़े हुए थे, जिसमें अखिल बंगाल महाविद्यालय और विश्वविद्यालय प्राध्यापक संघ का अध्यक्ष तथा बांगीय साहित्य परिषद्

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

के उपाध्यक्ष के नाते उनका योगदान भी सम्मिलित है।

गणित की विविध शाखाओं के विषय में उनके लेखन के अलावा, उनकी पुस्तक 'तरुणिमा' तत्कालीन जीवन के विविध पक्षों पर एक सांगोपांग टिप्पणी है तथा 'बंगाली भाषा और उसकी वर्तनी' जो गुरुदेव रवींद्र नाथ टैगोर एवं उनके मध्य हुए पत्रों का संग्रह है, उनकी साहित्यिक प्रतिभा का परिचायक है।

सन् 1950 में अध्यापक जीवन से निवृत्त होने के बाद उनका जीवन राजनीति के माध्यम से सार्वजनिक सेवा को समर्पित रहा। उन्होंने तत्कालीन पूरबी पाकिस्तान से सांप्रदायिक उत्पीड़न से पीड़ित हिंदू शरणार्थियों को बसाने में न केवल महत्त्वपूर्ण योगदान दिया, वरन् 1951 में भारतीय जनसंघ की स्थापना के लिए वे डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के सहायक बने। कोलकाता उच्च न्यायालय के अवकाश प्राप्त मुख्य न्यायाधीश दिवंगत शंकर प्रसाद मित्र ने उनके बारे में उचित ही कहा है, ''आचार्य घोष ने डॉ. मुखर्जी के साथ मिलकर पश्चिम बंगाल को पाकिस्तान के चंगुल से बचा लिया।''

प्रारंभ से ही वे जनसंघ के क्रियाशील सदस्य रहे। प्रारंभिक दिनों में पार्टी को उन्होंने बंगाल प्रदेश के अध्यक्ष के नाते बौद्धिक एवं वैचारिक धार दी तथा बाद में राष्ट्रीय उपाध्यक्ष (1954) और अध्यक्ष (1956-59 और 1963-65) के नाते नेतृत्व प्रदान किया। बंगाल विधानसभा ने उन्हें राज्यसभा के लिए भारतीय जनसंघ के सदस्य के नाते निर्वाचित किया। सांसद के नाते सैद्धांतिक आधार पर मुद्दों को विश्लेषित करने की उनकी क्षमता ने वहाँ एक अमिट छाप छोड़ी। वे गांधियन तरीक़ों एवं नेहरूवियन राजनीति के आलोचक के रूप में जाने जाते हैं। वे जीवन भर तथ्यान्वेषण एवं लेखन कार्य में निर्भय एवं प्रखर बने रहे।

डॉ. मुखर्जी द्वारा स्थापित तथा पंडित दीनदयाल उपाध्याय जैसे तत्त्वचिंतक और संगठक के द्वारा सींची हुई विचारधारा वाला दल आज भारत की राजनीति के केंद्र में है। यह आचार्य देवा प्रसाद घोष जैसे लोगों द्वारा दिखाए वैचारिक आधार और धैर्य के कारण ही संभव हुआ है। आचार्य घोष ने 14 जुलाई, 1985 को अपनी अंतिम साँस ली, जो कि फ्रेंच राज्य क्रांति की 196वीं सालगिरह भी थी। इसी फ्रेंच राज्यक्रांति ने आचार्य घोष की सोच और विचारों को बहुत गहराई से प्रभावित किया था, यह एक योगायोग है।

—प्रफुल्ल केतकर

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

संपादकीय

वर्ष 1958 दीनदयालजी के आर्थिक चिंतन के परिणाम का समय है। इस वर्ष इनकी दो पुस्तकें प्रकाशित हुईं एक हिंदी में 'भारतीय अर्थ-नीति विकास की एक दिशा' तथा दूसरी अंग्रेज़ी में 'द टू प्लान्स : प्रॉमिसेज, परफोर्मेंस, प्रोस्पेक्ट्स'। यदि ये दोनों पुस्तकें इस खंड में ही शामिल करते तो खंड का आकार बहुत बड़ा हो जाता। अत: इनमें से एक पुस्तक 'भारतीय अर्थनीति विकास की एक दिशा' इस खंड में शामिल कर रहे हैं। द्वितीय अंग्रेज़ी पुस्तक को एक स्वतंत्र खंड के रूप में प्रकाशित कर रहे हैं।

भारतीय जनसंघ की सांगठनिक गतिविधियाँ भी अब बहुत बढ़ गई हैं। अनेक कार्य समितियों व सम्मेलनों में दीनदयालजी की उपस्थिति के समाचार हैं, लेकिन उनका कोई वक्तव्य पृथक् से नहीं छपा है। ऐसे समाचारों को भी संभवत: इस खंड में स्थान नहीं दिया गया है। इन खंडों में हमें केवल दीनदयालजी के विचार ही अपेक्षित हैं, इसलिए ऐसा किया है। प्रस्तावों को भी दीनदयाल संपूर्ण वाङ्मय का हिस्सा नहीं बनाया गया है। क्योंकि भारतीय जनसंघ ने उनको अलग से प्रकाशित किया हुआ है।

यदि किसी खंड में संघ शिक्षा वर्गों के बौद्धिक वर्ग हम नहीं सम्मिलित कर सके तो यह एक बड़ी खलने वाली कमी होती है। चौथे खंड में यह हमको बहुत खली। सौभाग्य से इस खंड में पाँच बौद्धिक वर्गों को संकलित किया जा सका है। हालाँकि उनमें संपादन की बड़ी कठिनाई है, प्रथमत: वे हाथ से लिखे हुए थे, जो अब अनुपलब्ध हैं, उनकी असुधारित टंकित प्रतियाँ हैं, वाक्य शिथिल हैं एवं संपूर्णता का भी अभाव है। फिर भी यथासंभव विषय एवं भाषा की मौलिकता को आहत न करते हुए संपादन करने का प्रयत्न किया है। चिति, विराट, संस्कृति, धर्म एवं चतु:पुरुषार्थों का विवेचन इस वर्ष के वर्गों में है।

राजनीति के संस्कार एवं लोकमत परिष्कार दीनदयालजी की राजनीतिक साधना

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

के हिस्से थे। 'लोकतंत्र को सफल बनाने के लिए नवीन पद्धति एवं परंपरा का निर्माण करें' तथा 'राजनीतिक आचरण संहिता बने' वक्तव्य महत्त्वपूर्ण हैं। श्री केदारनाथ साहनी को लिखा गया पत्र भी सैद्धांतिक राजनीति की स्पष्टता एवं दृढता का परिचायक है। अंबाला एवं बंगलौर दो अधिवेशनों के महामंत्री प्रतिवेदन भी संयोग से इस एक ही वर्ष में आ गए हैं। उनके प्रतिवेदन राजनीतिक कार्यकर्ताओं के सांगोपांग प्रशिक्षण के संदर्भ में बहुत उपयोगी एवं उत्प्रेरक होते थे। 'शिक्षा' पर भी एक स्वतंत्र आलेख इस खंड में है। 'शिक्षा का भारतीयकरण' शीर्षक से यह आलेख 'राष्ट्र चिंतन' में भी संकलित है।

इस वर्ष में उनका पाञ्चजन्य में प्रकाशित होने वाला 'विचार-वीथी' स्तंभ उतना नियमित नहीं रह सका, जितना ऑर्गनाइज़र का 'वीकली डायरी' स्तंभ नियमित रहा। आर्थिक विषयों पर इस वर्ष न केवल दो पुस्तकें आईं, वरन् 'वीकली डायरी' में भी उन्होंने ज़्यादा आर्थिक मुद्दों पर ही अपनी टिप्पणी की। 'द टू प्लान्स : प्रोमिसेज़, परफार्मेंस, प्रॉस्पेक्ट्स' पुस्तक पर तत्काल डॉ. भाई महावीर ने ऑर्गनाइज़र में दो भागों में एक समीक्षात्मक आलेख लिखा था। वह इस खंड के परिशिष्ट में दिया जा रहा है। डॉ. भाई महावीर भारतीय जनसंघ के संस्थापक नेताओं में थे। डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने जनसंघ की स्थापना की घोषणा की थी, तब वे महामंत्री बनाए गए थे, क्रांतिकारी भाई परमानंद के वे सुपुत्र हैं। वे अर्थशास्त्र के प्राध्यापक भी रहे हैं, अतः उनके ये समीक्षात्मक आलेख बहुत महत्त्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक हैं। इन आलेखों को भी अगले खंड में इस पुस्तक के साथ ही प्रकाशित किया जाएगा।

भाषा के प्रश्न एवं राज्य पुनर्गठन के मुद्दे पर उनके आलेख व टिप्पणियाँ इस वर्ष भी ख़ूब रहीं। वस्तुतः यह बहुत ही समृद्ध एक वर्षीय संकलन है, जिसे हम दो खंडों में प्रकाशित कर रहे हैं। इस खंड की भूमिका हिमाचाल प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री श्री शांता कुमार ने लिखी है तथा 'वह काल' का लेखन श्री गोविंदाचार्य ने लिखा है।

—डॉ. महेश चंद्र शर्मा

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भूमिका

मेरे मित्र डॉ. महेश चंद्र शर्मा पिछले कई वर्षों से एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान के माध्यम से देश के प्रखर चिंतक पंडित दीनदयाल उपाध्याय के दर्शन को सामान्य जन तक पहुँचाने का श्रमसाध्य प्रयास कर रहे हैं। मुझे यह जानकर अपार प्रसन्नता हुई है कि डॉ. महेश चंद्र शर्माजी के संपादन में पंडित दीनदयाल उपाध्यायजी का संपूर्ण वाङ्मय प्रकाशित किया जा रहा है।

भारत की स्वतंत्रता के बाद सार्वजनिक जीवन में चिंतन की सबसे अधिक कमी महसूस की गई है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय राजनीति में चिंतन और मनन करनेवाले दार्शनिकों की पीढ़ी के अंतिम चिंतक रहे हैं।

स्वामी विवेकानंद एक क्रांतिकारी देशभक्त और मौलिक साहसी संन्यासी थे। उन्होंने दासता में हीन भावना से ग्रसित भारत के चिंतन को एक नई दिशा दी। उन्होंने भारतीय चिंतन, यहाँ तक कि धार्मिक चिंतन को भी 'सत्य नारायण' से 'दरिद्र नारायण' की ओर मोड़ा। बहुत दूरदर्शी थे स्वामी विवेकानंद। उन्होंने मोक्ष के ध्येय को भी छोड़ दिया और यहाँ तक कह दिया कि जब तक भारत का प्रत्येक व्यक्ति भरपेट भोजन नहीं कर लेता और भारत में नया सांस्कृतिक जागरण नहीं होता, वे भारत में बार-बार जन्म लेना चाहेंगे। वे भारत की दरिद्रता और ग़रीबी को देखकर इतने आहत हुए कि यहाँ तक कह दिया कि जो लोग भारत के साधनों से संपन्न हो जाते हैं, परंतु ग़रीब के बारे में न कुछ सोचते हैं और न कुछ समझते हैं, वे गद्दार हैं। इसी विचार-परंपरा को स्वतंत्रता आंदोलन में महात्मा गांधी ने आगे बढ़ाया और अंत्योदय की बात की। यह चिंतन समाजवाद की आँधी में धूमिल हो रहा था कि उसी चिंतन की धारा को आगे बढ़ाने का काम पंडित दीनदयाल उपाध्यायजी ने किया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के आंदोलन में गाँव और ग़रीब की बात कही गई। महात्मा गांधी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ने ग्राम-प्रधान अर्थव्यवस्था का आग्रह किया। सोहन लाल द्विवेदी ने 'है सच्चा हिंदुस्तान कहाँ, वह बसा हमारे गाँव में' के गीत गाए। दादाभाई नौरोजी ने भारत कं. ग़रीबी पर पहली प्रसिद्ध पुस्तक लिखी। स्वतंत्रता के बाद के कुछ वर्षों में भारत के नीति-निर्माता गाँव और ग़रीब को पूरी तरह भूल गए। विकास की ढेरों योजनाएँ बनीं और चलीं, पर सबसे नीचे तक या तो पहुँचीं ही नहीं या बहुत कम पहुँचीं। उसी का परिणाम है कि आज देश में 35 करोड़ लोग ग़रीबी की रेखा से नीचे ज़िंदगी बसर कर रहे हैं। आज़ादी के तुरंत बाद भारत के नीति-निर्धारक साम्यवाद और समाजवाद के नशे में लीन हो गए। सरकारीकरण शुरू हुआ। सार्वजनिक क्षेत्र में अरबों रुपए का निवेश कर दिया गया। बड़े-बड़े उद्योगों की बड़ी-बड़ी बातें, बड़े-बड़े नगरों की बड़ी-बड़ी योजनाएँ गाँव में रहनेवाला भारत उपेक्षित होता गया।

श्री दीनदयाल उपाध्याय भारत के उन विचारकों में से थे, जिन्होंने धरती की सच्चाई को पहचानकर सही दिशा-निर्देश दिया। जिस ग्रामीण-प्रधान अर्थव्यवस्था की बात महात्मा गांधीजी ने की, उसी को एक नए और परिष्कृत रूप में देश के सामने रखने वाले सबसे प्रमुख आर्थिक चिंतक पंडित दीनदयाल उपाध्याय थे। पूँजीवाद में व्यक्ति को आवश्यकता से अधिक महत्त्व देकर आर्थिक व्यवस्था बनाने की कोशिश की गई। साम्यवाद में व्यक्ति का महत्त्व समाप्त करके समाज-प्रधान व्यवस्था बनाने की कोशिश की गई। कुल मिलाकर आज दोनों वाद विफल सिद्ध हो गए हैं। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने विकेंद्रीकृत अर्थव्यवस्था पर ज़ोर दिया। समाजवाद में सारी शक्तियों का केंद्रीकरण होता है, जैसे रूस और चीन में हुआ परंतु ये व्यवस्थाएँ ज़ोर से गिरती हैं। उसी गति से गिरती हैं, जिस गति से स्थापित होती हैं, जैसे रूस में हुआ। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने शेखावटी जनसंघ सम्मेलन के अवसर पर पिलानी में कहा था, "देश का दारिद्र्य दूर होना चाहिए, इसमें दो मत नहीं किंतु प्रश्न यह है कि यह कैसे दूर हो? हम अमरीका के मार्ग पर चलें या रूस के मार्ग को अपनाएँ अथवा यूरोपीय देशों का अनुकरण करें? नक़ल से समस्या का समाधान नहीं होगा। वादों के घेरे से मुक्त होकर हमें एक स्वतंत्र भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास करना होगा, जो मनुष्य को समग्रता में देखे।"

भारतीय चिंतन सदा से समग्रता का चिंतन रहा है। जीवन को टुकड़ों में नहीं, समग्रता में देखा गया है। ईशावास्योपनिषद् का यह मंत्र इस चिंतन की पुष्टि करता है :

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।

जो कुछ भी है, वह प्रभु का है, किसी और का नहीं। उसका भोग करने की बात

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

करो, लेकिन वह भोग त्यागमय हो। एक तरह से यह मंत्र भौतिकता के अध्यात्मीकरण का संदेश देता है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय की आधुनिक चिंतन के लिए सबसे बड़ी देन एकात्मक मानववाद है। उन्होंने सदियों के भारतीय चिंतन को आधुनिक संदर्भ में एक नए रूप में प्रस्तुत किया। मनुष्य केवल शरीर ही नहीं, मन भी है और उसमें आत्मा भी है। मनुष्य के संबंध में कोई भी सोच अलग नहीं हो सकती। उसी प्रकार समाज केवल भीड़ नहीं है। लोग समाज में भी होते हैं, भीड़ में भी होते हैं। भीड़ भेड़ की तरह चलती है और समाज एक व्यवस्था में चलता है।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने इस बात पर ज़ोर दिया कि राष्ट्र की भी एक आत्मा होती है। उसे उन्होंने 'चिति' का नाम दिया। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि मनुष्य और समाज के संबंध में टुकड़ों में नहीं अपितु एक समग्र चिंतन होना चाहिए। एकात्मक मानववाद और ग्राम-प्रधान अर्थव्यवस्था के माध्यम से उन्होंने समाज के अंतिम पंक्ति में खड़े व्यक्ति के महत्त्व और उसके विकास का महत्त्व प्रतिपादित किया। पंडित दीनदयाल उपाध्याय मशीनों के विरुद्ध नहीं थे, लेकिन वे मशीन को मनुष्य के लिए समझते थे, मनुष्य को मशीन के लिए नहीं। वे संयत उपयोग की बात करते थे। उन्होंने 'प्रत्येक व्यक्ति को काम' के सिद्धांत को मान्यता दी थी। उन्होंने कहा था, ''योजनाएँ बनाने से पहले हमें प्रत्येक व्यक्ति को काम के सिद्धांत को मान्यता देनी पड़ेगी। यदि इसे मान लिया जाए तो योजनाओं की दिशा एवं स्वरूप बदल जाएँगे, भले ही बेकारी धीरे-धीरे दूर हो। इसका विचार करके हम उत्पादन और साधनों का निश्चय करें। यदि ज़्यादा आदमियों का उपयोग करने वाले छोटे-छोटे कुटीर उद्योग अपनाए गए तो कम पूँजी तथा मशीनों की आवश्यकता पड़ेगी, नौकरशाही का बोझ कम होगा, विदेशी ऋण भी नहीं लेना पड़ेगा। देश की सच्ची प्रगति होगी तथा प्रजातंत्र की नींव पक्की हो जाएगी।''

पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने भारतीय राजनीति में वैचारिक पक्ष को आगे बढ़ाया। उनका चिंतन भारत की मिट्टी से जुड़ा था। उन्होंने देश के लिए अपेक्षित आर्थिक मूल्यों को भारत की संस्कृति से जोड़ा। वे कई वर्षों तक 'पाञ्चजन्य' और 'ऑर्गनाइज़र' से जुड़े रहे। इन्हीं पत्रों के स्थायी स्तंभों में दीनदयाल उपाध्यायजी के लेख प्रकाशित होते थे। दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय के इस पाँचवें खंड में सामयिक विषयों पर प्रकाशित उनकी टिप्पणियाँ संकलित हैं, जो पंडित दीनदयालजी के समय-चिंतन को दरशाती हैं। इसके अतिरिक्त उनके चिंतन के दरशाते अन्य उपयोगी लेख भी इस खंड में संकलित हैं। आशा है, संपूर्ण वाङ्मय का यह प्रकल्प पंडित दीनदयाल उपाध्यायजी के चिंतन को भविष्य के कर्णधारों तक पहुँचाने में अवश्यमेव उपयोगी सिद्ध होगा।

—शांता कुमार

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

वह काल

(1958)

संक्रमण का समय

वह एक संक्रमण काल था। हाल में मिली आज़ादी को स्थायी बनाने की चुनौती और अवसर भी समक्ष था। साथ ही देश अपने अधिष्ठान पर स्थिर रहकर अपनी दिशा तय करेगा या द्वितीय विश्वयुद्ध और उसके बाद की वैश्विक स्थितियों से कैसे निपटेगा? इस सवाल का भी जवाब वह काल ढूँढ़ रहा था।

अपनी स्कूली शिक्षा पूरी कर अब मैं कॉलेज शिक्षा में प्रवेश कर रहा था। वाराणसी में सेंट्रल हिंदू कॉलेज में दाख़िला ले चुका था। उच्च शिक्षा की विधा को समझने में मन की कठिनाई को पार कर रहा था। परिसर में छात्र संगठनों की गतिविधि का रसास्वादन कर रहा था। छात्रसंघ चुनाव का पहला अनुभव ले रहा था। काशी हिंदू विश्वविद्यालय के छात्रसंघ चुनाव की छाया भी हमारे सेंट्रल हिंदू कॉलेज के छात्रों पर पड़ रही थी। पूरे देश के समान काशी तथा विश्वविद्यालयी परिसरों में भी साम्यवादी दल संगठन में प्रभावी था। कांग्रेस सत्ता पक्ष बन चुकी थी। उसका संगठन पक्ष उपेक्षित हो गया था। सत्ता से ही पार्टी चलाने की कोशिश थी। सत्ता सुख एवं सत्ता का लाभ प्राप्त करने की होड़ दिख रही थी। यहीं कम्युनिस्ट पार्टी के नेता एवं कार्यकर्ता जुझारू तेवर के साथ सामान्य छात्रों के लिए अधिक स्वीकार्य हो रहे थे। उत्तर भारत के किन्हीं-किन्हीं विश्वविद्यालयों में समाजवादी विचारधारा भी अपनी जगह बनाती दिख रही थी। इन्हीं प्रवृत्तियों को मैं समझने की कोशिश कर रहा था। वाराणसी में राजनीति डॉ. संपूर्णानंद और कम्युनिस्ट नेता श्री रुस्तम सैटिन के व्यक्तित्वों और कार्यों के रूप में स्वीकृत

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

दिखती थी। अब सोचता हूँ कि काशी की यही स्थितियाँ संपूर्ण देश के पटल पर भी काफ़ी हद तक लागू थी।

आज़ादी के 10 वर्ष बीत चुके थे। संविधान के लागू होने का उत्साह भी जनमानस में था। सत्तारूढ़ दल पंडित जवाहरलाल नेहरू के करिश्माई व्यक्तित्व का लाभ उठा रहा था। आज़ादी के आंदोलन में अन्य धाराओं के योगदान को नकारता हुआ, उस आज़ादी के आंदोलन का सारा श्रेय सत्तारूढ दल अपने ऊपर उड़ेल रहा था। साम्यवादी संभ्रम में थे। समाज की राजनीतिक ताक़तों का वर्ग-विश्लेषण आज़ादी के पूर्व वे किया करते थे। मोनोपॉली बुर्जुआ, नेशनल बुर्जुआ, कंप्रोडोर बुर्जुआ, पेटी बुर्जुआ, प्रोलेटेरियट आदि संज्ञाएँ और विशेषण आज़ादी के पूर्व कुछ वे अन्यों पर लागू करते थे। अंग्रेज़ों के भारतीय राजनीति में प्रत्यक्ष सहभागिता से बाहर होने की स्थिति सन् 1947 में बन गई। भारत में राजनीतिक ताक़तों, यथा—कांग्रेस, कम्युनिस्ट, समाजवादी, जनसंघ, हिंदू महासभा, रामराज्य परिषद् एवं कुछ क्षेत्रीय दलों का वर्ग-विश्लेषण साम्यवादियों के लिए अब संभ्रम और अंतर्विवाद का कारक बनने लगा। वो तय नहीं कर पा रहे थे कि कांग्रेस को मोनोपॉली बुर्जुआ मानें या नेशनल बुर्जुआ। उसी तरह समाजवादी और जनसंघ को वे अपने विश्लेषण के किन खानों में डालें, यह उनके लिए विवाद का विषय बनने लगा था। किसान समुदाय का वर्ग-विश्लेषण हो नहीं पा रहा था। प्रतिगामी, प्रतिक्रियावादी दलाल आदि आरोप जड़ने की उनकी आदतें उन्हें ही अब परेशान करने लगीं। कांग्रेस ने समाजवादी समाज बनाने का ठेका ले लिया। फलतः वामपंथियों का जनाधार खिसकने लगा।

समाजवाद की टोपी को पहनने की होड़ सी मची। हिंदू समाजवाद, वैदिक समाजवाद आदि नए जुमले भी गढ़े जाने लगे। जनसंघ के सामने अपनी विशिष्ट पहचान बनाना और आत्मविश्वास तथा परिश्रम के साथ भारत के राष्ट्रवाद की बुनियादी अवधारणाओं के अनुरूप नीतियों पर गतिमान राजनीतिक दल के संगठन और जनाधार गढ़ने की चुनौती एवं अवसर दोनों सामने थे। देश में द्वितीय पंचवर्षीय योजना पर बहस का एक अनुकूल अवसर था। जनसंघ और समाजवादी दल अपनी-अपनी बात को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने का अवसर देखने लगे थे। कांग्रेस, समाजवादी एवं कम्युनिस्ट तीनों आज़ादी के पूर्व लगभग 20 वर्ष खट्टे-मीठे पारस्परिक रिश्तों से गुज़रते सहयात्री ही थे। इसलिए कांग्रेस से अलग अपना अस्तित्व एवं प्रयोजन सहेज पाने में उन्हें दिक्कत होने लगी। द्वितीय पंचवर्षीय योजना ने तो कम्युनिस्ट पार्टी की आवश्यकता पर ही सवाल खड़ा कर दिया।

विदेशी ताक़तें अपने-अपने ढंग से भारत की आर्थिक स्थिति और आर्थिक नीतियों के आलोक में भारत से अपने रिश्ते परिभाषित करने की सोच रही थीं। अमरीका को

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पाकिस्तान ज़्यादा रुचने लगा। रूस को भारत से नज़दीकी रास आ रही थी। भारत के सामने समस्या थी कि इन दोनों गुटों से अलग अपनी पहचान कैसे बनाए? चीन अपने सामाजिक स्वभाव के अनुरूप भारत से स्पर्धा और शंका के माहौल में बढ़ रहा था। पाकिस्तान अपनी स्थापना के औचित्य को सिद्ध करने के लिए इसलामिक रंग को गाढ़ा करने में लग गया।

राष्ट्र राज्यों के संदर्भ में 1950 से 1958 का काल भारतीय सत्ता प्रतिष्ठानों के समक्ष बहुत चुनौतीपूर्ण था। राष्ट्र की संप्रभुता, एकता, अखंडता, एकात्मता का संरक्षण-संपोषण कैसे हो? जाति, क्षेत्र, भाषा, संप्रदाय सभी विविधता के कारक तत्त्व संघात्मक ढाँचे को बल प्रदान करें और राष्ट्र की संप्रभुता का पोषक कैसे बनें? भारतीय राज्य के समक्ष यह चुनौती थी। अंग्रेज़ों ने पंथ को आधार मानकर भारत-पाकिस्तान का बँटवारा कर लंबे समय के लिए एक गहरी समस्या भारत पर थोप दी।

वहीं जाति, क्षेत्र, भाषा के कारक तत्त्व भी अंग्रेज़ों के जाने के बाद अपने-अपने अस्तित्व का भान कराने लगे। चाहे पंजाब की बात हो या द्रविड़ स्थान की बात हो या मद्रास प्रेसिडेंसी से तेलुगू भाषा के आधार पर अलग आंध्र प्रदेश की माँग हो। भारत के सामने इन विविधताओं का संरक्षण और एकात्मता एवं राष्ट्रीय संप्रभुता की देखभाल का संतुलन बैठाना बड़ी चुनौती थी।

इन सब के बीच आज़ादी मिले दस साल हो गए थे। अब तो अपने देशवासियों के योगक्षेम की ज़रूरतें पूरी हों, जीवन स्तर ऊँचा उठे, विषमता न बढ़े, दुनिया में भारत अपनी भूमिका निभाए, कृषि बेहतर हो, किसानों का जीवन स्तर उठे, साथ ही औद्योगिक ढाँचा मज़बूत हो, ये सवाल खड़े हो गए। भारत सरकार इनमें संतुलन बैठाने में संभ्रम की शिकार हो गई। भारत की जनता के सामर्थ्य पर सत्तारूढ़ लोगों का भरोसा कम था। दूसरे देशों की ताक़तों का हस्तक्षेप और उनके रास्ते को अनुकरणीय मानने की भूल भी नेतृत्व में दृष्टिगोचर होने लगी।

भारत का राजनीतिक प्रभुवर्ग भारत को रूस के नक़्शेकदम पर डालने का ही विचार मानने लगा और भेड़चाल के तहत समाजवाद अनेक अर्थों में प्रयुक्त किया जाने लगा। भारत का सत्ता प्रतिष्ठान उपनिवेशवादी रंग में ही रँगा था। भारत को यूरोप के नज़रिये से देख रहा था। भारत की ताक़त को कमज़ोरी और यूरोपीय व्यवस्था को अंधाधुंध लादने की कोशिश को ही विकास का रास्ता समझ रहा था। भारत की परंपरा, भारतीय समाज में परिवार संस्था की ताक़त का न उसे अनुमान था, न ही समझ।

इसलिए भारत में कृषि की उपेक्षा हुई, विचार संसाधन आदि का विदेशों से आयात कर औद्योगीकरण बढ़ाने को ही विकास समझा जाने लगा। भारत की राजनीतिक व्यवस्था उपनिवेशवादी ग्रंथियों से ग्रस्त थी। 'देशी मुर्ग़ी विलायती बोल' कहावत को चरितार्थ

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कर रही थी। ऐसी स्थिति में उधार लेकर औद्योगीकरण के रास्ते पर बढ़ रही व्यवस्था भारत की तासीर से परे थी। नेतृत्व भारत की जनता की ताक़त को सोच के दायरे में नहीं ले पा रहा था। इसलिए आत्मविश्वासहीन भी था। इसमें समाजवादियों को कभी-कभी स्मृतिबोध होता तो विकेंद्रीकरण और गाँव-ग़रीब की तरफ़ उनकी हमदर्दी अभिव्यक्त होती थी। किसानों की भी कभी-कभी सुध आती थी।

साम्यवादी भारत को बहुराष्ट्रीय प्रायद्वीप मानते थे और इस देश में 17 राष्ट्रीयताएँ हैं, ऐसी उनकी धारणा थी। वहीं कांग्रेस यह प्रचारित करने में लगी थी कि भारत अब नया राष्ट्र है। 15 अगस्त, 1947 को ही उसका जन्म हुआ है। अतीत को भूलकर आगे बढ़ना चाहिए, यह उनकी भावधारा थी। समाजवादी भारत को अभी राष्ट्र बना नहीं बल्कि बनने की ओर है, ऐसा मानते थे। इसलिए अतीत का तिरस्कार कर आगे बढ़ने की वकालत ये करने लगे। ऐसे आस्थाहीन वातावरण में जनसंघ ने प्रतिपादित किया कि भारत एक राष्ट्र है, प्राचीन राष्ट्र है, एक जन है, एक संस्कृति है। उस मायने में भारत और हिंदू राष्ट्र समानार्थी हैं।

भारत की तासीर में विदेशी को स्वदेशानुकूल और स्वदेशी को युगानुकूल बनाकर ग्रहण करने की अद्भुत क्षमता है। भारत की राजनीति और अर्थनीति दोनों में स्वदेशी सोच और भावधारा के साथ राजसत्ता एवं अर्थसत्ता का विकेंद्रीकरण ही भारत के उत्थान का सही रास्ता होगा, जिसमें विकास की कतार में खड़ा आख़िरी जन पहले लाभान्वित होगा। उस काल की इसी चुनौती को दीनदयालजी ने 'भारतीय अर्थनीति विकास की एक दिशा' के रूप में प्रस्तुत किया। थोड़े समय में उसका समग्र फलितार्थ एवं उद्देश्य एकात्म मानवदर्शन में व्यक्त हुआ।

—के.एन. गोविंदाचार्य

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

वाङ्मय संरचना

'एकात्म मानवदर्शन' के प्रणेता पं. दीनदयाल उपाध्याय के आलेखों, भाषणों, बौद्धिक वर्गों, वक्तव्यों एवं विविध संवादों ने भारतीयता के अधिष्ठान पर तात्कालिक समस्याओं का विवेचन, विश्लेषण एवं समाधान प्रस्तुत किया। इन सबसे भी कालजयी साहित्य का निर्माण हुआ। उनके जाने के पाँच दशकों बाद उनका संपूर्ण वाङ्मय प्रकाशित हुआ है। विलंब से ही सही, लेकिन उनके शताब्दी वर्ष पर उसका प्रकाशन एक ऐतिहासिक अवसर है। 15 खंडों में संपादित हुए उनके संपूर्ण साहित्य का यथासंभव संकलन हुआ है। आइए, हम उनका परिचय प्राप्त करें।

खंड एक : वर्ष 1940 से 1950 की सामग्री इस खंड में है। संघ प्रचारक के रूप में एक दशक में उनके द्वारा सृजित साहित्य का इसमें संकलन है। यह 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' के द्वितीय सरसंघचालक श्री मा.स. गोलवलकर परमपूजनीय श्रीगुरुजी को समर्पित है। श्रीगुरुजी का परिचय संघ के वरिष्ठ प्रचारक श्री रंगाहरि ने लिखा है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के ही वर्तमान सरसंघचालक श्री मोहन भागवत इस खंड के भूमिका-लेखक हैं। सभी खंडों में उस काल के संदर्भ में एक अध्याय है 'वह काल'। इस खंड में इसका लेखन वरिष्ठ पत्रकार पद्मश्री श्री रामबहादुर राय ने किया है।

खंड दो : यह दो वर्षों का है—1951 तथा 1952। यह 'भारतीय जनसंघ' की स्थापना, प्रथम आम चुनाव तथा पंचवर्षीय योजना का काल है। यह डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी को समर्पित है। 'डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी शोध अधिष्ठान' के निदेशक श्री अनिर्बान गांगुली ने डॉ. मुखर्जी का परिचय लिखा है। इस खंड की भूमिका विख्यात इतिहासवेत्ता श्री देवेंद्र स्वरूप ने लिखी है। 'वह काल' अध्याय का आलेखन पद्मश्री श्री जवाहरलाल कौल ने किया है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

खंड तीन : वर्ष 1954-1955 का है। यह 'गोवा मुक्ति-संग्राम' का काल है। यह गोवा मुक्ति के लिए सत्याग्रह का नेतृत्व करनेवाले श्री जगन्नाथ राव जोशी को समर्पित है; उनका परिचय भाजपा के पूर्व राष्ट्रीय उपाध्यक्ष श्री बलवीर पुंज ने लिखा है तथा इसकी भूमिका के लेखक जनसंघ के जन्मकाल से कार्यकर्ता रहे वरिष्ठ नेता डॉ. विजय कुमार मल्होत्रा हैं। 'वह काल' के लेखक हैं—राजा राम मोहनराय पुस्तकालय प्रतिष्ठान के अध्यक्ष श्री ब्रजकिशोर शर्मा।

खंड चार : वर्ष 1956-1957 का है। यह संघात्मक संविधान के अनुसार राज्य पुनर्गठन का काल है। यह 'भारतीय जनसंघ' के अध्यक्ष एवं जम्मू-कश्मीर में 'प्रजापरिषद्' के संस्थापक पं. प्रेमनाथ डोगरा को समर्पित है। उनका परिचय जम्मू-कश्मीर के उपमुख्यमंत्री श्री निर्मल सिंह ने लिखा है, भूमिका श्री रंगाहरि ने। 'वह काल' का आलेखन माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति श्री अच्युतानंद मिश्र ने किया है।

खंड पाँच : एक ही वर्ष सन् 1958 के दो खंड हैं पाँच व छह। दीनदयालजी के आर्थिक विचारों के परिपक्व होने का यह काल है। महान् गणितज्ञ एवं भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष रहे आचार्य देवा प्रसाद घोष को खंड पाँच समर्पित है। ऑर्गनाइजर के संपादक श्री प्रफुल्ल केतकर ने उनका परिचय लिखा है। हिमाचल प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री श्री शांता कुमार ने भूमिका-आलेखन किया है। प्रसिद्ध विचारक श्री के.एन. गोविंदाचार्य ने 'वह काल' लिखा है।

खंड छह : इसमें दीनदयालजी की पुस्तक 'टू प्लांस : प्रोमिसेज : परफोर्मेंस : परस्पेक्टिव' संयोजित है तथा डॉ. भाई महावीर के द्वारा लिखी पुस्तक की समीक्षा का समाहन किया गया है। रा.स्व. संघ के उत्तर क्षेत्र के संघचालक एवं अर्थवेत्ता डॉ. बजरंगलाल गुप्त ने भूमिका लिखी है। इस खंड में 'वह काल' अध्याय नहीं है। यह खंड महान् अर्थचिंतक श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी को समर्पित किया गया है। उनका परिचय अ.भा. विद्यार्थी परिषद् के पूर्व अध्यक्ष श्री राजकुमार भाटिया ने लिखा है।

खंड सात : वर्ष 1959 का है। चीन द्वारा तिब्बत का अधिग्रहण कर भारत की सीमा का अतिक्रमण किया गया। यह दीनदयालजी को संघ प्रचारक बनानेवाले रा.स्व. संघ के पूर्व सह-सरकार्यवाह श्री भाऊराव देवरस को समर्पित है। उनका परिचय श्री अच्युतानंद मिश्र ने लिखा है। भूमिका-लेखन का कार्य 'विश्व हिंदू परिषद्' के राष्ट्रीय महामंत्री श्री चंपतराय ने किया है। वरिष्ठ पत्रकार डॉ. नंद किशोर त्रिखा ने 'वह काल' का आलेखन किया है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

खंड आठ : वर्ष 1960 का है। 'हमार ध्येय दर्शन' लेखमाला एवं 'जनसंघ ही क्यों' आलेख इसमें शामिल हैं। उत्तर प्रदेश की पहली महिला उपाध्यक्ष एवं जम्मू-कश्मीर सत्याग्रही श्रीमती हीराबाई अय्यर को यह खंड समर्पित है। श्री ब्रजकिशोर शर्मा ने उनका परिचय लिखा है। रा.स्व. संघ के पूर्व सह-सरकार्यवाह श्री मदनदास इसके भूमिका-लेखक तथा 'दीनदयाल शोध संस्थान' के प्रधान सचिव श्री अतुल जैन 'वह काल' के लेखक हैं।

खंड नौ : वर्ष 1961 का है। लोकमत परिष्कार का आलेखन, दलों की आचार संहिता के मुद्दे इसमें प्रमुख हैं। दीनदयालजी के साथी रहे तथा उनके बाद महामंत्री बने श्री सुंदर सिंह भंडारी को यह खंड समर्पित है। जयपुर के श्री इंदुशेखर 'तत्पुरुष' ने उनका परिचय लिखा है। रा.स्व. संघ के वर्तमान सरकार्यवाह श्री सुरेश (भय्याजी) जोशी ने इसकी भूमिका लिखी है तथा 'वह काल' का आलेखन श्री बलबीर पुंज ने किया है।

खंड दस : वर्ष 1962 का है। भारत चीन के आक्रमण से आक्रांत हुआ था। यह खंड लब्धप्रतिष्ठ राजनेता डॉ. संपूर्णानंद को समर्पित है, उन्होंने दीनदयालजी की 'पॉलिटिकल डायरी' की भूमिका लिखी थी। इनका परिचय 'पाञ्चजन्य' के संपादक श्री हितेश शंकर ने लिखा है। भूमिका आलेखन का कार्य सह-सरकार्यवाह डॉ. कृष्ण गोपाल ने किया है। लब्धप्रतिष्ठ भारतविद् श्री बनवारी ने 'वह काल' लिखा है।

खंड ग्यारह : वर्ष 1963-64 का है। यह वही काल है, जब दीनदयालजी ने 'एकात्म मानववाद' का व्याख्यान किया था। यह खंड महान् भाषा एवं भारतविद् आचार्य रघुवीर को समर्पित है। उनका परिचय दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी प्राध्यापक डॉ. राजीव रंजन गिरि ने लिखा है। भारतमाता मंदिर के संस्थापक स्वामी सत्यमित्रानंद गिरि के विद्वान् शिष्य गोविंद गिरि महाराज ने इसकी भूमिका लिखी है। भाजपा के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष एवं राज्यसभा सांसद डॉ. विनय सहस्रबुद्धे ने 'वह काल' का आलेखन किया है।

खंड बारह : वर्ष 1965 का है। कच्छ समझौता, पाकिस्तान से युद्ध, भारत की विजय एवं ताशकंद समझौते का यह काल है। संघ के तत्कालीन सरकार्यवाह श्री प्रभाकर बलवंत (भैयाजी) दाणी को यह खंड समर्पित है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के दिल्ली प्रांत सहसंघचालक अधिवक्ता श्री आलोक कुमार ने इनका परिचय लिखा है। बिहार राज्य के राज्यपाल श्री रामनाथ कोविंद ने इसकी भूमिका तथा प्रतिष्ठित साहित्यकार डॉ. सीतेश आलोक ने 'वह काल' का आलेखन किया है।

खंड तेरह : वर्ष 1966 का है। स्वातंत्र्य वीर सावरकर का निधन, गोहत्या के

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ख़िलाफ आंदोलन। दीनदयालजी के सहयोगी तथा ग्रामोदय प्रकल्पों के नियोजक दीनदयाल शोध संस्थान के संस्थापक श्री नानाजी देशमुख को यह खंड समर्पित है। उनका परिचय श्री देवेंद्र स्वरूप ने लिखा है। इस खंड की भूमिका उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री राम नाईक ने लिखी है। वरिष्ठ पत्रकार श्री राहुल देव 'वह काल' के लेखक हैं।

खंड चौदह : वर्ष 1967-68 का है। भारतीय राजनीति में एकदलीय एकाधिकार टूटने का यह काल है। दीनदयालजी अध्यक्ष चुने गए तथा जघन्य हत्या के शिकार हुए। इस खंड की भूमिका गुजरात के राज्यपाल प्रो. ओमप्रकाश कोहली ने लिखी है। 'वह काल' का आलेखन श्री जगदीश उपासने ने किया है। यह खंड दक्षिण भारत में 'जनसंघ' के कार्य को प्रारंभ करनेवाले तथा 'भारतीय जनता पार्टी' के राष्ट्रीय अध्यक्ष रहे श्री जना कृष्णमूर्ति को समर्पित है। उनका परिचय श्री ला. गणेशन ने लिखा है।

खंड पंद्रह : यह अंतिम खंड है। जिसकी तिथि ज्ञात नहीं, ऐसा साहित्य, इसमें संकलित है। महान् गांधीवादी एवं भारतविद् श्री धर्मपाल को यह खंड समर्पित है। डॉ. जितेंद्र कुमार बजाज ने उनका परिचय लिखा है। संघ के वरिष्ठ कार्यकर्ता तथा प्रख्यात पत्रकार श्री मा.गो. वैद्य ने इसकी भूमिका लिखी है। इस खंड में 'वह काल' नहीं है। दीनदयालजी संदर्भित 'अवसान' अध्याय का इसमें संयोजन किया गया है, जिसका आलेखन श्री रामबहादुर राय ने किया है।

—डॉ. महेश चंद्र शर्मा

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अनुक्रमणिका

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

परिशिष्ट—

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

1

जनसंघ ही कांग्रेस का विकल्प

बाराबंकी में उत्तर प्रदेश जनसंघ के प्रतिनिधि सम्मेलन में दीनदयालजी का भाषण। इस सम्मेलन में पुनर्निर्वाचित अध्यक्ष श्री पीतांबर दास व मंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी के भी भाषण हुए। किसानों का लगान आधा किए जाने तथा ग्राम-समाज के पुनर्गठन तथा प्रदेश की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए 12 सूत्री माँगों का प्रस्ताव पारित किया गया।

यदि अपने-अपने क्षेत्रों की स्थानीय समस्याओं को हल करने में हम अपना समय और शक्ति लगाएँ, तो अवश्य ही जनसंघ कांग्रेस का विकल्प सिद्ध हो सकता है। सिद्धांतत: जनसंघ ही कांग्रेस का विकल्प है। समाज की समस्या।ओं को देखने के दृष्टिकोण और उनको हल करने के प्रयासों के द्वारा हमें यह बात सिद्ध करनी है। हमें आगे बढ़ना है और लक्ष्य-प्राप्ति तक सतत बढ़ते रहना है।

—पाञ्चजन्य, जनवरी 6, 1958

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

2

हिंदी आंदोलन की सफलता राष्ट्रीय तत्त्वों की विजय*

अंबाला में 10 जनवरी, 1958 को पंजाब तथा हिमाचल प्रदेश जनसंघ कार्यसमिति की बैठक आचार्य रामदेव की अध्यक्षता में हुई। पंजाब विधानसभा एवं विधान परिषद् के जनसंघ सदस्यों ने भी इसमें भाग लिया।

राज्य पुनर्गठन के समय देश में हुई उथल-पुथल में महाराष्ट्र व पंजाब की उथल-पुथल रेखांकनीय रही। कार्यसमिति ने हिंदी आंदोलन के शहीदों को श्रद्धांजलि दी तथा संतोष व्यक्त किया कि इस संघर्ष के परिणाम-स्वरूप देश भर में देशभक्त व राष्ट्रीय शक्तियाँ पूर्व की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली हुई हैं। समिति ने उन लोगों के प्रति सहानुभूति प्रकट की, जो आंदोलन के दौरान घायल हुए, उदाहरणार्थ श्री लाल चंद्र सब्बरवाल (एम.एल.ए.), डॉ. मंगल सेन (एम.एल.ए.), श्री सत्यपाल महाजन (पठानकोट), श्री सीता राम (सनौर, पटियाला) और श्री जगन्नाथजी (फाजिल्का) आदि। अ.भा. भाषा स्वातंत्र्य समिति के नेतृत्व में चलने वाले भाषा आंदोलन के सफलतापूर्वक स्थगन के लिए सबको बधाई दी गई। सरकार से माँग की गई कि आंदोलन अब समाप्त हो गया है, सत्याग्रहियों पर से मुकद्दमे वापस लेने चाहिए। कार्यसमिति में और भी अनेक प्रस्ताव पारित हुए।

---

* देखे परिशिष्ट-1, पृ. 183

Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

दिल्ली क्षेत्र के प्रमुख श्री बलराज मधोक एवं अखिल भारतीय महामंत्री, दीनदयाल उपाध्यायजी के सान्निध्य में यह बैठक हुई, लेकिन पाञ्चजन्य एवं ऑर्गनाइज़र में इसका जो प्रतिवेदन प्रकाशित हुआ है, उसमें दीनदयालजी का कोई वक्तव्य एवं भाषण नहीं छपा है।

—पाञ्चजन्य, जनवरी 20, 1958

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

3

एकरूपता की अपेक्षा एकात्मता की आवश्यकता

समाज सेवा संघ कलकत्ता द्वारा स्थानीय जैन भवन में आयोजित सांस्कृतिक समारोह में प्रधान वक्ता के रूप में दीनदयालजी ने अपने विचार व्यक्त किए। समारोह के अध्यक्ष सन्मार्ग संपादक पं. अनंत मिश्र व प्रधान अतिथि सुप्रसिद्ध न्यायवेत्ता श्री बृजमोहन बगड़ीया ने अपने विचार रखे। कुमारी विमला धानुका ने गीत प्रस्तुत किए। दीनदयालजी का वक्तव्य।

सर्वप्रथम समाज सेवा संघ के प्रति आभार ज्ञापन करता हूँ, जिन्होंने समाज सेवा और संस्कृति पर भाषण का आयोजन किया है।

हमारे लिए विचारणीय प्रश्न समाज का है, साथ ही यह कि समाज की सेवा क्यों और कैसे करनी चाहिए। एक से अनेक होने पर ही समाज कहलाता है। जो कुछ अनेकता-विविधता दिखाई देती है, उसमें सुसूत्रता और नियमितता है। इसके पीछे कोई सूत्र छिपा है। इस सूत्र के रूप-दर्शन का हमारे पूर्वजों ने प्रयत्न किया। उदाहरणतः रंगों की विभिन्नता में कलाकार एक रंग, उन विभिन्न रंगों के योग से अव्यतन करता है। वही विविधता में एकता का निर्माण है। इसी प्रकार विभिन्न व्यक्तियों की बहुरूपता में एकता ही समाज निर्माण है। विभिन्नता की भी एक सुसंस्कृत एकता को ही समाज कहा जाएगा; अन्यथा वह भीड़ है या अप्राकृतिकता। अतः प्रकृति, विकृति और संस्कृति, ये तीन तत्त्व हमारे सामने आते हैं। सभ्यता और व्यावहारिकता, निजत्व के रूप सहन करने की भावना संस्कृति कहलाती है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

समाज सेवा

बहुत से काम मनुष्य अकेला नहीं कर सकता। समाज की सेवा किसी स्वार्थ से नहीं की जाती। समाज की सेवा मनुष्य के जीवन का विनियोग है। समाज के लिए दान या सेवा मनुष्य का कर्तव्य है और कर्तव्य के लिए कोई मूल्य नहीं होता है। जैसे कि परोपकार के लिए कोई मूल्य नहीं चुकाया जाता। जो कुछ करो, लोक-संग्रह के लिए— यही गीता में कृष्ण ने कहा। निष्काम भाव से कर्तव्य करना ही सेवा है। एकरूपता की उतनी आवश्यकता नहीं, जितनी एकात्मता की। भारतवर्ष में अनेक देवता और भाषाएँ रही हैं और प्रत्येक व्यक्ति या प्रांत के लोगों ने अपने-अपने राग से गाया। चंडीदास[1] ने बँगला में, रामदास[2] ने मराठी में, तुलसी ने अवधी में व मीरा ने राजस्थानी में अपने इष्ट देवों के प्रति भक्ति प्रदर्शित की। अस्तु, हमारी प्रवृत्तियों व भावनाओं की विविधता से कुछ हानि नहीं होती। सबको अपनी प्रवृत्ति के विकास के लिए अवसर मिलना चाहिए। यही विकास व तज्जन्य स्थिति समाज की सेवा में काम आए, यह सामाजिक प्राणी का धर्म है, कर्तव्य है। साथ ही यही एकात्मता है। शोषण शब्द हममें नहीं होना चाहिए। हमारी संस्कृति एक धागे के समान है, जो करोड़ों फूलों को एक सूत्र में पिरोती है, विकृति को दूर करती है। मन में किसी प्रकार की दूरी पैदा होना या परायापन अनुभव होना ही विकृति है। यह विकृति की भावना अंग्रेज़ों में विशेष रूप से रही है, जिन्होंने सभ्यता या असभ्यता या रंगभेद की विकृति पैदा की है। लेकिन हमारी संस्कृति में एकात्मता का सामंजस्य ही प्रमुख रहा है और यही वास्तविक समाज सेवा है।

—पाञ्चजन्य, फरवरी 10, 1958

□

---

1. चंडीदास (14वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से 15वीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक), राधाकृष्ण लीला संबंधी साहित्य के आदि कवि माने जाते हैं, जिनका बंगाली कला, साहित्य, धार्मिक विचारों व वैष्णव-सहजिया आंदोलन पर गहरा प्रभाव पड़ा। इनकी कविताओं का संग्रह सर्वप्रथम 1874 में जगद्बंधु भद्र द्वारा 'महाजन पदावली' शीर्षक से किया गया।
2. समर्थ गुरु रामदास (1606-1681), अद्वैत वेदांत मत के प्रमुख संत व कवि, जिन्होंने मराठी में 'दासबोध' ग्रंथ की रचना की थी।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

4

विस्थापित व्यक्तियों को सरकारी आवासों की बिक्री अनुचित

विस्थापितों की दुर्दशा

भारत सरकार के पुनर्वास मंत्रालय ने नई अधिसूचना जारी की है, जिसमें कहा गया है कि विस्थापित व्यक्तियों को बसाने के लिए सरकार द्वारा निर्मित आवास बेचे जाएँगे। इस अधिसूचना ने विस्थापितों में एक आशंका उत्पन्न कर दी है कि इसके माध्यम से उन पर कड़ी शर्तें थोपी जा रही हैं और उनके लिए संभावनाओं के अवसर सीमित किए जा रहे हैं। भारत सरकार के पुनर्वास मंत्रालय की नवीनतम अधिसूचना के अनुसार सरकार द्वारा निर्मित आवासों में रहने वाले विस्थापितों को नोटिस मिलने के दो माह के अंदर आवास के मूल्य के 20 प्रतिशत (पाँचवाँ भाग) के साथ बकाया किराये का 20 प्रतिशत (पाँचवाँ भाग) तथा शेष राशि को सात किश्तों में चुकाना अनिवार्य है। इस आदेश ने विस्थापितों को भयभीत कर दिया है और इसका अनौचित्य एकदम स्पष्ट है तथा इस पर किसी भी टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है। एक ओर तो सरकार निम्न आय समूह गृह-निर्माण योजना को प्रोत्साहित करने के लिए बीस वर्षों में चुकाए जाने वाले दीर्घ ऋणों का प्रस्ताव कर रही है, वहीं दूसरी ओर पुनर्वास मंत्रालय उन शरणार्थियों, जो देश विभाजन के राजनीतिक निर्णय से असहाय और पीड़ित हैं तथा विशेष ध्यान दिए जाने योग्य हैं, से सात साल में पूरी राशि वसूलना चाहता है। इस अधिसूचना से हज़ारों विस्थापित व्यक्तियों की बेदख़ली की संभावना है, अतः इस अनुचित और कठोर अधिसूचना को तत्काल वापस लिया जाना चाहिए।

यदि विस्थापितों का तत्काल एक आर्थिक सर्वेक्षण कराया जाए तो संबंधित

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अधिकारियों को आसानी से पता लग जाएगा कि ग़ैर-दावेदार विस्थापितों के एक बड़े भाग, लगभग 85 प्रतिशत, को दो महीने के इतने कम समय में इतनी बड़ी राशि (कुछ मामलों में 800 रुपए से भी अधिक) चुकाना लगभग असंभव होगा और न चुका पाने की अवस्था में वे अभी या दो वर्ष बाद बेदख़ली के लिए मजबूर हो जाएँगे।

विस्थापितों को लग रहा है कि इन संपत्तियों का मूल्य स्वैच्छिक ढंग से तय किया गया है, इसलिए वे अपने आवासों का 'न लाभ न हानि' के आधार पर निष्पक्ष मूल्यांकन करने के लिए विनती करते हैं।

विस्थापितों का निवेदन है कि उनके आवासों की पूरी क़ीमत तथा शेष किराया निम्न आय समूह के मामलों की तरह बीस वर्षों में वसूल किया जाए तथा अब तक वसूल किए गए किराये को आवासों की मूल क़ीमत में जमा कर दिया जाए।

स्थिति की माँग यह है कि सरकार तत्काल ही कुछ सर्वेक्षण कराए और स्वयं पता करे कि इन घरों में बसने वाले संभावित मालिकों, विस्थापित व्यक्तियों की सहायता के लिए किन रियायतों की आवश्यकताएँ हैं।

—ऑर्गनाइज़र, फरवरी 10, 1958

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

5

लगान माफ़ी की माँग*

लखनऊ में उ.प्र. के जनसंघ विधायकों की एक बैठक भारतीय जनसंघ के महामंत्री दीनदयाल उपाध्याय की अध्यक्षता में हुई।

अधिकतर विधायकों ने इस बात पर ज़ोर दिया कि किसानों का 'लगान आधा हो', माँग को सरकार द्वारा मनवाने के लिए सत्याग्रह आंदोलन छेड़ने की आवश्यकता है। 10 मई तक लगभग 10 हज़ार ग्रामसभाओं द्वारा इस संबंध में प्रस्ताव पारित कराके मुख्यमंत्री के पास भेजने का निश्चय किया गया, जिससे ग्रामों में आंदोलन के भावी कार्यक्रम के अनुकूल वातावरण बन सके।

(प्रतिवेदन में दीनदयालजी का वक्तव्य प्रकाशित नहीं है।)

—पाञ्चजन्य, फरवरी 17, 1958

□

---

* देखें अध्याय 11, उपशीर्षक 'जनसंघ और जन आंदोलन' पृ. 30

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

6

दिल्ली से कराची और कराची से दिल्ली तक डॉ. ग्राहम की दौड़-धूप कैसी?

डॉ. ग्राहम[1] दिल्ली और कराची के बीच दोनों देशों के सरकारी अधिकारियों से बातें करते हुए भाग-दौड़ रहे हैं। उससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वे अपने उद्‌देश्य में बहुत ज़ोर से जुटे हैं। वह भारत के प्रधानमंत्री, प्रतिरक्षा मंत्री तथा राष्ट्रमंडलीय मामलों के सचिव श्री देसाई से अनेक बार वार्त्ता कर चुके हैं।

यह सर्वज्ञात है कि भारत ने सुरक्षा परिषद् का वह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया था, जिसके अनुसार डॉ. ग्राहम पाकिस्तान और भारत सरकार से उपर्युक्त वार्त्ता कर रहे हैं। वस्तुतः भारत सरकार को डॉ. ग्राहम को भारत आने की अनुमति नहीं देनी चाहिए थी। किंतु ऐसा लगता है कि हमारे प्रधानमंत्री को देश के हित से अधिक शिष्टाचार और व्यवहार निर्वाह की परवाह है। यदि डॉ. ग्राहम की भारत यात्रा शिष्टाचार निर्वाह मात्र थी तो उन्हें एक से अधिक बार दिल्ली यात्रा करने का कोई प्रयोजन नहीं था।

ऐसा संदेह करने के अनेक कारण हैं कि किसी प्रकार के षड्‌यंत्र की रचना की जा रही है और भारत सरकार सुरक्षा परिषद् की अंतिम बैठक में उद्‌घोषित

---

1. डॉ. फ्रैंक ग्राहम (1886-1972) कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर, जिन्हें संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् ने कश्मीर समस्या पर मध्यस्थता करने के लिए अपना प्रतिनिधि चुना था। इसी संदर्भ में डॉ. ग्राहम 12 जनवरी, 1958 को दिल्ली आए तथा 17 जनवरी को कराची गए। अपनी रिपोर्ट को अंतिम रूप देने से पहले उन्होंने दो बार दिल्ली (28 जनवरी से 1 फरवरी तथा 7 से 13 फरवरी) और दो बार कराची (1 फरवरी से 7 फरवरी तथा 13 से 15 फरवरी) की यात्रा की।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अपने निर्णय से हटकर अपनी स्थिति के बारे में कोई समझौता करने का प्रयास कर रही है। यदि ऐसा है तो यह विश्वासघात ही माना जाएगा। भारत सरकार को राष्ट्र और संसद् के पीठ पीछे कश्मीर जैसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर किसी प्रकार का समझौता नहीं करना चाहिए।

भारत सरकार डॉ. ग्राहम के सदृश अनपेक्षित अतिथि के साथ और आगे किसी प्रकार की वार्त्ता न करे तथा स्पष्ट रूप से घोषणा करे कि भारत के किसी भी भाग में (पाक अधिकृत कश्मीर सहित) भारत की सार्वभौमिक सत्ता और सीमा अधिकार का उल्लंघन बरदाश्त नहीं किया जाएगा।

—पाञ्चजन्य, फरवरी 17, 1958

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

7

भाषा की राजनीति

भाषा भारत में नेताओं की चिंता का मुख्य विषय बन गई प्रतीत होती है। प्रधानमंत्री द्वारा प्रस्तावित व ज़ोर-शोर से प्रसारित किए गए 'पंचशील' के सकारात्मक सिद्धांत और पंचवर्षीय योजनाओं से प्रत्याशित ख़ुशहाली भाषाई उन्मादियों के परस्पर झगड़ों को रोक नहीं पाई। उन्होंने प्रेस और मंच के माध्यमों से, जुलूसों और मोरचों से, अपने-अपने दृष्टिकोणों के पक्ष और विपक्ष में प्रदर्शन तथा प्रतिरोध किए। इतने से ही संतुष्ट न होकर पिछले तीन सालों के दौरान हज़ारों भारतीय किशोर युवकों से लेकर अस्सी साल के वृद्धों तक ने अपने भाषाई हितों के संरक्षण और प्रसार के लिए सत्याग्रह भी प्रारंभ कर दिए, क़ानूनों को तोड़ा और गिरफ़्तारियाँ दी हैं। देश के राजनीतिक मानचित्र का पुनर्निर्माण किया जाना था और योजनाओं का भी पुनः नियोजन किया जाना था। जनता का राजनीतिक झुकाव भी एक परिवर्तन के दौर से गुज़र रहा था। इससे राजनीतिक नेताओं की अपनी संभावनाओं को क्षति पहुँची या फिर उन्हें अपने दल अथवा विपक्षी दलों के अनुसार ख़ुद को ढालना पड़ा। पिछले सामान्य चुनाव में किसी भी अन्य मुद्दे से अधिक भाषा ने अपना ज़बरदस्त और निर्णायक प्रभाव छोड़ा। यह संभवतः राज्य पुनर्गठन विधेयक के प्रस्ताव तथा स्वीकृति के साथ-साथ विभाजन प्रक्रिया से असहमति थी, जिसने देश के कुछ हिस्सों में इस विवादास्पद मुद्दे को बनाए रखा था।

राज्य पुनर्गठन से संबंधित आंदोलन केवल कुछ क्षेत्रों तक ही सीमित रहे, इस तथ्य के बावजूद कि अपनी संपूर्णता में ये पूरे देश को प्रभावित करते थे। लेकिन भारतीय संघ की आधिकारिक भाषा से संबंधित इस नए विवाद से सभी लोग समान रूप से चिंतित थे। हो सकता है कि देश के पूर्वी अथवा दक्षिणी भागों से कुछ लोग आगे आएँ; लेकिन यह प्रश्न देश के एक भाग की इच्छा तक सीमित नहीं है। यह तमिलनाडु और

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

उत्तर प्रदेश को समान रूप से प्रभावित करता है। बिहार और बंगाल, गुजरात और राजस्थान, पंजाब और कश्मीर, आंध्र और मध्य प्रदेश इस मौजूदा व्यवस्था से समान रूप से प्रभावित हुए हैं; और यदि इसमें बदलाव होता है तो सभी को समान रूप से लाभ मिलना चाहिए।

देश की आधिकारिक भाषा क्या होनी चाहिए, यह निर्णय करने से पहले हमें यह तय कर लेना होगा कि क्या हम संगठित रहना चाहते हैं। राष्ट्र की एकता एक ऐसा तथ्य है, जिस पर कोई भी प्रश्न नहीं उठना चाहिए तथा न ही इसे प्रमाणित करने या इसका खंडन करने के लिए कोई बहस होनी चाहिए। राष्ट्रीय एकता प्रतिबंधात्मक, संवैधानिक, संस्थागत अथवा संविदात्मक नहीं होती है। यह वास्तविक, यथार्थपरक और स्वत:सिद्ध होती है। यह इस आधार पर होती है कि हम एक साथ रहने का संकल्प लें, एक साथ चलने का निश्चय करें—कि आओ, हम अलग नहीं होंगे, कोई हमें अलग नहीं कर सकता। हम एक भाषा चाहते हैं, क्योंकि हम एक हैं। हम भाषा की वजह से एक नहीं हैं और न ही हम इसलिए एक रहेंगे कि हमारी एक भाषा है। स्विट्ज़रलैंड में बहुभाषी लोग एक साथ रहते हैं, और हम सदियों से एक साथ रहते चले आ रहे हैं। कोई भी विभाजन की बात न करे। यदि कोई करता है तो वह विचार-विमर्श में भागीदारी का अधिकार खो देगा। यह केवल भाषा का प्रश्न नहीं है, जिसका हमें निर्णय करना है। हमें अपनी जीवनयात्रा में सैकड़ों प्रश्नों का निर्णय करने की आवश्यकता है। और यदि हम प्रत्येक प्रश्न का निर्णय हंगामे से डरते हुए करेंगे तो हम कभी सही निर्णय नहीं कर सकते। जो कोई राष्ट्र के साथ एक होने के भाव को नहीं मानता, उसके आगे झुक जाना हमेशा लज्जाजनक होगा। राष्ट्रों के, संगठनों के और परिवारों के इतिहास में इस बात के अनेक प्रमाण हैं कि एकता जैसे आधारभूत प्रश्न पर उद्दंड लोगों को छूट देना हमेशा ही विभाजन का मार्ग प्रशस्त करता है। मूल सिद्धांतों पर कोई समझौता नहीं हो सकता। ऐसे लोगों को छूट देना केवल समझौता करना भर नहीं है। यह तुष्टीकरण है। जिसने अलग रहना तय कर लिया हो, उसे कभी भी तुष्टीकरण से मनाया नहीं जा सकता। इसलिए इस बिंदु पर कभी भी कमज़ोरी न आने दें, कमज़ोरियाँ पृथकतावादी प्रवृत्तियों को बढ़ावा देती हैं। हंगामा कमज़ोरी का परिणाम होता है और जब तक आप दृढ इच्छाशक्ति और निर्याणक कार्रवाइयों के अभाव का प्रदर्शन करते रहेंगे, आप कभी भी संगठित नहीं हो सकते।

किसी विशेष भाषा को आधिकारिक प्रयोग के लिए स्वीकार करने की वांछनीयता पर विचार करते समय जन-भावनाओं को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। भाषा के साथ लोगों की गहरी भावनाएँ जुड़ी होती हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो आयरलैंड स्वतंत्र नहीं हुआ होता। आधुनिक ईरान के निर्माता 'कमाल पाशा' ने अपना नाम बदलकर

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

'कमाल अतातुर्क' नहीं किया होता और न ही रज़ा शाह ने अपना कुलनाम 'पहलवी' अपनाया होता। भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं है, यह हमारी विचार प्रक्रिया भी तय करती है। भाषा राष्ट्र के साथ-साथ विकसित होती है, साथ ही यह लोगों को एक निश्चित दिशा देती है। जो लोग भाषा को केवल प्राणहीन शब्दों की व्यवस्था समझते हैं, वह भाषा के महत्त्व को कम आँकते हैं और यदि भाषा जीवंत सत्ता है तो इसकी आत्मा लोगों के साथ सामंजस्य स्थापित करती है। यही कारण है कि कोई भी राष्ट्र अपने आपको किसी विदेशी भाषा के माध्यम से व्यक्त नहीं कर सकता।

लोगों की स्वतंत्रता के कई प्रतीक होते हैं। प्रत्येक देश का अपना एक ध्वज होता है। कोई इसे उपयोगितावादी दृष्टि से नहीं देखता। हमने यूनियन जैक छोड़कर तिरंगा अपनाया। हमने तिरंगा इसलिए नहीं अपनाया कि बनाने में सस्ता था या अधिक उपयोगी था। यह केवल इस बात का प्रदर्शन था कि एक नए स्वतंत्र राज्य का जन्म हुआ है। हमें इसी उद्देश्य के लिए एक राष्ट्रभाषा को भी अपनाना होगा। यदि राष्ट्रों को बने रहना होता है तो उनके अपने स्वतंत्र अस्तित्व के सभी प्रतीक आवश्यक होते हैं।

यहाँ कुछ लोग अंग्रेज़ी को जारी रखना चाहते हैं, क्योंकि उनके अनुसार हम अंग्रेज़ी के माध्यम से बाहरी दुनिया को समझ सकते हैं। लेकिन हमें बाहरी दुनिया से पहले अपने लोगों को समझना है। यदि हम बाहरी दुनिया को समझने के प्रयास में अपनी जड़ों से कट गए तो आधारविहीन हो जाएँगे और शीघ्र ही सिरविहीन भी हो जाएँगे।

एक बार जब हम तय कर लेते हैं कि हमें विदेशी भाषा छोड़ देनी है तो चुनने के लिए केवल एक चीज़ बचती है—वह है हमारे देश की भाषा पद्धति। भारत में कई विकसित और विकासशील भाषाएँ हैं। सौभाग्य से ऊपरी भिन्नताओं के बावजूद उनमें मूलभूत एकता है। उनका साहित्य हमारे राष्ट्रीय जीवन का दर्पण है, और उनके साहित्य ने हमारे साझा सांस्कृतिक मूल्यों को स्थापित किया है। इस बुनियादी एकता के होते हुए एक सर्वमान्य हल खोजना बिल्कुल कठिन नहीं है जो वैध तरीक़े से सभी लोगों की आकांक्षाओं को संतुष्ट करे और हमारी सभी भाषाओं के विकास का मार्ग प्रशस्त करे। यथास्थिति को जारी रखने की माँग पराजय को स्वीकार करना है। हम इस पराजयवादी प्रवृत्ति को त्याग दें और चुनौतियाँ स्वीकार करें। हम समाधान खोज सकते हैं, बशर्ते हममें इच्छाशक्ति हो और हम अपने राष्ट्रीय अस्तित्व के मूलभूत तथ्यों को स्वीकार करें।

—ऑर्गनाइज़र, मार्च 17, 1958

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

8

भाषा के आधार पर पंजाब का दो क्षेत्रों में विभाजन सर्वथा अनुचित

जालंधर में 16 मार्च को पत्रकार सम्मेलन में दीनदयालजी का वक्तव्य।

संविधान में उल्लिखित भाषा नीति में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया जाना चाहिए और उसमें अंग्रेज़ी के स्थान पर हिंदी में सरकारी कामकाज किए जाने के बारे में पंद्रह वर्ष की जो अवधि दी गई है, उसमें भी कोई वृद्धि नहीं की जानी चाहिए।

भारतीय जनसंघ भाषा के आधार पर पंजाब के दो क्षेत्रों के विभाजन को न तो स्वीकार करता है और न इन क्षेत्रीय समितियों से, चाहे ये केवल परीक्षण के लिए ही क्यों न हों, किसी प्रकार का सहयोग करने के लिए ही तैयार है।

जनसंघ यह स्वीकार नहीं करता कि हिंदी हिंदुओं की और गुरुमुखी सिखों की भाषा है। ये दोनों ही भाषाएँ हिंदुओं और सिखों की समान भाषाएँ हैं और इन दोनों भाषाओं को ही पंजाब की क्षेत्रीय भाषाएँ [1] होनी चाहिए, किसी विशेष क्षेत्र की नहीं।

राज्य स्तर पर हिंदी और गुरुमुखी दोनों को ही पंजाब में मान्यता प्राप्त होनी चाहिए और हिंदी अखिल भारतीय कार्य के लिए सरकारी भाषा स्वीकार की जानी चाहिए।

—पाञ्चजन्य, मार्च 24, 1958

□

---

1. व्याकरण की दृष्टि से पंजाबी भाषा को हिंदी से अलग न मानते हुए राज्य पुनर्गठन आयोग ने भी भाषाई आधार पर पंजाब से अलग पंजाबी व हिंदी भाषी राज्य निर्माण की माँग को अस्वीकार कर दिया था। आयोग ने प्रतिवेदन में इसका दूसरा कारण आंदोलन में लोगों के समर्थन के अभाव को बताया था।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

9

लोकतंत्र को सफल बनाने के लिए नवीन भारतीय पद्धति व परंपरा का निर्माण करें

यह वक्तव्य दीनदयालजी ने 23 मार्च को दिल्ली जनसंघ द्वारा नगर निगम चुनाव में जनसंघ की शानदार सफलता पर जनता को धन्यवाद देने के लिए आयोजित एक विशाल सार्वजनिक सभा में दिया था। इस अवसर पर जनसंघ के मंत्री तथा संसद् सदस्य अटल बिहारी वाजपेयी और सभा अध्यक्ष बलराज मधोक के भी भाषण हुए। दीनदयालजी का वक्तव्य।

दिल्ली निगम के चुनावों में भारतीय जनसंघ को जिन लोगों द्वारा समर्थन एवं सब प्रकार की सहायता प्राप्त हुई है, उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन हम लोगों का कर्तव्य है। दिल्ली की जनता ने जो ज़िम्मेदारी हमारे ऊपर डाली है, हम उसको पूरा करने के लिए सदैव सचेष्ट रहेंगे, किंतु हम यह जानते हैं कि कार्य बिना जनता के सहयोग के नहीं निभाया जा सकता।

चुनावों में कोई भी दल बहुमत में नहीं आया है। जो कुछ दिल्ली में हुआ है, वह भावी भारत की राजनीति की ओर संकेत कर रहा है। द्विदलीय ब्रिटिश और अमरीकी ढाँचे से भिन्न अनेक दलीय आधार पर हमें अपने देश में जनतंत्र को सफल बनाने के लिए नवीन भारतीय पद्धतियाँ और परंपराएँ निर्माण करने की ओर विचार करना पड़ेगा। यदि हम चाहते हैं कि भारत में फ्रांस जैसी स्थिति न हो तो दलों के बीच जोड़-तोड़ और सिद्धांतविहीन गठबंधनों को त्याग कर हमें कुछ ऐसी परिपाटी चलानी होगी कि जिसमें

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रत्येक दल और व्यक्ति अपने सिद्धांतों और कार्यक्रमों के प्रति निष्ठावान रहते हुए भी शासन कार्य चलाने में अपना पूर्ण योगदान कर सके तथा विचार और अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता बनी रहे। प्रत्येक प्रश्न जनहित की दृष्टि से भलीभाँति तर्क और विवाद के पश्चात् निर्णीत हो। आज की यह परिस्थिति सभी दलों को चुनौती है कि वे अपने वायदों और जनता की आकांक्षाओं को पूरा करने एवं नगर निगम को सफलतापूर्वक जनतंत्रीय पद्धति से चलाने के लिए एक स्वस्थ पद्धति और तंत्र के आविष्कार में प्रयत्नशील हों।

—पाञ्चजन्य, मार्च 31, 1958

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

10

भारतीय आर्थिक संकट की भूमिका

भारत के समक्ष भीषण आर्थिक संकट उपस्थित है। प्रधानमंत्री के अनुसार यह गतिशील प्रगति का संकट है, स्थिरता के कारण उत्पन्न नहीं हुआ। हम जो चाहें, इस संकट को नाम दें, किंतु सभी स्वीकार करते हैं कि देश की आर्थिक अवस्था अति विपन्न है। केंद्रीय सरकार हो अथवा प्रादेशिक सरकारें, उद्योगपति हों अथवा व्यवसायी, श्रमिक हों अथवा कृषक—सभी को ऐसी-ऐसी आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है, जिनका अनुभव उन्हें आज तक कभी नहीं करना पड़ा। सरकारों के आय-व्यय घाटे के हैं और परिवारों के भी। आय-व्यय के बीच विद्यमान अंतर को वे एक-दूसरे के सहारे पूर्ण करने का प्रयास कर रहे हैं। वित्त मंत्रिगण कर, ऋण, अल्प बचत, अनिवार्य संग्रह आदि के द्वारा जनता से धन वसूल करने में अपने समस्त बुद्धिचातुर्य का परिचय दे रहे हैं। दूसरी ओर आर्थिक कठिनाइयों के भार से दबे लोग अधिकाधिक वेतन तथा भत्ते लेकर सामाजिक संरक्षण व्यवस्थाओं का लाभ उठाकर ऋण तथा अनुदानों के सहारे सरकारी कोष को ख़ाली कर रहे हैं। इतना ही क्यों, वे सरकारी पैसे को चुकाने में विलंब भी कर रहे हैं और कर वंचन के मार्ग भी अंगीकार कर रहे हैं। आर्थिक संतुलन समाप्त हो गया है; हर कोई दूसरे का सहारा लेकर अपनी आर्थिक स्थिति को फिर से संतुलित करने की चेष्टा कर रहा है। मजे की बात यह है कि जिसका सहारा लेने की चेष्टा की जा रही है, उसकी भी आर्थिक स्थिति डाँवाँडोल हो चुकी है। पंडित नेहरू के शब्दों में, 'जब कभी कोई कठिनाई उपस्थित होती है तो लोग सरकार (राज्य) से सहायता की पुकार करते हैं और राज्य सरकारें सहायता के लिए केंद्र के पास दौड़ पड़ती हैं और केंद्र को किसी विदेश से सहायता की याचना करनी पड़ती है।'

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पंडितजी के कथन के साथ इतना और जोड़ा जा सकता है कि जब केंद्र को विदेशों से सहायता नहीं मिलती तो वह जनता से सहायता की अपील करता है। भूल-भुलैयों का निर्माण हो गया है, इससे छुटकारा मिलना चाहिए। इसके लिए आवश्यकता है, साहसपूर्ण क़दम की।

पुनर्मूल्यांकन आवश्यक

किंतु स्थिति का पूर्ण विश्लेषण किए बिना, अपनी समस्त नीतियों का समुचित सिंहावलोकन तथा मूल्यांकन किए बिना यदि कोई साहसपूर्ण क़दम उठाया गया तो हो सकता है कि वह हमें और भी संकट में डाल दे। कम-से-कम यह अवश्य कहा जा सकता है कि सार्वजनिक विषयों को संचालित करने का जिन लोगों पर दायित्व है, उन्होंने नीति निर्धारित करते समय तथा अति महत्त्वाकांक्षी विकास कार्यक्रम बनाते समय गंभीरतापूर्वक विचार नहीं किया। आश्चर्य का विषय है कि जिस योजना को इतने परिश्रमपूर्वक तैयार किया गया और जिसे नियोजकों, अर्थशास्त्रियों एवं राजनीतिज्ञों का एक स्वर से समर्थन प्राप्त हुआ, वह इतनी लचर कैसे रही कि चालू होने के एक वर्ष के अंदर ही दिखाई देने लगा कि कहीं वह पूर्ण रूप से असफल न हो जाए। वस्तुस्थिति का अवलोकन करने के पश्चात् इस दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य पर पहुँचे बिना नहीं रहा जा सकता कि देश के बड़े-बड़े विद्वत् प्रवर भी या तो स्वतंत्र विचार शक्तिशून्य हो गए हैं अथवा अधिकार-संपन्न व्यक्तियों के भ्रांत नारों के विरुद्ध ज़बान खोलने का उनमें साहस नहीं रहा है।

अंध समर्थन

द्वितीय पंचवर्षीय योजना खटाई में पड़ी हुई है और अब बहुत से लोग विचार करने लगे हैं कि उसमें काट-छाँट की जाए; उसका काल बढ़ाया जाए अथवा उसका पुनर्निर्धारण किया जाए। किंतु क्या यह आश्चर्यजनक बात नहीं है कि इन्हीं लोगों ने 'योजना' को समस्त आर्थिक व्याधियों की अचूक औषधि घोषित किया था? योजना आयोग ने ही नहीं, अर्थशास्त्रियों की समिति ने, मंत्रिमंडल ने, संसद् ने, राज्य सरकारों तथा राज्य विधानमंडलों ने, राष्ट्रीय विकास परिषद् ने, कांग्रेस कार्यसमिति तथा कांग्रेस अधिवेशन ने और यहाँ तक कि समाजवाद पर आस्था रखने वाले सभी राजनीतिक दलों ने एक आवाज़ से योजना के बारे में घोषित किया था कि इससे कम में विचार किया ही नहीं जा सकता। निस्संदेह कुछ लोग ऐसे भी थे, जिन्होंने योजना के आकार और प्रकार के विरुद्ध आवाज़ उठाई थी, किंतु उन्हें जन्मजात निराशावादी तथा प्रतिक्रियावादी घोषित कर उनकी आवाज़ को दबा दिया गया, उनकी चेतावनियों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। योजना आयोग के सदस्य श्री क्षि.चं. नियोगी, इक्कीस सदस्यीय अर्थशास्त्री परिषद् के सदस्य श्री

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

शेनोय तथा चार राष्ट्रीय दलों में से एकमात्र भारतीय जनसंघ ही ऐसे थे, जिन्होंने योजना आयोग के अध्यक्ष के स्वर में स्वर मिलाकर 'रामधुन' का उच्चारण नहीं किया।

ग़लत अनुमान

अनुभव अब किया गया है कि 'धारणा से लेकर प्रथम चरण तक वह (द्वितीय योजना) ऐसे संभाव्य प्रसाधनों के काल्पनिक अनुमानों पर आधारित थी, जिनका यथार्थता से कोई संबंध नहीं था।' जिन अनुमानों को योजना का आधार स्वीकार किया गया, उन्हें जान-बूझकर वास्तविकता से अधिक आँका गया था। प्रसाधनों का विचार किए बिना किसी प्रकार लक्ष्य का निर्धारण किया गया था, इसका ज्ञान हो सकता है प्रधानमंत्री के उस भाषण के निम्नांश से, जो उन्होंने अभी हाल में लोकसभा में द्वितीय पंचवर्षीय योजना के संबंध में दिया था। आपने कहा था, 'भारत को भारी दामों पर विदेशों से अनाज ख़रीदना पड़ा और इसके कारण विदेशी मुद्रा पर अत्यधिक दबाव उपस्थित हो गया। जिस समय द्वितीय योजना की रूपरेखा तैयार की गई थी, विचार किया गया था कि हम एक करोड़ टन (27 करोड़ मन के लगभग) अनाज का अतिरिक्त उत्पादन करने का प्रयास करेंगे। किंतु राष्ट्रीय विकास परिषद् में हुए विचार विमर्श के पश्चात् लक्ष्य को बढ़ाकर 1½ करोड़ टन कर दिया गया। मुझे बताया गया है कि अशोक मेहता कमेटी ने अनुमान लगाया है कि एक करोड़ तीन लाख टन ही अनाज का उत्पादन हो सकेगा। मुझे किंचित् भी संदेह नहीं है कि हम 1½ करोड़ टन को अपना लक्ष्य निर्धारित करेंगे और उसे प्राप्त करने का जी-तोड़ प्रयास करेंगे। मैं कहता हूँ कि यह (उत्पादन वृद्धि) 1½ करोड़ टन से भी अधिक होना चाहिए। मैं केवल हवाई बातें नहीं करता। भारत में उत्पादन की दर अल्प-अत्यल्प है। वह संसार में प्रायः सबसे कम है। यह हमारे लिए सबसे लज्जा और अपमान की बात है कि वह इतनी कम है। किंतु स्मरण रहे, जहाँ वह कम होती है, वहाँ थोड़े से प्रयास से उसे बढ़ाया जा सकता है। भारत में जहाँ प्रयास किए गए हैं, वहाँ वह न केवल 10 या 15 प्रतिशत ही बढ़ी है अपितु 30, 40, 50 प्रतिशत तक भी वृद्धिगत हुई है। विकास खंडों के क्षेत्र में उसका परिणाम और भी अधिक रहा है।'[1] इससे लगता है कि हमारी मानसिक वृत्तियाँ आज भी राजनीतिक आंदोलनकारी तथा काल्पनिक आदर्शवादी के समान बनी हुई हैं; हमारी स्थिति उस व्यावहारिक नियोजक से नितांत भिन्न है, जो योजना बनाते समय जीवन की यथार्थताओं को ओझल नहीं होने देता, श्रेष्ठ व समृद्धिशाली जीवन की योजना बनाते हुए भी यथार्थ जीवन की सुदृढ भूमि को नहीं छोड़ता।

---

1. 20 नवंबर, 1957 को लोकसभा में पंडित नेहरू का भाषण, 'हिंदू' (21 नवंबर, 1957)।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

निदान के विफल प्रयास

योजना को स्थान-स्थान पर क्षत-विक्षत होते देखकर उसके निदान और उपचार के लिए कमेटियाँ और आयोग नियुक्त किए जा रहे हैं। इन कमेटियों और आयोगों का एक-दूसरे से उसी प्रकार कोई विशेष संबंध नहीं है, जिस प्रकार विशेषज्ञों का आपस में कोई संबंध नहीं रहता। अनेक बार एक की सिफ़ारिशें दूसरे की सिफ़ारिशों पर पानी फेर देती हैं। अभी हाल में जिन्होंने अपने प्रतिवेदन प्रस्तुत किए हैं, उनमें से कुछ हैं—खाद्यान्न जाँच समिति, निर्यात विकास कमेटी, बलवंत राय मेहता कमेटी तथा अर्थ आयोग। सभी ने अत्यधिक परिश्रम तथा विचार करके कुछ ऐसे सुझाव प्रस्तुत किए, जो स्वयं में अति मूल्यवान हैं; किंतु यदि सबके सुझावों पर एक साथ विचार किया जाए तो विचारक के समक्ष कोई आकर्षक चित्र उपस्थित नहीं हो सकेगा। वास्तव में हमें एक ऐसे महा आयोग की आवश्यकता है, जो समस्त आयोगों द्वारा दिए गए सुझावों पर विचार करे और उनमें से जो राष्ट्र की आवश्यकता तथा सामर्थ्य के अनुसार हो, उन्हें स्वीकार करे। आशा थी कि योजना आयोग यह कार्य कर सकेगा। किंतु अब तक वह इस संबंध में बुरी तरह असफल सिद्ध हुआ है। प्रधानमंत्री तथा वित्त मंत्री[2] दोनों ने आश्वासन दिलाया है कि भविष्य में अधिक एकसूत्रता रहेगी। ये आश्वासन कहाँ तक पूर्ण हो पाते हैं—भविष्य ही इसकी साक्षी प्रस्तुत कर सकेगा।

किंतु जहाँ तक अब तक का संबंध है, केंद्र तथा राज्यों के बीच की सूत्र विहीनता नहीं रही है, अपितु मंत्रालयों में आपस में भी एकसूत्रता का अभाव रहा है। प्रधानमंत्री अथवा गृहमंत्री[3] कुछ भी आश्वासन क्यों न दिलाएँ, किंतु अभी हाल में लोकसभा में वित्तमंत्री के तथाकथित आक्षेपों के संबंध में जो चर्चा उठी थी, उसने पूर्ण रूप से स्पष्ट कर दिया है कि अमरीका में विचार प्रकट करते समय वित्तमंत्री तथा रक्षामंत्री[4] ने अपनी-अपनी ढफली, अपना-अपना राग' अलापा। यदि आचार्य घोष के व्यंग्यपूर्ण कथन को दोहराना हो, 'एक कृष्ण ने दूसरे कृष्ण के करे कराए पर पानी फेरने का कार्य किया।'

विदेशी मुद्रा संकट के संबंध में विचार करने पर एकसूत्रता का यह अभाव और भी प्रत्यक्ष हो जाता है। विदेशी मुद्रा के विषय में संबंधित अधिकारी हैं—लक्ष्य निर्धारित करने वाला योजना आयोग, आयात नीति निर्धारित करने वाली मंत्रिमंडल की अर्थ समिति, निजी निर्माण कार्यों की जाँच-पड़ताल करके उन्हें लाइसेंस प्रदान करने वाली संबंधित मंत्रालयों के उच्च अधिकारियों की समिति तथा विदेशी मुद्रा प्रदान करने वाला रिज़र्व बैंक। यह होते हुए भी कि योजना आयोग तथा मंत्रिमंडल की आर्थिक समिति

---

2. उस दौरान देश के वित्तमंत्री, मोरारजी देसाई, (मार्च 1958-अगस्त 1963) थे।
3. उस दौरान देश के गृहमंत्री, गोविंद वल्लभ पंत (जनवरी 1955-मार्च 1961) थे।
4. उस दौरान देश के रक्षामंत्री, वी.के. कृष्णमेनन (1957-1962) थे।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में कार्य करते हैं और मंत्रिमंडल के कतिपय प्रमुख सदस्य आयोग के सदस्य हैं, इस प्रकार के महत्त्वपूर्ण विषयों के संबंध में कोई निश्चित तथा सामान्य नीति नहीं है।

केवल इतना ही नहीं कि नीतियों का क्रियान्वयन ठीक प्रकार से नहीं होता, नीति-निर्धारण करते समय भी आँखों के समक्ष हमारे आर्थिक जीवन और सर्व सामान्य जन का स्पष्ट चित्र नहीं रखा जाता। द्वितीय पंचवर्षीय योजना, नियोजन और संयोजन के संकलन के अतिरिक्त कुछ नहीं है। मूल रूप में द्वितीय योजना के अंतर्गत राज्य सरकारों द्वारा योजना आयोग के समक्ष जो योजनाएँ प्रस्तुत की गई थीं, उनका योग 15 हज़ार करोड़ रुपए से भी कुछ अधिक था। आयोग द्वारा इन आँकड़ों को कुछ ज्योतिषीय ढंग का स्वीकार किया गया। लाख से नीची संख्या को संख्या ही न मानने वाले आयोग का जब यह हाल रहा, सामान्य व्यक्ति की तो चर्चा ही व्यर्थ है। केंद्र और राज्य सरकारों के बीच काफ़ी चकचक तथा खींचा-तानी चलती रही और आम निर्वाचन के संध्याकाल तक योजना आयोग इन आँकड़ों को 48 अरब से नीचे न ला सका। कुछ भी हो, काट-छाँट के द्वारा भी योजना को समुचित रूप प्राप्त न हो पाया होता, क्योंकि यदि समस्त योजनाओं को पूर्ण प्रामाणिकता के साथ भी क्रियान्वित किया गया होता (थोड़े समय के लिए हम यहाँ प्रसाधनों और व्यक्तियों की कमी का विचार छोड़ देते हैं) तो भी उनका आपस में एक-दूसरे से संघर्ष आता, जिसके कारण भीषण गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती। खाद्यान्न जाँच समिति ने विभिन्न योजनाओं के बीच उपस्थित होने वाले इसी प्रकार के संघर्ष के एक उज्ज्वल उदाहरण की ओर संकेत किया है। योजना के अनुसार प्रस्तावित है कि संपूर्ण क्षेत्र का 33 प्रतिशत वन रोपण योजना का अंग बनाया जाएगा; इस 33 प्रतिशत क्षेत्र का 60 प्रतिशत पर्वतीय क्षेत्र में होगा और 2 प्रतिशत मैदानों में। इसके साथ-साथ केंद्रीय ट्रैक्टर संघ तथा निजी लोगों और संस्थानों के माध्यम से अधिक-से-अधिक भूमि को कृषि योग्य बनाए जाने की योजनाएँ भी हैं। इन दोनों योजनाओं के बीच संघर्ष के लिए कितनी गुंजाइश है, इसका अनुमान निम्न आँकड़ों के आधार पर लगाया जा सकता है—

भारत में भूमि का उपयोग	(लाख एकड़ में)
प्राकृतिक क्षेत्र	8110
व्यवस्थित क्षेत्र	7220
वन	1330
कृषि के लिए अप्राप्य	1220
बिना जुती भूमि	950
जुती भूमि बंजर सहित	3720

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

यदि वनों को बढ़ाकर व्यवस्थित क्षेत्र का 33 प्रतिशत करना है तो वन क्षेत्र को 1330 लाख एकड़ से बढ़ाकर 2410 लाख एकड़ करना होगा, जिसका अर्थ है 1080 लाख एकड़ की अभिवृद्धि। किंतु बिना जुती भूमि कुल 950 लाख एकड़ ही है। यदि नवीन भूमि को कृषि योग्य बनाने का विचार बिल्कुल त्याग दिया जाए, तो भी वन रोपण का लक्ष्य पूर्ण नहीं हो सकता। यदि हम उस जुती और बग़ैर जुती भमि का विचार करें जो अनेक सिंचाई योजनाओं के कारण जल के तल में समा गई हैं तथा उस भूमि का भी विचार करें, जिस पर बस्तियाँ बसाई जा रही हैं अथवा अन्य योजनाएँ क्रियान्वित की जा रही हैं, तो उक्त अंतर और भी अधिक हो जाएगा। इससे स्पष्ट हो जाता है कि विभिन्न निर्धारित लक्ष्यों के आँकड़ों में कोई तारतम्य नहीं है।

गंभीर विचार आवश्यक

अब स्थिति ऐसी आ गई है कि गंभीरतापूर्वक विचार करना अनिवार्य हो गया है। संपूर्ण योजना को ही परिवर्तित करना होगा—फिर चाहे हम उस परिवर्तन को 'पुनर्निर्धारण' की संज्ञा प्रदान करें अथवा 'पुनर्रचना' की अथवा 'काट-छाँटकर छोटा करने' की। आवश्यकता इस बात की है कि हम योजना के संबंध में अपने मूल दृष्टिकोण को परिवर्तित करें। जहाँ तक भारतीय जनसंघ का संबंध है, वह नियोजन के समाजवादी आधार का सामान्य रूप में और द्वितीय पंचवर्षीय योजना का विशेष रूप से, सदा से विरोधी रहा है। समय-समय पर वह सरकार व जनता का ध्यान राष्ट्रीय जीवन की मूलभूत मान्यताओं—जिनको सभी प्रकार की योजनाओं के अंतर्गत स्थान प्राप्त होना चाहिए तथा वर्तमान योजना की कमियों और कमज़ोरियों की ओर आकर्षित करता रहा है। परंतु अभी तक हम अल्प संख्या में हैं। जनतंत्र के आदर्शों पर विश्वास करने वाले लोगों को शायद निकट भूत में घटित घटनाओं का यह निष्कर्ष रुचिकर न लगे कि अल्पसंख्यक की धारणाएँ अपेक्षाकृत अधिक सत्य रहीं। परंतु कुछ लोग ऐसे भी हो सकते हैं, जो हमारे मत से सहमत हों, किंतु किसी कारण विशेष से अपना मत प्रकाशित न कर पाते हों। संपूर्ण राष्ट्र पर भयंकर संकट छाया हुआ है। आज समय नहीं है कि किसी पर दोषारोपण किया जाए और किसी के सिर श्रेय का सेहरा बाँधा जाए। यदि आज हम संगठित होकर समुचित नीतियों का अनुसरण न कर सके तो हो सकता है, हमारा भविष्य किसी क्षण कराल अंधकार का अनुगामी बन जाए।

—पाञ्चजन्य, अप्रैल 7, 1958

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

11

भारतीय जनसंघ वार्षिक अधिवेशन, अंबाला
महामंत्री प्रतिवेदन*

भारतीय जनसंघ का छठा राष्ट्रीय वार्षिक अधिवेशन अंबाला में संपन्न हुआ। 4-6 अप्रैल, 1958 तक चले इस अधिवेशन की अध्यक्षता आचार्य देवा प्रसाद घोष[1] ने की थी। आचार्य घोष लगातार तीसरी बार जनसंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष भी निर्वाचित हुए। दीनदयालजी द्वारा प्रस्तुत किया गया महामंत्री प्रतिवेदन।

गत अधिवेशन के समय जब हम दिल्ली में एकत्र हुए थे, द्वितीय आम चुनावों की तैयारी और व्यवस्था ही हमारे सम्मुख प्रमुख विचारणीय विषय था। हमने वहाँ अपना चुनाव घोषणा-पत्र स्वीकृत किया एवं आने वाले चुनावों में जनसंघ की नीति निर्धारित की। आम चुनावों की समाप्ति के एक वर्ष बाद हम उनके परिणामों का विचार, प्रथम प्रतिक्रिया से मुक्त, गंभीर विश्लेषण के साथ कर सकते हैं।

लोगों ने इन चुनावों में बड़े उत्साह से भाग लिया और देश में सब ओर मतदान में वृद्धि हुई। जनता ने चुनावों में जो रुचि दिखाई और जिस प्रकार शांति और व्यवस्था से संपन्न हुए, उससे हमारी मूलतः जनतांत्रिक प्रकृति का परिचय मिलता है। जनतंत्र का भारत में भविष्य उज्ज्वल है। यदि वे शक्तियाँ जिनकी जनतंत्र में आस्था है, भारतीय जनता की भावनाओं के प्रकटीकरण की समुचित व्यवस्था कर सकें और उन्हें अप्रजातांत्रिक

---

* देखे परिशिष्ट II पृष्ठ 287 और परिशिष्ट III पृष्ठ 290

1. आचार्य देवाप्रसाद घोष (1894-1985) भारतीय जनसंघ के चौथे अध्यक्ष (1956-59) थे।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

तत्त्वों का शिकार न बनने दें।

चुनावों के परिणामस्वरूप यद्यपि केंद्र में और केरल को छोड़कर सभी राज्यों में कांग्रेस शासन की स्थापना हुई है तथापि देश में चुनावों में कांग्रेस के प्रति व्यापक असंतोष दिखाई दिया है। जहाँ भी विरोधी दल सम्मिलित मोरचा बना सके अथवा उनमें से एक भी अपनी विजय का विश्वास जमा सका, वहाँ निर्वाचकों ने निर्भीकतापूर्वक उनका साथ दिया। परिणामत: कई क्षेत्रों में कांग्रेस के अत्यंत प्रभावी प्रत्याशियों को भी मात खानी पड़ी।

राज्य पुनर्गठन से उत्पन्न असंतोष का निर्वाचनों पर भारी परिणाम हुआ। इस संबंध में जनभावना इतनी तीव्र और इतनी व्यापक रही कि विभिन्न विरोधी दलों को कांग्रेस का मुक़ाबला करने के लिए आपसी समझौता आवश्यक और हितकर प्रतीत हुआ।

सांप्रदायिक तत्त्व और चुनाव

इस चुनाव में सांप्रदायिक तत्त्वों ने अपनी पुरानी नीति का ही परिचय दिया। कांग्रेस और प्रजा समाजवादी दलों ने उनके साथ सौदेबाजी की और उनका तुष्टीकरण करके उन्हें प्रोत्साहन दिया। कांग्रेस ने घोषणा की कि अल्पमतों को उनकी जनसंख्या के अनुपात में टिकट दिए जाएँ। पंजाब में तो अकाली दल के साथ सांप्रदायिक आधार पर एकीकरण स्वीकार कर लिया गया। प्रजा समाजवादी दल ने दो क़दम और भी आगे बढ़कर मुसलिम लीग के साथ समझौता किया। पिछले 50 वर्षों में सांप्रदायिक राजनीति के विकास और परिणाम की पृष्ठभूमि में यह भविष्य की राजनीति के लिए गंभीर चेतावनी है।

विभिन्न राजनीतिक दलों, विशेषकर कांग्रेस के अंतर्गत गुटों ने भी जातिवाद को काफ़ी भड़काया। जहाँ किसी भी दल का संगठन अच्छा है, वहाँ तो इसका कोई विशेष परिणाम नहीं हुआ किंतु साधारणत: अन्य क्षेत्रों में इसका प्रभाव अवश्य पड़ा।

चुनावों के परिणामस्वरूप लोकसभा में विभिन्न दलों की स्थिति में कोई विशेष अंतर नहीं पड़ा। किंतु भारतीय जनसंघ और कम्युनिस्ट पार्टी दोनों के प्राप्त मतों का प्रतिशत पिछले चुनावों से दुगुना हो गया है, जबकि अन्य विरोधी दल पहले की अपेक्षा कम प्रतिशत मत प्राप्त कर सके हैं।

अनेक प्रदेशों में विधानसभाओं में कांग्रेस की शक्ति घटी है। केरल और उड़ीसा में तो वह बहुमत भी नहीं प्राप्त कर सकी। केरल में कम्युनिस्ट पार्टी यद्यपि बहुमत में तो नहीं है किंतु विधानसभा में सबसे बड़ा दल है। कतिपय स्वतंत्र सदस्यों के साथ मिलकर उसने मंत्रिमंडल भी बनाया है। कांग्रेस और प्रजा समाजवादी दल की सांप्रदायिक

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

नीतियाँ, उनकी अस्थिरता एवं सुस्थिर मंत्रिमंडल बना सकने की पूर्व प्रकट अक्षमता तथा राज्य पुनर्गठन के परिणामस्वरूप पुराने त्रिवांकुर-कोचीन राज्य से तमिल भाषी क्षेत्र का पृथकीकरण और कम्युनिस्ट प्रभावित मालाबार का एकीकरण, ये ऐसे कारण हैं, जिनसे कम्युनिस्टों को वहाँ इतनी भारी विजय मिल सकी।

चुनाव में जनसंघ की सफलता

भारतीय जनसंघ ने 127 लोकसभा के[2] और लगभग 650 विधानसभाओं के स्थानों पर चुनाव लड़े। इनमें से लोकसभा[3] के 4 तथा विधानसभाओं के 51 सदस्य विजयी हुए। लोकसभा के लिए कुल 72 लाख से ऊपर अर्थात् 6 प्रतिशत के लगभग मत प्राप्त हुए।

दिल्ली अधिवेशन में आम चुनावों के संबंध में जो नीति निर्धारित थी, उसके अनुसार यद्यपि यह तय किया था कि केवल उन्हीं स्थानों में प्रत्याशी खड़े किए जाएँ, जहाँ जनसंघ का एक निश्चित परिमाण में कार्य हो? किंतु इसका सभी जगह पालन नहीं हुआ। केंद्रीय निर्वाचन अधिकरण ने प्रत्याशी प्रपत्र प्रादेशिक निर्वाचन अधिकरणों के अभिस्तावों के साथ माँगे थे। अनेक स्थानों पर प्रत्याशियों का निर्णय कांग्रेस निर्णय पर अवलंबित रहने के कारण केंद्र को ये प्रपत्र निर्देशानुसार नहीं मिले। फलतः प्रत्याशी निर्धारण और निर्णय का कार्य प्रादेशिक स्तर पर ही हुआ। संगठन की व्यवस्था और अनुशासन के अतिरिक्त इसका परिणाम प्रत्याशियों के देर से निर्धारण होने के कारण निर्वाचन पर भी पड़ा।

चुनाव के कुछ ही दिन पूर्व निर्वाचन क्षेत्रों का नए सिरे से परिसीमन किया गया, जिसमें ऐसे अनेक क्षेत्र जिनमें हम पिछले कई वर्षों से योजनाबद्ध कार्य कर रहे थे, बदल दिए गए। इसका प्रभाव प्रत्याशियों की संख्या और उनके चुनाव परिणाम, दोनों पर हुआ।

निर्धारित नीति के अनुसार अखिल भारतीय स्तर पर किसी भी राष्ट्रीय दल या गुट के साथ चुनाव गठबंधन न कर प्रादेशिक या क्षेत्रीय आधार पर चुनाव सामंजस्य स्थापित किए गए। महाराष्ट्र में संयुक्त महाराष्ट्र समिति, बंगाल में जनतांत्रिक मोरचा एवं पंजाब में महापंजाब समिति के आधार पर यह सामंजस्य हुआ। राजस्थान और गुजरात में रामराज्य परिषद् और हिंदू महासभा के साथ भी सामंजस्य का प्रयत्न किया गया, जिसमें आंशिक सफलता प्राप्त हुई। इन प्रयत्नों का यह परिणाम भी हुआ कि हमें बहुत से

2. भारतीय जनसंघ ने 1957 के आम चुनावों में लोकसभा के लिए कुल 130 प्रत्याशी खड़े किए थे। इनमें से 3 प्रत्याशियों ने अपने नाम वापस ले लिये थे।
3. द्वितीय आम लोकसभा चुनावों के पश्चात् 1961 में नई दिल्ली संसदीय क्षेत्र के उप-चुनाव में बलराज मधोक लोकसभा के सदस्य चुने गए थे। इस प्रकार द्वितीय लोकसभा की समाप्ति तक जनसंघ के सदस्यों की संख्या चार से बढ़कर पाँच हो गई थी।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

स्थानों से अपने प्रत्याशियों के नाम वापस लेने पड़े और हमारी निर्धारित संख्या में कुछ कमी आ गई। मध्य प्रदेश में किसी भी प्रकार का समझौता नहीं हो सका और यह कहा जा सकता है कि कई क्षेत्रों में इसका विपरीत परिणाम हुआ।

भारतीय जनसंघ ने अपने चुनाव आंदोलन में भारत की सुरक्षा एवं द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अनुपयुक्तता के ऊपर विशेष ज़ोर दिया। आज जो देश की परिस्थिति निर्माण हुई है, उसने यह स्पष्ट कर दिया है कि हमने चुनावों में जनता के सामने जो दृष्टिकोण रखा था, वह सही था। कांग्रेस ने अपने चुनाव कार्यक्रम में चल रहे कश्मीर विवाद को ही अपने आंदोलन का केंद्र बनाया। कश्मीर का प्रश्न, जो जहाँ तक उसका पाकिस्तान से संबंध है, राष्ट्रीय महत्त्व का है। उसे इस प्रकार चुनाव के अखाड़े में लाना उचित नहीं कहा जा सकता। आवश्यक़ता तो इस बात की थी कि कांग्रेस द्वितीय पंचवर्षीय योजना, उसके अंतर्गत कराधान आदि विषयों पर जनता का अभिमत जानने का प्रयत्न करती।

चुनावों में स्थानों की दृष्टि से जनसंघ को अपेक्षा से कम स्थान प्राप्त हुए हैं। लोकसभा में जहाँ उसे 6 प्रतिशत मत मिले हैं, वहाँ स्थान केवल 0.8 प्रतिशत ही प्राप्त हुए हैं। इसी प्रकार विधानसभाओं में 3.9 प्रतिशत मत एवं 1.3 प्रतिशत स्थान मिले हैं। जनता में से किसी भी निश्चित गुट के ठोस समर्थन का अभाव इस विषमता का कारण है। लोकसभा में हम निश्चित ही अधिक स्थान जीत सकते हैं, किंतु उस ओर हमारे कार्यकर्ताओं ने अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया। इन चुनावों में जनसंघ ने लोकसभा के लिए 25 एवं विधानसभाओं के लिए लगभग 100 सुरक्षित स्थान लड़े तथा क्रमशः एक और तीन स्थान पर विजय भी प्राप्त की। यह इस बात का द्योतक है कि पिछली बार की तुलना में हम वनवासी एवं हरिजन क्षेत्रों में आगे बढ़े हैं। किंतु हमें और आगे बढ़ना होगा।

कांग्रेस द्वारा सत्ता का दुरुपयोग

चुनावों में कांग्रेस ने शासन यंत्र एवं अपने शासनस्थ प्रभाव का भी व्यापक उपयोग किया। जम्मू और कश्मीर राज्य में तो अनियमितताएँ एवं धाँधलेबाजी बहुत बड़े पैमाने पर हुई। भारत के चुनाव आयोग के तत्त्वावधान में वहाँ के चुनाव हों, हमारी इस माँग का औचित्य नेशनल कॉन्फ्रेंस में से निकले हुए सदस्यों ने भी स्वीकार किया है। भारत का पूर्ण संविधान लागू करके उस राज्य को अन्य राज्यों के समकक्ष लाए बिना वहाँ सामान्य स्थिति नहीं आ सकती। हमारी इस माँग का भी औचित्य वे थोड़े दिनों में अनुभव करेंगे ऐसा विश्वास है। हमारे विरुद्ध 25 चुनाव याचिकाएँ हैं। हमारी ओर से भी 8 चुनाव याचिकाएँ प्रस्तुत की गई हैं। अभी तक जो निर्णय हुए हैं, उनमें हमारे विरुद्ध कोई याचिका स्वीकृत नहीं हुई है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

जनसंघ की प्रगति

भारतीय जनसंघ और साम्यवादी दल दोनों ने ही पिछले आम चुनाव की अपेक्षा इन चुनावों में आनुपातिक दृष्टि से समान प्रगति की है, किंतु केरल में साम्यवादी सरकार बनने तथा जनसंघ की सफलता कुछ ही प्रांतों तक सीमित रहने के कारण लोगों की यह धारणा हो गई है कि कांग्रेस का स्थान साम्यवादी दल ही ले सकता है। केरल में ग़ैर-कांग्रेसी सरकार का निर्माण जहाँ एक ओर कांग्रेस की अजेयता की भ्रममूलक धारणा को समाप्त कर विरोधी दलों को बल प्रदान करता है।

वहाँ उन्हें यह भी बताता है कि यदि वे सक्रिय नहीं हुए तो जनतंत्र विरोधी शक्तियाँ जनभावना का अनुचित लाभ उठाकर अपना पग आगे बढ़ा सकती हैं।

आम चुनावों के बाद विधानपरिषदों एवं राज्यसभा के चुनावों में भी जनसंघ ने भाग लिया और तीन विधानपरिषदों एवं एक राज्यसभा का स्थान जीतने में सफल हुआ। राजस्थान विधानसभा के तीन राम राज्य परिषद् के सदस्यों ने भी जनसंघ की सदस्यता स्वीकार कर ली है। इस प्रकार अब हमारी सदस्य संख्या विभिन्न विधानमंडलों में निम्नलिखित है—

लोकसभा-4, राज्यसभा-1, विधानसभाएँ-54, विधानपरिषदें-6

स्थानीय निकाय निर्वाचन

स्थानीय संस्थाओं के चुनावों में जनसंघ की प्रगति महत्त्वपूर्ण कही जा सकती है। इसी आधार पर स्थानीय निकायों के क्षेत्र से जनसंघ के प्रत्याशी विधानपरिषदों में सफल हो सके हैं। हाल ही में दिल्ली नगर निगम के चुनावों ने सिद्ध कर दिया है कि राजधानी से कांग्रेस का पक्ष तेज़ी से गिरता जा रहा है तथा जनसंघ ही एक ऐसा व्यापक रूप से संगठित दल है, जो उसका स्थान ले सकता है। जनसंघ को इस चुनाव में 25 तथा कांग्रेस को 31 स्थान प्राप्त हो सके। जनसंघ ने केवल 54 स्थानों पर अपने प्रत्याशी खड़े किए थे जबकि कांग्रेस ने पूरे 80 स्थानों पर चुनाव लड़ा था।

उत्तर प्रदेश के चुनावों में यद्यपि स्थानीय निकायों के सदस्यों की संख्या में जनसंघ ने प्रगति की किंतु निर्वाचन पद्धति में परिवर्तन होने से अध्यक्ष का चुनाव प्रत्यक्ष मतदान से न होने के कारण हम उतनी संख्या में नगरपालिकाओं पर अधिकार नहीं कर पाए, जितना पिछली बार किया था।

मध्य प्रदेश में होने वाले चुनावों में हमने 168 स्थानों में से 74 पर प्रत्याशी खड़े किए तथा केवल 27 जीत पाए। प्रदेश में कार्य की स्थिति को देखते हुए यह संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। बिहार में चालू वर्ष में तीन नगरपालिकाओं में चुनाव हुए, जिसमें हमने 17 स्थान लड़े तथा 10 पर विजय प्राप्त की। बंगाल में विभिन्न नगर निकायों में

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

हमने 12 स्थान लड़े तथा सात पर विजय प्राप्त की। इसी प्रकार कर्नाटक में 5 स्थानों पर हमें सफलता मिली। गुजरात में 27 स्थानों में से 6 पर सफलता मिली।

आम चुनावों के बाद महाराष्ट्र में 29 नगरों में स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं के चुनाव हुए, जिनमें जनसंघ ने 104 स्थानों पर अपने प्रत्याशी खड़े किए तथा 82 पर सफलता पाई। इनमें 9 महिलाएँ भी सम्मिलित हैं। आज वहाँ 5 स्थानों में हमारे सदस्य नगरपालिकाओं के अध्यक्ष हैं।

भारतीय जनसंघ राष्ट्रीयता एवं जनतंत्र में आस्था लेकर चला है। निर्वाचनों में उसको मिले समर्थन ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि जनमत का ध्रुवीकरण हो रहा है। हम इस प्रक्रिया को आगे बढ़ाएँ तथा उन सभी शक्तियों का संगठन करें, जो अराष्ट्रीय, भारत विरोधी एवं अप्रजातंत्रीय तत्त्वों के विरोध में खड़ी हैं। संसदीय प्रक्रिया के अनुसार विरोधी दल के नाते हम अपने आपको कम्युनिस्ट, प्रजा समाजवादी तथा समाजवादी दल की पंक्ति में खड़ा पाते हैं। किंतु सैद्धांतिक दृष्टि से हमारा मतभेद इन दलों से भी उतना ही है जितना कि कांग्रेस से। इन दलों में भावाभेद हो सकता है, गुणभेद नहीं है।

अपने सिद्धांतों और नीतियों के स्पष्ट विवेचन एवं जनता के असंदिग्ध मार्गदर्शन की दृष्टि से यह आवश्यक है कि भारतीय जनसंघ स्वतंत्र रूप से विधानमंडलों में कार्य करे तथा जनता को दिए गए वादों को पूरा करने, उसकी कठिनाइयों को दूर करने तथा उसकी भावनाओं को सही रूप में अभिव्यक्त करने का प्रयत्न करे। भारतीय जनसंघ की कार्यसमिति ने जौनपुर की बैठक में इस आशय का निर्देशात्मक प्रस्ताव स्वीकृत किया है।

कांग्रेस की वही बेढंगी राह

चुनावों से कांग्रेस शासन ने कुछ भी नहीं सीखा। जनमत का आदर करते हुए अपनी नीति में परिवर्तन करने के स्थान पर उसका वही पुराना रवैया बना हुआ है। फलतः विभिन्न प्रदेशों में पुनः जन-आंदोलन ज़ोर पकड़ते जा रहे हैं। शासन उनको दबाने के लिए अधिकाधिक शक्ति का प्रयोग कर रहा है, जिससे वह पहले से अधिक अलोकप्रिय हुआ है। चुनाव के उपरांत कांग्रेस शासन की नीतियों का खोखलापन प्रकट होने लगा है। यथार्थ का कुछ ऐसा धक्का लगा है कि बड़ों-बड़ों के सिर से कांग्रेस सरकार की बहुप्रचारित विदेश नीति, पंचवर्षीय योजना आदि का जादू उतरता जाता है। जिन बातों को हमने बहुत पहले कहा और जो प्रस्ताव हमने कई वर्ष पूर्व समय-समय पर पारित किए, आज अनेक लोग ऐसे मिलते हैं जो वे ही बातें कह रहे हैं। यदि हमने प्रयत्न किया तो अपनी नीतियों की सत्यता हम आज के वातावरण में अधिकाधिक समझा सकेंगे। उस प्रकार दृष्टिकोण में साम्य होने पर हम उनको अपने साथ लाकर अपने संगठन में भी वृद्धि करेंगे।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पिछले वर्ष में विभिन्न प्रदेशों में जो आंदोलन हुए, उनमें पंजाब का सत्याग्रह सबसे महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है। जेल जाने वालों की संख्या, आंदोलन से प्रभावित लोक समुदाय, जेलों में अत्याचार, निवारक निरोधक नियम के अंतर्गत गिरफ्तारियाँ, जुरमाने, पुलिस द्वारा लाठीचार्ज, गोलीबारी एवं बलिदान इन सभी दृष्टियों से तो यह आंदोलन कांग्रेस शासन के स्वरूप को नग्न वास्तविकता के साथ प्रकट करता ही है, किंतु उसका विशेष महत्त्व तो उसका राष्ट्रीय एकता का लक्ष्य है। आंदोलन का प्रकट रूप चाहे जो हो, उसके मूल में पंजाब एवं भारत की जनता की वे आशंकाएँ हैं, जिनके अनुसार कांग्रेस द्वारा अकाली सांप्रदायिकता की तुष्टि के प्रयास में उनके सम्मुख भारत विभाजन की विभीषिका पुन: खड़ी हो जाती है। कांग्रेस का नेतावर्ग, अंग्रेज़ी ज़माने की राजनीति में पला होने के कारण सांप्रदायिक आधार पर ही सोचने का आदी है। वह इस आधार को छोड़कर सहयोग और विरोध दोनों की ही कल्पना नहीं कर सकता। इस ग़लत आधार के ही कारण पूर्णत: राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीयता की रक्षा करने वाले आंदोलन को भी सांप्रदायिक कहा गया। हम इतना ही कह सकते हैं कि 'सावन के अंधे को चारों ओर हरा ही हरा दिखाई देता है।'

जनसंघ को इस आंदोलन में भारी बलिदान देना पड़ा। पिछले वर्ष जनसंघ का कोई ऐसा कार्यकर्ता नहीं था, जो या तो जेल में न बैठा हो या बाहर रहकर आंदोलन का संचालन न कर रहा हो। किंतु यह भी ध्यान रखना होगा कि आंदोलन जनसंघ के झंडे के नीचे न होकर भाषा स्वातंत्र्य समिति के तत्त्वावधान में किया गया था।

कांग्रेस अधिक खोखली

कांग्रेस का आंतरिक संगठन भी पहले से अधिक खोखला हो गया है। गुटबंदी इतनी बढ़ गई है कि एक गुट दूसरे को नीचा दिखाने के लिए जनक्षोभ उत्पन्न करने और आंदोलन तक करने को तैयार है। कांग्रेस से निकले हुए या स्वतंत्र सदस्यों के ऐसे गुट प्राय: प्रत्येक विधानसभा में काम कर रहे हैं, जो बाहर रहकर शासनारूढ़ गुट का विरोध करते हैं तथा दूसरे गुट के नेता के पदारूढ़ होने की संभावना दिखते ही कांग्रेस में जाने को तैयार बैठे हैं। उनकी सिद्धांतहीन तथा गुटबंदी की राजनीति देश में स्वस्थ राजनीति के विकास में बड़ी बाधा है। दूसरी ओर प्रजा समाजवादी और समाजवादी दल हैं, जिनके आपस के संबंध रोज़ बनते और बिगड़ते रहते हैं। प्रजा समाजवादी दल के सदस्यों की संख्या कितनी भी क्यों न हो, अनुशासन नीतियों में एकता आदि की दृष्टि से उसे दल नहीं कहा जा सकता। देश की राजनीति में ज्यों-ज्यों सुस्पष्टता एवं सिद्धांतवादिता आती जाएगी, इस दल का प्रभाव कम होगा। प्रजा समाजवादी दल ने मुसलिम सांप्रदायिकता को प्रश्रय ही नहीं दिया, उसे उभारने की नीति भी अपनाई है। डॉ.

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

लोहिया समाजवाद को सिद्धांतों के आधार पर ढालने की कोशिश कर रहे हैं, किंतु उनके सिद्धांतों को समझना बड़ा कठिन है। आजकल वे 'सत्याग्रह' शास्त्र के विकास में लगे हुए हैं। उनकी नीति सत्याग्रह के लिए सत्याग्रह की दिखती है। उनके सत्याग्रह का जनता पर क्या परिणाम होगा, इस संबंध में अभी कोई मत बनाना ठीक नहीं होगा। हाँ, यह सत्य है कि बिहार में, जहाँ कि उन्होंने चुनाव के पूर्व ही सत्याग्रह का प्रयोग किया था तथा बाहर से सत्याग्रही लाए, उन्हें कोई लाभ नहीं हुआ। उत्तर प्रदेश और तमिलनाडु में भी असफलता ही उनके हाथ पड़ी।

कम्युनिस्ट राष्ट्रहित विरोधी

चुनाव के परिणामों का साम्यवादी दल ने बाहर चाहे कितना भी ढोल क्यों न पीटा हो, उनके अंदर कार्यकर्ताओं में असंतोष है। वे आंध्र, मद्रास और पंजाब में पीछे हटे हैं, बंगाल में मंत्रिमंडल बनाने का ख्वाब देख रहे थे, जो पूरा नहीं हुआ। केरल में भी वे बहुमत नहीं प्राप्त कर सके, जिसके कारण उन्हें पाँच स्वतंत्र सदस्यों का कृपाकांक्षी बनकर काम चलाना पड़ रहा है। मेरे इस विश्लेषण का अर्थ नहीं कि हम साम्यवादी दल की आज की शक्ति एवं आगे की संभावनाओं से आँखें मूँद लें। उसने चुनाव के बाद अपनी सरगर्मियाँ बढ़ाई हैं। शासन की दुर्नीतियों से पीड़ित जनता अनेक बार उनका शिकार भी बन जाती है। हम यदि उनका मुक़ाबला करना चाहते हैं तो केवल उनके सिद्धांतों और तत्त्वज्ञान की आलोचना से काम नहीं चलेगा। जो तत्त्वज्ञान समझ सकते हैं, वे कम्युनिस्ट नहीं बनते और जो कम्युनिस्ट बन जाते हैं, वे तत्त्वज्ञान नहीं समझ पाते। साम्यवाद व्यक्तिगत स्वतंत्रता, धर्म और संस्कृति की मर्यादाएँ तथा मानव जीवन के मूल्यों की परिसमाप्ति चाहता है। लोकतंत्र और राष्ट्रीयता के लिए उसके शासन में कोई स्थान नहीं, उसका मार्ग विघटन और वर्ग संघर्ष का है, ये सब ऐसी बातें हैं, जो अपढ़ और अशिक्षित जनता की बात तो दूर रही, पढ़े-लिखे किंतु पीड़ित वर्ग को भी समझ में नहीं आतीं। कारण सरदर्द से पीड़ित व्यक्ति उससे छुटकारा चाहता है, यदि उसे ऐस्प्रो जैसी कोई गोली मिली तो वह तुरंत खा लेगा, फिर उसका परिणाम हृदय और शरीर पर बुरा ही क्यों न पड़ता हो। अच्छी दवाएँ भी हैं किंतु जैसा कि उर्दू के शायर ने कहा है—

दर्दे सर के वास्ते
चंदन लगाना है मुफ़ीद।
पर इसका घिसना और लगाना,
दर्दे सर से कम नहीं॥

वह सहज ही इन दवाओं का प्रयोग नहीं करता। जो उसका भला चाहते हैं, यदि वे चंदन घिसकर लगा दें, तो शायद उसे कोई आपत्ति नहीं होगी।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भारतीय जनसंघ को यही काम करना है। हम यदि प्रजातंत्र की रक्षा करना चाहते हैं तो प्रजा की रक्षा करें। कर भार, महँगाई, भ्रष्टाचार और बेकारी से वह त्रस्त है। उसके नागरिक अधिकारों का जगह-जगह पर हनन किया जा रहा है। यदि हमें अपने सिद्धांतों से प्रेम है तो हम उनको पुस्तकों और व्याख्यान दाताओं की परिधि से निकालकर उनके आधार पर जनता के साथ खड़े हों और उसका बल बढ़ाएँ।

निस्संदेह हमारी संस्कृति के सिद्धांत केवल कुछ धनी-मानी व्यक्तियों के लिए नहीं; उसकी परिधि में भारत के सभी जन आते हैं। जो अपने व्यापार की प्रगति चाहता है, उसे वहाँ जाना होगा, जहाँ उसकी चीज़ के सबसे अधिक गर्जमंद और ख़रीददार हों। इस दृष्टि से विलासपुर अधिवेशन में भारतीय प्रतिनिधि सभा ने कुछ कार्यक्रम स्वीकार किए, जिन्हें देखकर जनसंघ की शाखाओं ने आर्थिक क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के आंदोलन किए हैं।

सत्याग्रह 'क्रीड' नहीं

जब हम आंदोलन का नाम लेते हैं तो देश में जो पिछली अर्धशताब्दी में वातावरण रहा है, उसके कारण जेल, सत्याग्रह, करबंदी आदि प्रत्यक्ष कार्रवाई ही लोगों के सम्मुख आती है। किंतु इन कार्रवाइयों की आवश्यकता किसी भी स्वतंत्र जनतंत्रीय देश में नहीं होनी चाहिए। यदि आज भी ऐसे पग उठाए जाते हैं, जो वह इसी बात का प्रमाण है कि अभी तक शासन ने पूर्णत: जनतंत्र का समादर करना नहीं सीखा। किंतु ये पग अंतिम हैं। जनसंघ 'सत्याग्रह' को अपना 'क्रीड' नहीं मानता किंतु आवश्यकता पड़ने पर शासन को जनमत के सम्मुख झुकाने के लिए विवश होकर उसका उपयोग अवश्य कर लेता है। हमारी इच्छा है कि जलसे, जुलूस, प्रस्ताव, वक्तव्य आदि जन-आंदोलन के साधन अधिक प्रभावी बनाए जाएँ तथा हम आशा करते हैं कि शासन भी उनकी अवहेलना कर अपने लिए सरदर्द मोल लेने की नीति को त्यागेगा।

जनसंघ और जनांदोलन

उत्तर प्रदेश में 'किसानों का लगान आधा करो' आंदोलन वैसे तो चुनाव के पहले से चल रहा है, किंतु चुनावों के दौरान उसे अधिकतम ग्रामीण क्षेत्रों में पहुँचाने का प्रयास किया गया। तदुपरांत गंगा-मेलों एवं अन्य सामूहिक एकीकरण के स्थानों का लाभ उठाकर उसे व्यापक बनाया। ग्राम पंचायतों से इस संबंध में प्रस्ताव भी पारित किए गए हैं। विधानमंडल में भी विभिन्न विवादों के समय शासन का ध्यान इस महत्त्वपूर्ण माँग की ओर आकर्षित किया गया। किंतु अभी प्रतीत होता है कि सफलता प्राप्त करने के लिए और प्रभावी पग उठाने होंगे। बिक्री-कर, जल-कर आदि के विरोध में उत्तर प्रदेश में आंदोलन हुए तथा कई नगरपालिकाओं में सफलता भी प्राप्त की। हरिजन

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बंधुओं को यद्यपि संविधान एवं सुधारवादी जगत् की ओर से पूर्ण समानता के अधिकार प्राप्त हो गए हैं किंतु फिर भी वे उनका भलीभाँति उपयोग नहीं कर पाते। प्रदेश में जनसंघ की शाखाओं ने उन्हें निर्भयता एवं सम्मानपूर्वक रहने का अधिकार दिलाने के लिए सक्रिय कार्य किया है। बिजनौर ज़िले का कार्य इस दृष्टि से उल्लेखनीय है।

बिहार में पेशा-कर के विरुद्ध जनसंघ ने सफल आंदोलन किया। इस प्रकार सीतामढ़ी में असंगठित पल्लेदारों को संगठित कर उन्हें सुविधाएँ दिलवाईं। अकाल एवं सूखा पीड़ित क्षेत्रों में जहाँ शासन से सहायता के लिए मोर्चे आदि संगठित किए गए, वहीं स्वत: भी रचनात्मक रूप से सहायता की व्यवस्था की।

बंगाल में दामोदर परियोजना के कारण हावड़ा ज़िले के अनेक क्षेत्रों में सिंचाई की व्यवस्था ही नहीं रही तथा वहाँ की भूमि को भारी हानि हुई है। उस क्षेत्र के जनसंघ ने पीड़ित किसानों की समस्या सुलझाने की दृष्टि से विशेष कार्य किया है।

महाराष्ट्र में बंबई से रत्नागिरी की ओर जाने वाले जहाज़ों के किराए में कमी करने का आंदोलन सफलतापूर्वक चलाया गया। काफ़ी दिनों तक तो शासन ने इस ओर ध्यान नहीं दिया किंतु जब प्रत्यक्ष कार्रवाई की नौबत आ गई तो शासन ने गोलमेज़ सम्मेलन करके 15 प्रतिशत वृद्धि रोक दी एवं आगे दूसरे सम्मेलनों के निर्णयों के अनुसार कमी का आश्वासन दिया है। कोंकण रेलवे की माँग भी वहाँ के जनसंघ ने ज़ोरदार रूप में उठाई है।

बंबई राज्य में गो हत्या बहुत व्यापक एवं अधिक होती है। उसे रोकने एवं शासन द्वारा क़ानून बनाने के लिए 'गोहत्या' समिति द्वारा पिछले एक वर्ष में जन जागरण का कार्य हो रहा है। जनसंघ के बंबई विधानसभा के सदस्य श्री म्हालगी (रामभाऊ म्हालगी) द्वारा इस संबंध में एक विधेयक भी प्रस्तुत किया गया। शासन द्वारा आश्वासन दिए जाने के कारण वह विधेयक तो वापस ले लिया है, किंतु अभी जनमत के अधिकाधिक संगठन का प्रयास चालू है।

जौनपुर में भारतीय कार्यसमिति ने प्रस्ताव किया था कि सन् 1957 में स्वातंत्र्य समर की शताब्दी मनाने के साथ 10 मई के पूर्व ही भारत शासन विदेशी शासकों की प्रस्तर मूर्तियाँ हटा दें। उत्तर प्रदेश शासन ने आश्वासन भी दिया था किंतु डॉ. लोहिया द्वारा अपने सत्याग्रह की माँगों में इस प्रश्न को भी सम्मिलित कर लेने एवं सत्याग्रह प्रारंभ करने के कारण कुछ दिनों तक शासन प्रतिष्ठा के चक्कर में अपने आश्वासन को टालता रहा। किंतु जब उसे अनुभव हुआ कि अब हम भी इस प्रश्न पर और अधिक सक्रिय पग उठा सकते हैं तो उसने 15 अगस्त के पूर्व इन मूर्तियों को हटाने की घोषणा की एवं तदनुसार व्यवस्था भी की।

अन्य प्रदेशों में भी इस दृष्टि से जन-जागरण का कार्य हुआ है, किंतु उसे अभी तक प्रभावी नहीं कहा जा सकता।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

गिरिजनों की समस्याएँ और जनसंघ

वनवासी, गिरिजनों एवं विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वाले श्रमिकों की माँगें उनके अलग-अलग संगठन बनाकर पूरी कराने का प्रयत्न किया है। ये संगठन ट्रेड यूनियन एक्ट की मर्यादाओं के अंतर्गत नहीं आते। अत: किसी मज़दूर संघ से संबद्ध न होकर स्वतंत्र रूप से जनसंघ कार्यकर्ताओं द्वारा चलाए जा रहे हैं। इनमें मध्य प्रदेश का वनवासी तथा हरिजन जनसंघ, महाराष्ट्र का गिरजन जनसंघ तथा उत्तर प्रदेश का जलनाविक मज़दूर संघ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

डॉ. ग्राहम के आगमन पर विरोध प्रकट करने के लिए जनसंघ की ओर से स्थान-स्थान पर प्रदर्शन आयोजित किए गए, जो बहुत सफल रहे।

बिलासपुर अधिवेशन में कर वृद्धि विरोध, वेतन एवं वृत्ति वृद्धि माँग के साथ भ्रष्टाचार उन्मूलन समितियों की स्थापना, अल्प बचत योजना में सहयोग तथा स्वदेशी का कार्यक्रम भी स्वीकार किया गया था।

भ्रष्टाचार उन्मूलन समितियों की स्थापना में सब ओर ढिलाई रही। अल्प बचत योजना में सहयोग के प्रस्ताव का शासन की ओर से कोई स्वागत नहीं हुआ। फलत: उस ओर आगे बढ़ने का प्रश्न ही नहीं उठा। शासन की यह नीति इस बात का द्योतक है कि वह पंचवर्षीय योजना में केवल मौखिक सहयोग के अतिरिक्त किसी प्रकार का क्रियात्मक सहयोग नहीं लेना चाहता।

विधानमंडलों में जनसंघ के सदस्यों ने बराबर अपने घोषणा-पत्र की पृष्ठभूमि में उपस्थित विषयों की आलोचना की है। जनहित के प्रत्येक प्रश्न को उन्होंने सदन में उठाया है। किंतु उनके सदन में प्रदर्शित विचारों का प्रकाशन एवं प्रसारण आवश्यकतानुसार नहीं हो पाया है। साथ ही संगठन की ओर से उन्हें आवश्यक सामग्री उपलब्ध कराने एवं दोनों के बीच अधिक तालमेल बैठाने की ओर ध्यान देना चाहिए।

रचनात्मक कार्य

जनसंघ की शाखाओं ने स्थान-स्थान पर रचनात्मक एवं सहायता कार्य भी हाथ में लिये हैं। जहाँ तक सहायता कार्यों का संबंध है, वे अस्थायी स्वरूप के हैं। बाढ़, सूखा, महामारी आदि प्रकृति के प्रकोपों से प्रपीड़ित जन की सेवा के हेतु तत्कालीन परिस्थिति में वे प्रारंभ किए गए। उनके अतिरिक्त शिक्षा, चिकित्सा, सहकारिता आदि के क्षेत्रों में भी जनसंघ कार्यकर्ता सक्रिय हैं। उत्तर प्रदेश में शिशु मंदिर एवं भारतीय विद्यालयों की स्थापना तथा महाराष्ट्र में अनेक प्रकार के छोटे-छोटे शिक्षण वर्ग प्रौढ़ साक्षरता, हिंदी शिक्षा, सिलाई, माचिस की तीलियाँ तथा क़ाग़ज के फूल बनाने की शिक्षा आदि— विशेष रूप से प्रारंभ किए हैं। इस संबंध में इतना ही कहा जा सकता है कि ये कार्य

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

त्वरित फलदायी नहीं होते। इनमें लगन और सातत्य के साथ काम करना पड़ता है, साथ ही उन्हें दलगत राजनीति से भी दूर रखना चाहिए।

जनसंघ के कार्यक्रमों का पत्रों में प्रकाशन पहले से तो अधिक मिल रहा है। किंतु अभी भी वह कार्य की मात्रा में कम है। कार्यकर्ता यदि पत्रकारों की कठिनाई समझकर उन्हें दूर कर सकें तो अवश्य ही प्रकाशन में वृद्धि की जा सकती है।

संगठनात्मक दृष्टि से इस वर्ष विशेष कार्य करने की आवश्यकता थी। आम चुनावों के बाद सदस्य भरती एवं समितियों के गठन का कार्यक्रम हाथ में लिया गया। जो वृत्त प्रदेशों से उपलब्ध हुआ है, वह संतोषजनक नहीं। उसके अनुसार 243 मंडल समितियाँ एवं 889 स्थानीय समितियाँ गठित हुई हैं। सदस्यों की संख्या 74863 है। इनमें पंजाब, दिल्ली, आंध्र और केरल की संख्याएँ सम्मिलित नहीं हैं, कारण वहाँ से केंद्र कार्यालय को कोई वृत्त प्राप्त नहीं हुआ। पंजाब आंदोलन के कारण सदस्य भरती आदि को समय से पूरा नहीं कर पाया। अतः भारतीय कार्यसमिति ने वहाँ निश्चित समय सारणी में अपवाद करके समय की वृद्धि की थी। पिछले चुनावों में हमने 700 से ज़्यादा मंडलों में प्रत्याशी खड़े किए थे। अभी ऐसे बहुत मंडल बाक़ी हैं, जहाँ हम चुनावों के बाद समितियाँ नहीं बना पाए हैं।

स्वाध्याय मंडल एवं सदस्य सम्मेलन हमारे संगठन को मज़बूत बनाने के लिए नितांत आवश्यक हैं। बारंबार इस ओर ध्यान दिलाने के उपरांत भी कुछ स्थानों को छोड़कर शेष सभी ओर इनकी कोई व्यवस्था नहीं हो पाई है। विलासपुर में 8 से 18 अगस्त तक हमने एक अखिल भारतीय कार्यकर्ता सम्मेलन का आयोजन किया, जो बहुत सफल रहा। इसमें लगभग 80 कार्यकर्ताओं ने भाग लिया। वहाँ हमने अपने कार्य एवं सिद्धांतों का सभी पहलुओं से विचार किया।

भारतीय जनसंघ के संस्थापक डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के निधन के उपरांत राजनीतिक क्षेत्रों में यह धारणा हो गई थी कि अब जनसंघ नहीं चलेगा। पिछले पाँच वर्ष हमें इस धारणा से लड़ते बीते हैं। द्वितीय आम चुनावों के परिणामों ने यह सिद्ध कर दिया है कि भारतीय जनसंघ न केवल जीवित है अपितु वह प्रगति भी कर रहा है। यदि ऐसा न होता तो हम अपने दिवंगत नेता के प्रति सच्चे नहीं रहते। जनसंघ की प्रगति एवं स्थायित्व के विश्वास ने जनता का उसकी ओर देखने का दृष्टिकोण बदला है। अब हमारी जिम्मेदारियाँ भी बढ़ गई हैं। उन्हें निभाने के लिए हमें अपने संगठन को सबल और सक्षम बनाना होगा।

जनसंघ अखिल भारतीय दल के रूप में पुनः मान्यता प्राप्त कर चुका है। हम उसे कुछ क्षेत्रों तक सीमित नहीं रख सकते। अतः आने वाले वर्ष में हमारा प्रयास अधिकाधिक विस्तार का हो। जिन प्रदेशों में बिल्कुल हमारा काम नहीं है, वहाँ हमें हमारी शाखाएँ

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

खोलनी होंगी तथा वर्तमान प्रदेशों में उन क्षेत्रों में हमें पहुँचना होगा, जहाँ अभी तक हम नहीं पहुँचे। राजनीतिक दलों का सार्वदेशिक एवं सार्वक्षेत्रीय व्याप, देश की एकता एवं सुशासन के लिए भी आवश्यक है। 1000 मंडल समितियों का विधिवत् गठन हमारा आगामी वर्ष का लक्ष्य होना चाहिए।

हरिजन और वनवासी भाइयों में हमारे कार्य ने प्रगति अवश्य की है, किंतु हमें उनमें और भी तेज़ी से बढ़ना होगा। उन बंधुओं में से समाज के, केवल हरिजनों के नहीं, नेतृ-वर्ग का विकास हो सके, इसकी ओर हमें विशेष ध्यान देना होगा। सन् 1961 में यदि संविधानांतर्गत संरक्षण समाप्त हो गया तो यह दायित्व हमारे ऊपर होगा कि आगामी विधानमंडलों में बिना संरक्षण एवं भेदभाव के सभी वर्गों का अच्छा प्रतिनिधित्व हो सके। इसके लिए आवश्यक है कि हम समाज में ऐसे नेतृ-वर्ग को आगे लाएँ, जो सबके हिताहित का विचार कर संपूर्ण समाज का नेतृत्व कर सके।

महिलाएँ और जनसंघ

महिलाओं में भी हमें तेज़ी से विस्तार करना होगा। महाराष्ट्र को छोड़कर, जहाँ कुल सदस्य संख्या की तिहाई महिला सदस्याएँ हैं, अन्य प्रदेशों में यदाकदा सम्मेलन छोड़कर उनमें संगठनात्मक दृष्टि से बहुत कम काम हुआ है। हम इस बात का निश्चय करें कि ऐसी कोई समिति नहीं होगी, जिसमें महिला सदस्य न हों।

विस्तार के साथ व्यवस्था की ओर भी हमें ध्यान देना होगा। प्रदेश कार्यालयों को छोड़कर अन्य इकाइयों में या तो हमारे कार्यालय नहीं हैं अथवा सक्रिय नहीं हैं। जहाँ-जहाँ हमारी समितियाँ हों, वहाँ हमारे कार्यालय अवश्य चाहिए तथा समिति की सभी बैठकों की लिखित कार्रवाई रखनी चाहिए। स्वाध्याय मंडल एवं सदस्य सम्मेलनों के महत्त्व का पुनः उल्लेख करता हूँ। मैं चाहता हूँ कि विभिन्न पदाधिकारियों के भ्रमण करते समय सार्वजनिक कार्यक्रम के स्थान पर सदस्य सम्मेलनों को प्राथमिकता दी जाए।

पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत शासन का क्षेत्र बढ़ता जा रहा है। अब केवल पुलिस और डिप्टी कमिश्नर ही नहीं, रेल का बाबू, बस कंडक्टर, जीवन बीमा कॉरपोरेशन का अधीक्षक, स्टेट ट्रेडिंग कॉरपोरेशन का क्लर्क आदि अनेक राज्य के प्रतीक हो गए हैं। सार्वजनिक क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले उद्योगों की ओर राजनीतिक दलों को विशेष ध्यान देना चाहिए, क्योंकि वे ही कर दाता और उपभोक्ता दोनों के हितों का संरक्षण कर सकते हैं। अतः हमारे कार्यकर्ताओं को सभी सरकारी उद्योगों की कार्यप्रणाली, लेखा, दर निर्धारण नीति आदि विषयों का अध्ययन करना चाहिए तथा स्थान-स्थान पर जनसंगठन के सहारे उनको योग्य दिशा में चलाने का प्रयत्न करना चाहिए। इनके ऊपर विधानमंडलों

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

की बहस से भी ज़्यादा नियंत्रण जनता का हो सकता है।

मतदाता सूचियाँ सभी चुनावों का आधार हैं। वे कितनी अधूरी एवं त्रुटिपूर्ण हैं, यह हमने पिछले चुनावों में अनुभव किया। उन्हें ठीक करने का दायित्व सरकार का ही नहीं, हमारा भी है। अभी तक राजनीतिक दलों ने इस दायित्व का निर्वाह नहीं के बराबर किया है। प्रति वर्ष के चुनाव आयोग द्वारा मतदाता सूची संशोधन की अवधि में इस कार्य को हम अभियान के रूप में लें। इससे न केवल सूचियाँ ही दुरुस्त होंगी, बल्कि हमें मतदाताओं से संपर्क स्थापित करने का अवसर भी मिलेगा।

पिछले वर्षों में हमने प्रगति की है, यह निस्संदेह रूप से कहा जा सकता है, किंतु हमें समाधान नहीं। हमारे ऊपर एक महान् दायित्व है। स्वतंत्रता के जागरूक प्रहरी के नाते हमें अपना बलवर्धन करना होगा। आज हम कह सकते हैं कि भारतीय जनसंघ ही एकमेव दल है, जिसके ऊपर भारतीय परंपरा एवं जनतंत्र की रक्षा का भार आ पड़ा है। कांग्रेस एवं अन्य विरोधी दल जिन जीवन-मूल्यों को लेकर चले हैं, वे अभारतीय हैं। उनकी स्थापना के लिए जनतंत्र की वे कितनी ही दुहाई क्यों न दें, वे सर्वशक्तिमान केंद्रित राज्य शासन की ओर बढ़ते जा रहे हैं। किंतु हमारा ध्येय वाक्य है—आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति का विकेंद्रीकरण। विकेंद्रीकरण विघटन नहीं, अपितु भारत की एकात्मा का अनुभव करते हुए छोटी से छोटी इकाई को विकास की स्वतंत्रता प्रदान करना है। वही जीवमान जनतंत्र है। केंद्रित नियोजन के अंतर्गत प्रभावहीन तथा यंत्रवत् चुनाव जनतंत्र की आत्मा की रक्षा नहीं कर सकते।

अपने महान् नेता के जीवन और बलिदान से अनुप्राणित हम अपने ध्येय मार्ग पर अग्रसर हों। भगवान् हमारा सहायक होगा।

—पाञ्चजन्य, अप्रैल 14, 1958

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

12

पत्र केदारनाथ साहनी को

श्रीयुत केदार नाथजी साहनी
नेता जनसंघ दल, नगर निगम, दिल्ली
महोदय,

19 अप्रैल, 1958

मुझे ज्ञात हुआ है कि लाला हरीचंदजी[1] ने यह कहा है कि यदि उन्हें स्टैंडिंग कमेटी के अध्यक्ष के लिए चुनाव नहीं लड़ाया गया तो वे पार्टी छोड़कर चले जाएँगे। उनका यह कथन दु:ख भरा है। मुझे उनसे यह आशा नहीं थी। किंतु यह आवश्यक है कि जिस व्यक्ति को हमने महत्त्वपूर्ण पद के लिए चुनाव लड़ाया व उनकी दल के प्रति निष्ठा एवं अनुशासनप्रियता के संबंध में जो संदेह का वातावरण उपस्थित हो गया है, उसका निवारण हो जाए। अत: आप उनसे मिलकर इस बात की सहमति कर लें कि उनके शब्दों में कितना सत्य है। यदि लालाजी का जनसंघ के साथ इतने पुराने संबंधों का मूल्य उनकी दृष्टि में केवल एक स्टैंडिंग कमेटी की प्रधानता ही है तो हमें पुनर्विचार करना चाहिए। हम लोगों ने उनका मूल्यांकन इतना कम कभी नहीं किया था। आदर्शों से बँधे जनसंघ में हम लोगों को इस प्रकार मूल्य देकर कितने दिनों तक रख सकेंगे।

यदि लालाजी अपने पार्टी छोड़कर चले जाने के कथन को वज़नदार समझते हैं, तो फिर उनके स्थान पर सहदेवजी[2] को चुनाव लड़ाया जाए।

भवदीय
दीनदयाल उपाध्याय

—अप्रैल 19, 1958, पुस्तक (अजातशत्रु दीनदयालजी, संपादक : प्रभात झा, प्रकाशक : डॉ. मुखर्जी स्मृति न्यास, नई दिल्ली)

□

---

1. लाला हरीचंद राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के वर्षों तक दिल्ली प्रांत के संघ चालक रहे।
2. सहदेव जी, जनसंघ के पुराने कार्यकर्ता।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

13

राष्ट्र की एकता सर्वोपरि : हिंदी व भारतीय एकता पर्यायवाची

यह वक्तव्य दीनदयालजी ने लखनऊ में राज्यसभा के लिए भारतीय जनसंघ के निर्वाचित सदस्य श्री अजित प्रसाद सिंह[1] के अभिनंदन समारोह में दिया।

भारत की एकता और अखंडता ऐसे विषय हैं, जिनके संबंध में किंचित् भी शंका या संदेह नहीं किया जा सकता। जिस समय लोग कहते हैं, राष्ट्र की अखंडता चाहिए या हिंदी, उस समय भूल जाते हैं कि हिंदी और भारतीय एकता पर्यायवाची हैं, और इसलिए हमको दोनों चाहिए।

लोकतंत्र की नवीन प्रणाली चाहिए

आज देश में लोकतंत्र के लिए ख़तरा उत्पन्न हो गया है। कांग्रेस छिन्न-विच्छिन्न हो रही है। किसी एक दल में, उसका स्थान लेने का सामर्थ्य नहीं दिखता। ऐसी अवस्था में हमें पाश्चात्य लोकतंत्र की प्रणाली के स्थान पर स्वानुकूल ऐसी नवीन प्रणाली का विकास करना होगा, जिससे भारत की स्थिति फ्रांस के समान होने से बच जाए।

किसी दल विशेष में रहते हुए भी उसके विरुद्ध कार्य करने की वृत्ति निरंतर बढ़ती जा रही है। कांग्रेस में इस रोग का सर्वाधिक ज़ोर है। प्रजा सोशलिस्ट दल, समाजवादी दल आदि भी उससे मुक्त नहीं हैं। किंतु यह वृत्ति अत्यंत ख़तरनाक है। जो व्यक्ति अपने दल के हितों के विरुद्ध कार्य कर सकता है, वह जयचंद और मानसिंह के समान किसी

1. अजित प्रताप सिंह, भारतीय जनसंघ के उत्तर प्रदेश से राज्यसभा सदस्य (1958–62) थे।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

समय, निज स्वार्थ हेतु, राष्ट्र के विरुद्ध भी षड्यंत्र कर सकता है। दोनों में डिग्री का अंतर है, प्रकार का नहीं।

लोकतंत्र के अंतर्गत व्यक्ति किसी दल के साथ सदा के लिए बँध नहीं जाता; सैद्धांतिक आधार पर एक दल को त्यागकर दूसरे दल में प्रवेश कर सकता है। किंतु किसी दल में रहकर उसके विरुद्ध कार्य करना महान् दोष है। राजनीतिक दलों को राष्ट्र कल्याण का विचार कर, इस घातक वृत्ति को एक मत हो रोकने का प्रयास करना चाहिए अन्यथा लोकतंत्र मज़ाक बन जाएगा।

हिंदी भारतीय एकता का प्रतीक है, क्योंकि जब मध्ययुग के संत प्रचारकों ने भारतीय एकता का अनुभव किया, उन्होंने हिंदी के माध्यम से ही अपने तत्संबंधी विचार जनता तक पहुँचाए।

उत्तर प्रदेश की सरकार ने यद्यपि अन्य राज्यों की अपेक्षा इस दिशा में अच्छा कार्य किया है, तथापि उसे संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। उत्तर प्रदेश में छह विश्वविद्यालय हैं। यदि सरकार ने प्रभावी ढंग से कार्य किया होता तो आज इस प्रदेश से अंग्रेज़ी का साम्राज्य समाप्त हो गया होता।

मुझे विश्वास है, श्री अजित प्रसाद सिंहजी राज्यसभा में जाकर जनसंघ की विचारधारा का समुचित प्रतिनिधित्व करेंगे।

—पाञ्चजन्य, अप्रैल 28, 1958

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

14

जनसेवा आयोग की परीक्षाएँ प्रादेशिक भाषाओं में हों

इंदौर कमिश्नरी जनसंघ कार्यकर्ता सम्मेलन के समय दीनदयालजी द्वारा पत्रकार वार्त्ता में दिया गया वक्तव्य।

भारतीय जनसंघ अनुभव करता है कि यदि हम देश की अर्थव्यवस्था को बिल्कुल ही समाप्त नहीं करना चाहते तो हमें योजनाओं में वरीयताओं का पुन: निर्धारण करना चाहिए तथा भौतिक व आर्थिक अनुमानों का तालमेल बैठाकर उसकी अवधि में वृद्धि करनी चाहिए।

राजभाषा के संबंध में हाल ही में जो विवाद उठ खड़ा हुआ है, वह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण एवं अनावश्यक है। जनसंघ का मत है कि किसी भी स्वतंत्र और जनतंत्रीय देश में कोई विदेशी भाषा राज-काज की भाषा नहीं बन सकती। यह आश्चर्य का विषय है कि संविधान के द्वारा 15 वर्ष की जो सुविधा हमें इसलिए प्राप्त हुई थी कि हम एक स्वतंत्र देश के नागरिक के नाते स्वभाषाओं के माध्यम से अपने दायित्वों का निर्वाह कर सकें, उसे लोग व्यर्थ ही विवाद में खो रहे हैं। जनसंघ की माँग है कि विभिन्न राज्यों में वहाँ की प्रादेशिक भाषाओं को राजभाषा घोषित किया जाए और सभी विधायक और सरकारी काम उनके माध्यम से हों। राज्यों के साथ पत्र-व्यवहार एवं विदेशों के सभी व्यवहार में हिंदी का उपयोग हो। जनसेवा आयोग की परीक्षाएँ अंग्रेज़ी के अतिरिक्त सभी प्रादेशिक भाषाओं के माध्यम से हों तथा नौकरी के बाद हिंदी की शिक्षा की व्यवस्था की जाए।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

यह दु:ख का विषय है कि मध्य भारत में उसके मध्य प्रदेश में विलीन होने के उपरांत हिंदी प्रयोग में वृद्धि होने के स्थान पर कमी हुई है। आज हाईकोर्ट से हिंदी का बिल्कुल बहिष्कार कर दिया गया है। राज्यपाल[1] महोदय को राष्ट्रपति से स्वीकृति प्राप्त कर अनुच्छेद 348 के अंतर्गत हिंदी को उच्च न्यायालय में काम-काज के लिए प्रयोग की अनुमति देनी चाहिए।

शासन की अनेक घोषणाओं के उपरांत भी जम्मू व कश्मीर राज्य की शांति व सुरक्षा के संबंध में उसकी नीति असावधानी की प्रतीत होती है। कश्मीर राज्य के मुख्यमंत्री[2] ने यह कई बार बताया है कि शेख़ अब्दुल्ला की कार्रवाइयाँ भारत विरोधी हैं एवं दिल्ली में उनके षड्यंत्रों के सहायक मौजूद हैं। देश के अनेक नगरों से अब्दुल्ला के लिए धन एकत्र करने के समाचार प्रकाशित हो रहे हैं। यह आवश्यक है कि सरकार अब्दुल्ला की इन घातक कार्रवाइयों को रोकने के लिए शीघ्र प्रभावी पग उठाए। (छपते-छपते समाचार मिला है कि शेख़ अब्दुल्ला[3] को जन सुरक्षा की दृष्टि से गिरफ़्तार कर लिया गया है—सं.)

आज यह सब मानते हैं कि उपलब्ध साधनों के अंतर्गत द्वितीय पंचवर्षीय योजना को पूरा नहीं किया जा सकता। शासन अनेक दिनों से योजना के घाटे और उसके पुनर्निर्धारण की चर्चा कर रहा है, किंतु अभी तक योजना आयोग ने इस विषय का कोई स्पष्टीकरण नहीं किया। प्रत्युत शासन योजना के आधार पर अत्यधिक टैक्स और घाटे की अर्थव्यवस्था की घातक नीति पर डटा हुआ है। भारतीय जनसंघ अनुभव करता है कि यदि हम देश की अर्थव्यवस्था को बिल्कुल ही समाप्त नहीं करना चाहते तो हमें योजना में वरीयताओं का पुनर्निर्धारण करना चाहिए तथा भौतिक एवं आर्थिक तकमीने का तालमेल बैठाकर उसकी अवधि में वृद्धि करनी चाहिए।

यह भी आवश्यक है कि योजना आयोग का पुनर्गठन किया जाए, जिसमें या तो वह मंत्रिमंडल से स्वतंत्र, एक निष्पक्ष एवं तज्ञ व्यक्तियों का निकाय रहे अथवा उसके हाथ में नीतियों के निर्धारण और कार्यान्वयन की पूर्ण शक्तियाँ निहित हों। दूसरा स्वरूप संभवत: भारतीय जनतंत्रीय परंपरा एवं आज के संविधान के ढाँचे के अनुरूप नहीं होगा।

कर नीति के दुष्परिणाम स्पष्ट होते चले जा रहे हैं। स्थान-स्थान पर कारख़ाने बंदी

---

1 मध्य प्रदेश के राज्यपाल हरि विनायक पतसकर (जून 1957-फरवरी 1965) थे।

2. बख्शी गुलाम मोहम्मद कश्मीर के मुख्यमंत्री (1953-1964) थे।

3. 29 अप्रैल, 1958 को 'कश्मीर षड्यंत्र कांड' व 'राज्य के ख़िलाफ़ साजिश' के आरोप में जनमत संग्रह मोरचा के अध्यक्ष शेख़ अब्दुल्ला को दूसरी बार गिरफ़्तार किया गया था, इससे पहले इनकी गिरफ़्तारी डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी की रहस्यमय हत्या के पश्चात् भारत विरोधी गतिविधियों के लिए अगस्त 1953 में हुई थी।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बेकारी की समस्या को विषम बनाती चली जा रही है। सरकार को यह कारख़ाने बंदी अविलंब रोक देनी चाहिए।

मध्य प्रदेश में बहुसूत्रीय सामान्य बिक्री कर तथा जीवन के लिए आवश्यक खाने-पीने की वस्तुओं पर भी टैक्स लगाने का प्रस्ताव सर्वथा अनुचित है।

—पाञ्चजन्य, मई 5, 1958

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

15

संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग
मछलीपट्टनम

सम्मानित सभी अधिकारीगण और स्वयंसेवक बंधुओं, कल हमारी चर्चा का विषय था कि एकीकरण क्यों आवश्यक है और इसके क्या आवश्यक तत्त्व होते हैं, किस प्रकार के मनुष्यों द्वारा राष्ट्र महानता के शिखर पर पहुँच सकता है और कुछ महत्त्वपूर्ण बिंदुओं के अतिरिक्त प्रकृति के पूरक तत्त्वों पर भी चर्चा की गई थी।* आज हम व्यक्ति की आवश्यकताओं के समान राष्ट्र की विभिन्न आवश्यकताओं पर चर्चा करेंगे। हर किसी के मन में और हमारे दिलों में संघ की स्पष्ट कल्पना और एक संरचना है, पर हम यह नहीं कह सकते कि यह उसी कल्पना या संरचना जैसा है, क्योंकि हमने इसे किसी की पूर्वकल्पित विचारधारा से उधार नहीं लिया है। अतः हमारे लिए स्पष्ट तौर पर अपने लक्ष्य बता पाना काफ़ी कठिन हो जाता है। अंत में वही पोषित लक्ष्य प्रकृति के निर्देशों के अनुसार आगे बढ़ते हैं। हम इनमें विद्यमान कमियों पर विजय पाते हुए लक्ष्यों को पूरा करने के माध्यम हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि किसी व्यक्ति के समान ही राष्ट्र का भी अपना एक दृष्टिकोण होता है। अपनी एक विचारधारा होती है। दुर्भाग्य से आज हम राष्ट्र की कई भ्रामक परिभाषाएँ खोज लेते हैं। जिस प्रकार ईश्वर ने मनुष्य को बनाया, उसी प्रकार राष्ट्र को भी बनाने की ज़िम्मेवारी ईश्वर की ही है। वास्तव में यह सारी सृष्टि उसी की कृपा का उपहार है। एक साथ रहने वाले कुछ लोग ख़ुद को एक राष्ट्र नहीं कहने लगते। स्वयंसेवकों के इस संघ को संस्कृति कहा जा सकता है। इन्हें इसकी आत्मा या चिति भी कहा जा सकता है। मान लें कि हम एक हीरे

---

* 8 मई का बौद्धिक वर्ग उपलब्ध नहीं है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

को देखते हैं, हमें यह चमकता हुआ चौंधियाने वाला दिखता है, लेकिन जब हम हीरे को एक सही आकार में काटते हैं और उस पर पॉलिश करते हैं तो उसकी चमक और बढ़ जाती है। इसी प्रकार यदि हम किसी व्यक्ति को और अच्छे संस्कार देंगे तो वह अपने आपको और अच्छा मनुष्य बना लेगा। अत: यह इस पर निर्भर करता है कि उसको संस्कारों की शिक्षा किस प्रकार दी जाए।

प्रत्येक राष्ट्र की अपनी एक विशिष्टता होती है, और इसे राष्ट्र की आत्मा या चिति से जुड़ा होना चाहिए। तब ये दोनों परस्पर अंतर्संबंधित हो जाते हैं। एक वृक्ष की भाँति राष्ट्र भी स्वयं से फूल, फल और शाखाएँ देते हुए बढ़ता है। इस प्रकार दोनों का लक्ष्य एक और समान होता है। ये सब चीज़ें हमें बताती हैं कि ये सारे पदार्थ अपने लक्ष्यों को पूरा करते हैं तथा एक-दूसरे के पूरक होते हैं। इसीलिए हमारे मनीषियों ने व्यक्ति और समाज के हितों को टकराव से बचाने के लिए पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का मार्ग खोजा। व्यक्ति किस जीवन मार्ग को स्वयं चुने? उन्होंने इसे समझाते हुए परस्पर एक-दूसरे का संपूरक बताया। 'अर्थ' के माध्यम से व्यक्ति संसार के भौतिक सुखों की प्राप्ति कर सकता है। इसी भाँति व्यक्ति के जीवन के सारे पहलुओं को ध्यान में रखते हुए ही उन्होंने चतुर्तस्तरीय सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। उन्होंने बताया, तीनों पुरुषार्थों, यथा—अर्थ, काम और मोक्ष का लाभ लेने के लिए धर्म के सिद्धांतों का पालन करना होगा।

जगत् का विश्लेषण और उसका वर्गीकरण करना कोई आसान कार्य नहीं है। संगृहीत पदार्थों के कई पहलू होते हैं। यह ऐसा लगता है, जैसे मनुष्य संसार से दूर भागने का प्रयास कर रहा हो। समाज में विभिन्न प्रकार के मनुष्य होते हैं, जैसे साहित्यकार, कवि, बुद्धिजीवी इत्यादि। अलग-अलग लोगों ने संसार को अपने-अपने तरीक़े से परिभाषित किया है। जैसे राजनीतिज्ञों ने संसार को 'शक्ति की राजनीति' के रूप में परिभाषित किया है।

हमने हिंदू राष्ट्र बनाया था। भूगोल हमें क्या उत्तर दे सकता है? हम इतना शक्तिशाली साम्राज्य कैसे बना पाए। इसलिए हमें विभिन्न राष्ट्रों के निर्माण का अध्ययन शुरू करना होगा। इसके अतिरिक्त मानवीय संबंधों के भिन्न-भिन्न पहलुओं का अध्ययन भी शुरू करना होगा। और फिर हम अपने अध्ययन के अनुभवों से निष्कर्ष पर पहुँचेंगे। यही सब अलग रूपों में हमारे सामने प्रकट होगा कि मैं एक हूँ, पर भिन्न स्वरूपों में अलग हो सकता हूँ।

मार्क्स और उनके समर्थकों का मानना था कि धन ही जीवन में सबकुछ है और यही जीवन का प्रमुख प्रेरक तत्त्व है। उन्होंने समाज को केवल शोषित और शोषक, दो वर्गों के मिश्रण के रूप में देखा। उन्होंने किसी अन्य वर्ग अथवा अन्य लोगों को महत्त्व नहीं दिया। लेकिन हम इस संकीर्ण दृष्टिकोण में विश्वास नहीं रखते हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

हम अपने देश के विभिन्न वैचारिक मतों का अवलोकन करते समय ऐसे ही उदाहरणों का परीक्षण कर सकते हैं। हमें पता चलता है कि मूल रूप से ये सारे मत एक ही हैं, केवल उनके तरीक़ों में भिन्नता हो सकती है। द्रव की प्रवृत्ति हमेशा नीचे की ओर बहने की होती है और आग की प्रवृत्ति हमेशा वस्तुओं को जलाने की होती है। इसी प्रकार कुछ निश्चित चीज़ें होती हैं, जो उनमें उपस्थित बाह्य अंतरों को दूर करती हैं।

एक व्यापक दृष्टिकोण से हम विविध विचारों को देखते हैं, तो पाते हैं कि तब कभी कोई क़ुरान एवं पैगंबर मोहम्मद पर सवाल खड़ा करता है, तो मुसलमान उसे अपवित्र मानते हैं। वे अन्य मज़हबों को भी इसी अपवित्रता से जोड़ते हैं। इसलिए हमें ठीक से समझना चाहिए कि जब 'हिंदू' कहते हैं तो उसका क्या तात्पर्य है। विविधता का सम्मान करने वाले इस तत्त्व को हम कैसे प्राप्त करें। समय के साथ इसको हम समझ सकेंगे तथा अनुभव के द्वारा इसे प्राप्त भी कर सकेंगे।

—मई 9, 1958

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

16

संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग : शिमोगा

माननीय अधिकारी वर्ग तथा स्वयंसेवक बंधुओ! हम लोग संगठन के कार्य में लगे हुए हैं और हमारी यह मनीषा है कि इस संगठन के आधार पर हमारा राष्ट्र जीवन सभी प्रकार से अपने योगक्षेम का निर्वाह करता हुआ उन्नति के पथ पर अग्रसर होता जाए। हम यह भी चाहते हैं कि इस योगक्षेम का आधार और हमारे संगठन का आधार हमारी संस्कृति है। वैसे तो संगठन और फिर हिंदू समाज का संगठन—यह एक हमारी स्वाभाविक प्रेरणा है, किंतु इस संगठन के द्वारा हम जो अनेक दिशाओं में प्रस्थान करना चाहते हैं, आज जो अनेक विध शक्तियाँ काम कर रही हैं, उनका हमारे साथ जो संयोग आता है, तो स्वाभाविक रूप से जब वैयक्तिक विचार करते हैं तो हमारे सामने भी कई बार प्रश्न आता है कि आख़िर हम जिस संस्कृति के आधार पर काम कर रहे हैं और जिस पद्धति से काम कर रहे हैं, उससे हमारे जीवन की सभी समस्याएँ सुलझेंगी या नहीं? क्योंकि हमारे कार्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति यही हो सकती है कि या तो हम व्यक्तिगत दृष्टि से समुन्नति का विचार करें या जातीय उन्नति का विचार करें।

जो चारों ओर अनिष्टकारी घटनाएँ घटती हुई दिख रही हैं, वह न घटें, उनको कैसे रोक सकें, इसका विचार करें। किंतु सबका विचार करते समय यह प्रश्न तो आता है कि हम इस कार्य के द्वारा सभी प्रश्नों का हल कर सकेंगे या नहीं? फिर हम जब कहते हैं कि हमारे कार्य का आधार भारतीय संस्कृति है तो प्रश्न थोड़ा सा और कठिन हो जाता है, क्योंकि यदि हमने इतना ही कहा होता कि हमारे लिए तो यह एक सामूहिक साध्य है और इस सामूहिक सामर्थ्य से हम सभी प्रश्नों को हल करेंगे। यह एक सीधी सी बात है तो उसमें कोई कठिनाई नहीं होती। क्योंकि इतना ही विचार रहता है कि भाई, हमारा सामर्थ्य तो हमारे अधीन है, फिर इतना ही विचार करना चाहिए कि जितने प्रश्नों का हम

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

हल करना चाहते हैं तो उतना सामर्थ्य बढ़ाएँ, कैसे बढ़ाएँ? इसका हम विचार करें।

परंतु हमने थोड़ा सा बंधन भी लिया है कि केवल जिसको साधारणतया डंडे का ज़ोर भी कहते हैं, ये नहीं तो मानो हमने अपने ऊपर यह बंधन लगा लिया कि यह सामर्थ्य, हमारी जो संस्कृति है, उसके आधार पर खड़ा है। प्रार्थना में हम लोग रोज़ कहते हैं कि 'विजेत्रि च नः संहता कार्य शक्तिर'। अब यह एक हमारी स्वाभाविक कार्यशक्ति, हमारी संगठित शक्ति है। उससे संगठन जहाँ होता है, उससे विजय आती है। किंतु दूसरी बात 'विधायास्य धर्मस्य संरक्षणम्' हम सीधा इतना कहते कि 'विजेत्रि च नः संहता कार्यशक्ति र' परं वैभवंनेतु मे तत्स्वराष्ट्रम्' हमारी यह संगठित कार्यशक्ति हमारे राष्ट्र को परम वैभव पर ले जाए, किसी के आशीर्वाद से नहीं। बीच में यह कड़ी, दूसरों को जोड़कर, यही समस्या पैदा की है। समस्या इसलिए होती है कि 'विधायास्य धर्मस्य संरक्षणम् यानी अस्य राष्ट्रस्य धर्मस्य संरक्षणम् विधाय'। इस राष्ट्र को धर्म का संरक्षण करके उसको परम वैभव पर ले जाने के लिए समर्थ हो। उस राष्ट्र को, जिसको मैंने संस्कृति कहा। जैसे धर्म यानी जो संस्कृति है—राष्ट्र के संदर्भ में प्रायः पर्यायवाची शब्द है। प्रश्न है कि इसके संबंध में अपनी संस्कृति क्या है? हमारा धर्म क्या है? इतने विचार हैं। कुछ अपने लोगों ने कहा, कुछ परायों ने कहा। वे तो सत्य को असत्य बताने के लिए कहे हुए विचार हैं। शायद उनका परिणाम भी हमारे ऊपर बहुत ज़्यादा है।

यानी वास्तविकता इसमें क्या है? मानो कई बार इसका पता लगना ही मुश्किल हो जाता है। हम अपने-अपने हिसाब से ही इसको देखते रहते हैं। आज तो भारतीय संस्कृति क्या है, ऐसा प्रश्न किया तो हरेक फिर अपने-अपने हिसाब से देखता है। किसी ने कहा कि भारतीय संस्कृति बिल्कुल प्राचीन काल से थी, जो वैदिक काल में थी, वही भारतीय संस्कृति है—जिसको आर्य संस्कृति कहते हैं। यह नाम दिया महर्षि दयानंद ने और उन्होंने बहुत सी ऐसी चीज़ें बताईं कि जो शायद हमारे जीवन के अंदर स्थान बना बैठी हैं। मंदिर, मूर्तिपूजा—इनका तो उन्होंने बुरी तरह से खंडन किया। यहाँ तक कि उन्होंने कहा, 'जब तक यह मूर्ति पूजा अस्तित्व में है, तब तक तो यह हमारी संस्कृति है ही नहीं। यह मानो बाहर से आई है या हमारी संस्कृति में कुछ विकृति हो गई है और हमारी राष्ट्र की सभी बुराइयों की जड़ मूर्ति पूजा है। ऐसा विचार करने वाले लोग यहाँ हैं।' एक सज्जन से बातचीत हो रही थी—अब हम जानते हैं, हमारे यहाँ भगवान् शंकराचार्य उन्होंने शायद तात्त्विक दृष्टि से अत्यंत जो परम कोटि का ज्ञान है, वह हमारे सामने रखा। किंतु उन्होंने कहा कि अपनी संस्कृति का और अपनी जाति के पतन का कोई कारण है तो यह भगवान् शंकराचार्य का मायावाद है। ऐसे भिन्न-भिन्न कारण बताते हैं तो हमारी संस्कृति की वास्तविकता क्या है?

एक सज्जन ने कहा कि संस्कृति कहते हैं तो यह क्या वही संस्कृति है कि जिसने

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बताया कि वेदों के शब्द यदि शूद्रों के कान में पड़ जाएँ तो उनके कान में शीशा घोलकर डाल देना चाहिए और यदि वह ऐसी संस्कृति है तो जितनी जल्दी उसे समाप्त किया जाए, उतना जल्दी देश का कल्याण होगा। किसी ने कहा कि हमारी संस्कृति या धर्म, मानो चौका-चूल्हा है। बहुत लोग हैं ऐसा कहने वाले, एक व्यक्ति वैसे तो वे संघचालक भी हैं, बहुत अच्छे वकील हैं। उनकी अधिकांश प्रैक्टिस माने क्रिमिनल प्रैक्टिस यानी चोरी करने वाले, डाके डालने वाले जो लोग हैं, उनको अधिकांश छुटकारा दिलाना, यह उनका काम है। एक दिन एक सज्जन (सज्जन तो कहना चाहिए, क्योंकि उन्होंने बड़ा डाका लगवाया था) और इनकी कृपा से इस अभियोग से छूट गए, इस दृष्टि से वे सज्जन ही रहे, दुर्जन तो नहीं··· । वह आए, बातचीत करने लगे और बोले, 'हमने चोरी की, डाके डाले, स्त्रियाँ भगाईं और हत्या भी की, जेल में भी गए, इतनी उमर हो गई, पर हमने अपना धर्म नहीं छोड़ा।' यानी धर्म है क्या फिर? 'सब कुछ किया, इतनी उमर इधर-उधर हो गई, पर अपना धर्म नहीं छोड़ा, यानी किसी दूसरे के यहाँ बनाया हुआ अन्न नहीं खाया, (हमारे यहाँ उत्तर प्रदेश में यह एक पद्धति है कि जो ब्राह्मण हैं, वे किसी दूसरे के यहाँ का अन्न नहीं खाते), बिना स्नान किए कभी नहीं खाया। ऐसा कहा जाता है कि अठ कनौजिया, नौ चूल्हे। यदि आठ चूल्हे घर में हैं तो वह शौच का विचार है। वह कहावत तो प्रसिद्ध है कि नवें चूल्हे से आग लगाकर अपना चूल्हा जलाते हैं। नौ चूल्हे यानी हरेक का एक चूल्हा और एक कॉमन चूल्हा रहता है, जिससे आग लाकर वे अपना चूल्हा जलाते हैं। वैसे तो दूसरे के चूल्हे पर बना हुआ भोजन नहीं खा सकते, लेकिन मांस वग़ैरह सब कुछ खाते हैं यानी मांसाहार करते हैं। खाने न खाने का मैं विवेचन नहीं कर रहा हूँ, परंतु मैं लोगों की धारणा बता रहा हूँ। तो ये कठिनाइयाँ बहुत हैं।'

एक बार मुझे एक सज्जन मिले, वे अच्छे संन्यासी हैं। उन्होंने कहा कि वे सनातन धर्म के बड़े पक्षपाती हैं। वे रेलगाड़ी से प्रवास नहीं करते। उनसे पूछा गया कि रेलगाड़ी में क्यों नहीं जाते स्वामीजी? और वायुयान में क्यों जाते हैं? तो उन्होंने कहा कि वे तो वायुयान से इसलिए जाते हैं कि वह भारतीय संस्कृति के अनुरूप है। रेलगाड़ी भारतीय संस्कृति के अनुरूप नहीं, वायुयान का तो हमारी पुस्तकों में वर्णन किया गया है। पुष्पक विमान का वर्णन मिलता है। इसलिए वायुयान से जाते हैं। रेलगाड़ी का कहीं वर्णन नहीं मिलता, उससे कैसे जाएँ? ये जो चीज़ें हैं अनेक, वे मानो भारतीय संस्कृति हैं। इस बारे में एक कथा प्रसिद्ध है। चार अंधे लोग थे। उन्होंने हाथी देखा नहीं था। एक बार वे गए हाथी देखने। हाथी के पास जाते हुए, उसको स्पर्श करते हुए वे हाथी को समझने लगे। पूरा हाथी तो किसी ने देखा नहीं था। जिसके हाथ हाथी का जो भाग लगा, वह उसे ही हाथी समझ सका। जिसने पैर देखा, उसने कहा, यह खंभे के समान है, जिसने उसका कान देखा, उसने कहा कि हाथी सूप के समान है। ऐसा ही वे आवाज़ लगाने लगे।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मैं एक कहानी पढ़ रहा था कि एक गाँव में एक आदमी था। यह जो कथा मैं बता रहा हूँ, यह बिल्कुल ही पुराने समय की है। शायद वहाँ ऐसा होगा। वहाँ बाक़ी चीज़ें कुछ मिलती ही नहीं थीं। वह आदमी एक बार शहर गया, तो जाते समय उसकी पत्नी को किसी ने बताया था कि शहर में कोई ऐसी चीज़ मिलती है, जिससे बाल काढ़े जाते हैं, वह कंघा होता है। उसकी पत्नी ने कहा कि शहर से कंघा ले आना। उसने कंघा तो कभी देखा ही नहीं था, न उसकी पत्नी ने ही देखा था। तो उसने पूछा, कंघा कैसा होता है? उसकी पत्नी को कहा गया था कि कंघा चतुर्थी के चंद्रमा जैसा होता है—टेढ़ा। जैसा चतुर्थी का चंद्रमा होता है। वह उसे चतुर्थी का चंद्रमा जैसा सोचकर गया। आठ-दस दिन में शहर पहुँचा। वहाँ कुछ दिन रहा। जब वापस आने का समय आया तो फिर दुकान पर गया और उसने कहा, 'वह चीज़ चाहिए जो चतुर्थी के चंद्रमा की तरह हो।' दुकानदार की समझ में कुछ नहीं आया। उसको ऐसा लगा कि शायद इसे दर्पण चाहिए। उसने उसको दर्पण दे दिया। चंद्रमा के समान दर्पण प्रकाशमान रहता है तो वह दर्पण लेकर वहाँ से चला आया। जब घर आया और घर आते ही उसने अपनी पत्नी को दर्पण दे दिया। वहाँ पर किसी ने दर्पण कभी देखा ही नहीं था और किसी ने कंघा भी नहीं देखा था। दर्पण में अपनी सूरत दिखती है, यह भी किसी को पता नहीं था। किसी को अपनी सूरत के प्रतिबिंब के बारे में भी नहीं पता था कि हम कैसे हैं। उस स्त्री ने दर्पण में अपना स्वरूप देखा तो उसके अंदर उसे एक औरत की छवि दिखाई दी। वह बड़े ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगी, रोने लगी। तब सास उसके पास आई और पूछने लगी कि वह क्यों रो रही है? वह बोली कि उसका पति उसके लिए बाज़ार से एक सौत लाया है। उसने समझा था कि उसका पति दूसरी पत्नी ले आया है। सास ने पूछा, कहाँ है, तो वह बोली, 'इसमें है।' सास तो बूढ़ी थी। उसने उसके अंदर देखा तो उसे उसमें एक और बुढ़िया दिखाई दी। उसने अपनी सूरत कभी देखी नहीं थी। वह बेटे से बोली कि बेटा, तुझे दूसरा ब्याह करना था तो यह बूढ़ी काहे को लाया।

तो ऐसी जो स्थिति है कि जैसी अपनी सूरत देखी, उसके अनुसार ही हिसाब लगा लिया। इसी प्रकार लोग भारतीय संस्कृति का अपने हिसाब से विचार करते हैं। हज़ारों साल पुराना इतिहास है। इसमें उत्थान और पतन न मालूम कितने काल आए हैं। उसमें से हमें ढूँढ़ना पड़ेगा। ये ढूँढ़कर ही निकालना पड़ेगा कि भारतीय संस्कृति क्या है और इसका बहिरंग क्या है और अंतरंग क्या है? यह सच में बड़ा कठिन है। सत्य है, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के जन्मदाता ने शायद इसकी कठिनाई को समझा और इसीलिए उन्होंने जो कार्य प्रारंभ किया, उसको बहुत से लोगों ने कहा कि यह कहाँ का सांस्कृतिक कार्य है। यह तो संस्कृति विरोधी कार्य है, परंतु उन्होंने इस बात का ज़रूर विचार किया होगा।

यही एक संस्कृति, इसका आत्मतत्त्व क्या होगा? इसका विचार करें। केवल

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बहिरंग का विचार नहीं, आत्मा का विचार। तो उस आत्मा का, हम जब विचार करते हैं तो फिर कुछ बातें हमारे सामने सैद्धांतिक दृष्टि से आती हैं। पहला तो हमारी संस्कृति में इन बातों का विचार किया गया है कि हमारी जो क्रिया होती है वह क्यों होती है? हम क्यों काम करते हैं? हम संगठन करना चाहते हैं तो क्यों? हम जो बड़े शास्त्रों में न जाएँ तो भी अपने अंदर तो देखें कि हम क्यों संगठन करना चाहते हैं? उसकी प्रेरणा प्रत्येक के लिए होती है कि जिसमें हमको सुख मिले—आनंद मिले, उस काम को हम लोग करना चाहते हैं। संगठन में भी शायद हमें आनंद मालूम होता होगा। यदि आनंद न आए तो शायद संगठन भी नहीं करेंगे।

तो मनुष्य के, बल्कि प्रत्येक प्राणियों के क्रियाओं के मूल में यह सुख की प्रवृत्ति है। सुख! सुख की लालसा। साधारण जो छोटे-छोटे कीड़े होते हैं, वे भी काम करते हैं। जिसको काम मिलता है, वह सुखी होता है और जिसमें सुख मिलता है, वह काम होता है। कुत्ते को जरा डंडा दिखाया तो वह भागता है, क्योंकि डंडा खाने में दुःख है। जहाँ दुःख नहीं, वह भी तो सुख है, यानी जिसमें अनुकूल वेदना है, वह सुख और जिसमें प्रतिकूल वेदना है तो वह दुःख है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इसका अध्ययन किया। जो एक बड़ा सा प्रयोग जैसा किया। एक छोटा सा कीड़ा लेकर उसको एक वाई (Y) शेप के काँच की नली में डाला। उसमें उसको नीचे की तरफ़ से डाल दिया। अब जो दूर जाने लगा, तो दो दिशाएँ आ गईं। अब वह किधर जाए, तो शायद वह एक दिशा में चला। अब उस वैज्ञानिक ने क्या किया, उसकी एक दिशा में बिजली का करंट लगा दिया। इस तरह जब उसको बिजली का करंट लगा तो वह पीछे आ गया। लौट आया, लौट आने के बाद फिर उसको छोड़ दिया, फिर से वह गया दूसरी दिशा में—करंट ही लगा। फिर उसको लाकर छोड़ा तो वह कभी इस दिशा में और कभी उस दिशा में जाता रहा। बाईं ओर बिजली का करंट लगता तो वह वापस आ जाता था। ऐसा कई बार किया और कई बार उसने करंट खाया। जब दाईं ओर जाता था, तब वहाँ करंट नहीं लगता था। अंत में उसकी ऐसी स्थिति आ गई कि उसको जब छोड़ा गया तो वह कभी उस ओर नहीं गया और हमेशा दाहिनी ओर जाता रहा। यानी उसके अंदर भी इतनी बुद्धि थी कि अगर बाईं ओर जाऊँगा तो मुझे करंट लगेगा। इसलिए सदैव दाईं ओर जाने लगा। सुख की ओर बढ़ना और दुःख से हटना यह सर्वसाधारण प्राणिमात्र की प्रवृत्ति है।

यह जो सुख है, वह भी कई प्रकार का होता है। एक तो सर्वसाधारण सुख है, कि हम रोटी खाते हैं और हमें सुख मिलता है, जिसको इंद्रियजन्य सुख कहते हैं। जब हम कोई अच्छी चीज़ देखते हैं तो उससे सुख मिलता है। पर कई बार ऐसा होता है कि सामने भोजन रखा है और हम भोजन कर रहे हैं, उसमें कभी-कभी स्वाद नहीं आता, आनंद नहीं आता। कभी मन में कोई चिंता लगी रहती है। उसके कारण भोजन में आनंद

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

नहीं मिलता या कभी ऐसा होता है कि किसी ने भोजन तो दिया, परंतु बड़े बुरे मन से दिया जिसके कारण उसके भोजन में आनंद नहीं आता, भोजन नहीं अच्छा लगता। यानी आदमी केवल उसके इंद्रियजन्य सुख का ही विचार नहीं करता। कई बार बहुत लोग ऐसा सोचते हैं, कम्युनिस्ट विशेषकर सोचते हैं। आदमी का सुख माने यह जो खाने-पीने का, जो इंद्रियों का साधारण सुख है। ऐसी उनकी धारणा होती है। ऐसे एक हमारे कम्युनिस्ट थे। उनसे हमारे एक मित्र ने कहा कि भाई, दुनिया में महत्त्व की कौन सी चीज़ है? तो उसने कहा, 'सबसे बड़ा सवाल रोटी का है।' 'तुम्हारी रोटी का सवाल मैं सुलझाऊँगा। तुमको क्या चाहिए?' बोला, 'रोटी चाहिए।' 'सवेरे-शाम मेरे घर आइए, भरपेट खाना खिलाऊँगा। तुम जैसा माँगोगे, वैसा ही खिलाऊँगा।' वह बोला, 'बहुत अच्छा।' परंतु मेरी एक शर्त है। उसके पूछने पर कहा, 'रोज़ शाम को इस जगह खड़ा करके दो जूते मारूँगा।' उन्होंने कहा, 'ऐसा क्यों?' तब मित्र ने कहा कि इसमें तो तुम्हारा कुछ बिगड़ता ही नहीं, तुम्हारा तो सिर्फ़ रोटी का सवाल है। जूते मारने का तो मेरा अपना सवाल है। उन्होंने कहा कि 'भाई, इसमें तुम्हें कौन सा दु:ख लगता है?'

कई बार लोग बड़े बौद्धिक और तात्त्विक दृष्टि से कहते हैं कि हमारे जो सुख और दु:ख हैं, ये साधारणत: जो इंद्रिय हैं, उन तक ही सीमित नहीं और भी कुछ हैं। एक ऐसे सज्जन मिले, वे तर्पण कर रहे थे। हमारे यहाँ श्राद्ध पक्ष में तर्पण करते हैं, वे तो तर्पण कर रहे थे। तब ऐसे ही एक नास्तिक सज्जन आ गए, जिनकी तर्पण में श्रद्धा वग़ैरह रह नहीं गई थी। वो आए और कहने लगे कि क्या कर रहे हो? वह बोला, 'पितृ को पानी दे रहा हूँ।' तो नास्तिक ने कहा कि भाई, उनको वहाँ पानी कैसे मिलेगा? उसकी बात का उत्तर देने के बजाय वह आस्तिक उसके पिता को गाली देने लगा। पिता को दी हुई गालियाँ सुनकर वह बड़ा नाराज़ हो गया। वह कहने लगा, 'पिता को गालियाँ क्यों देते हो?' अगर मुझे गाली दो तो मैं सहन कर सकता हूँ। लेकिन मेरे पिता को क्यों गालियाँ देते हो? तब उस व्यक्ति ने कहा कि यहाँ गाली दी तो तुम्हारे पिता को कैसे पहुँचेगी? तुम्हारा पिता यहाँ कहाँ है? परंतु हृदय के अंदर जो एक स्थान पिता के संबंध में बना है, उसको ठेस लगती है। वह मन ही सुख-दु:ख का अनुभव करता है।

इस प्रकार यह सुख-दु:ख इंद्रियजन्य नहीं, तो कुछ बुद्धिग्राह्य होता है। सुख दो प्रकार का है। जो इंद्रियजन्य सुख है, उसको तो पाशविक सुख कहते हैं—

आहार निद्रा भय मैथुनं च।
सामान्य मेतत् पशुभिर्नराणाम॥

ऐसे जो हमारे यहाँ कहा है। ये सर्वसाधारण क्रियाएँ होती हैं। वे मनुष्य और पशु में समान हैं और इस प्रकार का सुख प्राप्त करना सभी चाहते हैं। परंतु मनुष्य को दूसरा भी एक सुख प्राप्त हो सकता है, जिसको मानो सत्य रूप में सुख कहेंगे, ऐसा वह है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बाक़ी के प्राणी उसकी चिंता करते नहीं। शायद यह प्राप्त होता है या नहीं, इसका वे विचार भी नहीं कर सकते। अब तो लोगों को धीरे-धीरे ज्ञान आ रहा है। मनुष्य के पास बुद्धि है, इसलिए वह चिंता करता है। आंतरिक जगत् में संबंध रखता है। इसके कारण वह कई बार बुद्धिजन्य सात्त्विक सुख के लिए इंद्रियजन्य पाशविक सुख छोड़ने को भी तैयार होता है, जिसके कारण शायद बाह्य चीज़ों का सुख बदल जाता है। अपने यहाँ हिंदी में सूरदासजी ने कहा कि भगवान् कृष्ण जब भोजन के लिए गए थे, तब दुर्योधन के यहाँ बड़ा अच्छा भोजन होने पर भी उन्होंने वहाँ भोजन नहीं किया। विदुर के यहाँ जाकर बिल्कुल साधारण साग-भात जो कुछ मिला, वह खाया। तो कवि ने कहा कि 'दुर्योधन की मेवा त्यागी साग विदुर घर खाए' यानी दुर्योधन की मेवा छोड़कर वह विदुर के घर जाकर साग खाने लगे तो यह क्यों? तो शायद वह अपने मन की बात है कि जिसमें मन रँग जाए, उसके लिए बाक़ी सबकुछ छोड़ देता है। इसलिए महाराणा प्रताप सब अपना जिसको और सुख कहते हैं, राजसिंहासन, नवाबी सब छोड़कर जंगलों में रहे और घास की भी रोटियाँ खाईं। अब वह घास की रोटियाँ उन्हें अच्छी लगीं और उसमें उन्होंने सुख का अनुभव किया और अपनी स्वाधीनता को खोकर ग़ुलाम बनकर अच्छा पकवान खाना पसंद नहीं किया। इसका अर्थ यही है कि ये जो मानव-सुख है, ये कई बार अपने जो अन्य पाशविक सुख हैं, उनको छोड़ने को भी मनुष्य तैयार रहता है। ये जो बुद्धि की क्रिया है और अब बुद्धि जिसको स्वीकार करे तो उसमें फिट बैठता है। जो मानव सुख नाम की चीज़ है, वह प्राप्त होती है। मनुष्य अपने सामने एक जो लक्ष्य रखता है, उस लक्ष्य की प्राप्ति में उसको सुख की प्राप्ति होती है। क्योंकि बाहर की चीज़ें तो वैसी ही रहती हैं। ये जो सापेक्ष बातें हैं, लक्ष्य के सामने रहती हैं। मानो स्वतंत्रता का लक्ष्य सामने रख दिया तो स्वतंत्रता प्राप्ति के समीप जितने निकट पहुँचे, उतना ही वह सुखी हुआ। उससे जितने दूर रहे, उतना ही दुःख होता है। बाक़ी की चीज़ें उसको तक़लीफ़ नहीं देतीं। जो अपने सामने ध्येय रखा उस ध्येय की प्राप्ति के लिए यदि प्रयत्न किया तो उसमें सुख होता है।'

अब इस मानव सुख में, ध्येय कौन सा? यह फिर हमारा दूसरा प्रश्न है। वैसे तो कोई भी ध्येय आप रख सकते हैं। लोग रखते भी हैं। और उसके लिए काम करना स्वाभाविक है। हरेक का जो कहते हैं कि अपना-अपना फ़र्ज़ होता है, उस फ़र्ज़ में आनंद मानता है। उसकी प्राप्ति के प्रयत्नों में उसको आनंद की अनुभूति होती है।

भगवान् श्रीकृष्ण गोकुल से मथुरा चले गए तो उद्धव गए गोपियों के पास और वहाँ जाकर सबको समझाने लगे। लेकिन वे लोग 'ऊधो मन माने की बात…' यानी जिस वक्त उद्धव गोपियों के पास गए तो वे बहुत व्याकुल थीं। उन्होंने गोपियों को समझाया कि इसमें यह रोने की क्या बात है, वे तो एक बड़े काम के लिए मथुरा गए हैं और गोपियों

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

को बड़े वेदांत का ज्ञान दिया और कहा कि यह शोक करने की बात क्या है। तब गोपियों ने कहा कि यह तो मन के मानने की बात है। मन मानता ही नहीं, विष का कीड़ा अमृत को छोड़कर विष में ही आनंद मानता है। उन्होंने कहा कि दुनिया में अच्छे-अच्छे फूल हैं, फल हैं, बहुत मीठे तो भी विष कीड़े को विष में ही आनंद आता है।

जिसको बुद्धि ग्रहण करे—बुद्धि और मन में यहाँ पर भेद नहीं, तो इस प्रकार से जो बुद्धि ग्राह्य लक्ष्य रहता है, वह हमारे यहाँ सात्त्विक लक्ष्य कहा गया है। जो केवल मन से ग्राह्य है, वह राजसी और जो प्रमादवश आदमी ले लेता है, वह तामसी। यानी मोह में पड़कर, प्रमाद में पड़कर। एक कथा तुलसीदासजी के बारे में प्रसिद्ध है, वे अपनी स्त्री के प्रेम में इतने फँस गए कि उसके सिवा उनको अकेला रहना असंभव लगा। एक बार उनकी पत्नी अपने पिता के घर गई। तो उसके पीछे-पीछे पागल से वे भी दौड़े। रास्ते में एक नदी आई। उसे पार करने का कोई साधन नहीं दिखा, तो वे एक मुरदे के ऊपर बैठकर नदी पार करने लगे, वह मुरदा नदी में बहता चला जा रहा था और जब वे पत्नी के घर पहुँचे तो दरवाज़े बंद थे। खिड़की खुली थी। लोग तो कहते हैं कि उस खिड़की के ऊपर चढ़ने के लिए भी वहीं एक साँप लटक रहा था, उसको रस्सी समझकर उसके ऊपर चढ़कर खिड़की से अंदर पहुँचे और सोती हुई पत्नी को जगाया। कहा जाता है कि उनकी पत्नी ने उन्हें बहुत फटकारा और कहा कि जितना मोह तुम्हें मेरे इस नश्वर शरीर से है, उतना यदि भगवान श्रीराम से होता तो तुम्हें मुक्ति मिल जाती। उस बात से उन्हें बहुत ज्ञान मिला! और वे तभी सब मोह छोड़कर भगवान् राम की भक्ति में लग गए। उसके बाद उन्होंने सारा परिवार छोड़कर रामभक्ति में ही अपना जीवन बिताया।'

तो इस प्रकार के ये जो ध्येय होते हैं, वे बुद्धि ग्राह्य हैं। ये उच्चतर ध्येय हैं। सात्त्विक ध्येय हैं। ये जो बुद्धि ग्राह्य सात्त्विक ध्येय हैं, इसका मानो अपनी प्रकृति से, अपनी प्रवृत्ति से संबंध आता है। अपनी आत्मा का साक्षात्कार जिसमें होता है, वह अपनी आत्मा का रंग होता है। उसका साक्षात्कार, मानो आनंद खिला जाता है। फूल जब खिलता है, तब बहुत सुंदर दिखता है। एक कवि कहता है कि फूल का जो खिलना है और वह खिल-खिलकर मानो हँसता है। वह हँसना नहीं, मानो अपने ध्येय का साक्षात्कार होना है। वह उसकी एक ख़ुद की प्रकृति है, उसकी एक अभिव्यक्ति है। फूल का खिलना यानी *It is an unfolding of its own real self.* वह उसका एक स्वाभाविक आनंद है। वैसे ही यह जो बुद्धि ग्राह्य ध्येय होता है, यह अपनी जो प्रकृति है, प्रवृत्तियाँ हैं, उनसे विपरीत नहीं होता। वह उसके अनुरूप होता है।

उसमें जैसे-जैसे हम काम करते चले जाते हैं तो स्वयं ही उसमें विकास होता चला जाता है। वृक्ष बनता है और वह आगे बढ़ता चला जाता है। ऐसे ही ध्येय, जो

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

हमारी प्रकृति प्रवृत्ति, जीवन का जो रंग है, उसके साथ मेल रखता है। जहाँ संघर्ष नहीं आता, ऐसा ध्येय रखकर जब आदमी काम करता है तो उसके काम करने में उसका आनंद और उसका विकास साथ-साथ ही चलता है।

हम आज इतना ही विचार करें कि हमारे सामने एक ही लक्ष्य है। उस लक्ष्य को साध्य करने के लिए कार्य करने में हमें सुख मिलना चाहिए। यह सुख पाशविक सुख नहीं, मानव सुख है, क्योंकि वह हमारा लक्ष्य, हमारे आंतरिक जगत् से संबंध रखता है। बुद्धिग्राह्य होने के कारण ये केवल मन के संकल्प विकल्पों तक सीमित नहीं। इसमें ध्येय का और मन का संबंध है। केवल प्रवाह पतित होकर उधर चलो, इधर चलो, ऐसा भी नहीं, तो उसकी सुनिश्चित धारा है। कई बार आदमी ध्येय की ओर चलता है, फिर भी अनेक संकल्प होने के कारण उसका मन इधर-उधर रह जाता है तो प्रवाह-पतित होता है। उनकी हालत बच्चों जैसी हो जाती है। मन को क़ाबू में रख नहीं पाता। बच्चा यह नहीं जानता कि किससे वह आनंद पाता है। शायद उसका निर्णय वह बुद्धि से नहीं करता, मन से करता है। कभी उसे अच्छा लगा तो न समझने के कारण, कई बार किसी एक चीज़ के लिए रोता है। एक बार एक बच्चा मुझे मालूम है कि वह चश्मा देखते ही उसके लिए रोने लगा और यदि चश्मा उसके हाथ में दे दिया जाए तो वह तोड़ देगा, तब क्या किया जाए? तो उसकी माता ने एक चतुराई की कि उसको बिल्कुल चमकदार एक वैसा ही खिलौना हाथ में दे दिया। चमकदार खिलौना हाथ में मिला तो उसको लेकर वह खेलने लगा। यानी वह जानता नहीं था कि वह क्या चाहता है। मन के ये जो संकल्प-विकल्प हैं, वह तो चलते रहते हैं। उसमें सुनिश्चितता नहीं रहती।

इस प्रकार का सुनिश्चित ध्येय, यह अपनी जो प्रकृति है, जो अपनी प्रवृत्ति है, अपना जो जीवन है, उसके विपरीत नहीं हो सकता है। बच्चों की सात्त्विक बुद्धि भी कई बार ध्येय पहचानने में समर्थ होती है। सात्त्विक बुद्धि यानी हमारे अंदर रहने वाली सद्विवेक बुद्धि है। केवल प्रचार के सहारे पर, तो कई बार केवल तर्क के सहारे भी, बुद्धि कुबुद्धि बन जाती है, वह नहीं। सद्विवेक बुद्धि वह होती है, जो सत्य-असत्य, बुरा-अच्छा इनको ग्रहण करते हुए उचित निर्णय कर सकती है। अपना ध्येय अपने जीवन की प्रवृत्ति इनसे विपरीत या विपरीतार्थ न होने के कारण उसमें हमें आनंद की अनुभूति मिल सकती है। आज तो इसका विचार काफ़ी है। हमारे जीवन की प्रवृत्ति क्या है, इसका विचार हम लोग कल फिर करेंगे।

—मई 12, 1958

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

17

कोलार स्वर्ण पर ब्लैकमेल

लोक सभा में 'कोलार स्वर्ण क्षेत्रों' के राष्ट्रीयकरण के लिए क्षतिपूर्ति के प्रश्न पर हुई हाल की बहस ने, छोटे पैमाने पर ही सही, ईरान और मिस्र के इतिहास की भारत में पुनरावृत्ति को दिखाया है। ब्रिटिश स्वामित्व वाली कंपनियाँ अपने शेयरों के बाज़ार मूल्यों से लगभग तीन गुना ज़्यादा की क्षतिपूर्ति पर ज़ोर दे रही थीं और मैसूर सरकार को केंद्र के अनुचित दबाव के कारण उनकी माँगों को मानना पड़ा। केंद्र सरकार को इसलिए यह क़दम उठाना पड़ा, क्योंकि ये विदेशी कंपनियाँ खदान न करने की धमकी दे रही थीं, जैसे इन्होंने ईरान में किया था। केंद्र सरकार को यह भय था कि यह सारा प्रकरण विदेशी निवेश के माहौल को ख़राब कर सकता है। ब्रिटिश सरकार ने हमेशा की तरह अपने प्रभाव का प्रयोग किया और भारत सरकार पर बढ़ी हुई क्षतिपूर्ति राशि देने के लिए कूटनीतिक दबाव डाला। स्पष्ट रूप से इसमें ब्लैकमेल के तत्त्व शामिल थे।

लोकसभा सदस्यों ने इस सारे मामले से असंतोष ज़ाहिर किया और कुछ सदस्यों ने इस बारे में जाँच की माँग की कि क्यों केंद्र सरकार के अधिकारियों की समिति द्वारा तय की गई क्षतिपूर्ति राशि 119 लाख रुपए से मंत्री के द्वारा अंत में बढ़ा कर 164 लाख रुपए कर दी गई। जहाँ कहीं भी घोटाले की संभावना हो, वहाँ जाँच की आवश्यकता को ख़ारिज नहीं किया जा सकता। फिर भी हम चाहेंगे कि विदेशी मुद्रा और विदेशी संबंधों के हमारे दृष्टिकोण पर पुनर्विचार हो। अधिक-से-अधिक विदेशी फर्में अपनी शाखाएँ भारत में खोल रही हैं। सरकार मान रही है कि विदेशी मुद्रा द्वितीय पंचवर्षीय योजना की सफलता के लिए और तीव्र औद्योगीकरण कार्यक्रमों के लिए अपरिहार्य है। सरकार विदेशी निवेशकों की आशंकाओं को दूर करने के लिए यह कष्ट उठा रही है और उन्हें कई रियायतें भी दे रही है। संभव है कि सरकार जिस नीति पर चल रही है, उसमें कुछ ग़लत न हो, लेकिन इन विदेशी फर्मों का रवैया निश्चित रूप से आपत्तिजनक है। इस

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मामले में और तेल क़ीमतों से संबंधित मामलों में भारत को कड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। सरकार लाभ के मुद्दे पर झुक सकती है, लेकिन लाभ के नाम पर हमेशा संप्रभुता को ख़तरा हुआ है। छोटे-छोटे मामले अलग से चर्चा करने लायक नहीं हैं। क्या हमें योजनाएँ मुख्य रूप से अपने संसाधनों पर निर्भर होकर नहीं बनानी चाहिए?

लोकसभा में इस मुद्दे पर भाषणों की गूँज और प्रवृत्ति ने दिखाया है कि लोक सभा सदस्यों ने अपनी पार्टियों की परवाह किए बिना एक-दूसरे से होड़ करते हुए राज्य के हित का समर्थन किया। उन्होंने केंद्र के 'राज्य पर निर्णय थोपने के' बुनियादी अधिकार पर प्रश्न उठाए। दूसरी ओर खदान और तेल मंत्री श्री के.डी. मालवीय ने राज्य सरकार पर केंद्र की सलाह के विरुद्ध कोलार स्वर्ण क्षेत्र के राष्ट्रीयकरण का आरोप लगाया है।

सिंगरेनी कोयला ख़ानों के संदर्भ में केंद्र सरकार के प्रस्ताव का आंध्र प्रदेश से एक और विरोध हुआ है। इसको आधिकारिक रूप से राज्य के मुख्यमंत्री ने उठाया है। श्री मोरारजी देसाई के लोकसभा में संशोधित विवरण के अनुसार केंद्र, राज्य के उद्देश्यों की आवश्यकताओं हेतु अग्रिम राशि इस शर्त के साथ देना चाहता है कि केंद्र को सिंगरेनी कोयला खान में दो-तिहाई हिस्सा मिलना चाहिए। राज्य के मुख्यमंत्री श्री संजीव रेड्डी ने कहा है कि यदि केंद्र हमें ऋण देता है तो हम सिंगरेनी कोयला खान के निदेशक मंडल में केंद्र सरकार के दो प्रतिनिधि रखने को तैयार हैं। यदि केंद्र खानों में हिस्सेदारी चाहता है तो राज्य सरकार उसे 30-40 प्रतिशत शेयर देने को तैयार है। लेकिन शेयरों का बड़ा हिस्सा पाने के लिए केंद्र का ज़ोर देना मेरी समझ के बाहर है। उन्होंने ख़ान के प्रबंधन करने पर भी केंद्र की क्षमताओं पर प्रश्न उठाया है। 'दिल्ली में बैठे लोग घर के नज़दीक के लोगों से बेहतर प्रबंध कैसे कर सकते हैं'—यह उनके तर्क का अभिप्राय प्रतीत होता है।

केंद्र और राज्य के मध्य सम्मतियों और नज़रियों को लेकर संघर्ष के कई अवसर हो सकते हैं, लेकिन जिस तरह से हितों का संघर्ष जनता के समक्ष आता है, यह निश्चित रूप से इस बात को इंगित करता है कि केंद्र और राज्य के मध्य संबंध ज़्यादा अच्छे नहीं चल रहे हैं। केंद्र में हर कोई—प्रधानमंत्री और योजना आयोग को मिलाकर—पंचवर्षीय योजनाओं के क्रियान्वयन में राज्यों के असहयोगात्मक रवैये का विरोध करता है। जब एक ही पार्टी की सरकारें है, तब तो इस तरह से झगड़े होते हैं, जब केंद्र और राज्यों में भिन्न दलों की सरकारें होंगी तो उस समय संबंधों की क्या दशा होगी? यदि निषेध इलाज से बेहतर होता है तो हमें देश के संवैधानिक ढाँचे का पुनर्परीक्षण करना चाहिए।

नेहरू का शर्मनाक भाषण

पंडित नेहरू की हिंदुओं के लिए नफ़रत और मुसलमानों के लिए प्रेम कोई रहस्य

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

नहीं है। उन्हें एक सनक है। उन्हें लगता है कि उनके बिना मुसलमान भारत में सुरक्षित नहीं रह पाएँगे। इसी कारणवश वह हमेशा जहाँ भी मुसलिम हितों से संबंधित कोई मामला होता है, वह उन्हें विशेष रियायतें देने के लिए सीमा से बाहर तक चले जाते हैं। कश्मीर के लिए विशेष दर्जा, जनमत संग्रह के लिए प्रस्ताव, तेलंगाना के लिए क्षेत्रीय समिति का गठन इसके कुछ उदाहरण हैं। अल्पसंख्यकों को राज़ी करने के नाम पर ये नीतियाँ राष्ट्रीय ताक़तों के घनिष्ठ एकीकरण होने और मुसलमानों का इस देश की परंपराओं और लोगों के साथ तादात्म्य स्थापित करने में बाधक बनती हैं। इसे इस तथ्य में देखा जा सकता है कि सभी राजनीतिक अथवा ग़ैर-राजनीतिक मामलों में मुसलमानों को हमेशा मुसलिम संदर्भों में समझा जाता है। राष्ट्रवादी शक्तियाँ यह मानते हुए कि 'मुसलमानों को हमेशा सांप्रदायिकता फैलाने का मोहरा बनाया जाता रहा है तथा पुरानी आदतें छूटने में बहुत मुश्किल होती है', इन अलगाववादी प्रवृत्तियों को अनदेखा भी कर सकती हैं। कांग्रेस सरकार का पूर्ववर्ती मुसलिम लीगियों को महत्त्व देना और उन्हें रियायतें देना भी माफ़ किया जा सकता है, लेकिन वे तो सांप्रदायिक ढाँचे में ही सोचने के आदी हो चुके हैं।

दिल्ली में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के सम्मलेन में पंडित नेहरू का भाषण शर्मनाक है। जिन्ना तक इतना क्षतिकारक भाषण नहीं दे सकते। मुसलमानों का रहनुमा बनने की चाहत में उन्होंने मुसलमानों को दंगे के लिए भड़काने तक का प्रयास किया है। यह मुसलमानों में अलगाववाद की भावना भरकर उन्हें राज़ी करने की कांग्रेस की बड़ी रणनीति का हिस्सा हो सकता है। कांग्रेस हमेशा एक ही साँस में राष्ट्रीयता की, बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक समुदायों की बात करती है। हम पंडित नेहरू से सहमत हैं कि हमें नस्ल और राष्ट्रीयता को धर्म के साथ नहीं मिलाना चाहिए। यदि हम धर्म के हिस्से को निकाल देते हैं—विशेषकर इसलाम और ईसाइयत के हिस्से को—तो फिर किस आधार पर पंडित नेहरू लोगों के एक समूह को अल्पसंख्यक समुदाय कहते हैं? वास्तव में तो वह हमेशा धर्म के आधार पर लोगों का वर्गीकरण करते रहते हैं।

पंडित नेहरू कहते हैं कि अल्पसंख्यकों का लोक सेवाओं में प्रतिनिधित्व कम हो रहा है। लगता है, उन्होंने कुछ आँकड़े जुटाए हैं। उन्हें प्रकाशित करने दो। क्या उन्हें नहीं पता है कि ब्रिटिश काल में मुसलमानों को अधिक महत्त्व दिया जाता था और उनका प्रतिनिधित्व काफ़ी अधिक हुआ करता था? यह संख्या तो कम होनी ही है। उन्हें यह आँकड़े भी जुटाने चाहिए कि कितने छात्रों ने अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालय से शिक्षा ली और पाकिस्तान चले गए। लेकिन सभी आँकड़ों से महत्त्वपूर्ण यह है कि वह उनकी नौकरियों को देखते हैं। क्या हम लोक सेवाओं में लोगों की नियुक्तियाँ धर्म के आधार पर करते हैं? क्या केवल यही एक योग्यता है?

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पंडित नेहरू के सभी तर्क स्व विरोधाभासी हैं। वे कहते हैं कि उर्दू मुसलमानों की भाषा नहीं है। हमने मान लिया। लेकिन वह उर्दू के संरक्षण की समानता अल्पसंख्यकों के संरक्षण से करते हैं। किन अल्पसंख्यकों की पंडित नेहरू बात करते हैं? वह कहते हैं कि उर्दूभाषी लोगों को हम पर यक़ीन होना चाहिए। यह प्रश्न बाद में 'मनोवैज्ञानिक और तर्कहीन मुद्दे' में बदल गया और ज़्यादा उलझकर महत्त्वपूर्ण बन गया। वह कहते हैं कि 'इस अवस्था में उर्दूभाषी लोग इसे अपनी संस्कृति पर हमला समझेंगे।' तो उनके ही शब्दों में उर्दू एक संस्कृति का प्रतीक है। कौन सी संस्कृति है वह? यदि यह एक अलग संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती है तो उत्तर प्रदेश या बिहार अथवा पंजाब अथवा आंध्र के उर्दू बोलने वाले लोगों का संबंध हिंदी, पंजाबी और तेलुगु भाषा बोलने वाले लोगों की संस्कृति से अलग होगा। यह स्पष्ट है कि पंडित नेहरू का संकेत मुसलिम संस्कृति की ओर है और इस तरह वह सोचते हैं कि धर्म के साथ-साथ अल्पसंख्यकों की एक अलग संस्कृति और अलग भाषा भी है। तब वह मुसलमानों के लिए अलग राष्ट्र के तर्कपूर्ण निष्कर्ष से कैसे बच सकते हैं? यह कांग्रेस का ही तार्किक निर्णय था, जिसने मुसलिम लीग के 'एक अलग मुसलिम राष्ट्र' के विचार को मज़बूती दी।

उर्दू एक अलग संस्कृति का प्रतीक नहीं है, लेकिन मुसलमानों में अलगाववादी प्रवृत्तियों को भरने का हथियार बन गई है। लीगी नेता उर्दू को मुसलमानों की भाषा समझते हैं और इसीलिए पाकिस्तान बनने के बाद इसे पूर्वी बंगाल पर भी थोपने की सोची। उर्दू का जन्म भारत में हुआ था, लेकिन इसका पोषण हमेशा विदेशी सूत्रों से हुआ। पंडित नेहरू ने भी स्वीकार किया है कि इसमें फारसी शब्दों की भरमार है। लेकिन उन्होंने इस तथ्य के गुण अथवा दुर्गुण पर चर्चा करने से मना कर दिया। क्यों? इसमें न केवल फारसी शब्दों को उधार लिया गया है, बल्कि इसका अधिकतर व्याकरण, छंद, इसके विचार और उपमाएँ भी विदेशी भाषा से उधार ली गई हैं। उर्दू में लिखने वाला एक हिंदू तक 'काबा¨ और सिजदा' के बारे में लिखता है। हमारे लिए उर्दू महत्त्वपूर्ण हो सकती है, वैसे ही जैसे हम अरबी और फ़ारसी का सम्मान करते हैं। लेकिन राजनीति के लिए—और वह भी जब इसे राष्ट्रविरोधी राजनीति के लिए इस्तेमाल किया जा रहा हो : यदि उर्दू लोगों के बीच दरार डालती है तो इसे त्याग देना चाहिए। उत्तर प्रदेश और बिहार के लोग तब तक एक नहीं हो सकते, जब तक उर्दू वहाँ चलती रहेगी।

उत्तर प्रदेश या बिहार से ज़्यादा तो यह पंजाब में फैली हुई थी। ब्रिटिश काल में निर्देशों का इकलौता माध्यम उर्दू थी। पंजाब में शिक्षित होने का मतलब उर्दू लिख और पढ़ सकने का ज्ञान होने भर से था। स्वतंत्रता का उदय होते ही पंजाबियों को एहसास हुआ कि इस परदेशी प्रतीक को छोड़ देना चाहिए। अतः उन्होंने हिंदी और पंजाबी को

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अपना लिया। जब पंजाब के राष्ट्रवादियों ने उर्दू का त्याग करने की प्रक्रिया में होने वाली अनेक समस्याओं के बाद भी उर्दू को छोड़ दिया और पंजाबी तथा हिंदी को अपना लिया तो उत्तर प्रदेश, बिहार, दिल्ली और तेलुगु के राष्ट्रवादी उर्दू को छोड़कर हिंदी और तेलुगु को क्यों नहीं अपना सकते हैं? राष्ट्रवादिता यह माँगती है। लेकिन मुसलमानों में राष्ट्रवादिता, मुसलमानों का अन्य लोगों के साथ तादात्म्य, अपनी समस्याओं को केवल राजनीतिक दृष्टि से देखना और फिर अपनी व्यक्तिगत पसंद से मनचाही पार्टी को चुनना, कांग्रेस को असहज कर सकता है। अब तक कांग्रेस के उम्मीदवार अपने-अपने क्षेत्रों के मुसलिम मतदाताओं से जीतते रहे हैं। यह तो नहीं हो सकता कि मुसलमान अपने दृष्टिकोण को राष्ट्रवादी बना लें। इसी वजह के लिए श्री मोरारजी देसाई ने 'पुनरुत्थानवाद' पर बहस छेड़ी है।

पंडित नेहरू ने भी उर्दू की तमिल के साथ समानता करने का प्रयास किया है, और हिंदी में परीक्षाओं के होने पर असंतोष प्रकट किया है। अब तक लोक सेवा परीक्षाओं में अहिंदीभाषी अभ्यर्थियों के लिए कोई पूर्व परीक्षा नहीं होती है। हमें भी ऐसी किसी परीक्षा की आवश्यकता नहीं लगती। संघ लोक सेवा आयोग को परीक्षाएँ क्षेत्रीय भाषाओं में करानी चाहिए। लेकिन क्या पंडित नेहरू के कहने का आशय यह है कि मद्रास सरकार अपनी अधीनस्थ सेवाओं हेतु परीक्षा में बैठने वाले अभ्यर्थियों के लिए तमिल भाषा में कोई परीक्षा न कराए?

पंडित नेहरू का पूरा भाषण मिथ्या और विद्वेषजनक तर्कों से भरा हुआ है। पूरा भाषण निंदात्मक और भड़काने वाला है। एक प्रधानमंत्री इतने ग़ैर-ज़िम्मेवार तरीक़े से नहीं बोल सकता।

—ऑर्गनाइज़र, मई 26, 1958

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

18

उर्दू की राजनीति

कांग्रेस वर्किंग कमेटी द्वारा केंद्र व राज्य सरकारों को दिए गए निर्देश, जो उर्दू भाषा की नीति के संबंध में हैं, देश की अखंडता के लिए कारगर एवं उपयोगी नहीं कहे जा सकते। कांग्रेस कमेटी ने हिदायत दी है कि शिक्षण संस्थाओं में उर्दू को स्थानीय भाषा की मान्यता देकर उसे सभी स्तरों पर पढ़ाया जाए। साथ ही, सभी अदालतों और कार्यालयों में नियम, क़ानून, आदेश आदि उर्दू भाषा में ही जारी किए जाएँ तथा इस भाषा के विकास को प्रोत्साहित किया जाए। कांग्रेस वर्किंग कमेटी का दावा यह भी है कि उर्दू को आठवीं अनुसूची में एक राष्ट्रीय भाषा के रूप में पहचान दी गई है तथा देश में यह बहुत लोगों की मातृभाषा है।

इस निर्देश-पत्र के साथ कांग्रेस वर्किंग कमेटी में एक अध्यादेश भी राष्ट्रीय अखंडता के लिए पारित किया गया। इन दोनों अध्यादेशों में कमेटी ने अल्पसंख्यकों के बारे में ध्यान रखा है तथा उनकी समस्याओं का निराकरण करने की कोशिश की है। अगर ए.आई.सी.सी. सत्र में पं. जवाहरलाल नेहरू के भाषण को इस संदर्भ में देखा जाए तो स्पष्ट हो जाता है कि कांग्रेस कार्यवाहक समिति मुसलिम समुदाय को संतुष्ट करने के लिए अपनी हद से बाहर चली गई है। पार्टी के हित इस प्रकार की नीति की माँग करते हैं, क्योंकि कांग्रेस उत्तर प्रदेश में कुछ महत्त्वपूर्ण सीटें हार गई है। इसका कारण साधारणतया यह था कि मुसलिम, जो अभी तक मुसलिम लीग की सांप्रदायिक नीतियों से जुड़े हुए थे, उन्होंने अपना समर्थन विरोधी पार्टियों, जैसे प्रजा समाजवादी पार्टी, प्रोग्रेसिव पीपल पार्टी और साम्यवादियों को दे दिया। ये सभी मुसलिम जमात के नेताओं तथा उन लोगों द्वारा, जो 'पुस्तक आंदोलन' के लिए उत्तरदायी थे, से प्रभावित हैं। उनका समर्थन खोने और यहाँ तक कि कुछ सीटें भी गँवाने के बावजूद उत्तर प्रदेश सरकार अब तक अपनी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सही भाषा योजना पर क़ायम है। जबकि कांग्रेस कार्यकारिणी सिद्धांतों से कहीं ज़्यादा महत्त्व राजनीतिक अवसरवादिता को दे रही है।

उर्दू बावजूद इसके कि वह संविधान में अपनी पहचान बना चुकी है और इसका जन्म भारत में ही हुआ है, मुसलिम समुदाय के बँटवारे का कारण रही है। यह बिल्कुल वैसे ही भारतीय है, जैसे कि चीन में 'पीजीन अंग्रेज़ी' चीनी मानी जाती है। इसकी लिपि, शब्दकोश, अधिकांश व्याकरण, अलंकार आदि विदेशी हैं, जिसके आधार यहाँ नहीं हैं। अत: वे व्यक्ति जो उर्दू बोलना जानते हैं, उनकी भी यहाँ जड़ें नहीं मानी जातीं। इसके कारण से यह अलग मुसलिम राष्ट्रवाद का प्रतीक बन गया है, जिसकी सिफ़ारिश मुसलिम लीग हमेशा से करती रही है। यदि कुछ मुसलिम आज भी उर्दू भाषा पर बँधे रहे हैं तो स्पष्ट है कि वे अपनी पुरानी सांप्रदायिक छवि को छोड़ना नहीं चाहते हैं।

कांग्रेस कार्यकारिणी के निर्देश-पत्र एक प्रकार से उर्दू को भारत में पिछले दरवाज़े से अखिल भारतीय भाषा बना देने की एक कोशिश है। यह संविधान को नज़रअंदाज़ करके दूसरा रास्ता अपनाने की एक कोशिश भी है। ऐसे समय में जब भाषा संबंधी विवाद छाए हुए हैं, कांग्रेस मौक़े का फ़ायदा उठाना चाहती है।

यह भी अजीबोग़रीब है कि कांग्रेस कार्यकारिणी ने इस निर्देश को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के पीठ पीछे जारी किया है। यह निर्देश अखिल भारतीय स्तर की कमेटी के समय रहते पहले क्यों नहीं रखा, जबकि कुछ दिन का समय उन्हें मिला था। स्पष्ट है कि कांग्रेस कार्यकारिणी वस्तुत: अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को निरुपाय कर देना चाहती है, जैसा विभाजन के समय हुआ था। ऐसे बहुत से कांग्रेसी हैं, जो इस वर्तमान निर्देश-पत्र को दूसरे विभाजन का आधार मानते हैं। क्या वे वैसे ही चुप रहेंगे, जैसे 1947 में रह गए थे? भले ही वे अपनी आवाज़ नहीं उठा पाएँ और राजनीतिक लाभ के लिए कांग्रेस आलाकमान के आगे नतमस्तक होकर सिद्धांतों की बलि दे दें, किंतु भारत की राष्ट्रवादी जनता इस छल को सहन नहीं करेगी। सभी ध्वस्त होती सत्ताओं ने हमेशा ही राष्ट्रविरोधी और पृथकतावादी ताक़तों को बढ़ावा दिया है। किंतु राष्ट्रीय एकता की ताक़तें और राष्ट्रवादिता हमेशा ही मज़बूत रही है। कांग्रेस ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत में इस्तेमाल की गई नीतियों को दोहरा रही है। ज़ाहिर है कि उसका भी वही भाग्य होने वाला है।

—ऑर्गनाइज़र, मई 26, 1958

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

19

कांग्रेस कार्यसमिति का उर्दू संबंधी निर्देश राष्ट्र के लिए अहितकर

पूना से दीनदयालजी ने एक वक्तव्य प्रसारित कर कांग्रेस कार्यसमिति द्वारा राज्य सरकारों को दिए गए उर्दू संबंधी आदेश को भारतीय एकता तथा अखंडता के विकास के लिए अति घातक घोषित किया है।

कांग्रेस कार्यसमिति सांप्रदायिक मुसलमानों को ख़ुश करने के लिए अपने मार्ग से विचलित हो गई है; सिद्धांतों की अपेक्षा राजनीतिक अवसरवादिता की अधिक चिंता करने लगी है। कार्यसमिति के आदेश से तो ऐसा प्रतीत होता है कि कांग्रेस चोर दरवाजे से 'उर्दू' को अखिल भारतीय भाषा बनाने पर तुली हुई है। आज जबकि भाषायी विवादों के कारण संविधान के विषय में अनेक उलझनें पैदा हो रही हैं, इस नए प्रश्न के द्वारा उसकी और भी अवहेलना होगी।

यदि कांग्रेस जनों ने कांग्रेस हाईकमान के इस आदेश के प्रति, राजनीतिक विचारधारा और दलीय अनुशासन के नाम पर मौन साध ही लिया तो भी राष्ट्रवादी भारत उसे कदापि सहन नहीं करेगा।

—पाञ्चजन्य, मई 26, 1958

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

20

मुश्किल हालात में कमेटी गठन की नीति फ़ायदेमंद नहीं

ब्रिज में एक पुराना नियम है कि जब भी मुश्किल में हों तो कोई भी ऐसा-वैसा पत्ता चल दें। यही नियम सरकारों पर भी लागू होता है, जैसे जब भी वे मुश्किल में फँसती हैं, एक कमेटी का गठन कर देती हैं। भारत सरकार ने इसी सिद्धांत पर अमल करते हुए एक कमेटी का गठन कर दिया है, जो वस्त्र उद्योग के वर्तमान मुश्किल हालात के कारणों की समीक्षा करेगी। कमेटी को छह सप्ताह में रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए कहा गया है। सभी कमेटियों और आयोगों से ऐसी ही अपेक्षा की जाती है। वस्त्र उद्योग के बारे में बहुत कुछ जाना व कहा जा रहा है किंतु अब इसकी मुश्किल स्थितियों के बारे में जानकारी लेने के लिए समय बहुत कम बचा है। वस्त्र उद्योग के आयुक्त इस कमेटी के प्रमुख बनकर कुछ अधिक जानकार नहीं हो जाएँगे और न सरकार को अलग-अलग रुचियों वाले लोगों से कुछ बेहतर परामर्श ही मिलने वाला है। यह सलाह तो उसे अपने अधिकारियों और सलाहकारों से मिलती ही रही है। ज़्यादा से ज़्यादा जो कहा जा सकता है, वह यह कि कमेटी का गठन इस समस्या के समाधान से बचने का एक विकल्प मात्र ही है। स्पष्ट है कि सरकार को या तो यह जानकारी तक नहीं है कि क्या किया जाना चाहिए अथवा वह चाहती ही नहीं है कि ऐसा किया जाए, जो उचित और कारगर हो।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के क्रियान्वयन के प्रारंभिक दौर में देश को नारा दिया गया था कि 'उत्पादन करो या समाप्त हो जाओ'। निस्संदेह वस्त्र उद्योग ने उत्पादन किया है। बावजूद इसके यह नष्ट हो रहा है। हक़ीक़त तो यह है कि अब ख़रीदने वाले ही नहीं हैं। उत्पादित वस्तुओं के ढेर लग रहे हैं। क्या हमने इतना उत्पादन कर लिया है, जितने की वास्तव में देश को ज़रूरत नहीं है। ऐसी बात नहीं है। देश में अभी भी लाखों

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

लोग ऐसे हैं, जिनको वस्त्रों की ज़रूरत है। स्थिति यह है कि जो साधारण लक्ष्य द्वितीय योजना में प्रति व्यक्ति वस्त्र उपयोग के लिए दिया गया था, वह अभी तक हासिल नहीं हुआ है। वास्तविकता यह है कि 2000 लाख गज़ प्रति वर्ष की वार्षिक वृद्धि, जो पिछले पाँच वर्षों में बनाए रखी गई थी, वह भी वर्ष 1957 में प्राप्त नहीं हुई, बल्कि इसमें कमी ही आई है। वस्त्र उद्योग का स्तर निरंतर गिर रहा है। यही स्थिति निर्यात की भी है। इस नज़रिये से केवल वस्त्र उद्योग ही असफल नहीं हुआ है वरन् पूर्ण उद्योग जगत् ही असफल हुआ है। स्थिति तो ऐसी है कि ग्राहक उस उत्पाद को ख़रीदना ही नहीं चाहता, जो उसके लिए बना है।

उद्योगपतियों द्वारा लगातार यह बात उठाई गई कि इस मुश्किल का कारण अत्यधिक उत्पादन शुल्क है। दरअसल इसी ने कपड़े की क़ीमत को बढ़ाया है तथा इसी कारण देश विदेशी बाज़ार से प्रतिस्पर्धा नहीं कर पा रहा है। घरेलू बाज़ार में क़ीमतें भी आम आदमी की पहुँच से बाहर हैं।

लेकिन उत्पादन शुल्क ही इस मुश्किल घड़ी का एकमात्र कारण नहीं है। हथकरघा बुनकर जो उत्पादन शुल्क नहीं भर सकते, वे भी अपने उत्पाद को बाज़ार में पहुँचाने में कठिनाई महसूस कर रहे हैं। वास्तविक परेशानी तो ख़रीदने वाले के साथ है, क्योंकि उसकी ख़रीदने की क्षमता घटी है। जब तक उसकी ज़रूरतों के अनुसार ख़रीदने की क्षमता नहीं बढ़ेगी, तब तक उत्पादन करने का कोई औचित्य नहीं है। कमज़ोर ख़रीद क्षमता के कारणों का पता लगाने का काम वस्त्र उद्योग जाँच कमेटी नहीं करेगी, क्योंकि यह द्वितीय पंचवर्षीय योजना में छुपी हुई है। योजना के आधारभूत तत्त्व, जिन्हें तय करते समय स्रोतों की स्थिति और भयावह बेरोज़गारी को ध्यान में नहीं रखा जा सका, अब उद्योगों के उजड़ने और बेरोज़गारी के लिए ज़िम्मेदार हैं। नासूर जैसी बीमारी के लिए नीम हकीमी इलाज सही नहीं हो सकता। अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में भी गंभीर स्थितियाँ रही हैं। सरकार समय-समय पर कमेटियों का गठन करती रही है, जैसे खाद्यान्न जाँच आयोग, निर्यात वृद्धि कमेटी, सड़क परिवहन कमेटी, जहाज़रानी कमेटी आदि। अपने दायरे में उन्होंने महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए होंगे। मगर जब तक पूरी अर्थव्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन नहीं होगा और विभिन्न योजनाओं के बीच समन्वय तथा लक्ष्यों का संतुलन नहीं होगा, तब तक स्थिति सुधरने वाली नहीं है।

—ऑर्गनाइज़र, जून 9, 1958

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

21

संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग : दिल्ली

पिछले तीन दिनों से हम संघ की विचारधारा, कार्यपद्धति तथा हमें क्या करना है, इसके विषय में पूजनीय श्रीगुरुजी[1] से मार्गदर्शन प्राप्त करते रहे हैं। इसके बाद क्या कहा जाए? संघ की शक्ति व्यवहार पर निर्भर है और संघ की शक्ति पर निर्भर है समाज की, राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति का चित्र। समाज की उन्नति का अर्थ क्या है? वैभव का चित्र कौन सा हो, यह कल्पना से रँगा जा सकता है। यदि हमने बुद्धि लगाई तो वैज्ञानिक ढंग से तारतम्य भी बैठाया जा सकता है। कारण मीमांसा भी दी जा सकती है। वास्तविकता यह है कि जीवमान समाज का चित्र कुछ चौखटों में बाँधा नहीं जा सकता। सौ वर्ष बाद क्या करेंगे, समाज का क्या चित्र होगा? इसका उत्तर भी वैसा ही है, जैसे बीरबल ने पृथ्वी के केंद्र के संबंध में बताया, पहले तो उन्होंने कहा कि छह महीने की मोहलत और पैसा चाहिए। साथ ही कुछ रस्से और खूँटियाँ मँगवाकर रख लीं। जंगल में तालाब के बीच में एक खूँटा भी गाड़ दिया और कहा कि यह है पृथ्वी का केंद्र। इसी तरह चौसर खेलने के लिए बैठिए। पचास दाँव के हिसाब से गोटी कहाँ होगी, कहना कठिन है। प्रवृत्तियों का विचार किया जा सकता है। कारण मीमांसा भी दी जा सकती है। किंतु कौन-कौन अपने स्थान पर बैठे रहेंगे, कौन उठेंगे, कहना कठिन है। आज से पचास वर्ष बाद मज़दूर, किसान, मिल-मालिक, दुकानदार का क्या संबंध होगा, क्या बनेगा—यह भी कहना कठिन है। भविष्य के बारे में जीवमान समाज का क्या बनेगा, यह भी कहना कठिन है। निर्जीव के लिए तो गति के नियम से हिसाब लगाकर कुछ कहा जा सकता है। ईंट, पत्थर तो चुनकर मकान बनेगा ही। मानव की प्रकृति, प्रवृत्तियाँ अध्ययन कर बताया जा सकता है। परिणाम सोचे जा सकते हैं। Minutest details नहीं बनाई जा सकतीं।

1. श्रीगुरुजी से तात्पर्य माधव सदाशिव गोलवलकर (राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वितीय सरसंघचालक) से है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

संगठन और उसके द्वारा वैभव का हमने विचार किया। वैभव की सर्वसाधारण कल्पना छोटी-मोटी रूपरेखा में नहीं हो सकती। हमने अपनी प्रार्थना में इसे व्यक्त भी किया है। परमात्मा से शुभ आशीर्वाद माँगा है। सीधा आशीर्वाद नहीं माँगा। कुछ बातें उसके साथ जोड़ दीं। इस बारे में एक कथा याद आ गई। एक व्यक्ति अंधा होने के साथ-साथ निर्धन और नि:संतान भी था। उसने शिवजी की आराधना की। प्रसन्न होकर प्रभु ने उससे कहा कि एक वरदान माँगो। उसे एक ही वरदान माँगना था। इसलिए उसने सोच-विचार किया कि यदि आँखें ही माँगी तो वह नि:संतान और निर्धन ही रह जाएगा और यदि वह संतान माँग लेता है तो भी वह अंधा और ग़रीब ही रहेगा, इसलिए उसने कहा कि मैं चाहता हूँ कि मैं अपने पोते को सोने के बरतन में खीर खाते हुए देखूँ, तो इस तरह उसने समझदारी से सभी कुछ एक ही वरदान में माँग लिया। इसी तरह हमने भी तीन वरदान माँगे कि प्रभु, तुम्हारे आशीर्वाद से यह कार्यशक्ति वैभव पर पहुँचाने में समर्थ हों। हमने ताक़त से माँगा, कृपा से नहीं। केवल कृपा से जो मिले, वह छिन भी जाता है। भस्मासुर ने भगवान् के सिर पर हाथ रखकर उसे याद करने की कोशिश की, लेकिन वह उलटा ही हुआ। 'विधायस्य धर्मस्य संरक्षणम्' इसमें अपने वैभव की कल्पना और उसे प्राप्त करने के साधन दोनों स्पष्ट कर दिए।

जहाँ पर धर्म नहीं है, वहाँ पर हमने वैभव ही नहीं माना। धर्म का संरक्षण और वैभव की प्राप्ति दो क्रियाएँ हैं। मान लो, बाज़ार जाकर पुस्तक ख़रीदनी है। ये दो क्रियाएँ हैं। बाज़ार पहुँचकर पुस्तक ख़रीदें, यह भी संभव है। यदि क़िताब न मिले या कोई दूसरी ख़रीद लाएँ तो भी ये दो भिन्न-भिन्न क्रियाएँ होंगी। लेकिन पानी पीकर प्यास बुझाना, दो भिन्न क्रियाएँ नहीं हैं! क्योंकि प्यास तो पानी पीकर ही बुझेगी। बिना पानी पिए प्यास बुझेगी ही नहीं। इसी तरह धर्म का संरक्षण और राष्ट्र का वैभव दोनों एक साथ हो सकते हैं। धर्म के संरक्षण से ही राष्ट्र का वैभव हो सकता है। ये दोनों बातें अलग नहीं हो सकतीं। धर्म का संरक्षण, राष्ट्र का वैभव और संगठित कार्यशक्ति, ये तीनों चीज़ें एक ही हैं। चोरों में भी अनुशासन, संगठन, त्याग होता है। तस्कर, नाजायज़ शराब बनाने वालों, जुआ खेलने वालों के भी संगठन होते हैं। लेकिन हमारा संगठन धर्म के आधार पर होता है। समाज और व्यक्ति दोनों का विकास करना चाहिए।

धर्म ही उसका आधार है। इसकी पहली व्याख्या है कि धर्म से ही धारणा हो सकती है। धर्म की अलग-अलग परिभाषाएँ हो गई हैं। इसलिए सोचना पड़ेगा कि धर्म क्या है, क्योंकि कोई संस्कृति को लेकर धर्म की बातें करता है और कोई जाति-पाँति पर विश्वास करने को धर्म समझने लगता है। हरिजनों को मंदिर में नहीं जाने दिया जाता। हरिजनों ने कहा कि भगवान् और भक्त के बीच में कौन बाधक बनते हैं? क्यों बनते हैं? उन लोगों ने धर्म का अर्थ छुआछूत, भेदभाव को समझ लिया। उन्होंने कहा कि ऐसे

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

धर्म को छोड़ना ही अच्छा है। एक बार एक अपराधी मामलों के वकील के पास एक सज्जन आए। उन्होंने बताया कि हमने बहुत से बुरे काम किए—डाके डाले, लड़कियाँ उठाईं, लेकिन धर्म नहीं छोड़ा। उनसे पूछा गया कि धर्म कैसे नहीं छोड़ा। तो उन्होंने बताया कि किसी के हाथ का बना भोजन नहीं किया, बिना चौका लगाए नहीं किया। तो धर्म का अर्थ क्या है? यह प्रश्न कठिन है। महाभारत काल में यक्ष ने युधिष्ठिर से पूछा कि ऐसा कौन सा रास्ता है, जिस पर सब चलें। युधिष्ठिर का उत्तर था, 'धर्म का रास्ता।' लेकिन इसका अर्थ छिपा हुआ है। धर्म के बारे में मतभेद है। कुछ लोगों ने धर्म का अर्थ पूजा-पाठ आदि को ही कहा। मुसलमानों की ओर देखो, उनका एक पैगंबर, एक क़िताब और एक पद्धति होती है। ईसाई और यहूदी भी ऐसे ही होते हैं। यहाँ कोई एक क़िताब नहीं है। वेदों को कोई मानता है, कोई नहीं मानता।

अस्सी प्रतिशत दुनिया तो प्राय: अज्ञानवश ऐसा सोचती है कि यह तो मेरा धर्म नहीं है। आकाश पर सितारे इधर-उधर बिखरे हुए अव्यवस्थित से दीखते हैं। ज्योतिषी तो इन सबकी व्यवस्था को समझता है, किंतु हम नहीं समझ सकते। यह पद्धति है कि हम सबके अनुसार धर्म का अर्थ नहीं लगाते। हमारे यहाँ विचारों की स्वतंत्रता है, किंतु मुसलमानों में क़ुरान की बात को ही मानकर चलते हैं। उसके बारे में लिखा है, 'अकल को दख़ल नहीं'। वहाँ विचारों में स्वतंत्रता होते हुए भी भेद है। जैसे शिया, सुन्नी इत्यादि। ईसाइयों में कितने चर्च होते हैं। केवल दूर से ही एकता दिखाई देती है। जैसे पहाड़ की एकरूपता दूर से ही नज़र आती है। पास जाकर देखने पर उसमें गहरे खड्ड और खाई नज़र आती हैं। हमारा इतिहास हज़ारों वर्ष पुराना है। बाक़ी सभी धर्म तो हमारी तुलना में अभी दुधमुँह बच्चे हैं। सोलह मन्वंतर युग बीत गए। एकरूपता पूरी कैसे नज़र आएगी? यह आश्चर्य की बात है कि इतनी विविधता होते हुए भी हमारे में इतनी एकरूपता है और यही ख़ुशी मनाने का कारण भी है।

एक बार एक गाँव का आदमी जो प्याज और गुड़ से ही रोटी खाता था, राजा के यहाँ से खाने का बुलावा आने पर वहाँ गया। वहाँ भोजन देखकर रोने लगा कि यहाँ तो गुड़ और प्याज है ही नहीं, मैं किससे खाऊँ। अत: जहाँ विकास होता है, वहाँ विभिन्नता तो होती ही है। प्रथम चरण में अमीबा होता है, उसमें में एक ही कोशिका होती है, क्योंकि उसका शरीर गोल-मटोल है। मनुष्य के समान उसके अंगों का विकास नहीं हुआ है। इसलिए उसमें सौंदर्य भी नहीं है। मनुष्य को भगवान ने ज्ञानेंद्रियाँ, कर्मेंद्रियाँ सभी कुछ दी हैं। उसके शरीर में अंगों का विकास हुआ है। अत: उसमें सुंदरता है। यदि उसके भी कान, नाक नहीं होते और वह भी निराकार और बुद्धिहीन होता, उसका विकास न हुआ होता तो उसमें भी सुंदरता नहीं आती।

प्रभुदत्तजी बोलते नहीं, भगवान् का ही नाम बोलते हैं, श्रीकृष्ण कहकर सबको

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बुलाते हैं, 'हे नाथ' कहकर ही सब खाना-पीना प्रारंभ करते हैं। जैसे एक-दो भावों को व्यक्त करने के लिए अनेक शब्द होते हैं, वैसे ही एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। कितने ऊँचे-नीचे स्वर होते हैं। यदि कोई कहे कि अनेक स्वर निकालो, तो मूर्खता होगी। स्वरों में तालमेल चाहिए। अनेक प्रकार के स्वर एक साथ निकलेंगे तो बेसुरा लगेगा। कहीं भी ऊँचा-नीचा किया, contrasting की और सामंजस्य नहीं किया तो सब अटपटा सा लगेगा। ठीक वैसे ही जैसे किसी पागल के शब्द और उसकी तरह-तरह की आवाज़ें विचित्र लगती हैं। यह भी विकास नहीं कहलाता। एक-दूसरे में तालमेल और सामंजस्य चाहिए। रेखाओं में से भी सुंदर चित्र बनते हैं। जहाँ रेखाओं की भरमार हो, वहाँ साफ़ किया जाए। केवल विविधता ही होना अच्छा नहीं। बीच में तालमेल भी चाहिए। एक-दूसरे से संबद्ध होकर जब रेखाएँ आगे बढ़ती चली जाती हैं, तभी उस चित्र का विकास होता है। धर्म का काम भी इसी प्रकार है, उसमें भी एकसूत्रता चाहिए, निर्माण भी करना है तो भी एकसूत्रता चाहिए। हमारे राष्ट्र की संस्कृति की विविधतामयी प्रकृति में से सामंजस्य का नाम धर्म है। जहाँ यह एकात्मता हो जाए, वहीं धर्म है। नहीं तो विनाश ही होगा। विकृति एकसूत्रता नहीं ला सकती।

—जून 9, 1958

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

22

संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग : दिल्ली

पिछली बार जब हमने कुछ विचार किया था तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि कार्य का आधार धर्म होना चाहिए। हम जिस वैभव की प्राप्ति करना चाहते हैं, वह धर्मयुक्त होना चाहिए। जिससे धारणा होती है, वह धर्म होना चाहिए। व्यक्ति और समाज जिन सिद्धांतों के आधार पर उन्नति करें, वह धर्म होना चाहिए। व्यक्ति की सब क्रियाएँ क्यों हैं? क्यों रोटी खाते हैं? हम सब पेट के लिए रोटी खाते हैं। कहीं रोटी खाते हैं, कहीं अच्छी पूरियाँ खाते हैं। एक ठाकुर नाई को साथ लेकर ससुराल गए। रास्ते में स्वयं ने तो कचौरी खाई और नाई को पैसे दिए कि जाकर चने खा ले। ससुराल में पहुँचकर नाई ने वहाँ के लोगों से कह दिया कि ठाकुर साहब का पेट ख़राब है। वे केवल मूँग की दाल ही खाएँगे। अब दो-तीन दिन तक मूँग की दाल ही उन्हें खिलाई गई। इस तरह नाई ने अपना बदला ले लिया। व्यक्ति सुख प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहता है। लेकिन आज का सुख कल का दु:ख भी तो हो सकता है। आज कुल्फी खाई, कल गला भी ख़राब हो सकता है। लोग कल के सुख के लिए आज दु:ख भी उठाते हैं। मसूरी का सुख ध्यान में रखकर लोग वहाँ की घुमावदार सड़कों पर चलते हुए उल्टियाँ करते हैं। लेकिन मसूरी की कल्पना उनके मन में होती है। इसलिए वह दु:ख बरदाश्त हो जाता है। स्थायित्व का बहुत महत्त्व होता है। दाल-रोटी को हम अपना मानते हैं। लेकिन जहाँ पकवान मिलें और साथ में तिरस्कार भी हो तो वह पकवान किस काम का? भगवान् कृष्ण ने दुर्योधन की मेवा छोड़कर विदुर के घर साग क्यों खाया? सुख केवल शरीर का ही नहीं होता, सुख तो मन का होता है। मन में दु:ख हो तो कुछ भी अच्छा नहीं लगता।

एक बार लोग भोजन कर रहे थे। तभी तार आया कि रेलगाड़ी की टक्कर में

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

किसी की मृत्यु हो गई है। वे अभी-अभी सुख का अनुभव कर रहे थे, एकदम से दुःख का समाचार मिला तो अच्छा न लगा। लोग होटल का खाना छोड़कर माता के हाथ का बना भोजन क्यों पसंद करते हैं? क्योंकि उसमें मन का सुख मिलता है। भीम कितना खाना खाते थे, लेकिन जब तक माँ कुंती के हाथ से एक-दो निवाले न खा लें, उन्हें सुख नहीं मिलता था, उनकी भूख ही नहीं मिटती थी। हमारे प्रश्न का उत्तर हमें मिल जाए तो बुद्धि का भी सुख प्राप्त हो जाता है। शरीर और मन से परे आत्मा का सुख होता है। सुंदर फूल देखकर आनंद और मुरदे को देखकर दुःख क्यों प्राप्त होता है? एक बार कहीं आग लग गई। बच्चा अंदर ही रह गया। उसकी माँ छटपटा रही थी। एक नौजवान बच्चे को निकाल लाया। शरीर को कुछ नुक़सान हुआ, लेकिन फिर भी उसे सुख प्राप्त हुआ। बच्चे को बचाने की भावना से उसे आत्मिक सुख प्राप्त हुआ।

सुख चार प्रकार के होते हैं—भौतिक, मानसिक, आध्यात्मिक और बौद्धिक। जो रास्ता हमें इन चारों सुखों से मिला दे, वही धर्म का रास्ता है। अंदर और बाहर के जो सुख हैं, यानी भौतिक और आध्यात्मिक जो सुख हैं, ये धर्म के हैं। इसलिए दोनों में से एक की भी अवहेलना हमें नहीं करनी है। जो एक की उपासना करता है, वह ग़लत है। रोटी, कपड़ा और मकान ही नहीं चाहिए। हमें आत्मिक सुख भी चाहिए। अपनी दृष्टि बिगाड़कर हमें रोटी नहीं चाहिए। सम्मानपूर्वक मिलनी चाहिए। रहीम ने एक जगह कहा है, पेट तू पीठ होना चाहिए था। क्योंकि यदि भर जाता है तो दृष्टि बिगाड़ता है, यानी ग़लत कार्मों को उकसाता है और यदि ख़ाली रहता है तो ठीक रहता है। अभ्युदय और निश्रेयस्य दोनों की प्राप्ति जिससे हो, वह धर्म केवल एक नहीं है। उस धर्म को प्राप्त करने का विचार, उस सुख को प्राप्त करने का विचार केवल व्यक्ति पर निर्भर नहीं है। काम करके, परिश्रम करके, पुरुषार्थ करके, कर्मयोग द्वारा ही यह सुख प्राप्त हो सकता है।

कर्म का सिद्धांत हमारे यहाँ विशेष है। एक और विशेष चीज़ है 'कमाने वाला खाएगा'। इस विचार को मान्यता नहीं दी गई है। यह बात तो अच्छी है, लेकिन सभी जानते हैं कि कल न कमाने का काल भी तो आ सकता है। बचपन था तब भी कमाते नहीं थे। किंतु आज कमाएँगे हम और खाएगा कोई और, यह प्रकृति नहीं है। प्रकृति के ऊपर भी एक चीज़ है संस्कृति। कमाने वाले खिलाएँगे—यही हमारे यहाँ का सिद्धांत है। प्रकृति में यही है कि जो जैसा कर्म करेगा, वैसा फल पाएगा, हम दूसरों के लिए कर्म करेंगे—यही हमारा यज्ञ है। यह यज्ञ धर्म संस्कृति का आधार है। वृक्ष अपने फल कभी नहीं खाता। वह अपने संपूर्ण जीवन रस को फल में रख देता है। वह तो पत्थर मारने वाले को भी फल देता है। नदियाँ अपना सारा पानी ख़ुद ही पीने लग जाएँ, वृक्ष अपने फल ख़ुद ही खाने लग जाएँ तो दूसरों के लिए जीना मुश्किल हो जाएगा। सृष्टि का चक्र

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ही रुक जाएगा। सबका आधार कर्म है।

कर्म यज्ञमय है। यज्ञ कर्म हमारी ब्रह्ममयी भावना से है, जिसमें से एकात्मता पैदा होती है। पेड़, गाय, चंडाल, ब्राह्मण—सभी में इसका दिग्दर्शन करता है। माँ-बेटे में अपना स्वरूप देखकर, उसे अपना समझकर सुख मानती है। हमारे यहाँ समानता का नहीं, आत्मीयता का सिद्धांत है। संपूर्ण विश्व के अंदर एकात्मकता का भाव रहता है। फिर प्रत्येक काम में सुसूत्रता आती है। कुटुंब का आधार समानता नहीं, एकात्मता है। विद्या, आयु, भौतिक सामर्थ्य, खाने-पीने किसी में समान नहीं। कुटुंब में समानता केवल छोटी सी बात की है। वह है एक ही कुटुंब की। गोत्र आदि की। पश्चिम ने समानता का नारा दिया। वह बस जेल में है, प्रत्येक करेगा अपनी क्षमता के अनुसार तथा प्रत्येक पाएगा अपनी आवश्यकता के अनुसार; निर्णय कौन करेगा कि किस की कितनी क्षमता है तथा कितनी आवश्यकता है, जहाँ पर हरेक ने सोचा कि मैं ही क्यों काम करूँ? एक कुटुंब में एक भाई अच्छा एथलीट था, काम नहीं करता था। घर में चाय नहीं बनी थी। भाभी ने कहा, 'कमाओ'। भाई भी घर में आकर बैठ गया। उसने शतरंज खेलना प्रारंभ कर दिया। तीसरे ने कविता लिखनी शुरू की, धीरे-धीरे घर ख़त्म होने लगा। घर तब ही चल सकता है, जब ज़्यादा से ज़्यादा कमाया जाए और कम से कम उसमें से लिया जाए।

घर में आत्मीयता होगी, तभी ऐसा हो सकता है। माँ तभी सवेरे से काम शुरू करती है। रात्रि तक काम में लगी रहती है। क्या खाती है? बच्चे को खिलौना चाहिए। सबके अंदर का साम्य भाव चाहिए, फिर अंदर से यज्ञ भाव उत्पन्न होता है। राजा को प्रजा के लिए और प्रजा को राजा के लिए सोचना चाहिए। पति-पत्नी के लिए और पत्नी-पति के लिए सोचे। इसी भावना से समाज की रचना हो सकती है और सृष्टि भी इसी आधार पर खड़ी है। हमारे यहाँ पुनर्जन्म में विश्वास किया जाता है। लोग कहते हैं कि अगले जन्म में यह कर्म साथ-साथ जाएगा। जो जैसा करेगा वैसा ही भरेगा। लेकिन यह भी सत्य है कि तुम अकेले नहीं हो, सृष्टि के साथ बँधे हो। अकेले को आनंद नहीं आ सकता। रोटी हमारे अकेले के लिए नहीं है। उसके लिए बहुत लोगों को काम करना पड़ता है। इसी तरह कपड़ा बनाया जाता है। हमारा सारा जीवन दूसरे पर अवलंबित है। केवल हमारे समाज पर ही नहीं पूरी सृष्टि पर हमारा जीवन अवलंबित है। तूफ़ान, आँधी, वर्षा के लिए भी हम दूसरों पर निर्भर हैं।

सारे सुखों के साथ-साथ मानसिक सुख भी हमारे लिए ज़रूरी है। एक बार एक व्यक्ति ने अपनी पत्नी को एक अँगूठी लाकर दी। सुबह उसकी अँगूठी की तरफ़ किसी का भी ध्यान नहीं गया। वह बहुत परेशान थी कि कोई उसकी अँगूठी देखे और तारीफ़ करे। लेकिन किसी ने भी उसकी तरफ़ ध्यान नहीं दिया। उस स्त्री ने अपने घर में आग लगा दी। जब सब लोग आग बुझाने आए तो वह अंगूठी वाले हाथ से इशारा कर करके

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बताती रही कि पानी इधर डालो, उधर डालो। अचानक किसी का ध्यान उसकी अँगूठी पर गया। उसने तारीफ़ की और पूछा कि कहाँ से लाई। वह एकदम बोल उठी कि अगर किसी ने पहले ही पूछ लिया होता तो घर में आग तो न लगती। इसी तरह एक और कहानी है कि किसी नाई ने राजा का कटा हुआ कान देख लिया था। राजा ने उसे मना किया कि यह बात किसी और को न बताए। बताने पर उसे फाँसी पर चढ़ा दिया जाएगा। लेकिन नाई को वह बात हज़म नहीं हो पा रही थी। उसके कारण उसका पेट फूल गया था। वह किसी इलाज से ठीक नहीं हुआ। किसी साधू के बताने पर उसने अपनी बात जंगल में जाकर एक बाँस के पेड़ को बताई। तब जाकर उसका पेट फूलना बंद हुआ। इसी तरह सारे सुखों के साथ-साथ मानसिक सुख भी आवश्यक है। व्यक्ति का सृष्टि की सत्ता के साथ-साथ जहाँ ताल-मेल बैठे, उसी में से सेवा, यज्ञ, त्याग की वृत्ति पैदा होती है। यही धर्म है। चारों पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—जितनी पद्धतियाँ चारों सुखों की हैं, वे इसके अंतर्गत आती हैं। व्यक्ति, समष्टि, सृष्टि और परमेष्टि इन चारों सत्ताओं में एकात्मता है।

कर्म, पुनर्जन्म सबके अंदर एक ही सत्य है—ब्रह्म। एकोहम् द्वितीयो नास्ति, यज्ञ की उस एकात्मता के आधार पर हमारा धर्म टिका है। चतुर्सूत्री के आधार पर हमारे समाज की रचना हुई।

—जून 13, 1958

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

23

संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग : दिल्ली

प्रत्येक व्यक्ति सुख की कामना लेकर कार्य करता है—भौतिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक। सामूहिक और व्यक्तिगत रीति से विचार करते हुए चार पुरुषार्थ सामने आते हैं। इन पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना पड़ता है। हम सभी एक-दूसरे पर निर्भर हैं। हम परस्परावलंबी हैं। व्यष्टि, समष्टि, सृष्टि तथा परमेष्टि, हम इस परस्परानुकूलता तक पहुँचे। इसके लिए कर्म का सिद्धांत और यज्ञ तक की कल्पना करनी पड़ेगी। समाज का कौन सा ढाँचा होना चाहिए, जिसमें ये सब चीज़ें प्राप्त हो जाएँ। पश्चिम ने इस बाह्य रचना पर बहुत ज़ोर दिया है। केवल रचना-मात्र से ही जो प्राप्त करना चाहते हैं, वह नहीं हो सकता।

दो चीज़ें होती हैं—रूप और तत्त्व। तत्त्व के बिना रूप का कोई अर्थ नहीं है। किंतु पश्चिम में रूप पर ध्यान दिया जाता है। उसके लिए संस्था प्रजातंत्र या राजतंत्र चाहिए, फिर संसदीय लोकतंत्र चाहिए। हमारे यहाँ बाह्य स्वरूप पर इतना ज़ोर नहीं दिया जाता। हम समाज के तत्त्व, स्वत्व और बलशाली होने पर ज़ोर देते हैं, क्योंकि केवल रचना करने से तो काम नहीं चलेगा। चाबी के बिना घड़ी कैसे चलेगी? चाबी तो उसमें भी हाथ से भरनी पड़ती है। बिना हिले-डुले काम नहीं चल सकता। मान लो कि बिना हिले-डुले कोई ऐसा यंत्र बन जाए, जिसमें कुछ श्रम न करना पड़े···समाज की भी रचना स्वयं ही चलती रहे, कुछ न करना पड़े। किसी ने कहा कि सारी व्यवस्था यदि अच्छी है तो फिर विकार क्यों आया? वास्तविकता यह है कि व्यवस्थाएँ तो शक्ति के आधार पर ही चलती हैं। कुशल कारीगर को हथियार तो चाहिए ही, तभी वह अपनी कारीगरी दिखा सकता है। पेड़ काटने के लिए यदि आप कुल्हाड़ी-आरी देते हैं, तभी पेड़ कटेगा। थर्मामीटर से तो पेड़ नहीं कटता। दूसरी ओर, यदि मज़बूत कुल्हाड़ी रख दिया, काटने वाले के हाथ में

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

शक्ति ही नहीं है, तब पेड़ कैसे कटेगा? वह तो अपना पैर ही काट लेगा। किंतु दूसरी बात का भी विचार किया जाना चाहिए कि कौन चलाने वाला है। हमें जो कुछ प्राप्त करना है, उसके लिए साधन रूप में चार बातों की आवश्यकता होती है—शिक्षा, स्वतंत्रता, शांति और पौरुष। इसके लिए चार प्रकार के साधन हैं—पुरुषार्थ प्राप्त करना चाहिए, मोक्ष चाहिए, अर्थ चाहिए और शिक्षा चाहिए। लेकिन शिक्षा का अर्थ केवल जानकारी ही नहीं। यह तो छोटा सा अंग है। उन सारी बातों पर विचार करना होगा, जिनसे हम अपने ध्येय की प्राप्ति कर सकते हैं। हमें पुरुषार्थ करना होगा। संस्कारों के द्वारा अध्यापन भी आवश्यक है, स्वाध्याय, चिंतन, मनन—इनके द्वारा अपने अंदर की शक्तियों को जाग्रत् करते हैं। लोकमत भी इसी दिशा में हो सकता है। शिक्षा हुई तब भी स्वतंत्रता की भूख तो मानवता को सदा से रही है। मानवता के लिए राजनीतिक स्वतंत्रता ही सब कुछ नहीं है, परराज्य से छुटकारा मिलना ही स्वतंत्रता नहीं है। अपने लोगों के राज्य करते हुए भी हम यदि स्वत्व के आधार पर चलें, तभी हम स्वतंत्र हो सकते हैं। राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, मानसिक—हर तरह की स्वतंत्रता चाहिए।

हम किसी देश की अर्थ नीति से न बँधे रहें, यह ठीक है। किंतु कुछ और बातें भी हैं—धन के अभाव में आर्थिक परतंत्रता हो जाती है। रोटी, शरीर की निपुणता के लिए जो-जो भौतिक सामर्थ्य चाहिए, साधन सामग्री उपलब्ध करने के लिए धन का अभाव नहीं रहना चाहिए। धन के अभाव में रोटी कमाने के लिए दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। ब्राह्मण अपना धर्म-कर्म छोड़कर दूसरों के आगे हाथ फैलाए, तो ठीक नहीं लगता। लेकिन धन मिल जाने पर भी आर्थिक परतंत्रता नहीं गई। इसका कारण है, धन के प्रति आसक्ति, कंजूस होना। कोई व्यक्ति बहुत धनवान है, खाना नहीं खाता, पैसा जोड़कर रखता जाता है। वह साधन को साध्य मानकर चलता है। गाड़ी में से उतरकर ताँगा, रिक्शा में न बैठकर पैदल ही चलने लगता है। रास्ते में प्यास लगती है तो भी पैसा ख़र्च नहीं करना चाहता। ज़ेब से रुपया निकालकर देखा और सोचने लगा, 'सोलह कला अवतार टूट जाएगा। चाहे मर जाऊँ, पर तुझे न भुनाऊँगा।' कहकर अपने पास ही रख लिया। यह भी एक प्रकार की परतंत्रता है। वह परतंत्र है स्वतंत्र नहीं। जिसे पता ही नहीं कि कैसे ख़र्च करे, निमित्त भी पता नहीं, ऐसा व्यक्ति भी आर्थिक दृष्टि से परतंत्र कहा जाएगा।

आसक्ति ही नहीं तो विलास बुद्धि भी न हो, 'मेरी कमीजें बारह चाहिए, जूते आठ', हॉस्टल के कमरे में जूतों का बाज़ार सा खुला था। भोग विलास की वृत्ति भी स्वतंत्र न होने देगी। तीसरी बात यदि यह पता ही नहीं कि इसे ख़र्च कैसे करें, निमित्त भी पता नहीं, ऐसा व्यक्ति भी परतंत्र कहलाता है। हजरत मूसा (यहूदियों के पैगंबर) पृथ्वी पर जब आए तो उन्होंने एक स्त्री को देखा। कुछ तन ढकने को नहीं था। उसने

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

हजरत मूसा से कहा कि भगवान् से कहो कि कुछ ढकने को तो दे। इसी तरह एक अमीर आदमी मिला। उसने कहा कि भगवान् से पूछो कि इस धन को कैसे ख़र्च करूँ। तो ऐसा व्यक्ति पुरुषार्थ नहीं करता। आलस्य, तामसिक भावना, भोग-विलास, अभाव और अंत में वही परतंत्रता। इसीलिए लोग आर्थिक दृष्टि से परतंत्र हो जाते हैं। राजा हर्ष[1] अपने काल में पाँच वर्ष तक कमाकर सबकुछ दान कर देता था। रघु ने भी सब बाँट दिया। मिट्टी का बरतन ही बचाया। फिर कुबेर पर आक्रमण कर गुरु दक्षिणा दी। अतिरिक्त धन को अच्छे काम में लगाना चाहिए।

जहाँ लड़ाई, वहीं पर शांति; हमारे यहाँ नहीं मानी गई। मन की शांति, समाज की शांति, सभी प्रकार की शांति मिलनी चाहिए—भौतिक, मानसिक, बौद्धिक। मृत्यु की शांति नहीं है, जहाँ सृष्टि की रचना हो और सभी व्यवस्था ठीक हो, ऐसी शांति चाहिए। भगवान् कृष्ण ने महाभारत का युद्ध भी शांति के लिए कराया। शांति आंतरिक तथा बाह्य जीवन की भी होनी चाहिए। साथ-साथ पौरुष भी तो चाहिए। इसमें पराक्रम, प्रयत्न, निष्ठा, विवेक होना चाहिए, दुस्साहस पौरुष के अंतर्गत नहीं आता। जहाँ पर साधन होते हैं, वहीं पर व्यवस्था का प्रश्न आता है।

इन साधनों के साथ-साथ फिर हमारे चार आश्रम, चार वर्ण होते हैं। व्यक्ति की आश्रम की दृष्टि से व्यवस्था की जाती है। इन्हीं के द्वारा समाज के प्रति व्यक्ति को कर्तव्य का पालन करना चाहिए, तभी परस्परानुकूलता आती है। वर्ण व्यवस्था में हरेक का विशिष्ट कार्य होता है। आजकल एक नारा है वर्ग विहीन समाज, जो ग़लत है। यह वहीं हो सकता है, जहाँ अराजकता का वातावरण हो। शिक्षार्थी और शिक्षक, परोसने वाले और भोजन करने वाले एक ही वर्ग नहीं है। वर्गों का विभाजन कार्यानुसार होता है। मार्क्स ने केवल पैसे के आधार पर विभाजन किया। हमने ग़रीब-अमीर नहीं तो, कर्तव्य के आधार पर वर्गीकरण किया। समाज में ज्ञान, शिक्षण, रक्षा, अर्थ, सबकुछ प्राप्त हो सके, इसकी व्यवस्था तो करनी ही पड़ेगी। जिन साधनों के आधार पर सब बढ़ सकते हैं, वैसे लोग चाहिए। आप लोग तो रेलगाड़ी में आराम से बैठकर चले जाते हैं, लेकिन इंजन में किसी न किसी को काम करना पड़ता है। आप लोग तो आराम से रात को गाड़ी में सोते हुए जाते हैं, लेकिन कितने ही लोग जागते हैं रात भर स्टेशन और गाड़ी में। तब व्यवस्था तो करनी ही पड़ेगी। एक-दूसरे के साथ वैज्ञानिक आधार पर, परस्परानुकूलता के आधार पर व्यवस्था करनी पड़ती है। कार्य के आधार पर व्यवस्था करनी पड़ती है। ये ही चार मोटे कार्य दुनिया के सभी देशों में किसी-न-किसी रूप में रहते हैं। इन चार संस्थाओं का हमारे यहाँ सूक्ष्म विवेचन किया गया है। समाजशास्त्र

1. राजा हर्ष का तात्पर्य प्राचीन भारत के राजा हर्षवर्धन। (शासनकाल 606 ई.-647 ई.)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

इन्हें पाँच संस्थाओं में बाँटता हैं—1. परिवार, 2. शिक्षा, 3. धर्म, 4. वाणिज्य, और 5. राज्य या राजनीतिक संस्थान। आज राज्य की संस्था को छोड़कर बाक़ी कोई बहुत संगठित नहीं है।

पश्चिम ने राज्य के हाथ में ही सबकुछ दे दिया। बाक़ी संगठन राज्य पर क़ब्ज़ा करना चाहते हैं। पोप और ख़लीफ़ाओं ने राज्य को क़ाबू में कर लिया या राज्य ने बाक़ी पर क़ब्ज़ा कर लिया। इंग्लैंड के चर्च ने राज्य पर क़ब्ज़ा किया। रूस ने श्रमिकों के द्वारा राज्य पर क़ब्ज़ा किया। इसका कारण था, वहाँ केवल राज्य संस्था थी। हमने कहा, सब संगठित हों तो चारों में कोई विरोध नहीं होगा। व्यवस्था का अर्थ संगठित जीवन होता है। हमारे यहाँ तभी वर्ण व्यवस्था पर ज़ोर दिया जाता है। जहाँ यह व्यवस्था नहीं, उसे मलेच्छ देश या राज्य कहा। ऐसी जगह रहना ठीक नहीं समझा गया। हम वर्ग बनाते हैं। अलग-अलग व्यवस्था करते हैं। वर्ग तो हुए, किंतु भेद कहाँ है? आपस में ऊँच-नीच का विशेष स्थान नहीं है। सब समाज के अंग हैं। विभाग तो चाहिए वर्ग चलाने के लिए। समाज की भी पाँच संस्थाएँ होती हैं। शक्तियों का विभक्तीकरण करना पड़ता है। समाज में यदि कहीं गड़बड़ आई तो एक वर्ग बन जाता है, जो अपना काम छोड़, बाक़ी की बातों पर विचार करना शुरू कर देता है।

जब ये वर्ग एक-दूसरे पर क़ब्ज़ा करना चाहते हैं तो वहीं गड़बड़ हो जाती है। जातियाँ बन जाती हैं। जैसे एक जाति कबीरपंथी बन गई। जब एक संस्था बाक़ी के बीच में दखल दे तो समस्या पैदा होती है। व्यापारी राज्य पर क़ब्ज़ा करना चाहे, राज्य शिक्षा पर, तो इस दखल (Interference) को वर्ण-संकरता कहते हैं। राज्य ने अपना काम छोड़ दिया। सरकार पुलिस, सेना, डाकू आदि का ख़याल छोड़कर भिलाई का कारख़ाना, जीवन बीमा आदि पर ध्यान देने लगती है। परिणामतः व्यवस्था बिगड़ती है। भ्रष्टाचार बढ़ता है। यह वर्ण-व्यवस्था कर्तव्य, गुणों के आधार पर चलने वाली वैज्ञानिक व्यवस्था है। यह प्रतिबंधक नहीं, जन्म से या कर्म से सुविधानुसार होता है। जितने साधन चलते हैं, वे तत्त्व के बलबूते पर। तत्त्व समाज में आत्मीयता, स्वत्व लाता है। जैसे कुटुंब के अंदर ज्ञान होता है, लेकिन जब वह ज्ञान क्षीण हो जाता है तब अव्यवस्था पैदा होती है। शरीर से आत्मा निकल जाती है तो सभी कुछ ख़त्म हो जाता है।

राष्ट्र की आत्मा यह संस्कृति है। इसके लिए एक शास्त्रीय शब्द है 'चिति'। यह चिति ही समाज की विशेषता है। इसकी रक्षा के लिए सभी प्रयत्नशील रहते हैं। बाक़ी सबकुछ छोड़कर भी इसे लेने को सब तैयार रहते हैं। चिति हमारे लिए परम सुख है। हमारे यहाँ धर्म की भावना, निष्ठा को 'चिति' रूप में स्वीकार किया गया है। मोक्ष को परम पुरुषार्थ इसीलिए कहा गया है। धर्म के नाम पर कितने ही लोगों को बलिदान देना पड़ा। छोटे-से-छोटे व्यक्ति ने भी बलिदान दिया। यह स्वभाव हमारे अंदर पैदा होते ही

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

माता के दूध द्वारा आता है। यह हक़ीक़त है। गुरु गोविंद सिंहजी[2] के बच्चे बलिदान हो गए थे। लेकिन उनके अंदर इतनी दृढता कहाँ से आई, इतना कोई शायद करोड़ प्रशंसा कमाकर भी न कर पाए। हमारा मस्तक गौरव से ऊँचा हो जाता है, बलिदानी लोगों की कथा जब हम सुनते हैं। यदि रोटी ही सबकुछ होती तो लोग आज धर्म के नाम पर घर आदि क्यों छोड़ देते हैं। आर्थिक समस्या ही सबकुछ होती तो ऐसा नहीं होता। उनके अंतर में भी चिति का भाव छुपा हुआ होता है। क्या ईरान में सब मुसलमान बन गए? कुछ पारसी अपवादस्वरूप जैसे हमारे यहाँ अपवादस्वरूप मुसलमान बने।

राष्ट्र जीवन का केंद्र धर्म नहीं कहा, 'चिति' के आधार पर समाज की संगठित शक्ति होती है, जिसे विराट् कहा। इसके जाग्रत् होने पर ही फिर समाज टिकता है। फिर सब व्यवस्था ठीक चलती है। समष्टि, भूत शक्ति यह विराट् Joint Stock Company लुटेरों का नहीं, अपितु चिति एवं धर्म के आधार पर संगठन होता है। यह शरीर में प्राण की तरह रहती है, जिसके कारण इंद्रियाँ काम करती हैं। इंद्रियों का यदि आपस में झगड़ा हो जाए तो सबकुछ गड़बड़ा जाता है। एक बार शरीर की सब इंद्रियों में आँख, कान, हाथ, पैर में आपस में झगड़ा हो गया। सभी एक-दूसरे से अपने को बड़ा बताने लगे। उनका झगड़ा ख़त्म नहीं हो रहा था, तो सारे मिलकर ब्रह्माजी के पास गए। ब्रह्माजी ने उन्हें सुझाया कि स्वयं सारे आपस में निर्णय कर लो। जिसके न करने से सबकुछ बेकार हो जाए, वही सबसे बड़ा है। सारे ख़ुशी-ख़ुशी लौट आए। सबसे पहले आँखों ने सोचा कि हमें छुट्टी पर जाना चाहिए, तब इनको पता चल जाएगा कि कौन बड़ा है। आँखें चली गईं। लेकिन शरीर ने टटोल-टटोलकर काम चला लिया। किसी ने रास्ता दिखा दिया। आँखों ने वापस आकर हालचाल पूछा। लेकिन वहाँ तो सबकुछ ठीक-ठाक है। अबकी बार कानों ने सोचा कि अब हमें छुट्टी करके देखना चाहिए। लेकिन कानों के बिना भी इशारे से काम चल गया। अब हाथों का नंबर था। हाथ चले गए। लेकिन हाथों और पैरों के बिना भी सरक-सरक कर काम चल गया। अब प्राणों की बारी आई, प्राणों ने सोचा कि सभी ने आजमाकर देख लिया है। अब मैं भी आजमाकर देख लूँ। लेकिन जैसे ही प्राण जाने लगे, सभी कुछ ठंडा होने लगा। आँखों के आगे अँधेरा सा छाने लगा। हाथ-पैर सुन्न हो गए। यहाँ तक कि बुद्धि ने भी सोचना बंद कर दिया। सभी ने प्राणों से प्रार्थना की कि वे न जाएँ। अब हमें पता चल गया है कि प्राण ही सबसे बड़े हैं।

---

2. सिख पंथ के दसवें गुरु गोविंद सिंह के चार पुत्र थे, जिनमें फ़तेह सिंह (आयु 7 वर्ष 11 महीने) और जोरावर सिंह (आयु 5 वर्ष 10 महीने) द्वारा मुसलिम धर्म अपनाने से इनकार करने पर 1705 ई. में मुग़लों द्वारा उन्हें दीवार में चिनवा दिया गया था, तीसरे व चौथे पुत्र अजित सिंह (आयु 17 वर्ष) व जुझार सिंह (आयु 15 वर्ष) मुग़लों के विरुद्ध चमकौर के युद्ध में शहीद हुए थे।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

यानी हमारी चिति हमारे राष्ट्र का प्राण है। प्राण यदि कमज़ोर हो जाए तो सभी इंद्रियाँ कमज़ोर हो जाती हैं। प्राणों को बलवान करने की ज़रूरत है। डॉक्टर साहब[3] ने बाह्य के रूप के स्थान पर तत्त्व का विचार किया। किसी ने कहा कि दूध अच्छा, किसी ने दूध फटा हुआ पीया था, उसने कहा कि दूध तो ख़राब होता है। जिसको जैसा अनुभव हुआ, उसने वैसी ही परिभाषा दी। एक मंडल बनाया गया जाति-पाँति का भेदभाव मिटाने के लिए, लेकिन जाति-पाँति तोड़क मंडल के नाम से एक अलग ही जाति बन गई। पेड़ के पत्ते सूख रहे हैं, झड़ रहे हैं। उनके झड़ने से काम नहीं चलेगा। उनकी कुछ व्यवस्था करनी पड़ेगी। जो व्यवस्था लाभदायक नहीं है, चिति के अनुकूल नहीं है, वह भी अपने आप समाप्त हो जाएगी। राष्ट्र के प्राणों को जगाने का काम करना पड़ेगा। शक्ति का जागरण करना होगा। राष्ट्र की साधना का हमारा काम धर्म के आधार पर ही होता है।

—जून 14, 1958

□

---

3. संघ संस्थापक डॉ. केशव बलीराम हेडगेवार।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

24

कृष्णामचारी जा सकते हैं तो कैरों क्यों नहीं?

दल के नेता के रूप में विश्वास प्राप्त करने में सफल रहे, लेकिन उसके पहले कांग्रेस गुड़गाँव में जनता का विश्वास खो चुकी थी और कांग्रेस का नेतृत्व पार्टी में चल रही गुटबाज़ी से काफ़ी परेशान था। जिन लोगों ने उनका ज़रा भी विरोध किया, उन्हें हाशिये पर डाल दिया गया। कांग्रेस के संसदीय बोर्ड ने सारे आरोपों को कांग्रेस के ही भीतर विरोधी गुट द्वारा मुख्यमंत्री को बदनाम करने या उन्हें हटाने के प्रयास के रूप में लिया। कांग्रेस हाईकमान अपने चहेतों और चेलों के बारे में जिस तरह की राय रखता था, उसके अनुसार तो उन्होंने मुख्यमंत्री के विरोधियों के आरोपों के बारे में ठीक ही आकलन किया, लेकिन आरोपों की गंभीरता के बारे में उनका अनुमान ग़लत था। एक आरोपी को महज इसलिए छोड़ दिया गया, क्योंकि उसने आरोप लगाने वालों पर यह तोहमत लगाई कि उनकी मंशा ठीक नहीं थी। अगर दूसरा गुट आरोपों के बारे में जानकारी रखते हुए भी लंबे समय तक चुप था, तो बहुत होता तो उन पर अपने कर्तव्य के प्रति लापरवाह होने का आरोप लग सकता था, लेकिन इस आधार पर तो आरोपों को ख़ारिज नहीं किया जा सकता। हम यह नहीं जानते कि इन आरोपों में कितनी सच्चाई है, पर इस मामले में हम कांग्रेस संसदीय बोर्ड के फ़ैसले को भी स्वीकार नहीं कर सकते।

क्योंकि कांग्रेस संसदीय बोर्ड कोई न्यायिक या स्वायत्त इकाई नहीं है। इसलिए इस बात को मानने के पर्याप्त कारण हैं कि यह निर्णय राजनीतिक हितों से प्रभावित है। ख़ासकर इस कारण कि सच्चाई तक पहुँचने के लिए कोई मुकम्मल जाँच नहीं की गई। कांग्रेस विधानमंडल द्वारा प्रताप सिंह कैरों को बहुमत हासिल करने के लिए कहने का फ़ैसला चौंकाने वाला था। क्या विश्वास मत किसी न्यायिक जाँच का विकल्प हो सकता है। कांग्रेस संसदीय बोर्ड ने यह स्वीकार कर लिया था कि मुख्यमंत्री ने कुछ ख़ास अनियमितताएँ कीं और नियमों का सही से पालन नहीं किया गया। मुख्यमंत्री को

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

इस्तीफ़ा देने के लिए कहने का यह पर्याप्त आधार था।

प्रताप सिंह कैरों कांग्रेस विधानमंडल के कोई सामान्य सदस्य नहीं हैं बल्कि वह राज्य के मुख्यमंत्री हैं। वह जो भी करते हैं, जनता का उससे सरोकार है। क्या उन्होंने जनता का भी दुबारा विश्वास हासिल किया है। कांग्रेस संसदीय बोर्ड इस मामले पर इस तरह व्यवहार कर रहा है, मानो उसका यह निजी मामला हो, जनता को इससे कुछ लेना-देना ही नहीं। लोकतंत्र को राजशाही काल के महल मामले तक सीमित कर दिया गया है। जनता पाँच साल में सिर्फ़ एक ही बार परिदृश्य में आती है। एक बार वोट डालने के बाद फिर देश की राजनीति में सक्रिय रुचि रखने की जनता से अपेक्षा ही नहीं की जाती। फिर उसका काम रह जाता है कि वह भारी कर चुकाए, एकपक्षीय और जंगली क़ानून का पालन करे, असफल नेतृत्व देने वाले नेताओं की जय-जयकार करे और हमेशा बंदी बनाए जाने या मार दिए जाने का इंतज़ार करे। क्या यही जनता का राज है। पंजाब ने दिखाया है कि कांग्रेस यह मानती है कि उनका राज ही जनता का राज है। जब जनता चिल्लाती है तो नेता लड़ते हैं। जिन्हें जनता नकार देती है, उन्हें कांग्रेस पार्टी स्वीकार कर लेती है।

यह कांग्रेस संसदीय बोर्ड की ज़िम्मेदारी थी कि वह सरदार प्रताप सिंह कैरों को त्यागपत्र देने के लिए कहता। वे असंतुष्ट सदस्य, जो यह दावा करते हैं कि उनका विरोध किसी दुर्भावना पर आधारित नहीं, बल्कि गंभीर आरोपों पर था, वे इस मामले को सीधे राष्ट्रपति को भेजते, न कि कांग्रेस संसदीय बोर्ड को। अब उनका पंजाब की जनता के प्रति यह उत्तरदायित्व बनता है कि आरोपों को प्रकाशित करें। ताकि इस मामले पर जनता भी अपना निर्णय दे सके और यह तय कर सके कि कांग्रेस संसदीय दल के निर्णय उसके अनुरूप हैं कि नहीं। सीजर वाली कहावत पुरानी है। प्रताप सिंह कैरों ने भले ही विश्वास मत हासिल कर लिया हो, लेकिन अब यह जगजाहिर हो चुका है कि कई विधायकों ने कांग्रेस आलाकमान के दबाव में मत दिया। यह सुनने में आया है कि मनाली में रुकने के दौरान प्रधानमंत्री ने आसपास के ज़िलों के कांग्रेस विधायकों को बुलाया था। यदि वहाँ पंजाब की राजनीति पर कोई चर्चा हुई तो वह वहाँ अलग मत ज़ाहिर नहीं किए होंगे, जो बाद में उन्होंने प्रेस कॉन्फ्रेंस में कही। और जब राजनीतिक लोग आपस में मिलते हैं तो किसी कविता पर चर्चा नहीं करते। प्रताप सिंह कैरों को इस्तीफ़ा देना चाहिए और अपनी बेगुनाही साबित करनी चाहिए। राज्यपाल[1] को आरोपों के मद्देनज़र एक जाँच बैठानी चाहिए। यदि टी.टी.के[2] अपना इस्तीफ़ा दे सकते हैं तो

---

1. चंदेश्वर प्रसाद नारायण सिंह, 11 मार्च, 1953 से 15 सितंबर, 1958 तक पंजाब के राज्यपाल रहे।
2. 1957-58 में हुए मुंधरा घोटाले में लिप्त होने के आरोप में नेहरू कैबिनेट के तत्कालीन वित्त मंत्री टी.टी. कृष्णामचारी को 18 फरवरी, 1958 को इस्तीफ़ा देना पड़ा था।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पी.एस.के.[3] क्यों नहीं? यह लोकतंत्र की माँग भी है और सम्मान बनाए रखने की आवश्यकता भी।

मुख्यमंत्री की व्यक्तिगत शख्सियत के अलावा कांग्रेस सरकार जनता का विश्वास जीतने में सफल नहीं रही। सरदार प्रताप सिंह कैरों के विरोधी कांग्रेसी इसके लिए मुख्यमंत्री में आत्मविश्वास की कमी को ज़िम्मेदार ठहरा सकते हैं। इसका मतलब यह होगा कि मुख्यमंत्री को उनकी औकात से ज्यादा तवज्जो दी जा रही है।

वास्तव में इस सारे मामले के लिए कांग्रेस आलाकमान को पूरी ज़िम्मेदारी लेनी चाहिए। वे लोगों को शांत करने के लिए खेलने वाली गुड़िया थमाने की कोशिश कर रहे हैं। उन्होंने मामले की गंभीरता को नहीं पहचाना है और लोगों की भावनाओं को समझने में भी पूरी तरह विफल रहे। हिंदी रक्षा आंदोलन के दौरान उन्होंने मंत्रिमंडल में श्री गोपीचंद भार्गव को सिर्फ़ इस ख़याल से शामिल किया कि इससे सांप्रदायिक संतुलन स्थापित हो जाएगा। उन्होंने मर्ज़ को नहीं पहचाना और ग़लत इलाज कर दिया। उन्होंने पूरे मामले को सांप्रदायिक नज़रिए से देखा। नतीज़ा यह हुआ कि पंजाब में सांप्रदायिकता और बढ़ गई। लेकिन उन राष्ट्रवादियों को, जिन्होंने हिंदी के लिए आंदोलन खड़ा किया, कोई आत्मसंतोष नहीं मिला। अब फिर से सरदार प्रताप सिंह कैरों को हटाने या बचाने का प्रयास सिर्फ़ सांप्रदायिकता के आधार पर हो रहा है। इससे पंजाब समस्या का समाधान नहीं होने जा रहा है।

9 जून को दिल्ली में हिंदी रक्षा समिति जो मिली, वह मुख्य रूप से सरकार की नीतियों को लेकर आंदोलित थी। केंद्रीय गृहमंत्री और अन्य लोगों ने पंजाब के लोगों को जो आश्वासन दिया था, वे सब भूल गए थे। इसलिए कुछ लोगों ने महसूस किया कि सत्याग्रह शुरू करना चाहिए। परंतु एक ज़िम्मेदार इकाई इस मामले में कोई ठोस निर्णय नहीं कर पाई। इसके लिए एक एक्शन कमेटी का पुनगर्ठन हुआ। रेत के ढेर पर खड़ी सरकार अपने अधिकारों के प्रति सजग लोगों की अवहेलना करने का जोखिम नहीं ले सकती थी। अकाली नेता मास्टर तारा सिंह ने भी कुछ सीधी कार्रवाई की धमकी दी है, जिसकी घोषणा 15 जून को वे करने वाले हैं। दुकानदार भी दुकान सहायक क़ानून (शॉप असिस्टेंट्स एक्ट), जिसे बिना यह विचार किए कि विभिन्न व्यवसायों के लिए इसकी ज़रूरत है कि नहीं या व्यावहारिक हो सकता है कि नहीं, लोगों पर लाद दिया गया, का दंश महसूस कर रहे हैं। क्या आठ घंटे का कार्य दिवस वो भी निश्चित समय के अनुसार विभिन्न व्यवसायों में लागू किया जा सकता है। लेकिन सरकार के लिए तो आठ घंटे का मतलब सुबह दस बजे से रात के आठ बजे के बीच की अवधि है।

3. पी.एस.के. से तात्पर्य प्रताप सिंह कैरों (1901-1965) से है, जो पंजाब प्रांत के मुख्यमंत्री थे।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

किसानों ने भी अपनी समस्याओं के निराकरण हेतु आंदोलन के लिए तैयार रहने का संकेत दे दिया है। वामपंथी, जो अपनी राजनीतिक दिशा की तलाश में हैं, उन्हें लगता है कि उनकी पकड़ ढीली हो रही है, वे भी किसी राजनीतिक आंदोलन में सम्मिलित हो सकते हैं। क्या इन हालात में पंजाब में शांति क़ायम रखने की हम आशा कर सकते हैं। इस समय जब पाकिस्तान लगातार सीमा पर युद्ध विराम समझौते का उल्लंघन कर रहा है, हम सीमांचल राज्य में गुटीय झगड़े का मजा नहीं ले सकते। कांग्रेस अपने घर को ठीक करे और आलाकमान अपने वायदे और लोगों की इच्छाओं के अनुरूप कोई फॉर्मूला निकाले। पंजाब को मुक्त लुटेरों के हाथों में छोड़ नहीं दिया जाना चाहिए।

हमारी कर दुर्व्यवस्था•••

अच्छी योजना के लिए दूरदर्शिता और दूरअंदाज़ की आवश्यकता होती है। भारत सरकार के पास दूरदर्शिता का अभाव है और दूरअंदाज़ की कभी कद्र ही नहीं की। आख़िर कैसे आयकर विभाग के पुनर्गठन के लिए श्री महावीर त्यागी की अध्यक्षता वाली समिति की नियुक्ति को न्यायसंगत ठहराया जा सकता है। संपूर्ण कर-संग्रह विभाग में आमूल-चूल परिवर्तन और इसके विस्तार की आवश्यकता उन विशाल व विविध स्रोतों में निहित है, जहाँ से राजस्व संग्रह होता है। आयकर विभाग की स्थापना अपेक्षाकृत कम महत्त्वपूर्ण एक छोटे वर्ग से प्रत्यक्ष कर वसूलने के उद्देश्य से की गई थी। इस सच्चाई के बावजूद आयकर अधिकारियों को मनमानी करने का बहुत ज़्यादा अधिकार दे दिया गया है और सामान्य तौर पर आयकर दाता भी कचहरी और विभागों के चक्कर लगाने में पैसा और समय बरबाद होने के डर से मामले को ले-देकर निपटाना ही पसंद करते हैं। नतीज़ा काम हमेशा पीछे रह जाता है। साल-दर-साल लंबित मामलों की संख्या बड़ती जा रही है। कुछ साल पहले एक विशेष अभियान चलाया गया था, लेकिन उसमें मामूली सफलता ही मिली।

अक्षम और अनिपुण इस विभाग पर हाल ही में लागू संपदा शुल्क को वसूलने की भी अतिरिक्त ज़िम्मेदारी डाल दी गई है। कालदोरियन कर के लागू होने के बाद इस विभाग का काम कई गुणा बढ़ गया है। अब हमारे यहाँ सिर्फ़ आयकर ही नहीं, बल्कि संपदा शुल्क, संपत्ति कर, व्यय कर, उपहार कर और आधिक्य लाभ कर भी लागू है, ये सारे एक ही प्रत्यक्ष कराधान के तहत आते हैं और इनमें से अधिकतर आयकर विभाग द्वारा ही वसूले जाते हैं। जाहिर है कि इस अतिरिक्त ज़िम्मेदारी को वहन करने के लिए विभाग को पूरी तरह सजग और सुसज्जित होना चाहिए और इसी उद्देश्य के लिए समिति का गठन होना चाहिए।

यह हमारी समझ से परे है कि आख़िर इन क्रांतिकारी कराधान को लागू करने से

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पहले विभाग का पुनर्गठन क्यों नहीं किया गया। सरकार का यह कहना है और श्री कालदोर भी यह लिखते हैं कि ये उपाय करों की चोरी को रोकने के लिए किए गए हैं। अगर उनकी यही मंशा है तो उसके लिए भी इन करों को लागू करने से पहले तंत्र विकसित कर लेना चाहिए था। श्री कालदोर ने सैद्धांतिक रूप से सही पर बोझिल सुझाव दिए, क्योंकि सबका रिकार्ड रखने का यह तरीक़ा व्यावहारिक रूप से संभव नहीं है। सभी करदाताओं को एक कोड नंबर दिया जाना है और उनके सारे लेन्-देन का रिकार्ड उसी कोड नंबर पर रखा जाना है और उसी पर जवाबी प्रविष्टियाँ भी होनी हैं। ऐसी व्यवस्था में यदि सभी लेन-देन की सही-सही जानकारी हो तो भी कई प्रकार की विविध छूटों और सभी करों में एकरूपता नहीं होने के कारण सभी व्यक्ति और कारपोरेट इकाई के लिए करदेयता की गणना करना मुश्किल है। इसके लिए विभाग में सक्षम, तेज़-तर्रार और ईमानदार अधिकारियों की आवश्यकता है। लोग अपनी गुप्त सूचनाएँ देने से डरते हैं। उनको इस बात की आशंका है कि उनके आभूषणों और बहुमूल्य चीजों के बारे में जानकारी गुप्त नहीं रह पाएगी, वह डकैतों और समाजविरोधी तत्त्वों के पास पहुँच जाएगी। वे सरकार तक पहुँचने से पहले ही उन्हें चुरा ले जाएँगे। यदि विभाग इसके लिए तैयार नहीं होता तो आयकर अधिकारी संसद् द्वारा पारित प्रस्ताव को बेअसर कर सकते हैं। सरकार ने बेकार में ही इस महत्त्वपूर्ण काम में देरी की। यहाँ तक कि जब समिति का गठन किया जा रहा है, तो सरकार को वर्ष 1959 के अंत तक एक रिपोर्ट जारी करनी चाहिए। सरकार को इस रिपोर्ट को स्वीकार करने के लिए कम-से-कम एक वर्ष लेना चाहिए और इसके सुझावों को लागू करने के लिए कुछ और वर्ष लेने चाहिए। तब तक सरकार ख़ुद ही कुछ क़ानूनों में बदलाव या समाप्त करने का निर्णय ले सकती है। योजना बनाने का यह कांग्रेस का तरीका है। सरकार तैयारी या पूर्वावलोकन में विश्वास नहीं करती, ख़ुद को बहुत चालाक मानती है और घटनाओं के बाद लोग मायूस रह जाते हैं।

—ऑर्गनाइज़र, जून 16, 1958

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

25

पाकिस्तान को पानी, बिजली देना बंद किया जाए

दिल्ली की सार्वजनिक सभा में 6 जून को दीनदयालजी का भाषण।

भारत की सीमा के अंदर घुसकर पाकिस्तानी पुलिस द्वारा आक्रमण किए जाने की जिन कठोर शब्दों में प्रधानमंत्री पं. जवाहरलालजी ने भर्त्सना की है, उनसे अधिक कड़े शब्द संभवतः उपयोग नहीं किए जा सकते, परंतु पाकिस्तान का रवैया बदलने के लिए कड़े शब्दों की नहीं, अपितु कड़ी कार्रवाई की आवश्यकता है। भारत सरकार सदा यहीं पर धोखा खाती रही है। इसी कारण हमने चाहे जितने कड़े विरोध-पत्र भेजे हों, उनकी कभी चिंता नहीं की गई।

मेरा मतलब यह नहीं कि हम भी इसी प्रकार के हथकंडे अपनाने लगें अथवा पाकिस्तान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दें। फिर भी मैं यह अवश्य अनुभव करता हूँ कि यदि पाकिस्तान के नेताओं को भली प्रकार यह ज्ञात हो जाए कि आवश्यकता हुई तो भारत इसके लिए भी तैयार है तो जिहाद का नारा लगाना और इस प्रकार रोज़ाना के छुटपुट आक्रमण बंद हो जाएँगे।

एक और बात जो स्पष्ट होनी चाहिए, वह यह कि भारत और पाकिस्तान के बीच के सभी प्रश्न और समस्याएँ आपस में संबद्ध हैं। परंतु भारत सरकार उन पर पृथक् प्रश्नों के रूप में विचार करती रही है। हर प्रश्न को अलग रूप में सुलझाने के प्रयत्न होते रहे हैं। इस कारण, जहाँ पाकिस्तान को लाभ दिखता है, वहाँ तनिक दब जाता है

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

और अन्य प्रश्नों पर शत्रुता का व्यवहार करता है। मित्रता और शत्रुता साथ-साथ नहीं चल सकती। यदि भारत सरकार इस बात के लिए तैयार हो कि पाकिस्तान की आर्थिक नाकाबंदी की जाए, उसे पानी, बिजली और कोयला न दिया जाए तथा पाकिस्तानी राष्ट्रिकों को भारत में नौकरियाँ देना बंद कर दिया जाए तो पाकिस्तान को होश में लाया जा सकता है। पाकिस्तान के नेतागण चाहे जो भाषा बोलते रहे हैं, पर भारत के साथ युद्ध करने में उन्हें लाभ नहीं होगा। साथ ही वह भली प्रकार यह भी समझते हैं कि युद्ध की धमकियों द्वारा अवश्य लाभ उठाया जा सकता है। कारण उन्हें विश्वास है कि शांति की चाह की रट लगाने वाले भारत के नेताओं को लड़ाई न करते हुए लड़ाई का भय दिखाकर अपनी प्रत्येक शर्त मनवाई जा सकती है।

भारत सरकार को मृत लोगों के घर वालों को मुआवज़ा देना चाहिए। पाकिस्तान से मुआवज़ा वसूल किए जाने तक विलंब करना उचित नहीं। साथ ही सीमा पुलिस की देखभाल का कार्य केंद्रीय सरकार को अपने हाथ में लेना चाहिए।

—पाञ्चजन्य, जून 16, 1958

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

26

मलिन बस्ती सुधार कार्यक्रम के लिए अकेले बंबई को चाहिए 150 करोड़

गत आम चुनावों से ठीक पहले पं. नेहरू ने व्यापक प्रचार-प्रसार के साथ मलिन बस्तियों के सुधार संबंधी एक कार्यक्रम का शुभारंभ किया था। उन्होंने इन मलिन बस्तियों को दारुण नरक की संज्ञा देते हुए उन्हें स्वर्ग में बदल देने का वादा किया था, लेकिन सरकार ने शीघ्र ही यह महसूस किया कि यह काम इतना आसान नहीं है। यदि इस कार्य में आने वाली क़ानूनी एवं अन्य अड़चनों से पार पा लिया जाए, तब भी इस बृहत् निर्माण कार्यक्रम के लिए धन जुटाने का प्रश्न अनुत्तरित रह जाता है। इन योजनाओं के प्रति कुछ आशंकाएँ भी प्रकट की गईं। प्रथम पंचवर्षीय योजना अवधि में औद्योगिक आवासन एवं मलिन बस्ती सुधार योजनाओं के निमित्त 04.65 करोड़ रुपए व्यय किए गए। संशोधित बजट अनुमानों में वर्ष 1957-58 एवं 1958-59 के लिए राशि क्रमशः 10 लाख और 73 लाख रुपए कर दी गई। ये राशियाँ बहुत कम हैं।

जब यह अहसास हुआ कि कच्ची बस्तियों का सुधार केवल उनके अस्तित्व पर दोषारोपण करने से नहीं हो सकता और यह भी कि नया निर्माण शब्दों से नहीं होगा बल्कि इसके लिए ईंट और गारे की आवश्यकता पड़ेगी, तब जाकर योजना के अंतर्गत परियोजना से संबंधित कमेटी ने इससे जुड़े गंभीर प्रश्नों के उतर ढूँढ़ने के लिए विशेषज्ञों की एक टीम श्री एस.के. पाटिल[1] की अध्यक्षता में गठित की। टीम इस निष्कर्ष पर पहुँची है कि भारत के बड़े शहरों में मनुष्य के रहने के लिए इन आवासों को बेकार

---

1. सदाशिव कनोजी पाटिल (1898-1981) मुंबई दक्षिण लोकसभा सीट से सांसद तथा तत्कालीन सूचना एवं प्रसारण मंत्री थे।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

घोषित कर इनसे छुटकारा पा लेना लगभग असंभव है। उन्होंने केवल बंबई शहर का उदाहरण दिया, वहाँ यदि सभी ज़रूरतमंद व्यक्तियों को पर्याप्त रूप से आवासन सुविधा मुहैया करवाई जाती है तो ढाई लाख नए आवासों की आवश्यकता पड़ेगी। इस पर लगभग 150 करोड़ रुपए का ख़र्च आएगा। अन्य बड़े शहरों की स्थिति भी भिन्न नहीं है। टीम इस निष्कर्ष पर पहुँची है कि कच्ची बस्तियों के सुधार से संबंधित किसी भी कार्यक्रम को हाथ में लेने से पूर्व उसके विस्तार की भलीभाँति जाँच कर ली जाए। मलिन बस्तियाँ उद्योग धंधों के केंद्रीकरण का परिणाम हैं। उद्योगपतियों अथवा सरकार का इनसे कारख़ाने, संयंत्र और भवन तक का ही वास्ता रहा है। इन कामगारों के आवास से उनका बहुत कम वास्ता होता है। उद्योग विभाग किसी नई औद्योगिक इकाई अथवा विद्यमान इकाई के विस्तार का लाइसेंस देते समय वहाँ काम पर आने वाले श्रमिकों की आवास व्यवस्था की आवश्यकता के बारे में कोई विचार नहीं करता। वास्तविकता यह है कि विभिन्न विभागों के मध्य कोई तालमेल भी नहीं है। टीम ने इस समस्या के संबंध में गहराई से नीचे तक अध्ययन किया और उसने महसूस किया कि औद्योगीकरण की वर्तमान व्यवस्था और कार्यक्रमों में आमूल-चूल परिवर्तन किए जाने चाहिए। विकेंद्रीकरण की आवश्यकता को महसूस करते हुए कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि उद्योगों को देश भर में फैलाकर स्थापित किया जाए। साथ ही इसमें यह भी कहा गया है कि इस अनुशंसा को अमली जामा पहनाने के लिए फ़िलहाल कोई ठोस क़दम उठाया जाता नज़र नहीं आता। उलटे हो यह रहा है कि पहले से ही अत्यधिक भीड़ भरे और संकुलित औद्योगिक नगरों में नए उद्योग स्थापित करने की अनुमति प्रदान की जा रही है और वहाँ जलापूर्ति, बिजली, ड्रेनेज एवं अन्य सुविधाओं की उपलब्धता की तरफ़ कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा। यह नीति हमारी उस तृष्णा की उपज है, जिसमें हमारी आर्थिक बीमारी की रामबाण दवा महज औद्योगीकरण को मान लिया गया है। लेकिन दुर्भाग्य से औद्योगिक भारत के संबंध में हमारे यहाँ कोई स्पष्ट तस्वीर नहीं है। अब तक किए गए प्रयास भारत को औद्योगिक यूरोप के रूप में तब्दील करने सरीखे लगते हैं। मानवीय कष्टों के निवारण की दृष्टि से कोई भिन्न परिणाम आता प्रतीत नहीं होता है।

इसका एक मात्र समाधान यह लगता है कि शहरों के विस्तार की सीमा सुनिश्चित कर दी जाए। यह केवल उद्योगों को गाँवों में शिफ्ट कर देने से ही संभव है। भारतीय पुरातन समाजशास्त्रियों ने शहरों की जनसंख्या सीमा 05 लाख मानी है। हमें इस मामले में कोई मनमाना तरीक़ा अपनाने की आवश्यकता नहीं है। एक विवेकपूर्ण औद्योगिक नीति वही होती है, जो ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों में लोगों के पलायन को रोके।

टीम क्रा निष्कर्ष यह है, ''बेहतर यह होगा कि उद्योग-धंधों को लोगों तक ले

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

जाएँ, न कि लोगों को उद्योग-धंधों तक ले आएँ।'' क्या योजना आयोग को इससे कुछ सीख मिलेगी? यदि सरकार अपनी औद्योगिक नीति में परिवर्तन कर सकती है, यहाँ तक कि शहरों के इर्द-गिर्द बसे इन नरकों के उन्मूलन के प्रशंसनीय उद्देश्य के साथ भी, तो यह देश के आर्थिक जीवन को उन्नत करने तथा अन्य दिशाओं में सुधार की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण क़दम होगा।

कलकत्ता में पाकिस्तानी गोदी श्रमिक

भले ही उनका कुछ भी उद्देश्य हो, लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था वाले देश में अध्यादेशों को पसंद नहीं किया जाता। राष्ट्रपति ने एक सप्ताह के दौरान तीन अध्यादेश जारी किए। इनमें से दो अध्यादेश 14 जून को जारी किए गए, जबकि तीसरा कुछ दिन पूर्व ही जारी हुआ था। इनमें से पहला बंदरगाह ट्रस्ट प्राधिकरण को यह अधिकार देता है कि वह बंदरगाहकर्मियों के द्वारा हड़ताल कर दिए जाने पर आपातकाल की घोषणा कर दे। इसके बावजूद हड़तालें हुईं और आपातकालीन शक्तियों का उपयोग भी किया गया।

यहाँ तक कि जो लोग गोदी श्रमिकों के प्रति सहानुभूति रखते हैं, वे भी समुदाय के हित में आवश्यक माल की आवक-जावक को सुचारु बनाए रखने के लिए सरकार में निहित शक्तियों से इनकार नहीं करते। दोनों पक्ष एक-दूसरे पर दोषारोपण करते हैं और वास्तविकता यह है कि दोनों के बयानों में कहीं-न-कहीं सच्चाई है। लेकिन यह निश्चित है कि हड़ताल से कामगारों को कुछ मिलने वाला नहीं है। बहुत से दूसरे उद्योगों में हड़तालें हुई हैं और निश्चय ही हड़तालें द्वितीय पंचवर्षीय योजना के क्रियान्वयन को बुरी तरह से प्रभावित कर रही हैं। जहाँ तक श्रमिकों का प्रश्न है, उनकी कुछ परिवेदनाएँ न्यायपूर्ण हो सकती हैं। लेकिन अर्थव्यवस्था की ऐसी स्थिति नहीं है कि कामगार अपनी शर्तें मनवा सकें। कामगारों को हड़ताल के लिए उकसाने वाला कोई व्यक्ति या तो मैनेजमेंट के हाथों में खेल रहा होता है या किसी अन्य ताक़त के इशारों पर चल रहा होता है। जमशेदपुर में हुई एक हड़ताल का कारण श्रमिक यूनियनों में रही आंतरिक प्रतिस्पर्धा है। इस प्रकरण में भी कारण कुछ अलग नहीं है। सरकार ने एक प्रेस विज्ञप्ति जारी कर फेडरेशन के उस देशद्रोही रुझान पर प्रकाश डाला है, जिसमें फेडरेशन द्वारा जारी एक अपील को रेखांकित किया गया है और गोदी के कामगारों को विदेशी बंदरगाहों की ओर लगे जहाज़ों में माल लादने-उतारने की मनाही की गई है। क्या सरकार यह नहीं जानती कि गोदी के इन कामगारों के बीच कुछ पाकिस्तानी तत्त्व हैं? जहाँ तक कलकत्ता का सवाल है, यहाँ उनका प्रतिशत काफ़ी ज़्यादा है। ऊपर से यहाँ कम्युनिस्ट भी हैं, जो देशभक्ति में विश्वास ही नहीं रखते। मगर यह भी उचित रहेगा,

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

यदि सरकार यह परिभाषित कर दे कि राष्ट्रभक्ति के उस स्थिति में क्या मायने होंगे, जब विदेशी राष्ट्रों के लोगों के लिए कोई संदेश दिया जाना हो।

पत्रकारों के प्रति न्याय हो

उच्चतम न्यायालय के निर्णय के प्रकाश में सरकार ने एक अध्यादेश जारी करके सात सदस्यों की एक आधिकारिक कमेटी का गठन किया है, जो श्रमजीवी पत्रकारों के लिए वेतन का निर्धारण करेगी। हमारी समझ में यह नहीं आता कि जब हम श्रमजीवी पत्रकारों की आवश्यकता को मानते हैं, तब इस मामले के समाधान के लिए अध्यादेश लाने में इतनी देरी क्यों की गई? उच्चतम न्यायालय ने तो महीनों पहले इसका निर्णय कर दिया था।

संसद् के पिछले सत्र में ही इस अधिनियम में संशोधन किया जा सकता था। अब इसका अर्थ पत्रकारों को अपेक्षित न्याय दिलाने की दिशा में और विलंब करना है। यह अध्यादेश संशोधित अधिनियम का रूप ग्रहण करेगा। अपने देश में विधायिका संबंधी अनुभवों से हम जानते हैं कि प्रक्रिया में बहुत सी खामियाँ और सीमाएँ हैं, जो कि सारी प्रक्रिया को अस्त-व्यस्त कर देती हैं और उसका परिणाम काम के विलंब के रूप में सामने आता है। हमारे यह बिल्कुल भी समझ में नहीं आता कि आख़िर मार्ग के बीच में कौन खड़ा है?

अकेला बी.एच.यू. ही क्यों?

सरकार ने अध्यादेश के द्वारा बनारस हिंदू विश्वविद्यालय अधिनियम को वास्तविक रूप से ख़त्म कर दिया है। यह क़दम एक जाँच कमेटी की रिपोर्ट के सिलसिले में उठाया गया है। यह ग़ौरतलब है कि कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में विश्वविद्यालय के क्रियाकलापों के बारे में बहुत ही भयावह तस्वीर प्रस्तुत की है। यह सारा वाकिया बहुत पीड़ाजनक है। बनारस हिंदू विश्वविद्यालय राष्ट्रीय महत्त्व का एक प्रतिष्ठित संस्थान है और इसका उच्च स्तर बनाए रखा जाना चाहिए। मालवीयजी ने बड़ा त्याग करके इसे बनाया था। यह भी सच्चाई है कि उस दिव्यात्मा के परलोकगमन के पश्चात् विश्वविद्यालय का स्तर गिरावट की ओर है। ऐसा लगता है कि जाँच कमेटी ने विश्वविद्यालय के अलावा अन्य समस्त शिक्षण संस्थाओं में व्याप्त अनुशासनहीनता को सिरे से अनदेखा किया है। ऐसे भी मामले सामने आए हैं, जिनमें अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने घोर असामाजिक तरीक़े से बरताव किया है। राष्ट्रविरोधी गतिविधियाँ भी वहाँ हुई हैं, लेकिन सरकार ने इस मामले में कभी कोई कार्रवाई नहीं की।

हमारी इस टिप्पणी का यह आशय नहीं लिया जाना चाहिए कि हम विश्वविद्यालय प्रशासन में सुधार नहीं चाहते। हमारी इच्छा है कि यह एक आदर्श विश्वविद्यालय बने।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मगर हमें विश्वास नहीं होता कि जाँच कमेटी द्वारा सुझाए गए कड़े क़दम और आनन-फानन में सरकार द्वारा उन्हें स्वीकार कर लेना वाक़ई विश्वविद्यालय के मामलों में कोई सुधार कर पाएगा। निस्संदेह इससे सरकार को अतिरिक्त अधिकार मिल जाएँगे, लेकिन इससे विश्वविद्यालय को अप्रिय स्थितियों से छुटकारा नहीं मिल सकता और वह भी तब, जबकि सतारूढ़ दल स्वयं अपने दल के व्यर्थ प्रपंचों से भी मुक्त नहीं है।

—ऑर्गनाइज़र, जून 23, 1958

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

27

आवश्यक है योजना आयोग का व्यापक पुनर्गठन

योजना आयोग से के.सी. नेगी के हट जाने से दरअसल आयोग ने एक ऐसे व्यक्ति को खो दिया है, जो अकेला सरकार एवं आयोग की इवाई योजनाओं एवं कपोलकल्पित नीतियों के विरुद्ध आवाज़ उठाने का साहस रखता था। जब उन्होंने पाकिस्तान के संबंध में सरकार की ढुलमुल नीति के प्रतिवादस्वरूप त्याग-पत्र देकर नेहरू कैबिनेट से स्वयं को पृथक् किया, तब तक पूर्वी बंगाल में लाखों हिंदू या तो मौत के घाट उतार दिए गए थे अथवा विस्थापित हो गए थे। दरअसल यह उनकी अकेले की आवाज़ नहीं थी। वास्तव में उन्होंने डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी का अनुसरण किया और एक सही क़दम के रूप में उनके फ़ैसले का देशभर में व्यापक स्वागत किया गया। किसी भी सरकार में कैबिनेट से संयुक्त ज़िम्मेदारी की उम्मीद की जाती है और वे उस नीति के भागीदार नहीं बन सकते, जिसे वे ग़लत समझते हैं। जनता के प्रति उनकी ज़िम्मेदारी पं. नेहरू के प्रति ज़िम्मेदारी से कहीं ज़्यादा थी। इसी वजह से त्याग-पत्र देकर उन्होंने इस व्यवस्था से स्वयं को पृथक् कर लिया। इस बार नेगी ने शांत रहकर यह सबकुछ किया। न तो उन्होंने कोई बयान दिया और न ही मीडिया की ओर से ऐसी कोई टिप्पणी की गई। यद्यपि व्यापक तौर पर अब यह ज़ाहिर हो गया है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना की प्रारूप संरचना को लेकर उनमें एवं आयोग में विचारों का अंतर था। उन्होंने महसूस किया कि योजना आयोग कहीं अधिक महत्त्वाकांक्षी बन रहा है तथा उसके द्वारा कृषिक्षेत्र के बजाय भारी उद्योगों को प्राथमिकता देना न्यायपूर्ण नहीं है। ऐसा सोचा जा रहा था कि जल्दी अथवा देरी से अंततः उन्हें आयोग को छोड़ना होगा। मगर इस परिदृश्य में यह बेहतर रहता, यदि वे पहले लोगों को विश्वास में ले लेते और

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

उन्हें अपने इस्तीफ़े के कारणों से वाकिफ करा देते। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि इससे लोगों की जिज्ञासा ही शांत होती अपितु यह विभिन्न प्रकार की योजनाओं के बारे में उनकी शिक्षा का भी कारण बनता। यह एक बुद्धिमान सलाहकार के रूप में उनकी सेवा मानी जाती।

उनके इस्तीफ़े के पश्चात् अब सरकार को योजना आयोग में आमूल-चूल परिवर्तन करते हुए पुनर्गठन का अवसर मिल गया है। हम हमेशा यह महसूस करते रहे हैं कि योजना आयोग समुचित रूप से गठित नहीं है। लोकसभा प्राक्कलन समिति ने अपनी 21वीं रिपोर्ट में महत्त्वपूर्ण सिफ़ारिशें की थीं। उन सिफ़ारिशों को लागू करने का समय आ गया है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना का भले ही कुछ भी हो, जब तक सरकार आर्थिक नियोजन की अपनी नीति को छोड़ न दे, योजना आयोग तृतीय पंचवर्षीय योजना का प्रारूप बनाने में व्यस्त रहेगा। क्या यह उचित व अपेक्षित नहीं है क़ि अब यह कार्य पुनर्गठित योजना आयोग द्वारा किया जाए? तृतीय पंचवर्षीय योजना बनाते समय योजना आयोग के वर्तमान सदस्य पहले की दो पंचवर्षीय योजनाओं की ग़लतियों को ठीक नहीं कर सकते। यह सही है कि उन्होंने पिछले छह वर्षों में व्यापक अनुभव प्राप्त कर लिया है और भविष्य की योजनाएँ बनाने में इस अनुभव का करीने से उपयोग किया जा सकता है। लेकिन जब कुछ लोग भावुकता से कतिपय विचारों और आदर्शों से जुड़े हों, तब वे अनुभवों से मुश्किल से ही कुछ सीख पाते हैं। यहाँ तक कि मुश्किलों एवं दुविधाओं के कारण वे और अधिक कट्टर बन जाते हैं। वे उन्हें स्वयं के लिए एक चुनौती के रूप में लेते हैं। झूठी प्रतिष्ठा भी ऐसे समय उन्हें अपनी राह बदलने की इज़ाज़त नहीं देती। पूर्व के अनुभव केवल यह दरशाते हैं कि आयोग ने अपनी दोषपूर्ण योजनाओं के सुधार के लिए कोई कारगर क़दम नहीं उठाए। वे इनकी पुनः संरचना एवं पुनर्गठन में असफल रहे। आज की आवश्यकता उत्साहवर्धक क़दम उठाए जाने की है। तृतीय पंचवर्षीय योजना निःसंदेह द्वितीय पंचवर्षीय योजना की तुलना में आधारभूत रूप से भिन्न होनी चाहिए। मगर यह तब तक संभव नहीं है, जब तक कि योजना आयोग पूर्णतः पुनर्गठित नहीं हो जाता। योजना आयोग के पुनर्गठन का कार्य सरकार के स्तर पर एक साहसिक क़दम होगा। ऐसे संकेत मिले हैं कि सरकार ऐसा कोई क़दम नहीं उठाने वाली है। सरकार की मंशा फ़िलहाल आयोग में विद्यमान रिक्त पदों को भरने तक की लगती है।

चौधरी ग़ुलाम अब्बास की भारत सेवा

ग़ुलाम कश्मीर के चौधरी ग़ुलाम अब्बास ने भारत के लोगों को ग़ुलाम कश्मीर में युद्ध विराम रेखा के आसपास बसे अपने देशबंधुओं के प्रति उनके कर्तव्य की याद दिलाकर भारत की सेवा कर रहे हैं। भारत सरकार प्रदेश के विभाजन के कारण कश्मीरियों

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

के समक्ष पैदा हुई स्थिति के समाधान की एक नीति पर काम कर रही है। भारत की राष्ट्रवादी विचाराधारा सदा ही ऐसे रुझान की हामी रही है। डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने प्रधानमंत्री के साथ अपने यादगार पत्राचार में कश्मीर के प्रश्न पर पुरज़ोर माँग रखी है कि सरकार जम्मू-कश्मीर प्रदेश में पाक के क़ब्ज़े क्षेत्र को मुक्त कराने की अपनी तैयारी एवं इरादे की घोषणा करें। प्रधानमंत्री स्तर पर इस महत्त्वपूर्ण पहलू को सदैव टाला जाता रहा है। चौधरी ग़ुलाम अब्बास ने निर्भीकता के साथ संसार को जता दिया है कि कश्मीर में एक युद्ध विराम रेखा है और प्रदेश का विभाजन क़ानूनी दृष्टि से ठीक नहीं हुआ है, जिसका आधार भारत एवं पाकिस्तान की सरकारों के मध्य हुई महज एक अस्थायी समझ है, न कि क़ानून।

प्रदेश की एकता सुरक्षित रखी जानी चाहिए और यह युद्ध विराम रेखा को हटाने से ही संभव है। यद्यपि भारत सरकार ने कतिपय रियासतों की घोषणा की है, तथापि वह प्रदेश को आतताइयों से पूर्णत: मुक्त कराने में अपने कर्तव्य में असफल रही है। लेकिन पाक का आक्रामक रुख़ और इस संबंध में हमारी चुप्पी कम-से-कम युद्ध विराम रेखा के प्रति हमारी उदासीनता को तो दरशाता ही है। जो इस रेखा को मिटाना चाहते हैं, उन्हें आतताइयों के पद चिह्नों पर नहीं अपितु मुक्त कराने वालों के पदचिह्नों पर चलना होगा। चौधरी गुलाम अब्बास कश्मीरियों के मित्र अथवा विभाजित भाग की एकता के सूत्रधार के रूप में सीमा रेखा को पार करना नहीं चाहकर एक विजेता के रूप में यह सब करना चाहते हैं। उनका इरादा 1947 के इतिहास को दोहराना था, जब पाक सेना ने कबाइलियों के भेष में कश्मीर पर धावा बोल दिया था। पाक सरकार ने अब्बास एवं उनके अनुयायियों को बंदी बना लिया है। पाकिस्तान के राजनीतिक गलियारों में अभी तक हलचल जारी है। जहाँ तक भारत सरकार की बात है, वह तो अब तक इस पूरे ड्रामे की मूक दर्शक बनी रही है। हमें इतने भर से संतुष्ट नहीं होना है। अब वह समय आ चुका है, जब हम पाकिस्तान से औपचारिक रूप से यह माँग करें कि वह कश्मीर का उसके क़ब्ज़े वाले भाग छोड़ दे तथा यह निर्णय भारत पर छोड़ दे कि जिन्होंने प्रदेश की शांति को भंग किया है अथवा विश्वासघात करते हुए देशद्रोह जैसा काम किया है, उन पर फ़ैसला करे।

—ऑर्गनाइज़र, जुलाई 7, 1958

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

28

पंजाब सरकार की हिंदी नीति घातक तथा दुर्भाग्यपूर्ण

रायपुर में दीनदयालजी की पत्रकार वार्त्ता।

पंजाब में हिंदी आंदोलन यदि पुन: हुआ तो वह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण होगा तथा इसका मुख्य कारण आंदोलन वापस लेने से उत्पन्न स्थिति का लाभ उठाने में सरकार की असफलता ही होगा। 19 तथा 20 जुलाई को बंबई से भारतीय जनसंघ की कार्यकारिणी हिंदी आंदोलन के संबंध में अपना रुख़ निश्चित करेगी।

यह अत्यंत दुर्भाग्य का विषय है कि पंजाब सरकार द्वारा अपने आश्वासनों का पालन नहीं किया जा रहा है। भारत सरकार को तत्काल इसमें हस्तक्षेप करना चाहिए। गृहमंत्री पं. गोविंद वल्लभ पंत के हस्तक्षेप पर ही हिंदी रक्षा आंदोलन वापस लिया गया था तथा प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू तथा गृहमंत्री पंडित पंत स्वयं अनेकानेक बार कह चुके हैं कि आंदोलन की 90 प्रतिशत माँगें स्वीकार की जा चुकी हैं।

90 प्रतिशत माँगें स्वीकार करना ही पर्याप्त नहीं है। आवश्यक यह है कि स्वीकृत माँगों को कार्यरूप में परिणत किया जाए। इन समस्त आवश्यकताओं को पूर्ण करने की ज़िम्मेदारी भारत सरकार पर है तथा भारत सरकार को समस्त आश्वासनों को कार्यान्वित करने के लिए पंज़ाब सरकार पर दबाव डालना चाहिए। अखिल भारतीय जनसंघ की कार्यकारिणी यही विचार करेगी कि समस्त अश्वासनों को पूर्ण करवाने के लिए कौन सा मार्ग अपनाया जाए।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

संसद् सदस्य सेठ गोविंद दास[1] द्वारा हिंदी के संबंध में हाल ही में मद्रास में एक वक्तव्य दिया गया है। बाबू गोविंद दास का यह वक्तव्य कि अंग्रेज़ी को 1965 के पश्चात् भी जारी रखा जाए, अत्यंत आश्चर्यजनक है तथा यह बिना किसी कारण व्यर्थ ही हिंदी के प्रति उनका विश्वासघात है। यथार्थ में 1965 के पश्चात् अंग्रेज़ी को बनाए रखने का कोई कारण नहीं है।

अभी हाल ही के उपचुनावों में जनसंघ विजय यह स्पष्ट करती है कि आम चुनाव के पश्चात् जनसंघ की स्थिति और भी दृढ हुई है तथा यह विजय जनसंघ के प्रति जनता के विश्वास की प्रतीक है। विधानपरिषदों के चुनावों में अथवा अन्य चुनावों में जनसंघ सदैव अन्य विरोधी दलों से चुनाव व्यवस्था करने का समर्थक रहा है।

अखिल भारतीय जनसंघ द्वारा समस्त प्रांतीय शाखाओं को आदेश दिया गया है कि वे अपने-अपने क्षेत्र की स्थानीय समस्याओं के समाधान सार्वजनिक हित में कराएँ। इस दृष्टि से आवश्यक कार्यक्रम बनाने का कार्य प्रांतीय शाखाओं को ही सौंपा गया है।

—पाञ्चजन्य, जुलाई 14, 1958

□

1. सेठ गोविंद दास (1896-1974), जबलपुर से लोकसभा सदस्य थे।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

29

रुपए का अवमूल्यन

प्रधानमंत्री और वित्तमंत्री दोनों ने रुपए के अवमूल्यन पर हो रही चर्चाओं को बेबुनियाद बताया है। पं. नेहरू ने अपने सर्वविदित अंदाज़ में इसे 'फैंटैस्टिक नॉनसेंस' करार दिया, जबकि केंद्रीय वित्तमंत्री ने बचाव की उसी मुद्रा में ऐसी चर्चाओं को देश के विरुद्ध बताते हुए ज़ोर देकर आरोप लगाया कि ये चर्चाएँ राष्ट्र विरोधी हैं तथा देश की अर्थव्यवस्था पर घातक प्रभाव डालने वाली हैं। लगभग इसी अंदाज़ में रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया के गवर्नर श्री एच.बी.आर. अयंगर भी बोले, थोड़े मृदु शब्दों में। कदाचित् इसलिए कि वह एक नौकरशाह हैं, राजनेता नहीं। तीनों ही यह स्वीकार करते हैं कि भारत की अर्थव्यवस्था और साथ ही रुपए की स्थिति अब पहले जितनी मज़बूत नहीं रह गई है। राजधानी में एक पत्रकार वार्त्ता में प्रधानमंत्री ने कहा, "भारतीय रुपया संसार की श्रेष्ठ मुद्राओं में एक तथा दुनिया की गिनी-चुनी मज़बूत मुद्राओं में शुमार है। यह मेरा मत नहीं है बल्कि यह मत उच्च प्रतिष्ठित विदेशी व्यापारियों का है।" शायद वे अमरीकी प्रशासन की श्रीमती डगलस डिलन की प्रतिक्रिया की तरफ़ इशारा कर रहे थे, जिन्होंने हाल ही में रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए कहा था कि आने वाले दस से पंद्रह वर्षों में भारतीय 'रुपया' दुर्लभ मुद्रा बन जाएगा।

हम रुपए के अवमूल्यन का पक्ष नहीं लेते, क्योंकि इसमें अर्थव्यवस्था की वर्तमान ख़ामियों का कोई समाधान दिखाई नहीं देता। हमें सरकारी बयानों तथा विदेशी महानुभावों के भ्रमित करने वाले कथनों पर मुश्किल से ही भरोसा होता है। ये भविष्यवाणियाँ सच भले ही हो जाएँ, मगर हमारी कोई सहायता करने वाली नहीं हैं। मिठाई का स्वाद तो उसे खाने से ही मिल सकता है। मज़बूत अर्थव्यवस्था की कसौटी हमारी राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय देयताओं को भारतीय मुद्रा में अदा करने की क्षमता में निहित है। इस बात

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

से कोई इनकार नहीं कर सकता कि विदेशों से आर्थिक मदद लिये बग़ैर हम अपने विदेशी विनिमय बिलों का भुगतान नहीं कर सकते। आयात में काफ़ी हद तक कमी कर देने तथा निर्यात संवर्धन के जी तोड़ प्रयत्नों के बावजूद हमारे व्यापार संतुलन की स्थिति डाँवाँडोल होती जा रही है। जहाँ तक देश की आंतरिक स्थितियों की बात है, मुद्रास्फीति का दुष्परिणाम रुपए का मूल्य घटने के रूप में सामने आया है। खाद्यान्नों की बढ़ती क़ीमतें, कम होता उत्पादन, रोज़गार के घटते अवसर, बढ़ता कर भार किसी मज़बूत अर्थव्यवस्था के लक्षण नहीं कहे जा सकते हैं। हम संहारक नहीं बनना चाहते, लेकिन हमें आत्मतुष्ट होकर बैठ भी नहीं जाना है।

कपड़ा उद्योग में संभ्रम

हमारी अर्थव्यवस्था पर छाए अनिश्चय एवं संकट के बादल बातों और बयानों से हटने वाले नहीं हैं। यद्यपि कोई समन्वित नीति और ठोस कार्ययोजना भी दिखाई नहीं दे रही तथापि जो क़दम उठाए गए हैं, उन्हें राजनीतिक दबाव एवं छद्म प्रचार का परिणाम कहा जा सकता है। इस बीच वस्त्र उद्योग पर उत्पाद शुल्क को तीन बार संशोधित किया गया है। नवीनतम संशोधन से जनता पर 6 करोड़ रुपए से भी अधिक का भार पड़ता लग रहा है। सभी रियायतें मिलाकर यह अनुमान लगभग 20 करोड़ रुपए का बैठता है। मगर इन सारी बातों से उद्योगों का भला होने वाला नहीं है, क्योंकि ये रियायतें आम उपभोक्ता तक पहुँचती नहीं लगतीं। यदि मिल मालिक उन्हें हुए फ़ायदे को आम उपभोक्ता तक नहीं बाँटते तो कपड़े की माँग बढ़ने वाली नहीं है और ख़ासकर तब, जबकि खाद्यान्नों के मूल्य में बेतहाशा वृद्धि के कारण उपभोक्ताओं की क्रयशक्ति क्षीण हो गई है।

अर्थव्यवस्था के पंडित यह महसूस करते हैं कि रियायतों का 50 प्रतिशत हिस्सा भविष्य में आम उपभोक्ता तक पहुँचाना होगा। इसी प्रकार कपड़ों की माँग बढ़ाई जा सकेगी। लेकिन इन सबके अर्थव्यवस्था के व्यवहार में आने में समय लगेगा और संभव है कि तब तक कुछ और मिलों में उत्पादन बंद हो जाए। उत्तर प्रदेश मर्चेंट चैंबर के अध्यक्ष श्री सीताराम जयपुरिया के अनुसार 29 कॉटन टेक्सटाइल मिलों में से 15 मिलें भारी दबाव के कारण पहले से ही मरणासन्न स्थिति में हैं। सरकारी उपाय इन टेक्सटाइल इकाइयों को पुनः शुरू करने की दिशा में कोई मदद नहीं कर सकेंगे।

टेक्सटाइल मिल मालिक इस सहायता को अपर्याप्त मानते हैं। यह भी सच है कि इसमें विलंब हुआ है। सरकारी दावों को यदि छोड़ दें तो नए आबकारी शुल्क के प्रारूप के साथ इनका मुश्किल से ही कोई मेल खाता है। यदि ये शुल्क यथामूल्य आधार पर लगाए गए हैं तो आर्थिक नियमों के अनुसार पूरे बाज़ार तंत्र के स्थिरीकरण की बहुत संभावनाएँ होंगी। वर्तमान में व्याप्त भिन्न-भिन्न दरों के संदर्भ में संभावित माँग का

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

वास्तविक अनुमान और देशी-विदेशी बाज़ारों में कपड़े के विभिन्न प्रकारों में लाभ मार्जिन की जानकारी होना आवश्यक है। इस ऊहापोह भरी स्थिति में सांख्यिकी के तमाम विशेषज्ञों के साथ अधिकारी तथा अर्थव्यवस्था के ज्ञाता यह कतई नहीं जानते कि आख़िर व्यापारी स्वयं क्या सोच रहे हैं? हमें चाहिए कि हम अर्थव्यवस्था के अपने नियमों से बाज़ार को नियंत्रित होने दें, न कि राजनेताओं और नौकरशाहों के विवेक से। केवल यथामूल्य शुल्क ही इस उद्देश्य को प्राप्त कर सकेगा। इससे करापवंचन एवं भ्रष्टाचार भी कम होगा।

बीड़ी उद्योग में तालाबंदी

मध्य परिक्षेत्र के बीड़ी उद्योग में बड़ी शोचनीय स्थिति उन्पन्न हो गई है। न्यूनतम मज़दूरी क़ानून के अंतर्गत बंबई सरकार ने श्रमिकों की दैनिक मज़दूरी प्रति हज़ार 1.31 रुपए से बढ़ाकर 1.62 रुपए निर्धारित कर दी है। सरकार के इस निर्णय के विरुद्ध बीड़ी निर्माताओं ने असंगत प्रतिवाद प्रस्तुत किए हैं। उनका दावा है कि बीड़ी निर्माता यह बढ़ा हुआ भार वहन नहीं कर पाएँगे। उन्होंने अपने कारख़ाने बंद करने की धमकी भी दी है। मध्य प्रदेश में स्थित पड़ोसी ज़िलों ने भी उनकी सहानुभूति में ऐसा क़दम उठाने का निश्चय किया है। हज़ारों की संख्या में महिलाओं को काम से बाहर कर दिए जाने की आशंका है। कामगार मज़दूरों ने भी अपने अधिकारों की रक्षा के लिए नियोक्ताओं से मुक़ाबला करने की ठान ली है। बीड़ी उद्योग समुदाय के लिए अपरिहार्य नहीं होने के कारण स्थिति की गहराई का अहसास नहीं हो सकता। लेकिन ऐसे समय में, जबकि बेरोज़गारी की भयावहता मुँह बाए खड़ी है, बीड़ी उद्योग की यह स्थिति निश्चय ही अर्थव्यवस्था को बुरी तरह प्रभावित करेगी। बंबई जैसे शहर में निर्वाह के लिए वर्तमान मज़दूरी की दरों के बहुत कम होने की सच्चाई के आगे नियोक्ताओं के पास बचाव के लिए कोई तर्क नहीं है। जहाँ तक बीड़ी के बाज़ार मूल्य का संबंध है, उनमें अलग-अलग जगहों के अनुसार कोई विशेष अंतर नहीं है। बीड़ी निर्माताओं के समक्ष खड़ी चुनौतियों का समाधान हड़ताल में न होकर श्रमिकों एवं निर्माताओं के पारस्परिक समन्वय एवं सहयोग में निहित है।

—ऑर्गनाइज़र, जुलाई 14, 1958

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

30

मध्य-पूर्व का संकट*

इराक में तख्ता पलट कर सत्ता हथियाने का कुचक्र बगदाद संधि[1] से जुड़े चार मुसलिम देशों, यथा—तुर्की, ईरान, पाकिस्तान एवं इराक के शासनाध्यक्षों की इस्तांबुल में प्रस्तावित बैठक की पूर्व संध्या से ठीक पहले शुरू हुआ, जिसमें लेबनान के राष्ट्रपति चामू को ड्रूज़ एवं अन्य मुसलिम प्रजातियों के विरुद्ध सहायता करने के उपाय एवं संभावित साधनों पर विचार किया गया, जो कि सत्ता परिवर्तन के लिए कई सप्ताह पहले से ही सुनियोजित तरीक़े से सशस्त्र विद्रोह चला रहे थे। ग़ौरतलब है कि पाकिस्तान एवं उसके मित्र देश संसार में मुसलमानों के अधिकारों की अभिरक्षा का दावा कर रहे हैं। सर्वत्र इसलाम पाकिस्तान के राजनीतिज्ञों का एक परंपरागत नारा रहा है, जिसके सहारे वे अपने अनुयायियों में धर्मांधता फैलाने का कार्य कर रहे हैं। तटस्थ विश्लेषण करें तो लेबनान का संघर्ष पश्चिम समर्थक ईसाइयों एवं मिस्र समर्थक मुसलिमों के बीच का एक द्वंद्व है। अरब राष्ट्रवाद, जिसका इसलाम में विश्वास ही सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, का ज़्यादा जुड़ाव मुसलिम लेबनानियों के प्रति है, न कि ईसाइयों के प्रति जिनका भावनात्मक और सांस्कृतिक जुड़ाव ईसाई बहुल पश्चिम से समझा जाता है।

इसमें भी कोई आश्चर्य नहीं है कि तख्ता पलट कार्रवाई में शरीक इराक सेना के युवा अधिकारी न केवल अरब राष्ट्रवाद अपितु इसलामिक एकता के कारण वहाँ के युवा राजा फेजल तथा उसके बूढ़े प्रधानमंत्री नुरी को राष्ट्रदोही मानते हैं।

यह सर्वविदित है कि अरब संसार में कर्नल नासिर की शक्ति एवं प्रतिष्ठा का मुख्य आधार उनके द्वारा इसलामी चेतना के प्रति जारी वह अपील है जो कि अरब की

---

*देखें परिशिष्ट IV, पृ. 297

1. 1955 में बगदाद में ईरान, इराक, पाकिस्तान, टर्की और ब्रिटेन ने मध्य पूर्व संधि संगठन (METO) या केंद्रीय संधि संगठन (CENTO) की स्थापना की। यह संगठन 1979 में भंग कर दिया गया।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

जातीय चेतना एवं अरब राष्ट्रवाद को उद्वेलित करने के लिए कम नहीं है। यह उल्लेखनीय है कि स्वेज नहर संकट के समय उनके द्वारा मिस्रवासियों और अरबवासियों के लिए इसलाम के नाम पर की गई अपील उतनी ही राष्ट्रवाद के नाम पर भी थी। इस अपील में उनके द्वारा जेहाद के लिए आह्वान किया गया था। मिस्र की यात्रा पर हाल ही में जाने वाले अनेक यात्रियों के अनुसार कर्नल नासिर इसलामिक चेतना के लिए लोगों को प्रोत्साहित कर रहे हैं। दरअसल वे सुनियोजित ढंग से मुसलमानों की धार्मिक भावनाओं को प्रभावित करने का प्रयास कर रहे हैं, जिसका उद्देश्य अरब संसार का नेता बनने की अपनी दावेदारी के लिए समर्थन प्राप्त करना है। इस प्रकार वे सर्वत्र इसलाम के लिए काम कर रहे हैं, जो कि सर्वत्र अरेबिज्म से कम नहीं है।

आगे यह भी स्पष्ट है कि इन देशों के लोगों के मन में नासिर के उद्देश्यों के प्रति अधिक सहानुभूति है बनिस्बत इन देशों के स्वयं अपने शासकों के प्रति, जिनमें कि विश्वास किया जाना अपेक्षित है। स्वयं पाकिस्तान में भी इन संधियों के अंतर्गत निहित नीतियों के विरोध में स्वर तेजी से मुखर हो रहे हैं। इस बात में कोई आश्चर्य नहीं होगा, यदि पाकिस्तान की विदेश नीति में बदलाव की माँग आने वाले दिनों में तीव्रता से मुखर हो जाए।

भारत के राजनीतिक गलियारों में इस तख्ता पलट कार्रवाई को एक सहमति के रूप में देखा जा रहा है। प्रधानमंत्री पं. नेहरू के शब्दों में यह तख्ता पलट कार्रवाई अरब राष्ट्रवाद को स्वीकृति प्रदान करने का एक संकेत है।

यह भी दलील दी जा रही है कि तख्ता पलट की यह कार्रवाई निर्गुट क्षेत्र को मान्यता प्रदान किए जाने का एक लक्षण है । लेकिन ऐसा अनुमान लगाना समय पूर्व एवं जोखिमपूर्ण होगा, इसके लिए थोड़ा इंतज़ार किया जाना चाहिए। मध्य-पूर्व तेल के लिए अमरीका एवं सोवियत संघ दोनों के ऊँचे दावे रहे हैं। ये दोनों देश पेट्रोलियम क्षेत्र में मित्रवत् शासन की स्थापना अथवा अपना सहयोग प्रदान कर वहाँ अपना नियंत्रण स्थापित करना चाहते हैं। इसके परिणामस्वरूप वहाँ का विकास स्थानीय निर्यात की अपेक्षा अधिक हुआ है। इस क्षेत्र के लोग अपने लिए कैसी शासन व्यवस्था चाहते हैं, यह निर्णय करने के लिए उन्हें स्वतंत्र छोड़ दिया जाना चाहिए। लेकिन यह कहना सरल है, करना कठिन। आम आदमी ऐसे मामलों में कम ही बोलता है। यह तो दृढ निश्चयी अल्पसंख्यक स्वर और संगठित तत्त्व, यथा विद्यार्थी, सैनिक ताक़तें और संगठित श्रमिक ही होते हैं, जो लोगों की नियति का निर्धारण करते हैं तथा एक तरह से उन पर अपनी इच्छाएँ थोपते हैं।

इराकी तख्ता पलट के उपरांत अमरीका ने जिस गति के साथ लेबनान में अपने सैनिक उतारने की कार्रवाई की, उससे बने अपने प्रभाव को वह नष्ट नहीं करना चाहता। यह क़दम दावानल के समान है। लेकिन यह एक कठोर तथ्य एवं कड़वी सच्चाई है,

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अंततः जिसका सामना करना ही पड़ेगा। अमरीका की दृष्टि में यह पहले से ही अर्जित किया जा चुका है, जैसा कि लेबनानी विद्रोहियों के स्तर से शांति के दावे किए जा रहे हैं। मगर यह अब भी देखा जाना शेष है कि सोवियत संघ अपने मित्र राष्ट्रों की मदद के लिए कहाँ तक आगे बढ़ता है। इराक को मान्यता प्रदान करने में उसने और चीन ने जो उतावली दिखाई, यह इसके पीछे रहे उनके निहित स्वार्थों को इंगित करती है। यदि रूस भी पश्चिम समर्थित जोर्डन के हुसैन के विरुद्ध बने नए राष्ट्र समूह को सैन्य सहायता प्रदान करता है तो मध्य-पूर्व क्षेत्र किसी दिन एक दावानल का रूप ले लेगा, जिसकी गिरफ़्त में आकर समूचा संसार भभक उठेगा।

प्रो. गालब्रेथ की भारतीय अर्थव्यवस्था को सलाह

अमरीका के विख्यात अर्थशास्त्री प्रो. गालब्रेथ[2] ने भारतीय अर्थव्यवस्था को भारी दबाव के बीच फँसी अर्थव्यवस्था बताते हुए हमारी आर्थिक नीतियों पर पुनर्विचार की आवश्यकता जताई है। 'फॉरेन अफेयर्स' में प्रकाशित अपने आलेख में उन्होंने कहा है कि अमरीका जैसे विकसित पूँजीवादी देश की अर्थव्यवस्था या सोवियत संघ जैसे अत्यंत संगठित अर्थव्यवस्था वाले देशों के पास भी कोई ऐसा आर्थिक फॉर्मूला नहीं है, जो भारत में तुरंत लागू किया जा सके। उन्होंने आगे और कहा है कि कदाचित् यह विशेष दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि उन लोगों में स्वयं भारत के प्रमुख लोग भी रहे हैं, जो अर्थव्यवस्था के बारे में व्यावहारिक निश्चय कर पाने में असफल रहे हैं। भारतीय अर्थवेत्ताओं में बड़ी संख्या में वे महानुभाव हैं, जो पश्चिम की परिष्कृत अर्थव्यवस्था की तरफ़ नज़रें लगाए बैठे हैं। इस सिद्धांत के साथ तालमेल हो जाना एक बौद्धिक उपलब्धि जैसा है। भारतीय अनुभवों के संदर्भों में इसमें संशोधन करने और अन्य देशों की अर्थव्यवस्था के साथ अनुकूलन बिठाने की कोई बड़ी गुंजाइश दिखाई नहीं देती है। इसका परिणाम यह है कि भारत में पढ़ाए जा रहे और विमर्श किए जा रहे अर्थशास्त्र की भारतीय समस्याओं के समाधान के संदर्भ में बहुत कम तादात्म्य है। वास्तव में कतिपय और परिष्कृत सैद्धांतिक मॉडल उन पश्चिमी समुदाय के लिए भी वर्तमान में उल्लेखनीय रूप से तादात्म्यपूर्ण नहीं है, जहाँ कि उनका जन्म हुआ है और जहाँ उन्हें पहचान मिली है।

प्रो. गालब्रेथ के इन विचारों पर टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं है। यह तो भारतीय अर्थव्यवस्था के नियोजकों के चेहरे पर करारा तमाचा है। दुर्भाग्य से भारत का

---

2. जॉन केनेथ गालब्रेथ (1908-2006) बीसवीं सदी में अमरीकी उदारवाद के एक प्रमुख समर्थक थे। इन्होंने अर्थशास्त्र पर तीन लोकप्रिय पुस्तकें लिखीं—अमेरिकन कैपिटलिज्म (1952), द एफ़्लूएंट सोसाइटी (1958) और द न्यू इंडस्ट्रियल स्टेट (1967)।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

आर्थिक चिंतन पश्चिम की उन विचारधाराओं पर केंद्रित है, जिनसे निराश होकर पश्चिम के देश स्वयं छोड़ रहे हैं। जब तक भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेष स्थितियों को समझने के लिए अतिरिक्त प्रयास नहीं किए जाएँगे, किसी भी तरह का नियोजन हमारी आर्थिक पीड़ाओं से हमें मुक्ति नहीं दिला सकता।

योजना आयोग में श्रीमन्नारायण की नियुक्ति

कांग्रेस के महासचिव श्रीमन्नारायण की योजना आयोग के सदस्य के रूप में नियुक्ति लोगों में किसी प्रकार की आशा का संचार करने वाली नहीं है। निःसंदेह श्रीमन्नारायण एक अच्छे अर्थशास्त्री हैं, लेकिन उनका बुद्धिचातुर्य महज उन बयानों का औचित्य तलाशने में लगा रहता है, जो पं. नेहरू की तरफ से आते हैं। वास्तविकता तो यह है कि वे योजना आयोग में दूसरे 'हिज़ मास्टर्स वॉयस' सिद्ध होंगे और के.सी. नेगी के अभाव की पूर्ति नहीं कर पाएँगे, जो उन बातों को भी कहने का साहस रखते थे, जो कदाचित् स्वयं उनमें निहित शक्तियों से बाहर की होती थीं।

महाविद्यालयों में प्रवेश

उच्च शिक्षा के लिए कॉलेजों में प्रवेश प्राप्त कर लेना एक गंभीर समस्या बनती जा रही है। हज़ारों की संख्या में युवा विद्यार्थियों को कॉलेजों एवं अन्य संस्थानों में उच्च शिक्षा हेतु प्रवेश के लिए स्थानाभाव के चलते इनकार कर दिया जाता है। शिक्षण संस्थानों के प्राधिकारी यह कहते हैं कि वे मैट्रिक परीक्षा पास करने वाले सभी विद्यार्थियों की उच्चतर शिक्षा के लिए व्यवस्थाएँ नहीं कर सकते। मगर प्रश्न यह है कि आख़िर, जिन्हें प्रवेश प्रदान करने से मना किया जाता है, वे कहाँ जाएँगे और क्या करेंगे। देश में ऐसे बहुत कम अवसर हैं, जहाँ वे स्वयं को स्थापित कर सकते हैं। तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षण संस्थानों की तो यह स्थिति है कि वे उनमें प्रवेश के इच्छुक उम्मीदवारों के अत्यंत अल्प भाग को वास्तविक रूप से प्रवेश दे पा रहे हैं। इस स्थिति के नतीजतन बड़ी संख्या में युवा विद्यार्थी प्रति वर्ष बेरोज़गारों की फ़ौज में जुड़ जाते हैं। देश की अर्थव्यवस्था को कुछ इस प्रकार से नियोजित किया जाना चाहिए, जिससे स्कूल शिक्षा से निकलकर आने वाले हर विद्यार्थी के लिए तब तक उच्च शिक्षा के द्वार बंद नहीं हों, तब तक कि उसे जीविकोपार्जन लायक उपयुक्त रोज़गार न मिल जाए। यह एक ऐसी समस्या है, जिससे उच्च शिक्षा के सिद्धांतों के बारे में महज उपदेश देकर बचा नहीं जा सकता। इस दिशा में कारगर क़दम उठाए जाने की आवश्यकता है।

—ऑर्गनाइज़र, जुलाई 21, 1958

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

31

आख़िर नेहरू को शिखर सम्मेलन में भाग क्यों नहीं लेना चाहिए

मीडिया और विभिन्न मंचों, राजनीतिक दलों और विशिष्ट महानुभावों, नौकरशाहों एवं व्यापारियों सभी का पश्चिम एशिया की ताजा घटनाओं के संबंध में भारत के रुख़ पर यह मत है कि उसके द्वारा देश में मुँह बाए खड़ी अपनी घरेलू समस्याओं को अनदेखा किया जा रहा है। विश्व के अन्य देशों की तरह भारत भी वर्तमान अंतरराष्ट्रीय क्रियाकलापों पर अधिक ध्यान दे रहा है। क्या यह बेतुका एवं हास्यास्पद नहीं है कि एक देश जो सिद्धांत रूप में स्वयं अपनी प्रांतीय सीमाओं से बाहर अन्य देशों के मामलों में कोई रुचि नहीं रखने का दावा करता रहा हो और घोषित रूप में जिसकी तटस्थ विदेश नीति हो, वह दूसरे देशों के मामलों में इतनी गहरी रुचि ले। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि देश होने के नाते हम जो कुछ विश्व में घटित हो रहा है, उससे विमुख रहें। संसार के एक समन्वित भाग के रूप में हमें उसमें घटित हो रही प्रत्येक घटना पर ध्यान देना है और यह भी देखना है कि विश्व की विभिन्न शक्तियों के अंतर्द्वंद्व के बीच कहीं हमारे अपने ज्वलंत मुद्दे उसके शिकार न हो जाएँ। लेकिन यह भी विचारणीय है कि यू.के. एवं यू.एस.ए. द्वारा जोर्डन तथा लेबनान में किए जा रहे हस्तक्षेप पर हो रहे प्रदर्शनों में हम कैसी भूमिका निभा सकते हैं? यह स्पष्ट है कि जिन्होंने विश्व की किसी एक या दूसरी शक्ति के लिए कठपुतली तक बनकर पेश आने का निश्चय कर लिया है, उनके द्वारा किए जा रहे कार्यों का कोई भी औचित्य सिद्ध नहीं किया जा सकता। इसका कारण यह है कि किसी वस्तु के बारे में महसूस करना और सच में वैसा कर दिखाना दोनों अलग-अलग बातें हैं। एक ऐसे संसार में, जहाँ प्रत्येक देश बँटवारे का रुख़ लिए है, ऐसे में किसी एक देश की तटस्थता को बचाए रखने के लिए हद से परे जाकर आत्मसंयम

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

की ज़रूरत है। आंग्ल अमरीकियों और सोवियत संघ के राजनीतिक गुटों के सौ से भी अधिक काम और कारण हो सकते हैं, जिन्हें कोई भी विवेकपूर्ण अंतःकरण वाला शांति का उपासक व्यक्ति युक्तियुक्त बता सकने में कामयाब नहीं हो सकता। लेकिन हम उनके समर्थन अथवा विरोध में तब तक कुछ नहीं कर सकते, जब तक कि हम ऐसे मामलों का समाधान कर सकने की ज़िम्मेदारी स्वयं अपने ऊपर नहीं ले लेते।

जानबूझकर या अनजाने में पंडित नेहरू यह अनुभव करते हैं कि उन्हें इस उत्तरदायित्व का निर्वहन करना है। यही कारण है कि उन्होंने इतने उतावले होकर हड़बड़ी के साथ इस शिखर सम्मेलन में शरीक होने के लिए ख्रुश्चेव के सुझाव को आनन-फानन में स्वीकार कर लिया। यह सच है कि भारत कोई सामान्य देश नहीं है बल्कि वह संसार में एक महत्त्वपूर्ण स्थिति रखता है। यह ग़ौरतलब है कि सुरक्षा परिषद् में उसे स्थायी सदस्यता दिए जाने का मुद्दा इस समय विचाराधीन है। लेकिन उसे शिखर सम्मेलन में शरीक होने का न्यौता क्यों दिया गया है? शिखर सम्मेलन या तो उन देशों के शासनाध्यक्षों के लिए है, जो पश्चिम एशिया संघर्ष में सीधे-सीधे रुचि रखते हैं अथवा वर्तमान विश्व के दो शक्ति समूहों के अध्यक्षों के लिए सरोकार रखता है। ऐसी स्थिति में अधिक अच्छा यह रहेगा कि इसमें अरब देशों के मुखियाओं को आमंत्रित किया जाए अथवा कर्नल नासिर को भी आमंत्रित किया जा सकता है, यदि विश्वास हो कि वे कुछ बेहतर कर सकते हैं। भारत से तो ऐसा कुछ होने वाला दिखाई नहीं देता है। इस समय भारत के लिए ऐसे किसी भी सुझाव कि वह शिखर वार्त्ता में भाग नहीं ले, का सीधा-सीधा अर्थ प्रबल जन विरोध को निमंत्रण देना होगा। ऐसे वैश्विक मुद्दे पर हमारे प्रधानमंत्री को विश्व के बड़े तीन या चार नेताओं में पाकर एक राष्ट्र के रूप में हमारा गौरवान्वित होना लाजमी है। भले ही इसका अर्थ हमारी देशभक्ति में कमी से ही लगाया जाए, मगर हम यह महसूस करते हैं कि भारत इन वार्त्ताओं में सहभागी बनकर वर्तमान संकट के समाधान की दिशा में मुश्किल से ही कुछ योगदान कर पाएगा। इसके विपरीत हमारे द्वारा तटस्थता के लिए किए जाने वाले दावे को लेकर विश्व मंच पर हमारी स्थिति बदतर हो सकती है।

भले ही प्रधानमंत्री पं. नेहरू के द्वारा ख्रुश्चेव के सुझाव को एकतरफ़ा और हार्दिक रूप से स्वीकार कर लिया गया है; लेकिन यह निश्चित है कि वे धूर्त ख्रुश्चेव की कूटनीति के शिकार हो गए हैं। यदि विश्व के इस ज्वलंत मुद्दे पर उन्हें बीच में पड़ना ही था तो बेहतर यह होता कि ऐसा करने से पहले वे दूसरे पक्ष को भी जान लेते। प्रधानमंत्री शिखर सम्मेलन में आख़िर क्या करेंगे? या तो वे किसी एक शक्ति अथवा दूसरी की बात मान लेंगे अथवा दोनों पक्षों के लिए स्वीकार योग्य किसी मध्यम मार्ग को तलाशने का प्रयास करेंगे। निःसंदेह मध्यम मार्ग को सुनहरा मार्ग माना जाता है, मगर इसमें हमेशा समझौता

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सिद्धांत छिपा होता है। वर्तमान प्रकरण में जबकि दोनों महाशक्तियों के राजनीतिक गुट अपने-अपने स्वार्थ साधने की नीयत से ज़ोर-शोर से दुनिया का नक्शा बदल देने को उतारू हैं। ऐसे में प्रथमदृष्टया किसी समझौते का सीधा-सीधा मतलब स्वतंत्रता का बलिदान कर देना और कमज़ोर वर्ग के लोगों के हितों को नज़रअंदाज़ करते हुए किसी एक समूह अथवा दूसरे को शक्तिशाली बनाना होगा। पं. नेहरू समझौता स्वीकार करें, यदि वह पहली स्थिति वाला हो। यदि वे ऐसा करते हैं तो पश्चिम एशिया देशों की नज़रों में वे गिर जाएँगे। क्या उन्हें यकीन है कि वे इन देशों की ओर से बोल सकेंगे? यदि कोई फॉर्मूला मंजूर हो जाता है तो क्या वे सामग्री प्रदान कर सकेंगे? क्या वे ब्रिटेन, अमरीका, सोवियत संघ और फ्रांस के द्वारा स्वाधीनता और विश्व के स्वाधीन नागरिकों के लिए उलझनकारी स्थितियाँ पैदा कर देने के लिए निंदा करने अथवा उन्हें दोषारोपित करने के लिए साहस जुटाकर स्वयं को तैयार कर चुके हैं। देश के विकास के लिए प्रारूपित दूसरी पंचवर्षीय योजना का क्या होगा, जो बहुत कुछ विदेशी सहायता पर अवलंबित है। यदि पंडित नेहरू का हिमायती बनने तथा उपदेश देने वाले रुख़ से विश्व की विभिन्न शक्तियाँ चिढ़ जाती हैं? कुल मिलाकर इस अनिश्चयकारी स्थिति के कारण स्थिति जटिल से जटिलतर होती जा रही है। भारत को उन्हीं मुद्दों को आगे बढ़ाना चाहिए, जो अब तक घोषित किए जा चुके हैं। पं. नेहरू ने अपनी कलकत्ता प्रेस कॉन्फ्रेंस में ज़ोर देकर कहा था कि लेबनान एवं जॉर्डन से विदेशी सेनाओं को हटाते हुए अरब राष्ट्रवाद को मान्यता प्रदान करनी चाहिए। यह सब आइजनहावर[1] सिद्धांत के अनुरूप नहीं है। क्या पंडित नेहरू राष्ट्रपति आइजनहावर तथा डलेस[2] से यह उम्मीद करते हैं कि वे क़दम पीछे हटा लेंगे और तेल संपन्न अरब को चालाक स्लाव्स को सौंप देंगे।

निःसंदेह कर्नल नासिर ने यह जता दिया है कि सोवियत संघ का इस्तेमाल दूसरों को डराने के लिए एक हथियार के रूप में करने के सिवाय उनका इरादा उसकी चालबाज़ियों में फँसने का नहीं है। मगर सवाल यह है कि क्या अन्य छोटे देश भी इस प्रकार की भूमिका अदा करने में समर्थ हो सकेंगे। हालाँकि पश्चिम एशिया की स्थिति बड़ी नाज़ुक हो गई है और हम सोचते हैं कि इसका सर्वमान्य समाधान इससे संबंधित देश अथवा विभिन्न औपनिवेशिक शक्तियाँ ही खोज सकती हैं। यह तो महज चोर-उचक्कों के लिए ही सरल होगा कि वे कोई युक्तियुक्त योजना बनाकर उस पर परस्पर सहमति एवं

1. शीतयुद्ध के दौरान मध्य तथा पूर्वी देशों में कम्युनिस्टों के बढ़ते प्रभाव और आक्रमण को देखते हुए अमरीका के तत्कालीन राष्ट्रपति ड्वाइट डी आइजनहावर ने 5 जनवरी, 1957 को घोषित विदेश नीति में इन देशों को आर्थिक और सैन्य सहायता देने का वादा किया, इसी नीति को 'आइजनहावर सिद्धांत' कहा जाता है।
2. जॉन फोस्टर डलेस (1888-1959), अमरीकी राष्ट्रपति ड्वाइट डी आइजनहावर के कार्यकाल के दौरान ये 1953 से 1959 तक विदेश मंत्री रहे।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सामूहिक रूप से कार्य कर सकें, लेकिन इस प्रकार के समूह में रहा कोई एक भी ईमानदार आदमी पूरी योजना को बिगाड़कर रख सकता है, जब तक कि वह स्वयं उस समूह में भागीदार होकर वहाँ एक तरह से लूट से प्राप्त अनैतिक कमाई का हिस्सेदार बनना स्वीकार न कर ले। भारत के प्रधानमंत्री पं. नेहरू का इस शिखर सम्मेलन में भाग लेने जाना हमें सस्ती लोकप्रियता व संतुष्टि भले ही दिला दे, मगर यह हमें संसार के झंझावात भरे मामलों में उलझा देगा, जिनसे हमें किसी भी क़ीमत पर बचना चाहिए।

टेक्सटाइल मिलों का अधिग्रहण करे सरकार

हमें ऐसा लगता है कि प्रधानमंत्री पं. नेहरू को वैश्विक मुद्दों के बजाय अब अंतरदेशीय स्थिति पर अधिक ध्यान देना चाहिए। देश में अन्न के पर्याप्त भंडार होने के केंद्रीय खाद्यमंत्री के लंबे-चौड़े दावों के बावजूद खाद्यान्नों के भावों में बेतहाशा वृद्धि देखने में आ रही है। सभी राज्यों में बड़ी संकटपूर्ण स्थिति बताई जा रही है। इस संबंध में जोनल सिस्टम, जो कि मुख्यत: राज्यों की राजनीतिक सीमाओं को रेखांकित करता है, वह इस मामले में असफल ही नहीं सिद्ध हुआ है बल्कि इसने स्थिति को बद से बदतर बना दिया है। इसका मुख्य कारण यह है कि यह तरीक़ा सामान्यत: स्थापित व्यापार के लिए व्यावहारिक नहीं होता। खरीफ़ की फ़सल के लिए अभी से कोई भविष्यवाणी करना जल्दी होगी। योजना आयोग ने द्वितीय पंचवर्षीय योजना की राज्यों के साथ समीक्षा में यह दोषारोपण किया है कि वे खाद्य उत्पादन स्कीमों का उचित रूप से कार्यान्वयन नहीं कर रहे हैं। यहाँ तक कि छोटी-छोटी सिंचाई स्कीमों, बीज भंडारण और खाद को भी उनके स्तर से अनदेखा किया गया है। इसे यदि वित्तीय भाषा में कहें तो क्रियान्विति में सभी स्कीमों को मिलाकर पंद्रह प्रतिशत से भी अधिक कमी आई है। यह आवश्यक है कि पर्याप्त अधिकारों के साथ अखिल भारतीय खाद्य परिषद् का गठन किया जाए। यह परिषद् खाद्य योजनाओं के निर्माण और उनके क्रियान्वयन तक स्वयं को संबद्ध रखें। यह भी दुर्भाग्यपूर्ण है कि सरकार ने खाद्यान्न जाँच कमेटी की रिपोर्ट को भी अपेक्षित बुद्धिमत्ता के साथ नहीं लिया है। इसकी अनुशंसाओं को स्वीकार नहीं किया गया है। न तो मूल्य स्थिरता बोर्ड की स्थापना की गई है और न ही सरकार मूल्यवृद्धि को रोकने में कामयाब हो सकी है। देश वृहद स्तर पर औद्योगिक असंतोष का सामना कर रहा है। भिन्न-भिन्न कारणों से यहाँ-वहाँ हड़तालें हो रही हैं। प्रीमियर ऑटोमोबाइल के श्रमिकों के प्रति सहानुभूति एवं समर्थन में पाँच लाख से भी अधिक श्रमिकों ने हड़ताल रखी। श्री एस.ए. डांगे[3] ने इस हड़ताल को सरकार की मज़दूर विरोधी नीतियों

3. श्रीपाद अमृत डांगे (1899-1991) भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के संस्थापक सदस्य तथा बंबई केंद्रीय क्षेत्र से लोकसभा सदस्य थे।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

के विरुद्ध फैली एक लहर की संज्ञा दी है। दुर्भाग्य से श्रमिक नेता इन मज़दूरों को अपनी राजनीतिक रोटियाँ सेंकने के लिए इस्तेमाल कर रहे हैं। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि मज़दूरों की अपनी युक्तियुक्त परिवेदनाएँ नहीं हैं और यह भी कि वे अपनी इन परिवेदनाओं के निवारण के लिए आवाज़ न उठाएँ, लेकिन सरकार समय पर कार्रवाई करती नहीं दिखाई दे रही है। मज़दूरों को कम्युनिस्ट नेताओं की घृणित चालों का शिकार बनने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। विदर्भ के कपड़ा मिल मालिकों ने 11 अगस्त, 1958 से मिलबंदी की घोषणा की है। इस घोषणा के बाद मिल मालिकों की निंदा करते और उन पर दोषारोपण करते अनेक बयान जारी हुए हैं। व्यापार संघों के नेताओं ने मिल मालिकों की सदस्यता पर प्रश्न उठाते हुए उन्हें चुनौती दी है। वस्त्र उद्योग से संबंधित मिल मालिकों के संगठन के अनुसार बढ़ते करारोपण एवं मज़दूरी में वृद्धि की माँग के कारण वे मिलें चलाने में असमर्थ हैं। वे पहले से ही घाटे में चल रही बताई गई हैं। इसके विपरीत मज़दूरों का यह कहना है कि मिल मालिक टेक्सटाइल वेज बोर्ड को नागपुर में दिनांक 12 अगस्त, 1958 को प्रस्तावित दौरे को देखते हुए दबाव बनाने के लिए ऐसा कर रहे हैं। कारण भले ही कुछ भी हो, लेकिन यह निश्चित है कि यह मिल बंदी एक लाख से भी अधिक मज़दूरों को बेरोज़गार कर देगी और यह कि इससे आगामी कुछ महीनों में देश में कपड़े की कमी आ जाएगी। दुर्भाग्य यह है कि सरकार ने इस ज्वलंत मामले पर अभी तक संज्ञान नहीं लिया है। इसके विपरीत केंद्रीय वित्तमंत्री मोरारजी भाई देसाई अन्य राजनेताओं के साथ मिल मालिकों को दोषारोपित करते पाए गए हैं। यह बहुत मुश्किल राजनीतिमत्ता है। सरकार टेक्सटाइल जाँच कमेटी की रिपोर्ट पर भरोसा करती दिखाई दे रही है। रिपोर्ट अपने आप में समस्या का समाधान करने वाली थोड़े ही होगी। अंतरिम सहायता जो स्वीकार की गई है, वह अपर्याप्त व अधूरी बताई गई है। सरकार को रास्ते तलाशने चाहिए, ताकि ये मिलें बंद न हों। या तो सरकार इन मिलों का अधिग्रहण कर उन्हें चलाए अथवा लागत मूल्य पर मिलों के पास पड़ा वस्त्र स्टॉक खरीद ले। राज्य व्यापार कॉरपोरेशन को इस स्टॉक के लिए बाजार तलाश करना चाहिए।

—ऑर्गनाइज़र, अगस्त 4, 1958

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

32

द्वितीय पंचवर्षीय योजना*

यह लेख ऑर्गनाइज़र में 29 सितंबर, 1958 को प्रकाशित हुआ।

भारतीय जनसंघ हमेशा से द्वितीय पंचवर्षीय योजना का आलोचक रहा है। समन्वयविहीन, बेतरतीब, दिशाहीन और लक्ष्यविहीन, एक-दूसरे के ख़िलाफ़ खड़े लोगों की परस्पर विरोधी गतिविधियों, बेकार की प्रतिद्वंद्विता और अनियंत्रित असामाजिक उद्यम की जगह हम एक बेहतर योजना की आवश्यकता महसूस करते रहे हैं। लेकिन साथ ही हम सोवियत जैसी योजना का भी विरोध करते हैं, जिसका परिणाम लोकतंत्र और व्यक्ति की आज़ादी दोनों के निषेध के रूप में सामने आया। जिस योजना को हम

---

* यूनाइटेड एशिया के संपादक को दीनदयालजी के कार्यालय सचिव का पत्र।

दिनांक : 11 अगस्त, 1958

प्रति

श्री जी एस पोहेकर
एडिटर इन चीफ,
यूनाइटेड एशिया,
12, रामपार्ट रो, बाम्बे-1

महोदय,

कृपया 4 अगस्त, 1958 को जनसंघ के महामंत्री पंडित दीनदयाल उपाध्याय को भेजे अपने पत्र का संदर्भ लें।

श्री उपाध्याय द्वारा द्वितीय पंचवर्षीय योजना पर लिखे लेख को प्रकाशन हेतु स्वीकार करें।

कृपया पावती की सूचना दें और हमें कृतार्थ करें।

भवदीय
हस्ताक्षर
कार्यालय सचिव

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

लागू करने जा रहे हैं, उसका आकार और उसकी तकनीक न सिर्फ़ मौजूदा आर्थिक परिस्थितियों और आर्थिक उद्देश्यों के अनुरूप होनी चाहिए, बल्कि राष्ट्र के राजनीतिक और सामाजिक मूल्यों के भी अनुकूल होनी चाहिए। द्वितीय पंचवर्षीय योजना हालाँकि लोकतंत्र की रट लगाती है, लेकिन जिस तरह तैयार की गई है, यदि पूरी तरह लागू हो जाती है, तो हमारी स्वतंत्रता का ह्रास तय है। योजनाकारों द्वारा खींचे गए ख़ाके के अनुसार तकनीक को अपनाने में सरकार की ऊहापोह ही इस योजना को मझधार में छोड़ने के लिए ज़िम्मेदार है। लोकतंत्र और द्वितीय पंचवर्षीय योजना साथ-साथ चलना संभव नहीं है। हमें दो में से एक को चुनना ही पड़ेगा और जनसंघ पहले वाले को चुनेगा।

जनसंघ यह महसूस करता है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना अभारतीय है। यह भारतीय परंपरा और हमारे सामाजिक ढाँचे को समझने में विफल रही है। आर्थिक विकास की संकल्पना शून्य में नहीं की जा सकती। न ही हम विश्व के एक हिस्से के औद्योगिक विकास को दूसरे हिस्से में प्रतिरोपित कर सकते हैं, भले ही हमें किसी विदेशी सरकार से सहायता क्यों न मिल रही हो। जनसंघ यह मानता है कि आत्मनिर्भरता और स्वयं सहायता सभी योजनाओं में केंद्रीय सूत्र होनी चाहिए। हाँ, इसका आशय यह है कि उद्योग और कृषि के प्रति एक अलग नज़रिया होना चाहिए। उत्पादन के मौजूदा प्रतिमानों, जिस पर पूरा आर्थिक ढाँचा तैयार किया जा सकता है, को आधार बनाने में विफल द्वितीय पंचवर्षीय योजना ने एक तरफ़ तो कुशल श्रमिकों, पूँजी और प्रबंधन की किल्लत पैदा कर दी और दूसरी तरफ़ बेरोज़गारी और अपूँजीकरण की स्थिति उत्पन्न हो गई है। पहली पंचवर्षीय योजना के दौरान ही बड़े व मशीनचालित उद्योग तेज़ी से बढ़ रहे थे और छोटे व हस्तचालित उद्योग लगातार कम होते जा रहे थे। यह प्रक्रिया आगे द्वितीय पंचवर्षीय योजना के दौरान भी चलती रही।

जनसंघ महसूस करता है कि विदेशों से मँगाई गई तकनीक का उत्पादन के अन्य कारकों से तारतम्य बिठाने के बजाय हमें ऐसी तकनीक विकसित करने की चुनौती स्वीकार करनी चाहिए, जो हमारे पास उपलब्ध उत्पादन के कारकों से मेल खाती हो। अगर ऐसा करना है तो हमें द्वितीय पंचवर्षीय योजना से भी ज़्यादा महत्त्वाकांक्षी योजना तैयार करनी होगी, जिसका उद्देश्य अंततः सबको लाभदायक रोज़गार उपलब्ध कराना, आर्थिक असमानता को कम करना और लोगों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाना हो। लघु उद्योग मशीन क्षेत्र का विकेंद्रीकरण कर हम इस लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। पश्चिम के ताज़ा घटनाक्रम भी इसी ओर इंगित करते हैं। द्वितीय पंचवर्षीय योजना मंदी से पूर्व की तकनीक और आर्थिक विचारों पर आधारित है।

जनसंघ की राय है कि यदि हम उत्पादन पर समान ज़ोर दें, समान वितरण करें और उपभोग में संयम बरतें तो एक बेहतर आर्थिक जीवन संभव है। उत्पादन में वृद्धि के

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अनुपात में ही लोगों की ख़रीद क्षमता में भी वृद्धि होनी चाहिए। ऐसा तभी संभव है, जब योजना सबको रोज़गार देने में सक्षम हो। द्वितीय पंचवर्षीय योजना सिर्फ़ रोज़गार के अवसर में वृद्धि की बात करती है। यदि हम रोज़गार के लक्ष्य निश्चित कर दें तो भी करोड़ों बेरोज़गारों के बैकलॉग ख़त्म नहीं होते। इसलिए लक्ष्य को ही घटा दिया गया है। कुछ उद्योगों में, ख़ासकर कॉटन टेक्सटाइल में मंदी लोगों की ख़रीद क्षमता में गिरावट के कारण आई है। चूँकि सरकारी कोष का अधिक भाग पूँजीगत उद्योगों पर ख़र्च हो रहा है, जो कि एक सीमित संख्या में ही लोगों को रोज़गार मुहैया करा पाता है, इसलिए घाटे की वित्त व्यवस्था के बावजूद आम आदमी के हाथ में अतिरिक्त पैसा नहीं आ पाता। सरकार की कर नीति भी ऐसी ही है, जिससे चीज़ों के दाम बढ़ रहे हैं। अब मज़दूरी बढ़ाने की पहल ज़रूर होनी चाहिए। इस दुष्चक्र को तब तक ख़त्म नहीं किया जा सकता, जब तक कि लोगों की ख़रीद क्षमता नहीं बढ़ती। ऐसा हो सकता है, यदि सबसे पहले बेरोज़गारों को रोज़गार दिया जाए और दूसरे सब्सिडी के ज़रिये उन चीज़ों या सामानों के दाम कम किए जाएँ, जिनका बड़ा हिस्सा परिवार के बजट से जुड़ा होता है।

अब यह सब मानते हैं कि कृषि उत्पादन में वृद्धि हमारे लिए पहली चिंता होनी चाहिए। यह एक आकलन है कि हमने आज़ादी से लेकर अब तक लगभग 1,200 करोड़ रुपए के खाद्यान्नों का आयात किया है। योजना आयोग में दूरदृष्टि की कमी थी कि उसने कृषि के बजाय बुनियादी और भारी उद्योगों को प्राथमिकता दी। वे प्रथम पंचवर्षीय योजना के दौरान आकस्मिक परिस्थितियों के कारण कृषि उपज में हुई बढ़ोतरी को समझ नहीं पाए। जनसंघ इस बात से सहमत है कि जब तक कृषि उपज बाज़ार में बिक्री योग्य अधिशेष तक नहीं पहुँचती, तब तक हम न तो उद्योग और शहरी जनसंख्या को पोषित कर सकते हैं और न निर्मित सामान के लिए विकासशील बाज़ार ही तलाश सकते हैं। हम अपने उद्योगों को चलाने के लिए विदेशी बाज़ारों पर निर्भर नहीं हो सकते और न हमें होना ही चाहिए। भारत अपनी विशाल जनसंख्या और प्रचुर संसाधनों के बल पर आसानी से एक आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था का विकास कर सकता है।

कृषि उत्पादन में वृद्धि प्रधानमंत्री की उत्तेजना और 'शॉक ब्रिगेड' के उपहास वाले कार्यक्रमों से नहीं हो सकती। यह योजना ग्रामीणों की आवश्यकता और उनकी मानसिकता समझने में विफल रही। आधे-अधूरे मन से छद्म भूमि सुधार[1] ने ग्रामीण जीवन को

1. छद्म भूमि सुधार : आज़ादी के बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने देश में प्रचलित कृषि व्यवस्था का गहराई से अध्ययन करने व कृषि में सुधार के लिए गांधीवादी अर्थशास्त्री जे.सी. कुमारप्पा (1892-1960) की अध्यक्षता में समिति का गठन किया। समिति द्वारा 1949 में प्रस्तुत रिपोर्ट में सिफ़ारिश की गई कि राज्य और खेतिहरों के बीच सभी बिचौलियों को समाप्त कर दिया जाना चाहिए और भूमि का स्वामित्व कुछ शर्तों के साथ किसानों के पास ही रहना चाहिए, लेकिन ये सिफ़ारिशें सिर्फ़ काग़ज़ों तक ही मौजूद रहीं। प्रथम योजना आयोग ने भी भूमि नीति समिति द्वारा प्रस्तुत मुख्य पहलुओं को नज़रअंदाज़ कर दिया।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

तहस-नहस कर दिया। वे लोगों में पहल करने की इच्छा नहीं जगा सके। द्वितीय योजना में सहकारी खेती का जो लक्ष्य रखा गया है, उससे उपज और कम होगी। हमारा लक्ष्य प्रति एकड़ अधिकतम उपज का है, न कि प्रति व्यक्ति जो खेती में लगे हैं। हमें किसान के स्वामित्व की धारणा पर ही टिके रहना होगा। हाँ, हमें दूरवासी ज़मींदार और अन्य बिचौलियों को ख़त्म करना होगा। बहुत पहले 1951 में ही जनसंघ ने सिंचाई के छोटे साधनों पर काम शुरू करने पर ज़ोर दिया था। इस मामले में जनसंघ की राय देर से समझी जा सकी। खाद्यान्न लक्ष्य व सामुदायिक विकास खंडवार तय किया जाए, इसकी भी आवश्यकता है। कृषि व ग्रामीण विकास से जुड़ी सभी गतिविधियों एवं क्रियाकलापों को समुचित ढंग से चलाने के लिए एक एकीकृत सरकारी मशीनरी होनी चाहिए और इसी को सारे दायित्व दिए जाने चाहिए।

जनसंघ अभी सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार के विरुद्ध है। 1956 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव के बावजूद सरकार ने वह ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली है, जो वैधानिक रूप से लोगों पर ही छोड़ी जा सकती थी। जीवनबीमा, सड़क परिवहन, पाठ्यपुस्तक, स्टेट ट्रेडिंग कॉरपोरेशन, रेलवे के विभागीय खानपान का राष्ट्रीयकरण आदि कुछ ऐसे उदाहरण हैं। कुछ गाँवों में तो तालाबों से मछली पकड़ने के कामों का भी राष्ट्रीयकरण कर दिया गया है और ऐसी चरागाह भूमि, जो ग्राम पंचायत को इस आशय से दी गई थी कि उससे पंचायत को थोड़ी-बहुत आय प्राप्त होगी, वह भी खेती के लिए किराए पर उठा दी गई है। वे ग़रीब जिनके पास भूमि नहीं थी, लेकिन किसी तरह गुजारा कर रहे थे, उनसे भी जीविका का आश्रय छीन लिया गया। समाजवाद प्रतिशोध के साथ काम कर रहा है।

यह भी आवश्यक है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं के संसाधनों का पुनर्मूल्यांकन किया जाए। संसाधन जुटाने के लिए अपनाए गए विभिन्न तरीक़ों का और उसके बाद योजना के क्रियान्वयन का देश की अर्थव्यवस्था पर क्या असर पड़ा, आयोग ने न तो इसका आकलन किया और न कर सकता है। राज्यों के कर-संग्रह प्रयासों का आयोग कट्टर आलोचक रहा है, लेकिन केंद्र के स्तर पर करों की भारी ख़ुराक ने अर्थव्यवस्था को फ़ायदे के बजाय नुक़सान ही पहुँचाया है। सरकार उत्पाद शुल्क में संशोधन और अनिवार्य जमा योजना को वापस लेने को बाध्य हुई, लेकिन तब जब नुक़सान हो चुका था। सरकार द्वारा ग़ैर-योजना व्यय में भारी बढ़ोतरी की गई। हो सकता है कि इससे योजना के लिए राजस्व अधिशेष में कमी आई हो, लेकिन जहाँ तक लोगों पर असर का प्रश्न है तो सारा बोझ उनके ऊपर ही आया। चूँकि पूरी अर्थव्यवस्था एक है, इसलिए सरकार के समस्त संवितरण का ध्यान योजना को रखना चाहिए और इसके संभावित असर का ठीक-ठीक आकलन कर लेना चाहिए। करों को कम करने की ज़रूरत है, ख़ासकर वे कर, जो आवश्यक वस्तुओं के दाम बढ़ाते हैं। सभी विभागों की आर्थिक स्थिति पर भी असर आना चाहिए।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

वित्तीय लक्ष्यों के प्रति जागरूकता और उपलब्धियों के भौतिक मूल्यांकन के लिए कोई मशीनरी नहीं होने के कारण भारी बरबादी होती है। आवश्यकता इस बात की है कि आयोग कोई ऐसा फॉर्मूला निकाले, जिससे लोग यह जान सकें कि विभिन्न क्षेत्रों में जो पूँजी, समय और ऊर्जा ख़र्च की गई, उनसे प्रति यूनिट कितनी भौतिक उपलब्धि हासिल हुई है।

अब यह स्थापित हो गया है कि योजना आयोग ने जिन अनुमानों के आधार पर द्वितीय पंचवर्षीय योजना का प्रारूप तैयार किया था, वे अनुमान असंगत थे। जो तकनीकें उन्होंने इस्तेमाल की, वे इस देश के लिए अवैज्ञानिक और प्रतिकूल थीं। मनमाने ढंग से लक्ष्य निश्चित किए गए थे, और जिन संसाधनों की कल्पना की थी, वे वास्तविकता से दूर थे। एक विकासशील देश में जहाँ पूर्ण संगठित क्षेत्र पूर्ण असंगठित क्षेत्र के साथ सहअस्तित्व में रहता है या विमुद्रित या अर्धमुद्रित क्षेत्र होते हैं, वहाँ क़ानून को कम ही समझा जाता है। यहाँ तक कि विकसित देशों में भी क़ानून का पूरी तरह पालन नहीं किया जाता। पिछले 80 वर्षों में व्यापार व लेन-देन, कारोबार व उद्योग, जो यहाँ स्थापित हुए उन्होंने निगमों या व्यक्तिगत उपक्रमों को प्राप्त स्वतंत्र उद्यमिता की ब्रिटिश परंपरा का पालन किया। योजना आयोग रूसी विचारों के प्रति आसक्त है और वह सरकारी उपक्रमों में लागू करना चाहता है। लेकिन उसके पास पुरानी परंपराओं को छोड़ने या ख़त्म करने का साहस नहीं है। योजना आयोग की इस दुविधा ने एक अनिश्चितता का माहौल तैयार कर दिया है। राजनीतिक पार्टियों से जुड़े होने व चुनावी वायदों के प्रति जागरूक रहने के कारण उसे पार्टी नेताओं के राजनीतिक पेशे और देश की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखकर एक सर्वमान्य संतुलन स्थापित करना था, लेकिन वह इसमें असफल रहा।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य बड़े शानदार हैं, लेकिन उन्हें हासिल करना काफ़ी मुश्किल है, चाहे भले ही इस पर पूरी तरह क्रियान्वयन की संभावना बन जाए। भारी उद्योग पूँजी प्रधान होते हैं और इनके लिए बड़े निवेश चाहिए। यदि समाज को बचाना है, चाहे जैसे भी हो, तो उपभोग को बढ़ावा नहीं दे सकते, ख़ासकर ऐसे समाज में, जहाँ मौजूदा जीवन स्तर बहुत ही निम्न स्तर का है और उपभोग के प्रति ज़बरदस्त झुकाव है। हम पूँजी प्रधान उद्योगों को स्थापित कर रोज़गार नहीं बढ़ा सकते। तकनीकी रूप से विकसित और बीमार उद्योग एक साथ सहअस्तित्व में नहीं रह सकते, ख़ासकर जब वे एक-दूसरे के पूरक नहीं बनते और एक की कमी की क्षतिपूर्ति दूसरे क्षेत्र को प्राप्त फ़ायदे से नहीं होती। आय में विषमता कम नहीं हो सकती, ख़ासकर तब जब हम औद्योगीकरण के लिए पूँजी जुटाने का काम करते हैं। योजना क्रियान्वयन यह दरशाता है कि ग़रीब और ग़रीब होते जा रहे हैं तथा अमीर और अमीर। दोनों असंतुष्ट हैं। ग़रीबों को बढ़ती क़ीमत और बेरोज़गारी की चुभन सता हो रही है तो अमीरों को कई क़ानूनों के दायरे में आने और ज़्यादा कर लगाने से परेशानी हो रही है। आय और संपत्ति में कोई

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

समानता नहीं है, लेकिन अपने भविष्य को लेकर असुरक्षा और अनिश्चितता ज़रूर है।

बुनियादी और भारी उद्योग इस उद्देश्य से लगाए गए थे कि वे देश को पूँजी और उत्पादक सामानों के लिए बाहरी देशों पर से निर्भरता समाप्त कर देंगे। लेकिन हम धीरे-धीरे अपना भविष्य गिरवी रखते जा रहे हैं और विदेशों पर और आश्रित होते जा रहे हैं। पुराने नारे 'उत्पादन करो या मिट जाओ' की जगह अब नए नारे 'निर्यात करो या मिट जाओ' ने ले लिया है। विदेशी सहायता अब हमारे लिए बोझ बन गई है। योजना में औद्योगीकरण को इसलिए सराहा गया कि इससे कृषि पर भार कम होगा। लेकिन औद्योगीकरण ने सीमांत इकाइयों और पुराने उद्योगों को उखाड़कर फेंक दिया, जिसके कारण अधिक-से-अधिक लोग खेती की तरफ़ आ रहे हैं। ज़ाहिर है, हमने इस मामले में एक समन्वित दृष्टिकोण नहीं अपनाया।

जनसंघ माँग करता है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना पर फिर से विचार होना चाहिए और इसका कार्यकाल भी बढ़ाया जाना चाहिए। योजना में कई अभाज्यता हैं, जिन्हें विभिन्न विकास कार्यक्रमों में छाँटना आसान नहीं होगा। भौतिक और वित्तीय लक्ष्यों तथा विभिन्न कार्यक्रमों के बीच भी संतुलन की कमी है। उन्हें ठीक किया जाना चाहिए और प्राथमिकताएँ तय की जानी चाहिए।

आयोग ने योजना को दो भागों में बाँटा है। भाग क में संसाधन हैं, जो दिखते भी नहीं। इस भाग के लिए आयोग ने 240 करोड़ रुपए की कमी का आकलन किया है। आयोग ने हाल ही में केंद्रीय योजना के अधीन 150 करोड़ की नई योजनाओं को शामिल किया है। इसका मतलब है संसाधन की और कमी होगी। बाहरी संसाधन अगर दिख भी रहे हैं तो उन पर निर्भर रहना ठीक नहीं है। वे एक उत्प्रेरक तत्त्व के तौर पर काम आ सकते हैं। लेकिन वे हमारे विकास का आधार नहीं बन सकते। उन पर निर्भरता, न चाहते हुए भी हम पर मनोवैज्ञानिक दबाव डालती है। हमें जितना मिलेगा, हमारी चाहत उतनी ही बढ़ जाएगी।

मौजूदा परिस्थितियों में यही अच्छा रहेगा कि योजना का कार्यकाल बढ़ा दें। इसके लिए कोई समय तय करना सुरक्षित नहीं रहेगा। अच्छा तो यही रहेगा कि इस योजना की कोई समय सीमा ही निश्चित न की जाए। आर्थिक जीवन एक सतत प्रक्रिया है और इसे समय के कालखंडों में विभाजित नहीं किया जा सकता। कार्यक्रम प्रोक्रस्टियन मानकों[2]

2. संकेत ग्रीक मिथकों में वर्णित प्रोक्रस्टिस की ओर है, जो एक लुटेरा था। वह अपने क्षेत्र से गुज़रने वाले लोगों पर हमला कर उन्हें बंधक बना लेता था। उसके पास एक लोहे का तख़्त था, जिस पर वह अपने शिकार को लिटा देता था। अगर वे उससे छोटे पड़ते थे तो वह उन्हें ज़बरदस्ती खींच कर तख़्त के बराबर करने की कोशिश करता था और अगर बड़े पड़ते थे उन्हें लोहे के एक हथौड़े से ठोंक-ठोंककर तख़्त के आकार में अँटाने की कोशिश करता था। इन दोनों ही स्थितियों में व्यक्ति की मृत्यु हो जाती थी। मुहावरे में इसका आशय वस्तुस्थिति का ध्यान रखे बग़ैर मनमाने तरीक़े से तय किए गए एकपक्षीय मानकों से होता है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

के आधार पर तय नहीं किए जा सकते। लक्ष्य के प्रति ज़्यादा संजीदा होने से काफ़ी बरबादी भी होती है और एक समय बेकार की निराशा और हताशा मिलती है। यदि योजना पाँच साल में होने वाले चुनावों के साथ नहीं जुड़ी है तो एक बेहतर और शांत सहयोग के उपाय हो सकते हैं और इसका तसल्ली से तटस्थ मूल्यांकन हो सकता है। इसके साथ अपनी प्रतिष्ठा जोड़ने की ज़रूरत नहीं।

भारत में योजना बनाने का काम एक राजनीतिक खेल हो गया है, न कि इससे जुड़े लोगों द्वारा नए व समृद्ध भारत के निर्माण के लिए गंभीर और ज़िम्मेदारीपूर्ण कार्य। योजना आयोग के पुनर्गठन की आवश्यकता है, जनसंघ की इस पहली आवाज़ को प्राक्कलन समिति ने पहचाना। श्रीमन्नानारायण जो कांग्रेस के महासचिव थे, उन्हें आयोग का सदस्य बनाकर सरकार ने संसदीय समिति की राय के विपरीत राजनीतिक नियुक्ति की। हम महसूस करते हैं कि योजना आयोग का पुनर्गठन इस तरह होना चाहिए कि यह विशेषज्ञों की एक इकाई बने, जिसकी भूमिका सलाहकार के रूप में हो। राष्ट्रीय विकास परिषद् का भी पुनर्गठन होना चाहिए। राजनीतिक पार्टियों में सार्वजनिक राय रखने वाले सदस्यों, व्यापार और बिज़नेस, श्रम और कृषि के जानकारों को इससे जोड़ना चाहिए। यदि योजना राष्ट्रीय है तो इसके गठन और क्रियान्वयन में पक्षपात का नज़रिया नहीं होना चाहिए। सभी पार्टियों को इस प्रक्रिया के लिए बुनियादी स्तर यानी गाँव के स्तर पर जाना चाहिए। मौजूदा सरकार सहयोग की केवल बात करती है, सहयोग चाहती नहीं है। एक साल पहले लघु बचत योजना के लिए सहयोग के जनसंघ के प्रस्ताव पर अभी तक कहीं से कोई उत्तर नहीं आया।

यदि किसी योजना को सफल बनाना है तो ज़रूरी है कि वह वास्तविकताओं पर आधारित हो, न कि वैचारिक मान्यताओं पर। वह राष्ट्रीय होना चाहिए और भेदभावपूर्ण आग्रह नहीं होना चाहिए। इसके साथ ही एक सीमा भी तय होनी चाहिए और उसके आगे योजना को नहीं जाने देना चाहिए। उनका सम्मान भी होना चाहिए। अगर हमारी इच्छा एक लोकतांत्रिक योजना की है तो 1948 में ब्रिटेन की चार वर्षीय योजना[3] के प्राक्कथन में लिखे ये शब्द याद रखने लायक हैं।

ब्रिटेन में आर्थिक नियोजन इन मूल तथ्यों पर आधारित है : आर्थिक तथ्य यह है कि ब्रिटेन की अर्थव्यवस्था अंतरराष्ट्रीय व्यापार पर अत्यंत निर्भर रहे, राजनीतिक तथ्य

3. ब्रिटेन की चार वर्षीय योजना 1948, औपचारिक तौर पर अमरीका द्वारा अप्रैल 1948 से दिसंबर 1951 तक चलने वाला यूरोपीय रिकवरी कार्यक्रम। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद पश्चिमी और दक्षिणी यूरोपीय, 17 देशों की अर्थव्यवस्थाओं के पुनर्वास के लिए अमरीका द्वारा प्रायोजित कार्यक्रम, ताकि इन देशों में लोकतांत्रिक संस्थाएँ जीवित रह सकें। युद्ध के बाद अमरीका ने यह आशंका जताई कि पश्चिमी यूरोप में ग़रीबी, बेरोज़गारी और विश्वयुद्ध के बाद फैली अव्यवस्था से वहाँ के मतदाता कम्युनिस्ट पार्टी की तरफ़ न आकर्षित हो जाएँ, इस योजना के तहत संयुक्त राज्य अमरीका ने 13 अरब डॉलर का आर्थिक समर्थन दिया था।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

यह है कि यह कोशिश करे कि उच्च प्रतिमान की व्यक्तिगत स्वतंत्रता के साथ प्रजातांत्रिक देश बना रहे, और प्रशासनिक तथ्य यह है कि आर्थिक नियोजन करने वाली कोई भी ऐसी इकाई न हो, जो भविष्य की आर्थिक गतिविधियों के सामान्य रुझानों के अलावा और किसी मुद्दे के बारे में सजग रहे।

भारत के आर्थिक तथ्य ये हैं कि यह मुख्य रूप से किसानों का देश है और आगे कृषि औद्योगिक, आत्मनिर्भर और अंतरराष्ट्रीय व्यापार पर न्यूनतम निर्भरता वाले देश के रूप में विकसित होना चाहता है। राजनीतिक तथ्य यह है कि हम अभी-अभी एक स्वतंत्र और लोकतांत्रिक देश के रूप में उभरे हैं। द्वितीय पंचवर्षीय योजना ने इन सभी तथ्यों को नज़रअंदाज़ किया। जहाँ तक राष्ट्रीय सुरक्षा का प्रश्न है, तो इसे पूरी तरह उपेक्षित रखा गया। इसके विपरीत, इसने शांतिप्रिय और मित्र देशों वाली एक ऐसी दुनिया की कल्पना कर ली, जहाँ सभी भारत की सहायता के लिए लालायित हैं और इसके साथ किसी प्रकार के टकराव से बचना चाहते हैं, यहाँ तक कि सुदूर पश्चिम एशिया के देश भी। हम महसूस करते हैं कि योजना के प्रति हमारा पूरा दृष्टिकोण ही बदलना चाहिए। नहीं तो हम लोकतंत्र के आदर्श और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए इतने परिश्रम, आँसू, त्याग के बाद भी उतना हासिल नहीं कर सकते, जितना छोटे-छोटे देश हासिल कर चुके हैं। एक नए योजना आयोग का गठन अपरिहार्य है, क्योंकि मौजूदा सदस्य या तो अपनी ही काल्पनिक योजना के प्रति आसक्त हैं या फिर अपने तर्कों के ग़ुलाम हो गए हैं। वे अब चीज़ों को सही प्ररिप्रेक्ष्य में नहीं देख सकते।

—अगस्त 11, 1958

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

33

भारत ने गिरवी रख दिया अपना भविष्य

चिंताजनक घरेलू आर्थिक परिस्थितियों पर विदेशी मुद्रा ने पूरा ग्रहण लगा दिया है। हमारी सारी ऊर्जा तेज़ी से गिर रहे विदेशी मुद्रा भंडार को बचाने के लिए अधिक से अधिक विदेशी मुद्रा कमाने में लग रही है। रिज़र्व बैंक के ताज़ा (अगस्त 1) आँकड़े के अनुसार हमारा विदेशी मुद्रा भंडार नीचे गिरकर 179.60 करोड़ पर आ गया है। यदि विदेशों में स्थित बैंकिंग विभागों में जमा 13.06 करोड़ के शेष को भी जोड़ लें तो भी भारत का विदेशी मुद्रा भंडार केवल 192.74 करोड़ रुपए का ही होता है। जबकि कम से कम 200 करोड़ रुपए का मुद्रा भंडार रखना वैधानिक ज़रूरत है। हमारा स्वर्ण भंडार 118 करोड़ रुपए का है और इस तरह हमें 82 करोड़ रुपए की और विदेशी प्रतिभूति चाहिए, यदि आर.बी.आई. अधिनियम में एक बार फिर संशोधन कर विदेशी मुद्रा की वैधानिक सीमा कम नहीं की जाती। विदेशी मुद्रा भंडार में गिरावट की दर हर हफ्ते लगभग पाँच करोड़ की है। यानी दस महीने से भी कम समय में, तब तक अगला बजट भी आ जाएगा, हमारा विदेशी मुद्रा भंडार एकदम ख़ाली हो जाएगा। हालाँकि निर्यात बढ़ाने और आयात कम करने की जी तोड़ कोशिश की जा रही है, पर साथ ही मित्र देशों से क़र्ज़ के लिए भी वार्त्ता चल रही है। 25 अगस्त को वाशिंगटन में विश्व बैंक ने एक गुप्त बैठक बुलाई थी, जिसमें अमरीका, ब्रिटेन, पश्चिमी जर्मनी, जापान और कनाडा ने भाग लिया था। इस बैठक में इस बात की चर्चा हुई कि आख़िर किस तरह भारत को विदेशी मुद्रा के इस संकट से बाहर निकाला जाए। स्पष्ट है कि ये देश विश्व के सबसे बड़े अंतरराष्ट्रीय बाज़ारों में एक भारत में अपनी स्थिति मज़बूत बनाए रखने के लिए क़र्ज़ देने के अलावा अन्य सभी उपाय भी करेंगे। उनके यहाँ जिस तरह मंदी का असर दिखाई दे रहा है, उससे भी वे क़र्ज़ देने के लिए मजबूर होंगे। लेकिन भारत क़र्ज़ के बदले अपना भविष्य गिरवी रखने जा रहा है। जिस तरह हमने भारी वायदे किए हैं, हम

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अपेक्षा नहीं कर सकते कि लंबी अवधि तक भुगतान संतुलन ठीक रख सकते हैं।

चूँकि सरकार ने परिस्थितियों से निपटने के लिए ठोस, समन्वित और समग्र प्रयास नहीं किया, इसलिए विदेशी मुद्रा संकट का सारा असर घरेलू बाज़ार पर आ पड़ा और अर्थव्यवस्था भारी दबाव महसूस कर रही है। हाल के हफ्तों में जिस तरह दाम बढ़े हैं, वे असामान्य हैं और सब पर असर डाल रहे हैं। फरवरी में थोक मूल्य सूचकांक 105 से बढ़कर 115.9 हो गए हैं। यह पिछले साल के सर्वाधिक सूचकांक से भी 4 प्रतिशत अधिक है। खाद्य सामग्रियों के मूल्य सबसे ज़्यादा बढ़े हैं। वे इस समय सबसे अधिक 119.7 अंक पर हैं। यह फरवरी के 101.5 अंक से 18 अंक ज़्यादा है। खाद्य पदार्थों के दाम में हुई इस अचानक वृद्धि से ग़रीब और मध्य आय वर्ग के परिवारों पर बहुत बुरा असर पड़ा है। पूर्वी उत्तर प्रदेश, जो ग़रीबी और अत्यंत अभाव के लिए कुख्यात है, से भुखमरी की ख़बरें आ रही हैं। केवल खाद्यान्न ही नहीं, औद्योगिक कच्चे माल और निर्माण उद्योग से जुड़ी चीज़ों के दाम भी 3 प्रतिशत और 1 प्रतिशत बढ़ गए हैं। यदि हम खुदरा बाज़ार की बात करें तो यह मूल्य वृद्धि और भी अधिक है। उपभोक्ता मूल्य सूचकांक यह दरशाता है कि जून में भी मूल्य बढ़ोतरी हो रही है। सबसे अधिक कटक में 9 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। यहाँ तक कि पान, जो कि दो पैसे की एक खिल्ली मिलती थी, अब पाँच नए पैसे की एक हो गई है। सरकार की आयात नीति और उसके साथ घाटे की वित्त व्यवस्था ने मूल्य वृद्धि को और बढ़ावा दिया है। रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया के गवर्नर श्री एच.वी.आर. आयंगर ने चेतावनी जारी करते हुए कहा है—स्फीति के दबावों को कम करने के लिए हमें बड़े मोरचे पर नए टिकाऊ और गंभीर क़दम उठाने की आवश्यकता है। क्योंकि मुद्रा स्फीति को काबू में रखने के लिए पहले जो उपाय किए गए हैं, अब वे पहले की तरह असर नहीं कर रहे हैं।' दरअसल यह चेतावनी तब जारी की गई जब मुद्रास्फीति को काबू में रखने वाले उपाय पहले ही बेकार हो चुके थे। ऐसे देश में जहाँ लोगों की औसत आमदनी काफ़ी कम हो और उसमें भी कमाई का अधिकांश हिस्सा ज़रूरत की चीज़ों, ख़ासकर भोजन, पर ख़र्च हो जाता हो, वहाँ तो मुद्रास्फीति दुधारी तलवार की तरह होती है। मूल्य वृद्धि के कारण यह उपभोक्ताओं पर असर डालती है तो बाज़ार पर दबाव के कारण उत्पादकों पर। फंड के बड़े पैमाने पर वितरण करने की अपनी नीति जारी रखने के मामले में सरकार कुछ ख़ास समझदारी नहीं दिखा सकी।

सरकार ने बड़ी संख्या में लोन के ज़रिये कुछ पैसा बाज़ार में डालने की कोशिश की है। रिज़र्व बैंक की मुद्रा एवं वित्त की रिपोर्ट कहती है कि इस सच्चाई के बावजूद कि मुद्रा बाज़ार पर कोई दबाव नहीं है, बैंकों के पास अधिशेष कोष भी उपलब्ध है, सरकार ने पहले से ज़्यादा आसान शर्तों पर क़र्ज़ देने की पेशकश की है। बाज़ार में उतरने के कुछ ही हफ्तों के अंदर बहुत सारे राज्य प्रीमियम पर लोन जारी कर रहे थे, लेकिन कुछ के

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

लिए कोई विक्रेता नहीं था। सप्ताह के दौरान रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया ने कई ऋणों के विक्रय मूल्य को बढ़ा दिया, लेकिन इन ऋणों को जारी करते समय वह मुद्रा बाज़ार की चाल के बारे में सरकारों को सलाह देने में विफल रहे।

क़ीमत के मोरचे पर सावधानीपूर्वक जानकारी और मज़बूत क़दम की ज़रूरत होती है। पिछले साल अधिकारी रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया द्वारा साख पर अंकुश लगाने के सामान्य तरीक़ों को ही आज़माते रहे। लेकिन उनका असर सीमित है। वे एक अस्थाई उद्‌देश्य के लिए काम करते हैं। इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ बैंकर्स की बैठक की अध्यक्षता करते हुए श्री एच.वी.आर आयंगर ने माना भी कि मौद्रिक नियंत्रण की संभावनाओं को ज़्यादा नहीं बढ़ाना चाहिए। उन्होंने आगे जोड़ा—मौद्रिक नियंत्रण की कोई भी सीमा हम तय नहीं कर सकते। उदाहरण के लिए खाद्यान्न उत्पादन वृद्धि या अन्य उत्पादन। मौद्रिक नियंत्रण के बारे में असामाजिक तत्त्वों की कोई भूमिका नहीं छोड़ सकते, जो जमाखोरी और कालाबाज़ारी में लिप्त होते हैं और जो परेशानी के दिनों में स्थिति का फ़ायदा उठाकर मनमाना दाम वसूलते हैं। देश में एक बहुत बड़ा ग़ैर अमौद्रीकृत क्षेत्र भी है, यहाँ केंद्रीय बैंक की भूमिका बहुत असरदार नहीं रही है।

उचित मूल्य की बहुत सारी दुकानें खुल गई हैं, और ऐसी दुकानें खोलने की माँग आ रही है। उत्तर प्रदेश की सरकार ने कुछ बड़े शहरों में सीमित गल्ले की दुकानें शुरू की हैं। लेकिन इतने भर से समस्या का समाधान नहीं होने वाला है। वे बमुश्किल समाज के निम्न तबके तक पहुँच पा रही हैं और इन दुकानों के ज़रिये सरकार ने जो भी रियायतें दी हैं, वह बीच के दलाल खा जा रहे हैं।

विदेशी मुद्रा के मोरचे पर देखें तो निर्यात व्यापार को बढ़ाने की आवश्यकता से इनकार नहीं किया जा सकता। लेकिन निर्यात बढ़ाने का कोई भी क़दम ऐसा न हो, जिससे घरेलू बाज़ार में कोई विघ्न पड़े। वास्तव में सरकार भी इसी तरह के संकोच और बेतरतीब नीतियों में उलझ गई है। परिणाम यह हुआ है कि निर्यात संवर्धन समिति द्वारा 750 करोड़ के निर्यात का लक्ष्य काफ़ी पीछे छूट गया। वर्ष 1958 में पिछले वर्ष 1957 के मुक़ाबले निर्यात में 50 करोड़ रुपए की गिरावट आई। चाय, जूट और कपड़ों का निर्यात और कम हो गया। सरकार ने जो भी क़दम उठाए, उससे व्यापार में कोई सहायता नहीं मिली, ऐसा इसलिए हुआ, क्योंकि सरकार ने ये क़दम बहुत देरी से और टुकड़ों-टुकड़ों में उठाए।

बहुत सारी वस्तुओं पर से निर्यात शुल्क हटा दिया गया और सरकार ने कुछ वस्तुओं को छोड़कर जिन पर भारी निर्यात शुल्क लागू हैं, सभी प्रकार की निर्यात सुविधाओं का प्रस्ताव दिया। लगभग 75 वस्तुओं, जिनका उपयोग निर्यात किए जाने वाले उत्पादों के निर्माण के लिए कच्चे माल के रूप में होता है, पर लागू आयात व

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

उत्पाद शुल्क में छूट दी गई। बंदरगाहों तक माल पहुँचाने के लिए रियायती माल भाड़ा और विशेष वैगन उपलब्ध कराने का प्रस्ताव दिया गया। इन रियायतों से कुछ हद तक निर्यात संवर्धन को बल मिला, लेकिन घरेलू बाज़ार की स्थिति और ज़्यादा ख़राब हो गई। कई वस्तुओं के दाम में घरेलू और विदेशी बाज़ार में इतना अंतर आ गया कि उन्हें और सब्सिडी की ज़रूरत महसूस होने लगी। चीनी के निर्यात पर पहले ही सब्सिडी दी जा रही थी, जिससे घरेलू उपभोक्ताओं को चीनी ज़्यादा महँगी मिलने लगी। इसके कारण राजस्व का भी भारी नुक़सान होने लगा।

यहाँ यह भी देखना आवश्यक है कि सरकार द्वारा दी गई रियायतों को कहीं जमाखोर या सटोरिये तो चट नहीं कर रहे। वायदा कारोबार पर साख संकुचन इन रियायतों से पहले किया जाना चाहिए, नहीं तो सटोरिये दाम बढ़ा देंगे। हाल ही में सरकार ने कुछ वस्तुओं पर से थोड़ा या पूरा निर्यात शुल्क हटाने की घोषणा की है, लेकिन इन वस्तुओं की क़ीमतें इस नीति को उचित नहीं ठहरातीं। रेंडी जो कि निर्यात शुल्क हटाने से पहले 153 रुपए में बेची जाती थी, अब निर्यात शुल्क हटाने के बाद 170 रुपए हो गई है। इसी तरह मूँगफली 171 रुपए से बढ़कर 197 रुपए, कपास बीज 113 रुपए से बढ़कर 124 रुपए, अलसी का तेल 16 रुपए 56 पैसे से बढ़कर 18 रुपए 44 पैसे हो गया है। इनमें से अधिकतर वस्तुओं की वर्तमान क़ीमत समान रूप से शुल्क हटाए जाने से पहले की क़ीमत से ज़्यादा हो गई है। यह एक बिना सोचे-समझे और बिना समन्वय के क़दम उठाने के नतीजे हैं। फिर भी निर्यात बाज़ार के अपने हौसले और उत्साह को कम न करें। विदेशी मुद्रा भंडार के अंतर को पाटने की अपनी कोशिशों को कम न करें, क्योंकि यह हमारे देश के ग़रीबों और मध्य आय वर्ग पर अकथनीय और असहनीय असर डाल रहा है।

—ऑर्गनाइज़र, अगस्त 8, 1958

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

लिए कोई विक्रेता नहीं था। सप्ताह के दौरान रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया ने कई ऋणों के विक्रय मूल्य को बढ़ा दिया, लेकिन इन ऋणों को जारी करते समय वह मुद्रा बाज़ार की चाल के बारे में सरकारों को सलाह देने में विफल रहे।

क़ीमत के मोरचे पर सावधानीपूर्वक जानकारी और मज़बूत क़दम की ज़रूरत होती है। पिछले साल अधिकारी रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया द्वारा साख पर अंकुश लगाने के सामान्य तरीक़ों को ही आज़माते रहे। लेकिन उनका असर सीमित है। वे एक अस्थाई उद्देश्य के लिए काम करते हैं। इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ बैंकर्स की बैठक की अध्यक्षता करते हुए श्री एच.वी.आर आयंगर ने माना भी कि मौद्रिक नियंत्रण की संभावनाओं को ज़्यादा नहीं बढ़ाना चाहिए। उन्होंने आगे जोड़ा—मौद्रिक नियंत्रण की कोई भी सीमा हम तय नहीं कर सकते। उदाहरण के लिए खाद्यान्न उत्पादन वृद्धि या अन्य उत्पादन। मौद्रिक नियंत्रण के बारे में असामाजिक तत्त्वों की कोई भूमिका नहीं छोड़ सकते, जो जमाखोरी और कालाबाज़ारी में लिप्त होते हैं और जो परेशानी के दिनों में स्थिति का फ़ायदा उठाकर मनमाना दाम वसूलते हैं। देश में एक बहुत बड़ा ग़ैर अमौद्रीकृत क्षेत्र भी है, यहाँ केंद्रीय बैंक की भूमिका बहुत असरदार नहीं रही है।

उचित मूल्य की बहुत सारी दुकानें खुल गई हैं, और ऐसी दुकानें खोलने की माँग आ रही है। उत्तर प्रदेश की सरकार ने कुछ बड़े शहरों में सीमित गल्ले की दुकानें शुरू की हैं। लेकिन इतने भर से समस्या का समाधान नहीं होने वाला है। वे बमुश्किल समाज के निम्न तबके तक पहुँच पा रही हैं और इन दुकानों के ज़रिये सरकार ने जो भी रियायतें दी हैं, वह बीच के दलाल खा जा रहे हैं।

विदेशी मुद्रा के मोरचे पर देखें तो निर्यात व्यापार को बढ़ाने की आवश्यकता से इनकार नहीं किया जा सकता। लेकिन निर्यात बढ़ाने का कोई भी क़दम ऐसा न हो, जिससे घरेलू बाज़ार में कोई विघ्न पड़े। वास्तव में सरकार भी इसी तरह के संकोच और बेतरतीब नीतियों में उलझ गई है। परिणाम यह हुआ है कि निर्यात संवर्धन समिति द्वारा 750 करोड़ के निर्यात का लक्ष्य काफ़ी पीछे छूट गया। वर्ष 1958 में पिछले वर्ष 1957 के मुक़ाबले निर्यात में 50 करोड़ रुपए की गिरावट आई। चाय, जूट और कपड़ों का निर्यात और कम हो गया। सरकार ने जो भी क़दम उठाए, उससे व्यापार में कोई सहायता नहीं मिली, ऐसा इसलिए हुआ, क्योंकि सरकार ने ये क़दम बहुत देरी से और टुकड़ों-टुकड़ों में उठाए।

बहुत सारी वस्तुओं पर से निर्यात शुल्क हटा दिया गया और सरकार ने कुछ वस्तुओं को छोड़कर जिन पर भारी निर्यात शुल्क लागू हैं, सभी प्रकार की निर्यात सुविधाओं का प्रस्ताव दिया। लगभग 75 वस्तुओं, जिनका उपयोग निर्यात किए जाने वाले उत्पादों के निर्माण के लिए कच्चे माल के रूप में होता है, पर लागू आयात व

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

उत्पाद शुल्क में छूट दी गई। बंदरगाहों तक माल पहुँचाने के लिए रियायती माल भाड़ा और विशेष वैगन उपलब्ध कराने का प्रस्ताव दिया गया। इन रियायतों से कुछ हद तक निर्यात संवर्धन को बल मिला, लेकिन घरेलू बाज़ार की स्थिति और ज़्यादा ख़राब हो गई। कई वस्तुओं के दाम में घरेलू और विदेशी बाज़ार में इतना अंतर आ गया कि उन्हें और सब्सिडी की ज़रूरत महसूस होने लगी। चीनी के निर्यात पर पहले ही सब्सिडी दी जा रही थी, जिससे घरेलू उपभोक्ताओं को चीनी ज़्यादा महँगी मिलने लगी। इसके कारण राजस्व का भी भारी नुक़सान होने लगा।

यहाँ यह भी देखना आवश्यक है कि सरकार द्वारा दी गई रियायतों को कहीं जमाखोर या सटोरिये तो चट नहीं कर रहे। वायदा कारोबार पर साख संकुचन इन रियायतों से पहले किया जाना चाहिए, नहीं तो सटोरिये दाम बढ़ा देंगे। हाल ही में सरकार ने कुछ वस्तुओं पर से थोड़ा या पूरा निर्यात शुल्क हटाने की घोषणा की है, लेकिन इन वस्तुओं की क़ीमतें इस नीति को उचित नहीं ठहरातीं। रेंडी जो कि निर्यात शुल्क हटाने से पहले 153 रुपए में बेची जाती थी, अब निर्यात शुल्क हटाने के बाद 170 रुपए हो गई है। इसी तरह मूँगफली 171 रुपए से बढ़कर 197 रुपए, कपास बीज 113 रुपए से बढ़कर 124 रुपए, अलसी का तेल 16 रुपए 56 पैसे से बढ़कर 18 रुपए 44 पैसे हो गया है। इनमें से अधिकतर वस्तुओं की वर्तमान क़ीमत समान रूप से शुल्क हटाए जाने से पहले की क़ीमत से ज़्यादा हो गई है। यह एक बिना सोचे-समझे और बिना समन्वय के क़दम उठाने के नतीजे हैं। फिर भी निर्यात बाज़ार के अपने हौसले और उत्साह को कम न करें। विदेशी मुद्रा भंडार के अंतर को पाटने की अपनी कोशिशों को कम न करें, क्योंकि यह हमारे देश के ग़रीबों और मध्य आय वर्ग पर अकथनीय और असहनीय असर डाल रहा है।

—ऑर्गनाइज़र, अगस्त 8, 1958

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

34

भारत रक्षा दिवस के रूप में मनाएँ 15 अगस्त

प्रेस को जारी दीनदयालजी का एक वक्तव्य।

आसाम और त्रिपुरा में भारतीय सीमाओं का लगातार उल्लंघन, भारतीय क्षेत्र पर जबरन क़ब्ज़े और लखीमपुर में आक्रामक घुसपैठ आदि कुछ ऐसे उदाहरण हैं, जिससे स्पष्ट है कि पाकिस्तान भारत के साथ संघर्ष की ओर बढ़ रहा है। अमरीका से अत्याधुनिक युद्ध सामग्री और हथियारों को प्राप्त करने तथा बगदाद पैक्ट के ज़रिये कुछ देशों से सक्रिय सहयोग के आश्वासन के बाद पाकिस्तान एक ऐसी परिस्थिति का निर्माण कर रहा है, जहाँ उसे भारत के ख़िलाफ़ पूरी तरह आक्रामक रवैया अख़्तियार करने का कोई सही बहाना मिल सके। जिस तरह से उसने त्रिपुरा की सीमा पर पठान डिवीजन को इकट्ठा व तैयार किया है, उससे तो यही लगता है कि पाकिस्तान त्रिपुरा को हथियाना चाहता है और इसके पहले कि भारत इस परिस्थिति से रूबरू हो, वह दुनिया के सामने यह प्रस्तुत करे कि मौजूदा हालात में उसके लिए यही ठीक है।

भारत सरकार इस गंभीर मामले को जिस तरह हलके में ले रही है, उससे परिस्थितियाँ और गंभीर हो रही हैं। एक तरफ़ पाकिस्तान अपनी सबसे क़ाबिल टुकड़ी को सीमा पर ले आया है और दूसरी तरफ़ भारत स्थानीय अधिकारियों और सीमा सुरक्षा बल के ज़रिये इस मामले को चला रहा है। या तो सरकार सचमुच मामले की गंभीरता नहीं समझ पा रही है या फिर जानबूझकर इसे मामूली दिखाने की कोशिश कर रही है।

जनसंघ हमेशा से यह माँग करता रहा है कि रक्षा देश की पहली प्राथमिकता होनी चाहिए। रक्षा के मामले में कोई भी चूक हमारी आर्थिक योजनाओं और औद्योगिक

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पुनर्निर्माण को शून्य बनाकर रख देगी। इसलिए यह आवश्यक है कि हम अपने नागरिकों को रक्षा के प्रति जागरूक बनाएँ, सैन्यशक्ति तेज़ी से बढ़ाएँ और पाकिस्तान की आक्रामकता का मुँहतोड़ जवाब दें। केवल क़ाग़जी विरोध का पाकिस्तान पर कोई असर नहीं होने वाला है। वह तब तक सुधर नहीं सकता, जब तक हम उसकी समझ में आने वाली भाषा में उसका जवाब न दें।

इसलिए मैं सरकार से अपील करता हूँ कि वह जगे और पाकिस्तान से लखीमपुर[1] ख़ाली कराने के लिए आवश्यक क़दम तत्काल उठाए। अपनी सीमाओं की रक्षा और मज़बूत तैयारी के लिए सभी आवश्यक क़दम उठाए जाने चाहिए और भारत से होकर पाकिस्तान जाने वाले सामानों के बारे में हमारी नीति जैसे को तैसा के आधार पर होनी चाहिए।

साथ-साथ इस मामले पर जनता की राय भी ली जानी चाहिए। मैं भारतीय जनसंघ की सभी शाखाओं से आह्वान करता हूँ कि वे 15 अगस्त को भारत रक्षा दिवस के रूप में मनाएँ। इस दिन सार्वजनिक सभाओं का आयोजन हो और जनता को परिस्थितियों से अवगत कराया जाए।

—ऑर्गनाइज़र, अगस्त 18, 1958

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

---

1. 1958 में पाकिस्तान कई महीनों तक लगातार आसाम के कूच बिहार ज़िले तथा त्रिपुरा के सीमावर्ती क्षेत्र में अंधाधुंध गोली वर्षा करता रहा और उसने आसाम के तुकेरग्राम तथा त्रिपुरा के लखीमपुर ग्रामों पर क़ब्ज़ा कर लिया। इस संबंध में सचिवों के स्तर पर कराची में एक सम्मलेन हुआ, जो असफल रहा था। बाद में भारत व पाकिस्तान के प्रधानमंत्रियों के बीच हुए नेहरू-नून समझौते में भी इसका कोई उल्लेख तक नहीं किया गया तथा उन्हें पाकिस्तान के अवैध अधिकार में रहने दिया गया।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

35

लोगों को प्रेरित न कर सका पंद्रह अगस्त

15 अगस्त को विभिन्न जगहों पर होने वाले जलसों से ऐसा प्रतीत होता है कि लोगों का रुझान इसके प्रति कम हो रहा है। सरकारी कार्यक्रमों में लोगों की उपस्थिति धीरे-धीरे कम होती जा रही है और आगे यह गिरावट की ओर ही जा रही है। यहाँ तक कि लाल क़िले पर भी, जहाँ पंडित नेहरू हमेशा सभा को संबोधित करते हैं, कुछ ग्रामीणों को छोड़ प्रांगण लगभग ख़ाली ही रहता है। साफ़ है कि यह समारोह लोगों को प्रेरित करने में विफल रहा है। देश की यह दयनीय स्थिति और आम आदमी की मुश्किलों को देखकर कहा जा सकता है कि लोगों की रुचि कम हो रही है। लेकिन दो दिन बाद ही रामलीला मैदान में परंपरागत मेला देखने आए दिल्ली के नागरिकों, ख़ासकर महिलाओं में जिस तरह का उल्लास और उत्साह देखा गया, वह इस बात को इंगित करता है कि सरकार लोक भावनाओं को जगाने में पूरी तरह विफल रही है। सच्चाई यह है कि निराश लोग कुछ और के लिए नहीं, परंतु अपने ग़मों को भुलाने के लिए कोई भी अवसर नहीं जाने देते, जिसमें वे मगन हो सकते हैं।

राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री या राज्यों के अन्य गणमान्य व्यक्ति अपने भाषणों और संदेशों के ज़रिये लोगों में नेतृत्व के प्रति उत्साह भरने में विफल सिद्ध हुए हैं। राष्ट्रपति का संदेश एक औपचारिक घोषणा की तरह है। उनके द्वारा व्यक्त की गई भावनाओं का वास्तविक जीवन में कोई विशेष अर्थ नहीं है। प्रधानमंत्री भी हमेशा की तरह विघटन और उपद्रव की आग लगाने वालों को धमकी देते नज़र आए, लेकिन वह किसे धमका रहे थे, कोई नहीं जानता।

दरअसल स्वतंत्रता दिवस का जलसा लोगों को यह बताने का अवसर होना चाहिए कि किस तरह हम मुश्किल से हासिल आज़ादी को अक्षुण्ण और सुरक्षित रख सकते हैं। पाकिस्तान ने सीमाओं का उल्लंघन कर भारत की क्षेत्रीय अखंडता को चुनौती दी है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कश्मीर पर अपनी आक्रामक नीतियों को जारी रखते हुए पाकिस्तान ने हाल ही में भारत के 400 वर्ग किलोमीटर भूभाग पर क़ब्ज़ा जमा लिया है। क्या हमारी सरकार का कर्तव्य नहीं बनता था कि वह मातृभूमि की रक्षा के लिए लोगों को तैयार रहने का आह्वान करती।

पाकिस्तान के प्रधानमंत्री ने सीमा पर हो रहे हमलों पर वार्त्ता के लिए पंडित नेहरू के साथ बैठक करने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है। यह समझना वाक़ई ज़रूरी है कि आख़िर वे क्या चर्चा करने वाले हैं। जब तक पाकिस्तानी वापस नहीं जाते या सीमा के उस पार भगा नहीं दिए जाते तब तक किसी वार्त्ता को शुरू करने का मतलब ही नहीं है। पाकिस्तान अपनी उसी नीति पर चल रहा है कि पहले आक्रमण करो और फिर क़ब्ज़ा करो, उसके बाद अपनी बढ़त को प्रधानमंत्री या अधिकारियों के साथ बैठक में मज़बूत करो। जब पाकिस्तान की सेना भारत की पूर्वी सीमा पर कोई कार्रवाई करती है, तो तब तक नागरिक अधिकारियों को उसमें हस्तक्षेप की इजाज़त नहीं देनी चाहिए जब तक कि हमारी सेना उनके आक्रमण का माकूल जवाब देकर पाकिस्तान को सबक न सिखा दे।

स्वर्ण बांड योजना एक और स्टंट

लोकसभा में केंद्रीय वित्त मंत्री के बयान से लगता है कि स्वर्ण बांड जारी करने की योजना, जो कभी मशहूर मेसर्स मोतीलाल बिजभूकनदास के श्री शांतिलाल सोनावाला के दिमाग़ की उपज मानी जाती थी, को लागू करने पर सरकार गंभीरता से सोच रही है। वित्तमंत्री के इशारे के बाद जैसे ही स्वर्ण बांड जारी करने की अटकलें लगीं, इस पीली धातु की क़ीमत बढ़ गई। इस हफ्ते गोल्ड श्रवण सेकंड की सबसे अधिक क़ीमत 107.3 रुपए थी। यह पिछले हफ़्ते के मुक़ाबले 3/8 रुपए अधिक महँगी थी। चूँकि इस भावी मुद्दे के बारे में कोई अतिरिक्त जानकारी उपलब्ध नहीं है, इसलिए इसके असर पर, सिवाय इसके कि इस बेशक़ीमती धातु की माँग बढ़ जाएगी तथा तस्करों के व्यापार और मुनाफ़े भी बढ़ जाएँगे, कोई चर्चा फ़िलहाल मुश्किल है।

अप्रैल की बुलेटिन में प्रकाशित रिपोर्ट में रिज़र्व बैंक ने आकलन किया है कि देश में 1050 लाख औंस सोने की जमाखोरी निजी क्षेत्रों ने की है। 289 रुपए प्रति औंस (भारतीय क़ीमत) के अनुसार जमाखोरी के सोने की क़ीमत 3035 करोड़ रुपए है, जबकि 167 रुपए प्रति औंस की अंतरराष्ट्रीय क़ीमत के अनुसार इस सोने का मूल्य 1750 करोड़ रुपए होगा। लेकिन कितना इकट्ठा किया जा सकता है, इस पर अलग-अलग राय है। कुछ लोग 10 से 15 प्रतिशत कह रहे हैं तो कुछ इससे भी बहुत कम का आकलन कर रहे हैं। इतना निश्चित है कि भारत में छड़ के आकार में सोना बहुत ही कम है। अधिकतर जेवर, मूर्ति या फिर बरतनों के रूप में है। भावनात्मक कारणों से लोग सामान्यतया इसे नहीं निकालेंगे। सरकार ने इस संबंध में जो भी अपील की है, उसके परिणामस्वरूप आधा

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

दर्जन कान की बालियाँ और कुछ छोटी चीज़ें ही आई हैं। यदि हम लोगों के पास जमा 15 प्रतिशत सोना निकाल भी लेते हैं तो यह अधिकतम 265 करोड़ रुपए का होगा। इस स्वर्ण बांड योजना के समर्थक सलाह के लिए फ्रांस की ओर देख रहे हैं। फ्रांस ने इस तरह के स्वर्ण बांड दो बार जारी किए हैं। हालाँकि उसका दूसरा अनुभव पहले से बेहतर था, तो भी वह अपने यहाँ केवल दो प्रतिशत सोना ही जमा कर सका। हमारे यहाँ सोने के मामले में परिस्थितियाँ फ्रांस से बहुत भिन्न हैं।

बॉम्बे बुलियन एसोसिएशन के अध्यक्ष श्री चुन्नी लाल बी मेहता और कुछ अन्य अर्थशास्त्रियों ने इस योजना का समर्थन किया है। लेकिन उनकी शर्तें ज़्यादा कड़ी हैं। श्री मेहता ने सुझाव दिया है कि सरकार यह पक्का वादा करे कि गोल्ड लोन का पुनर्भुगतान सोने में ही होगा। इस पर किसी भी प्रकार का प्रत्यक्ष कर नहीं लगेगा। इसके स्रोत के बारे में कोई जाँच आदि नहीं होगी। लोगों में भरोसा जताने के लिए सरकार को सोने के सिक्के यानी गोल्ड मोहर जारी करने चाहिए और इस पर प्राप्त तीन प्रतिशत ब्याज पर आय कर छूट होनी चाहिए।

सवाल यह है कि आख़िर सरकार को सोना किसलिए चाहिए? साफ़ है कि इसे रिज़र्व में रखकर अधिक नोट जारी करने का लक्ष्य नहीं है। विदेशी मुद्रा संकट से बचने के लिए इसकी आवश्यकता है। यदि ऐसा है तो क्या सरकार के लिए संभव है कि वह लोगों का सोना उन्हें वापस लौटाने के लिए भविष्य में कोई तारीख़ निश्चित कर सके। विदेशी मुद्रा का संकट कुछ वर्षों में ख़त्म नहीं होने वाला है। यह संकट लंबे समय तक चलने वाला है। क्या यह उचित है कि इस त्रुटिपूर्ण योजना के क्रियान्वयन के लिए हम अपने सभी आंतरिक स्रोतों को जाया कर दें। यहाँ खाद्यान्नों का भारी संकट है। ऐसा माना जा रहा है कि आने वाले वर्षों में हमें अनाजों का आयात करना पड़ेगा। ऐसे समय के लिए हमें अपनी इस बेशक़ीमती धातु को बचाकर रखना चाहिए। सरकार का यह क़दम लोगों के आत्मविश्वास को हिला सकता है। फिर भारतीय और अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में सोने की क़ीमत में भारी अंतर है। इसलिए हमें भारी सब्सिडी की ज़रूरत पड़ेगी और करदाताओं पर भारी ब्याज की दर का बोझ पड़ेगा।

एक सुझाव यह भी है कि निजी खाते के तहत सोने के निर्यात को मंजूरी दे दी जाए और इससे जो विदेशी मुद्रा प्राप्त हो, उसे आवश्यक वस्तुओं के आयात के लिए सुरक्षित कर दिया जाए। इससे देश में सोने का दाम बढ़ जाएगा। सर्राफे के दाम में असाधारण वृद्धि होने से हमारे घरेलू मूल्य ढाँचे पर प्रतिकूल असर पड़ेगा। यदि सोने की तस्करी नहीं रोकी गई तो इन परिस्थितियों में हमारे देश को दुहरा नुक़सान होगा।

—ऑर्गनाइज़र, अगस्त 25, 1958

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

36

उत्तर प्रदेश का खाद्य संकट गहराया

उत्तर प्रदेश की विभिन्न विपक्षी पार्टियों द्वारा चलाए जा रहे आंदोलन ने सामान्य तौर पर पूरे देश और ख़ासकर उत्तर प्रदेश में खाद्य संकट की स्थिति पैदा कर दी है। देश में खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाने के महत्त्व को बहुत देर से समझा गया है। विपक्षी पार्टियों ने इस समस्या से निपटने के लिए कई उपाय सुझाए हैं। इनमें पर्याप्त संख्या में उचित मूल्य की दुकानें, सरकारी देनदारियों का स्थगन, रिज़र्व बैंक द्वारा साख संकुचन, तार्किक आधार पर खाद्य क्षेत्र का पुनर्गठन, और निराश्रितों के लिए मुफ्त अनाज का वितरण शामिल है। कुछ पार्टियाँ ख़ुद ही गोदामों से अनाज निकालकर ज़रूरतमंदों को बाँट रही हैं। जमाखोरों से गेहूँ और अन्य अनाजों के भंडार जब्त करने के भी सुझाव आए हैं। मौजूदा संकट को कम करने लिए ये सभी उपाय ज़रूरी हो सकते हैं, लेकिन ये उपाय हमें समस्या के मूल तक शायद ही ले जाते हैं। बल्कि इसके उलट ये हमारा ध्यान कहीं और ले जा सकते हैं और इसका नतीजा यह हो सकता है कि हम इस बीमारी के सिर्फ़ लक्षणात्मक इलाज में ही अपनी सारी ऊर्जा ख़र्च कर डालें।

यह संकट बाढ़ या सूखे के कारण भी बढ़ सकता है, लेकिन इस बार यह संकट मुख्य रूप से द्वितीय योजना में सरकार की निवेश नीति के कारण उत्पन्न हुआ है। पहली पंचवर्षीय योजना के अंतिम वर्ष से ही सरकार अधिक-से-अधिक सार्वजनिक क्षेत्र के निगमों में ही निवेश कर रही है। इनमें से अधिक का वित्तपोषण किसी ऋण या कर संग्रह के ज़रिये नहीं हुआ है, बल्कि सरकार ने निर्मित मुद्रा से किया है। पहली पंचवर्षीय योजना में 420 करोड़ रुपए की घाटे की वित्त व्यवस्था (पाँचवें साल में 180 करोड़ रुपए की) के साथ-साथ द्वितीय पंचवर्षीय योजना के भी तीन साल इसी तरह की वित्त व्यवस्था पर सरकार ज़्यादा आश्रित रही। द्वितीय योजना के पहले दो साल में 1600 करोड़ रुपए की योजना व्यय में से 703 करोड़ रुपए घाटे की वित्त व्यवस्था के मद से ही जारी किए गए।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

यहाँ तक कि चालू वर्ष के बजट प्रावधान में इसे 280 करोड़ रुपए रखा गया है, क्योंकि हाल के उत्पाद एवं आयात शुल्क में छूट देने के कारण और ह्रासमान रिटर्न क़ानून के लागू होने के कारण परिचालन में गिरावट आई है। यदि सरकार योजना में बड़ी छँटाई नहीं करती, जिसके आसार अभी तक नज़र नहीं आए हैं, तो इस बात की पूरी संभावना है कि यह 280 करोड़ रुपए की राशि और बढ़ेगी। दामों में तेज़ी के लिए मुख्य रूप से सरकार की विस्तारवादी मौद्रिक नीति ही ज़िम्मेदार है।

हो सकता है कि बाज़ार में अनाजों की कमी हो, लेकिन जहाँ तक उत्पादन का सवाल है तो यह 1956-57 में 687 लाख टन के उच्चतम आँकड़े को छू चुका है। 1957-58 में ज़रूर अनाज के उत्पादन में 60 लाख टन की गिरावट आई, लेकिन 1956-57 में 111 करोड़ और 1957-58 में 167 करोड़ के आयातित अनाजों की आपूर्ति की गई थी। यह उत्पादन में गिरावट के अंतर को पाटने के लिए काफ़ी था। मूल्यों में वृद्धि के लिए अनाजों की उपलब्धता से अधिक मुद्रा आपूर्ति के अलावा और किसे दोष दिया जा सकता है। मुद्रा आपूर्ति का सूचकांक 1956-57 में 133 (1952-53 में 100) पर था और यह ऊपर जा रहा था।

सरकार इस भ्रम में थी कि व्यापार खाते में प्रतिकूल शेष हमारी मुद्रा के एक अवस्फीतिकारी शक्ति के रूप में काम कर रहा है। इस तरह की आर्थिक परिस्थितियों में यह सिद्धांत काम नहीं कर सकता, क्योंकि प्रतिकूल संतुलन मुख्य तौर पर सरकार के खाते में है और पूँजीगत माल के आयात के कारण है। विदेशी मुद्रा संकट से बचने के लिए आयात पर अंकुश लगाने के सरकार के फ़ैसले का दुष्प्रभाव कई निजी उद्योगों पर पड़ा। परिणाम यह हुआ कि जो लोग सार्वजनिक उपक्रमों से जुड़े हुए हैं, उनकी आय तो बढ़ रही है, लेकिन अन्य क्षेत्रों के रोज़गार में गिरावट आ रही है। इससे ऐसी विरोधाभासी परिस्थितियों का निर्माण हो गया है, जहाँ समाज के विभिन्न वर्गों के लोग एक ही समय सामान और पैसे दोनों की तंगी का अनुभव एक साथ कर रहे हैं। इन सबका असर पूर्वी उत्तर प्रदेश जैसे स्थायी ग़रीबी वाले इलाके में बहुत ज़्यादा हुआ है। इसके साथ ही निकम्मे प्रशासन और सरकार की भेदभावपूर्ण नीतियों ने भी उत्तर प्रदेश में अनाज की भारी कमी और आसमानी क़ीमतों को जन्म दिया। खाद्य आपूर्ति से संबंधित केंद्रीय खाद्य मंत्री[1] और उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री[2] के बीच एक-दूसरे के उलट बयान देने के कारण न सिर्फ़ भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो गई, बल्कि आरोप-प्रत्यारोप का खेल भी शुरू हो गया। दोनों सरकारों में न तो किसी बात पर एक राय थी और न ही नीतियों के बीच कोई तालमेल था।

---

1. अजित प्रसाद जैन (1902-1977) तत्कालीन केंद्रीय खाद्य एवं कृषि मंत्री थे।
2. डॉ. संपूर्णानंद (1891-1969) उत्तर प्रदेश के द्वितीय (1954 से 1960 तक) मुख्यमंत्री थे।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

केंद्र सरकार के ख़िलाफ़ जो मुद्दे बनाए गए, उनमें—

(अ) उत्तर प्रदेश को पंजाब, राजस्थान और दिल्ली के गेहूँ क्षेत्र में शामिल नहीं किया गया।

(ब) दामों में उछाल के बावजूद काफ़ी समय तक उत्तर प्रदेश से बिहार को चावल और धान भेजने पर कोई रोक नहीं लगाई गई।

(स) बिहार में उचित मूल्य की 13000 दुकानें खोली गई थीं, जबकि उत्तर प्रदेश में उचित मूल्य की दुकानें 4000 से भी कम थीं।

(द) सरकारी गोदामों से खाद्यान्नों को उत्तर प्रदेश भेजने के लिए वैगंस उपलब्ध नहीं कराए गए, जिसके कारण उचित मूल्य की कई दुकानों पर स्टॉक उपलब्ध ही नहीं हुआ।

राजनीतिक प्रेक्षकों के अनुसार उत्तर प्रदेश के साथ यह सौतेला व्यवहार इसलिए हुआ, क्योंकि प्रदेश सरकार के मुख्यमंत्री और केंद्र में उत्तर प्रदेश के मंत्री अलग-अलग गुट के थे। यह भी कहा गया कि कांग्रेस आलाकमान द्वारा उत्तर प्रदेश विधान परिषद् के चेयरमैन पद के लिए नामित श्री अलगू राय शास्त्री को स्वीकार नहीं करने के कारण उत्तर प्रदेश को आलाकमान द्वारा इस तरह दंडित किया गया।

प्रधानमंत्री ने कहा है कि खाद्यान्न पर कोई राजनीति नहीं होनी चाहिए और सभी पार्टियों को इस समस्या के समाधान के लिए सहयोग करना चाहिए। यदि प्रधानमंत्री सचमुच आपसी सहयोग पर भरोसा करते हैं तो उन्हें पहले यह देखना चाहिए कि विपक्षी पार्टियों से प्राप्त सहयोग से जो कुछ हासिल हो सकता है, वह सब कहीं उनकी पार्टी के भीतर की गुटबाजी ही ख़त्म न कर दे।

—ऑर्गनाइज़र, सितंबर 15, 1958

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

37

जनसंघ का सत्तारूढ़ होना एक ध्रुव सत्य*

27 अगस्त से 31 अगस्त, 1958 तक मेरठ में पश्चिमी उत्तर प्रदेश का पाँच दिवसीय ऐतिहासिक स्वाध्याय शिविर हुआ था। दीनदयालजी के इसमें चार भाषण हुए, लेकिन उन्हें हम नहीं प्राप्त कर सके। चौथे और अंतिम भाषण का यह सारांश है। इस स्वाध्याय शिविर का उद्‌घाटन श्री नानाजी देशमुख एवं समारोप भारतीय मज़दूर संघ के महामंत्री श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी ने किया।

भारतीय जनसंघ उन दलों में नहीं, जो यह समझते हैं कि हम शासन सूत्र नहीं सँभालेंगे। हम निश्चित रूप से शासन सूत्र सँभालेंगे। यह ध्रुव सत्य है। आज जनता को इससे बहुत अपेक्षाएँ हैं। समाज जीवन में उत्पन्न अनेक अभावों को दूर करके हमें उन अपेक्षाओं को पूर्ण करना होगा। अतः हमें स्वयं में प्रखर ध्येयवाद, दृढता तथा अनुशासन भाव उत्पन्न करते हुए आगे बढ़ना चाहिए।

हमें आज की स्थिति में परिवर्तन लाना है। जनसंघ वर्ग-संघर्ष व वर्गवाद में विश्वास नहीं करता। हम तो भिन्न-भिन्न वर्गों में, राष्ट्रहित में सहयोग व समन्वय पैदा करते हुए आगे बढ़ेंगे।

यह हो सकता है कि अनेक प्रश्नों पर, विभिन्न व्यवसायों या राज्यों के स्वार्थों में मतभेद पैदा हो जाए अथवा एक ही व्यवसाय में भौगोलिक या अन्य आधार पर मतभेद पैदा हो जाए, जैसा कि जयपुर की हाईकोर्ट बेंच का प्रश्न आया। ऐसे अवसर पर हमें किसी वर्ग, संप्रदाय अथवा स्थान विशेष के प्रति पक्षपात नहीं करना है। हमें तो जनसाधारण

---

* देखे परिशिष्ट V, पृष्ठ 308

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

के हित को कसौटी बनाकर ऐसे मामलों का निर्णय करना है।

जनसंघ सीमित दायरे में रहकर या कमरे में बैठकर अव्यावहारिक योजनाएँ नहीं बनाना चाहता है। यह तो जनसाधारण के बीच में रहकर और संपर्क स्थापित करके सर्वसाधारण के लिए व्यावहारिक योजना बनाकर कार्य कर रहा है। आपने कहा कि हमारी योजनाओं का आधार राष्ट्रहित व जनसाधारण के लिए व्यावहारिकता है।

—पाञ्चजन्य, सितंबर 15, 1958

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

38

तुष्टीकरण के ताज़ा प्रयास की जनसंघ द्वारा भर्त्सना*

प्रेस को यह वक्तव्य दीनदयालजी ने 14 सितंबर को नई दिल्ली में दिया।

यद्यपि भारत-पाकिस्तान प्रधानमंत्री सम्मेलन[1] से भारत के पक्ष में कोई सकारात्मक नतीजा निकलेगा, इसे लेकर हमारे मन में पहले ही गंभीर आशंकाएँ थीं, फिर भी हमने सार्वजनिक रूप से अपनी प्रतिक्रिया देने से ख़ुद को इसलिए रोके रखा, ताकि हमारे प्रधानमंत्री को पाकिस्तान के साथ सीमा विवाद के मसले को बातचीत से सुलझाने का एक अवसर देने में कोई बाधा न खड़ी हो। लेकिन जब हमने दोनों देशों के प्रधानमंत्रियों द्वारा जारी संयुक्त वक्तव्यों और विज्ञप्तियों का बारीक़ी से अध्ययन किया, तो इस नतीजे पर पहुँचे कि अपनी पुरानी तुष्टीकरण की नीति का अनुसरण करते हुए सरकार ने एक बार फिर आत्मसमर्पण कर दिया। कोई भी समझ सकता है कि समझौता-वार्त्ता का मतलब कुछ देना, कुछ लेना होता है। परंतु यह तो समझ से ही परे है कि इस वार्त्ता के नाम पर हमने उन दावों को मान लिया, जो एक स्वतंत्र राष्ट्र की संप्रभुता और यहाँ रह रहे विशाल जनसमुदाय के भविष्य पर सीधे चोट कर सकते हैं। पाकिस्तान हमारे किसी भी

*देखें परिशिष्ट VI, पृ. 310

1. नेहरू-नून समझौता :10 सितंबर, 1958 को भारत और पूर्वी पाकिस्तान (अब बांग्लादेश) के मध्य सीमा विवाद, एनक्लेव्ज़ के आदान-प्रदान की समस्या को लेकर पं. नेहरू और पाकिस्तान के प्रधानमंत्री फ़िरोज़ ख़ान नून के मध्य नई दिल्ली में समझौता हुआ। इसके तहत पश्चिम बंगाल के जलपाईगुड़ी के बेरुबारी गाँव की आधी ज़मीन और कूच-बिहार एनक्लेव्ज़ के क्षेत्र का हस्तांतरण पाकिस्तान को करने का करार हुआ था, लेकिन संवैधानिक समस्या उत्पन्न होने से यह कार्यान्वित नहीं किया जा सका।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

दावे को मानने के लिए तैयार नहीं हुआ और हमारे सारे मुद्दे अनसुलझे रह गए। हमने न सिर्फ़ उन भूभागों पर अपने दावे छोड़ दिए, जिन पर पाकिस्तान ने जबरन क़ब्ज़ा कर रखा है, बल्कि उन्हें भी जाने दिया, जिन्हें हमारे बहादुर जवान लंबे समय से बचाते आए हैं।

इस तथाकथित समझौते का सबसे कलंकी पहलू यह है कि इसे हस्तांतरित क्षेत्र में रहने वाले लोगों पर जबरन थोपा गया है। यह जानते हुए भी कि हिंदुओं के लिए पाकिस्तान में अपने जान-माल, अपनी अस्मिता और अपनी संपत्ति की सुरक्षा के साथ पाकिस्तानी नागरिक के रूप में रहना एकदम असंभव है, प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू यह कैसे कह सकते थे कि हिंदू हस्तांतरित क्षेत्र पाकिस्तान चले जाएँ। यह न केवल भारत की जनता के नेहरू सरकार के प्रति अगाध विश्वास का ख़ून था, बल्कि पाकिस्तान के कट्टरपंथियों की दया पर हिंदुओं को छोड़ देने का एक बेहद अमानवीय और घृणित कृत्य था। यह एक तरह से पूरे सीमावर्ती इलाके में रह रहे हिंदुओं के मन में असुरक्षा की भावना भरना था, ताकि वे किसी आशंकित हमले से अपनी सुरक्षा के लिए अंदर के क्षेत्रों में पलायन कर जाएँ।

जनसंघ यह महसूस करता है कि प्रधानमंत्री नेहरू ने भारतीय भूभाग एक दूसरे देश की सरकार को सौंपने का जो वचन दिया है, वह संविधान का सरासर उल्लंघन है। इसके अनुसार संसद् को भी, प्रधानमंत्री का अधिकार क्षेत्र तो उससे बहुत कम है, अपने देश के भूभाग को किसी को देने का अधिकार नहीं है। हमारे लिए यह बेहद निराशाजनक है कि सत्र चालू होने के बावजूद प्रधानमंत्री ने संसद् को नज़रअंदाज़ किया।

—ऑर्गनाइज़र, सितंबर 22, 1958

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

39

दूसरी योजना में नियोजन नाममात्र का

हाल ही में दूसरी पंचवर्षीय योजना की समीक्षा और योजना मंत्री गुलजारी लाल नंदा का भाषण इस आलोचना को सही ठहराते हैं कि दूसरी योजना बनाने में नियोजन की भारी कमी थी। बिना किसी ठोस नियोजन के बने इस महत्त्वाकांक्षी दस्तावेज़ के चरित्र को लचीला कहा गया और हमारी संपूर्ण क्रियाशील अर्थव्यवस्था के लिए मनमाने ढंग से तय किए गए लक्ष्य में बदलाव को उचित ठहराने के लिए इन्हीं बहानों का सहारा लिया गया। व्यावहारिकता एक विशिष्टता है, लेकिन जहाँ तक योजना आयोग की नीतियों व उसके कार्यक्रमों की बात है, कहीं दिखाई नहीं देती।

योजना आयोग ने जब राष्ट्रीय विकास परिषद् के समक्ष अपनी रिपोर्ट 'द्वितीय पंचवर्षीय योजना का मूल्यांकन और संभावनाएँ' प्रस्तुत की तो इसके वित्तीय लक्ष्य को कम करके 4600 करोड़ रुपए कर दिया। यह उस स्थिति में प्रमुख परियोजनाओं और कार्यक्रमों की अनुमानित लागत थी, जबकि वे समय पर शुरू हो जातीं। जहाँ तक कोष की बात थी तो योजना आयोग के पास केवल 4260 करोड़ रुपए जुटाने के ही संसाधन थे, जो 240 करोड़ रुपए का अंतर था, उसके लिए नए उपाय ढूँढ़े जाने थे। अपने हालिया प्रस्ताव में आयोग ने फिर से योजना के संशोधित लक्ष्य, जिसे वह बड़ी शिष्टता और चतुराई से पार्ट ए का नाम दे रहा था, को 4500 करोड़ से बढ़ाकर 4650 करोड़ कर दिया है। यह अतिरिक्त बढ़ोतरी केंद्र की योजना थी। आयोग का तर्क है कि केंद्र की योजनाओं के तहत परियोजनाओं को पूरा करने के लिए ये कार्यक्रम अपरिहार्य हैं। अगर केंद्रीय मंत्रियों के साथ मंत्रणा के बाद ये कार्यक्रम अपरिहार्य हो गए हैं तो आयोग के राज्य मंत्रियों के साथ विचार विमर्श करते-करते इसी तरह के अन्य अपरिहार्य कार्यक्रमों की झड़ी लग जाने पर किसी को आश्चर्य नहीं होना चाहिए। स्पष्ट है कि संसाधन जुटाए बिना ही इस तरह के कार्यक्रमों पर ज़ोर दिया जाने लगा है। जहाँ तक संसाधनों को

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

जुटाने की बात है तो ऐसा कुछ भी नहीं हुआ जिससे इस आशावादी नज़रिये को सही ठहराया जा सके। अगर कहीं विदेशी सहायता का आश्वासन मिला भी है तो वह 4500 करोड़ की योजना में शामिल परियोजनाओं के लिए आवश्यक धन के लिए मिला है। अगर हम इस आश्वासन के आधार पर नए कार्यक्रमों की घोषणा करते हैं तो उन विदेशी मित्रों को भी नाराज़ कर सकते हैं, जिन्होंने मदद का भरोसा दिया है। ऐसी परिपाटी को लेकर विश्व बैंक के लोग पहले ही अपनी चिंता जता चुके हैं।

विदेशी सहायता के अलावा हमारी मुख्य समस्या आंतरिक स्रोत को लेकर है। बाज़ार से क़र्ज़ लेने के अलावा कहीं और से कुछ मिलता दिखाई नहीं दे रहा है। आयोग राज्यों द्वारा अतिरिक्त कर लगाकर अतिरिक्त संसाधन जुटाने और ग़ैर योजना ख़र्चों पर अंकुश लगाने या कम करने पर भरोसा कर रहा है। लेकिन यदि अपने पुराने अनुभवों से कुछ सीखा जा सके तो हम स्पष्ट कह सकते हैं कि आयोग की उम्मीद पूरी नहीं होगी। जिस तरह के राजनीतिक हालात हैं, उसमें हम यह अपेक्षा नहीं कर सकते कि राज्य बेहतर या अधिक ज़िम्मेदारी से अपनी भूमिका निभाएँगे। अब घाटे की वित्त व्यवस्था के अलावा हमारे पास और कोई विकल्प नहीं है, जो पहले ही हमारी अर्थव्यवस्था पर बढ़ती मुद्रास्फीति के रूप में सामने आ चुका है।

इन सभी परिस्थितियों में यदि लोकसभा के सदस्य योजना मंत्री का इस्तीफ़ा और योजना आयोग के पुनर्गठन की माँग करते हैं तो यह पूरी तरह तर्कसंगत होगा। वास्तव में देखा जाए तो आयोग नाकारी की एक ऐसी माँद में घुस गया है, जहाँ से निकलना संभव नहीं दिखता। आज की आर्थिक परिस्थितियाँ योजना आयोग के मामले में किसी निडर और पूरी परिस्थिति पर गंभीर विचार करने की माँग करती हैं।

विश्व बैंक हाल के वर्षों में लगातार यह सलाह देता आ रहा है कि भारत नए निवेश वाले कार्यक्रम की घोषणा न करे और पुराने निवेश को ही मज़बूती दे तथा कार्यक्रमों को पूरा करे। टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी की अंशधारकों की 51वीं वार्षिक बैठक में श्री जे.आर.डी. टाटा ने भी इसी तरह का सुझाव दिया था। उनका मानना था कि तीसरी योजना में हमें किसी और स्टील प्लांट की स्थापना के बारे में नहीं सोचना चाहिए। लेकिन सरकार ने स्टील उत्पादन का लक्ष्य 15 मिलियन टन रखा है। स्टील उत्पादन के अतिरिक्त क्षमता विस्तार के लिए हमें कम-से-कम 1500 करोड़ रुपए चाहिए और इसमें भी आधी राशि विदेशी मुद्रा में चाहिए। अब जबकि हमारी विदेशी आय पहले से ही गिरवी है तो अतिरिक्त विदेशी मुद्रा जुटाना आसान नहीं होगा, बल्कि इससे हमारे ऊपर अतिरिक्त भार बढ़ जाएगा जिसे हम शायद उठा न सकें। तीसरी योजना के लिए हमें अपनी प्राथमिकताएँ तुरंत तय कर लेनी चाहिए। इस संबंध में जे.आर.डी. टाटा ने लिखा था—''पूरे जीवन स्टील उद्योग से जुड़े होने के नाते मुझसे ज़्यादा कोई और ख़ुश

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

नहीं होगा कि भारत दुनिया का सबसे बड़ा स्टील उत्पादक बन जाए। लेकिन यदि हम थोड़ा व्यावहारिक होकर सोचें तो लगेगा कि भले ही हम स्टील के कारख़ाने कम संख्या में रखें, पर स्टील के उपयोग से चलने वाले व तैयार माल बनाने वाले उद्योगों पर ज़ोर दें तो ज़्यादा अच्छा रहेगा। यदि हम स्टील उत्पादन के बजाय ज़्यादा ट्रक, कार, मशीनी उपकरण, पूँजीगत माल और उपभोक्ता सामान बनाते हैं, जिसमें स्टील का उपयोग होता है, तो हम अधिक धन कमा सकते हैं। ज़्यादा कमाई के साथ-साथ बचत भी कर सकते हैं, ख़ासकर विदेशी मुद्रा में। अपने लोगों के लिए अधिक रोज़गार पैदा कर सकते हैं और सबसे ऊपर स्थायी एवं उत्पादक अर्थव्यवस्था का निर्माण कर सकते हैं।'' क्या सरकार पेशेवरों द्वारा बनाई योजना और राजनीतिक फ़िजूलख़र्ची के बजाय अनुभव को ज़्यादा महत्त्व देगी।

—ऑर्गनाइज़र, सितंबर 29, 1958

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

40

एक और योजना और लोकतंत्र का अंत

मद्रास के लक्ष्मीपुरम में 3 अक्तूबर, 1958 को आयोजित एक सार्वजनिक सभा में दीनदयालजी का संबोधन।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना कम्युनिस्ट देशों द्वारा अपनाई गई योजना तकनीक की एक फूहड़ नक़ल थी। इस पंचवर्षीय योजना की सबसे बड़ी विफलता यह रही कि इसमें कोई नियोजन नहीं था और न ही उस तरह का आवंटन किया गया, जैसा किया जाना चाहिए था। इसलिए इसे पुन: व्यवस्थित करने की आवश्यकता है।

हमारी द्वितीय पंचवर्षीय योजना बिना किसी नियोजन की योजना है। संसाधनों और लक्ष्य के बीच के अंतर को पाटने के लिए योजनाओं में काट-छाँट करने के बजाय योजना की अवधि बढ़ाने के बारे में सोचना चाहिए था। योजनाकारों के इच्छित आकलन हवा में उड़ गए और यह आरोप रह गया कि योजना मद के पैसे ग़ैर योजना मद में ख़र्च कर दिए गए। यह विदेशी मुद्रा का संकट था।

तकनीकी रूप से योजना पूरी तरह त्रुटिपूर्ण थी। यह कम्युनिस्ट सरकारों की फूहड़ नकल थी। द्वितीय योजना की अधिकतर विफलता में यह तथ्य समाहित है कि भारत एक अधिनायकवादी देश नहीं है, लेकिन ये लोग अधिनायकवाद के एकदम क़रीब पहुँच गए हैं, अनिच्छा से ही सही, उसे स्वीकार कर चुके हैं। उसी का परिणाम है कि योजना को बचाओ की चिल्लाहट सब ओर सुनाई दे रही है। उन्हें यह आशंका थी कि एक और योजना इसी तरह आई तो लोकतांत्रिक ढाँचे को बचाए रखना संभव नहीं होगा।

योजना के लक्ष्य भी परस्पर विरोधी थे। बृहद औद्योगीकरण पूँजी प्रधान योजना है, इसके साथ ज़्यादा-से-ज़्यादा रोज़गार के लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसका सीधा संबध कम बचत से भी है यानी लोगों को बेहतर जीवन स्तर प्रदान नहीं कर सकते।

—ऑर्गनाइज़र, अक्तूबर 13, 1958

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

41

राजनीतिक आचरण की संहिता बने

भारतीय जनसंघ के महामंत्री पं. दीनदयाल उपाध्याय ने आज से एक वर्ष पूर्व (22 अगस्त, 1957 को) भोपाल की एक प्रेस कॉन्फ्रेंस में जनसंघ के अधिकृत मतों को व्यक्त किया था। देश के अन्य विचारक, जिनमें आचार्य विनोबा भावे और श्री जयप्रकाश नारायण प्रमुख हैं, अब इस संबंध में सचेत होकर अपने विचार व्यक्त कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में जनसंघ के दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिए जनसंघ के केंद्रीय कार्यालय ने उपर्युक्त अंश को प्रकाशनार्थ प्रसारित किया है।

(संपादक, पाञ्चजन्य)

किसी भी स्वतंत्र एवं जनतंत्रवादी सरकार की कतिपय नीतियों के विरुद्ध जनांदोलन स्वाभाविक है। भारत में ऐसे आंदोलन काफ़ी संख्या में समय-समय पर होते रहते हैं। यह पक्की बात है कि अधिकांश अवसरों पर सरकार जनभावनाओं के इस प्रदर्शन पर तब तक चिंता नहीं करती, जब तक आंदोलन अर्धविद्रोह का रूप धारण न कर ले। विभिन्न सरकारों ने, परंपराओं की उपेक्षा कर, सहानुभूति से विमुख होकर अविचारपूर्वक दमनचक्र का अवलंबन किया है। सरकार की इस नीति पर किसी को संतोष नहीं हो रहा, मेरा सुझाव है कि प्रधानमंत्री दलों का एक सम्मेलन बुलाएँ, विभिन्न प्रश्नों पर जनभावनाओं को प्रकट करने के उपाय एवं साधनों पर विचार किया जाए। मेरा मत है कि सामूहिक रूप से दलों के आचरण की कोई संहिता निश्चित की जानी चाहिए। सरकार तथा जनता के बीच शीतयुद्ध की यह स्थायी स्थिति अवांछनीय है। इसके परिणामस्वरूप जनता का विश्वास शांतिपूर्ण एवं जनतांत्रिक उपायों पर से डिगता जा रहा है।

—पाञ्चजन्य, अक्तूबर 13, 1958

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

42

भूमि सुधार : औचित्य और अनौचित्य

धीरे-धीरे लोगों को यह समझ में आने लगा है कि भूमि सुधार में विलंब खाद्यान्न उत्पादन को बुरी तरह प्रभावित कर रहा है। कांग्रेस कार्यसमिति ने एक उपसमिति बनाकर उन राज्यों को इस अति महत्त्वपूर्ण मुद्दे पर समझाने-बुझाने का दायित्व दिया है, जो भूमि सुधार के मामले में टाल-मटोल कर रहे हैं। योजना आयोग भी राज्यों पर दबाव डाल रहा है कि वे भूमि सुधार क़ानून जल्दी से जल्दी लागू करें। इसमें किसानों को भूमि आवंटन में प्राथमिकता मिले और जोत की सीमा तय हो। इस मामले में कई विधेयक राज्यों में लटके पड़े हैं। कुछ राज्यों में अलग-अलग कमेटियाँ गठित की गई थीं, जिन्होंने अपने सुझाव दे भी दिए हैं और उनके सुझावों को प्रस्तावित विधेयक में शामिल किया जा रहा है।

भूमि सुधार क़ानून का विरोध

ज़मींदारी और जागीरदारी उन्मूलन क़ानून से उलट भूमि सुधार क़ानून समाज के एक बहुत बड़े तबके पर असर डालने वाला है। इसलिए स्वाभाविक है कि प्रस्तावित क़ानून को लेकर भारी विरोध होने वाला है। केवल ग़ैर-कांग्रेसी खेमे ही नहीं, बल्कि कांग्रेस के भीतर से भी विरोध हो रहा है। अधिकतर विधायक इस विधेयक के ख़िलाफ़ हैं। सुनने में आया है कि उत्तर प्रदेश ने इस विधेयक के प्रस्तुत करने से साफ़ मना कर दिया है। बिहार में कांग्रेस के विधायक दल ने इस विधेयक को आड़े हाथों लिया, जिसका परिणाम हुआ कि राजस्व मंत्री[1] को इस्तीफ़े की धमकी तक देनी पड़ी। अन्य

1. कृष्ण बल्लभ सहाय (1898-1974) बिहार के राजस्व मंत्री थे। इन्हें ज़मींदारी प्रथा उन्मूलन के लिए देश में सबसे पहला क़ानून पारित करने का श्रेय दिया जाता है। 1950 का बिहार अधिनियम, जो तब एक विधेयक था, 1952 में पारित होकर अधिनियम बना।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

राज्यों में भी भूमि सुधार को लेकर प्रगति काफ़ी धीमी रही, जिसके कारण कई मंत्रालयों का भविष्य अधर में लटक गया। राज्य मंत्रिमंडल किंकर्तव्यविमूढ़ बने रहे। जबकि केंद्र और आलाकमान इस मामले में तेज़ी बरतने का लगातार दबाव डाल रहे थे, लेकिन विधायकी में अपने ही सहयोगियों से उन्हें आवश्यक सहयोग नहीं मिल रहा था। इसका कुछ कारण तो यह था कि सुधार की प्रकृति का ठीक से आकलन नहीं किया गया था और कुछ कारण कांग्रेस के विधायकों में निष्पक्षता का अभाव भी था। इस सुधार से क्या लाभ हासिल हो सकता है, उसे समझने के बजाय कांग्रेसी विधायक पहले अपना ही हक़ छोड़ने को तैयार नहीं थे। दूसरे उन्हें यह भी डर था कि यदि भूमि सुधार क़ानून का समर्थन वे करते हैं तो बड़ी जोत वाले किसान उनसे नाराज़ हो जाएँगे, क्योंकि गाँवों में बड़ी जोत वाले किसानों का ही बोलबाला था, जो चुनावों के दिनों में लोगों की राय बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका रखते थे।

भूमि सुधार जिसका प्रमुख उद्‌देश्य उन बिचौलियों, जिसमें ज़मींदार भी शामिल थे, को हटाना है, जो ख़ुद तो खेती करते नहीं थे, लेकिन अपनी भूमि किसानों को कृषि उपयोग के लिए देने के बदले कुल उपज का छठे हिस्से से लेकर आधा तक ले लेते थे। साथ ही भूमि सुधार के ज़रिये जोत की अधिकतम सीमा भी तय करनी है, जिसे ग़लती से साम्यवाद का हिस्सा मान लिया गया है। जो लोग इसका विरोध कर रहे हैं, वे भी इसे साम्यवाद के विरुद्ध संघर्ष के रूप में ही ले रहे हैं। दुर्भाग्य यह है कि जो भूमि सुधार का समर्थन कर रहे हैं। उनकी भी सोच यही है कि इसी के ज़रिये साम्यवाद का मुक़ाबला किया जा सकता है। जबकि सच्चाई यह है कि भूमि सुधार का साम्यवाद से कोई लेना-देना नहीं है। दरअसल कोई भी व्यवस्था, जो किसानों के भूमि अधिकार को उनके निजत्व को मान्यता देती है, वह साम्यवाद के विरुद्ध है। यह हो सकता है कि साम्यवादी आज किसानों की परिस्थितियों का दोहन कर उसका लाभ उठाएँ, लेकिन वे कभी भी स्वतंत्र किसानी व्यवस्था को बरदाश्त नहीं करेंगे। वे सामूहिक खेती का समर्थन करते हैं, न कि किसानों की निजी खेती का। एक स्वतंत्र व निजी कृषि व्यवस्था उनके लिए बड़ा सिरदर्द है। यह सुधार साम्यवाद काल में पनपने वाला नहीं है। वास्तव में अमरीकी शासन के दौरान ही जापान में भू सुधार बड़े पैमाने पर लागू हुआ। अमरीका वाले कभी भी साम्यवादी तरीक़ों से चलने वाले नहीं माने जाते।

जब किसान ज़मीन के मालिक होंगे, तभी होगा भूमि का सर्वोत्तम उपयोग

खेती के लिए भूमि अधिक समय के लिए मिले और उसका उचित किराया तय हो, इसकी माँग किसान काफ़ी दिनों से कर रहे हैं। भूमि में तब तक कोई सुधार नहीं हो

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सकता, जब तक खेती वाली ज़मीन के मालिक किसान नहीं बनते। ज़मींदार जो अधिकतर शहरों में रहते हैं, उनकी रुचि भूमि की गुणवत्ता बढ़ाने में कभी नहीं रहती। उनके लिए तो खेती से जो भी आय हो जाए, एक तरह की सब्सिडी है और किसान इस बात के लिए आश्वस्त नहीं रहते कि आने वाले वर्षों में वे इसी भूमि पर खेती कर पाएँगे या नहीं, इसलिए वे भी इस भूमि की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए अपनी बचत में से अतिरिक्त कुछ ख़र्च नहीं करते। यही कारण है कि पुराने कुएँ अब सूखे पड़े हैं। कुएँ खोदने के लिए जो पैसे आते हैं, वे कहीं और ख़र्च कर दिए जाते हैं। ऐसा इसलिए होता है कि ज़मींदार किसान नहीं है। इसलिए कुओं की मरम्मत कराने या नया कुआँ खुदवाने में उसकी कोई रुचि नहीं रहती। जबकि विधान ऐसा है कि वे इसके लिए ख़ुद ही सरकारी आर्थिक मदद ले सकते हैं। ऐसा भी देखने में आया है कि कुछ खेतिहर लोग भी कृषि को अपने दूसरे पेशे के रूप में लेते हैं। चूँकि ज़मीन के मालिक को उसका हिस्सा देने के बाद उसके पास अपना हिस्सा इतना नहीं बचता कि वह अपना गुजर-बसर कर सके, इसलिए वह कोई दूसरा रोज़गार भी देखता है। उचित ध्यान नहीं दिए जाने के कारण कृषि का बहुत नुक़सान हो रहा है। खेती को लेकर न तो ज़मींदार गंभीर है और न किसान उस पर उचित ध्यान दे पा रहे हैं। इस गंभीर संकट का तुरंत उपाय ढूँढ़ा जाना चाहिए।

अब जबकि यांत्रिक खेती की संभावनाएँ काफ़ी सीमित हैं, तो जोत की सीमा तय करना अच्छा विकल्प है। ताकि खेती भूमि का मालिक ही करे। ठीक है कि खेती करने का अभिप्राय हल के साथ ख़ुद को जोतना ही नहीं है। लेकिन हाँ, इतना ज़रूर है कि किसान ही खेती की देखरेख करे और जोखिम को साझा करे। यदि खेती उसका एकमात्र पेशा न हो तो भी उसका मुख्य पेशा खेती ही होना चाहिए। खेतिहर मज़दूरों की सहायता लेने में कोई बुराई नहीं है। आख़िर प्रति एकड़ अपेक्षित उपज प्राप्त करने लिए एक आदमी एक सीमा तक ही मेहनत कर सकता है। वे जिनके पास जोत का आकार सीमा से बड़ा है, और वे पूरी ज़मीन पर खेती करने के बजाय एक सीमित भूखंड पर ही अपनी पूँजी और क्षमता का उपयोग करेंगे तो उन्हें अतिरिक्त उपज प्राप्त होगी। यदि कोई बड़ी भूमि रखने की मानसिकता छोड़ देता है तो निश्चित रूप से वह एक सीमित भूभाग पर खेती कर ज़्यादा कमा सकता है। आख़िर हमें क्या चाहिए, ज़्यादा-से-ज़्यादा उपज न कि बड़ी-से-बड़ी जोत।

मौजूदा अनिश्चितता हानिकारक है

इस सुधार को आवश्यक और वांछनीय बनाने के लिए हमें विभिन्न क्षेत्रों की कठोर वास्तविकताओं और परिस्थितियों को भी ध्यान में रखना चाहिए। इस बात का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए कि इन सुधारों के लागू होने से हमारी कृषि अर्थव्यवस्था

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अस्त-व्यस्त न हो जाए। सबसे पहले इस अनिश्चितता के काल को तुरंत कम किया जाना चाहिए। भूमि सुधार को लागू करने के बजाय इसे लेकर सिर्फ़ शोर मचाने से कुछ अच्छा हासिल नहीं हो सका है। संभवत: यह ज़्यादा अच्छा रहेगा कि एक बार सरकार तय कर ले और इस क्षेत्र में निवेश करे, साथ ही सबको आश्वस्त करे कि अगले बीस वर्षों में कोई और बदलाव नहीं किया जाएगा, तो ज़्यादा अच्छे परिणाम मिलेंगे। इतने वर्षों में बाज़ार की स्थितियों से किसान आवश्यक सामंजस्य बिठा लेंगे।

लेकिन जब एक बार सरकार यह महसूस करती है कि बदलाव की शुरुआत ज़रूरी है, जितना जल्दी हो सके, संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया जाना चाहिए। यहाँ यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि मालिकाना अधिकार के साथ ही, इसके कारण उत्पन्न कृषि साख और किसानों की अन्य ज़रूरतों पर भी सलाह ली जानी चाहिए। कई ऐसे मामले हैं, जहाँ भूमिधर, किसानों को खेती के लिए कुछ भी मुहैया नहीं कराते। कुछ मामलों में वे बीज, खाद, बैल और कृषि के उपयोग में आने वाली अन्य चीज़ें उपलब्ध कराते हैं। देखें, किसानों को सिर्फ़ खेती के लिए ज़मीन भर ही न मिले। खेती करने के लिए सभी आवश्यक चीज़ें भी उसे मिलनी चाहिए। फिर कुछ ऐसे लोग भी हो सकते हैं, जो खेती न करते हों, लेकिन उन्होंने गाँव नहीं छोड़ा है। वे गाँव में ही रहते हैं और गाँव के जीवन से गहरे जुड़े हुए हैं। उनको वहाँ से विस्थापित करने के किसी भी प्रयास का परिणाम सामाजिक व अन्य समस्याओं के रूप में आ सकता है। उन्हें ज़मीन प्राप्त करने और खेती करने का समुचित अवसर हर हाल में प्राप्त होना चाहिए।

जोत की सीमा क्या होनी चाहिए?

जोत के आकार की सीमा क्या होनी चाहिए, यह ऐसा सवाल है, जिस पर काफ़ी बहस हो चुकी है। सीमा तय करने का कोई भी वैज्ञानिक मापदंड नहीं हो सकता। इसे तो मरजी से ही तय किया जा सकता है। लेकिन यह मरजी किसी एक व्यक्ति की इच्छा पर आधारित नहीं हो सकती। सामाजिक परिस्थितियाँ और उद्देश्यों को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। पहली बात तो यह कि हम कोई ऐसी सीमा तय नहीं कर सकते, जो सामाजिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप न हो, जिसे हम आने वाले दिनों में समाज में लागू करना चाहते हों। कुछ लोग यह माँग करते हैं कि जोत की अधिकतम सीमा तय करने का प्रस्ताव तब तक स्थगित कर देना चाहिए, जब तक कि अन्य संपत्ति की अधिकतम सीमा तय नहीं कर दी जाती। भले ही उनका तर्क मज़बूत न हो, लेकिन तब उनका प्रश्न समुचित जान पड़ता है जब ग़ैर कृषि आय में भारी असंतुलन को बरदाश्त करने के लिए कहा जाता है। योजना आयोग ने तीन व्यक्तियों के परिवार के लिए जोत की सीमा उतने भूभाग को तय किया है, जिससे सालाना 3600 रुपए की आय हो सके।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मैसूर की जत्ती कमेटी,[2] जिसने कृषि आय की सीमा 5400 रुपए करने की सिफ़ारिश की है, के अलावा सभी अन्य राज्यों ने इस पर सवाल उठाते हुए कृषि आय की सीमा कम तय करने की संस्तुति की है। राजस्थान कमेटी ने 2400 रुपए की प्रतिवर्ष आय तय की है, जबकि केरल ने आय के आधार को ख़ारिज करते हुए 15 एकड़ की सीमा तय की है। हम इस न्यूनतम सीमा को उचित नहीं ठहरा सकते। हमने शहरी आय के मामले में 24,000 रुपए न्यूनतम आय की कल्पना की है। भले ही हम यह मान लें कि ग्रामीण क्षेत्रों में कुछ सुविधाओं की क़ीमत न के बराबर या बहुत कम आती है, फिर भी उनकी आय सीमा 10,000 रुपए से कम तय करने की कल्पना नहीं कर सकते। पहले ही शहरी और ग्रामीण जीवन स्तर के बीच गहरी खाई है। भारत में कृषि मज़दूरों की मज़दूरी औद्योगिक मज़दूरों की मज़दूरी का केवल 43 फ़ीसद है। ब्रिटेन और ऑस्ट्रेलिया में यही प्रतिशत 81 और 84 है। यदि हम इन दोनों वर्गों की आय की तुलना करें तो काफ़ी अंतर नज़र आएगा। यदि कृषि-क्षेत्र में कोई विकास देखना चाहते हैं तो किसानों को सिर्फ़ इतना ही नहीं उपजाना चाहिए, जिससे वह ठीक से रह सकें, बल्कि उन्हें इतना उत्पादन करना चाहिए कि वे बचत भी कर सकें और आगे निवेश भी कर सकें। यदि योजना आयोग 3600 रुपए की ही अधिकतम सीमा तय करना चाहता है तो औसत क्या निकलेगा। ऐसे में क्या धनी से धनी किसान भी कुछ बचाने और निवेश करने की स्थिति में होगा? इससे तो समय से पहले ही किसान क़र्ज़ और पूँजी के लिए सरकार और शहरी एजेंसियों पर निर्भर हो जाएँगे और असमय ही ज़मीन के मालिकाना हक़ छोड़ देंगे। क्या यह सामूहिकीकरण का रास्ता प्रशस्त नहीं करेगा।

आर्थिक रूप से अव्यावहारिक भूमि को लाभप्रद बनाना

जोत की सीमा तय करने के बाद भूमि के पुनर्वितरण के सवाल को भी ध्यान में रखना ज़रूरी है। यदि इसका परिणाम आर्थिक रूप से अव्यावहारिक इकाई के निर्माण के रूप में आता है तो इससे कृषि उत्पादन और जीवन स्तर भी नीचे जाता है। भूमि का वितरण गाँव के उन किसानों के बीच होना चाहिए, जो खेती कर सकें। या तो उनके पास खेती के लिए आवश्यक संसाधन हों या फिर उन्हें संसाधन मुहैया कराया जाए। हमारा पहला प्रयास आर्थिक रूप से अव्यावहारिक खेतों को लाभप्रद बनाने का होना चाहिए। हाँ, बिल्कुल राजनीतिक और सामाजिक उद्देश्यों के साथ आर्थिक उद्देश्यों की भी पूर्ति की जानी चाहिए।

---

2. मैसूर राज्य में अधिनियमित विभिन्न कृषि क़ानूनों को समेटकर एक व्यापक भूमि सुधार अधिनियम के उद्देश्य से 10 मई, 1957 को बी.डी. जत्ती (मैसूर के मुख्यमंत्री 1958-62) की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। समिति ने 1961 में किरायेदारी प्रणाली और ज़मींदारी प्रथा को समाप्त करने की सिफ़ारिश के साथ मैसूर भूमि सुधार अधिनियम का रास्ता प्रशस्त किया।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

यह भी आवश्यक है कि सुधार की अनुशंसा सिर्फ़ नारों और बयानबाजी तक न रहे। जनसंख्या का घनत्व और कृषि योग्य भूमि की उपलब्धता अलग-अलग राज्यों में भिन्न है। उन क्षेत्रों में जहाँ कृषि योग्य भूमि की कोई कमी नहीं है, वहाँ यह सुधार लागू करने का कोई लाभ नहीं होगा। ऐसा करना गाड़ी के पीछे घोड़े को जोतना होगा। ऐसा कहने का अभिप्राय यह बिल्कुल नहीं है कि सुधार को आगे के लिए स्थगित कर दिया जाए। लेकिन इसे सिद्धांत के बजाय बुद्धिमत्ता से लागू किया जाना चाहिए, क्योंकि हम इसे एक भिन्न परिस्थिति में शुरू करने जा रहे हैं।

—ऑर्गनाइज़र, अक्तूबर 13, 1958

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

43

अव्यवस्थित अर्थव्यवस्था : भ्रमित विदेश नीति

जनसंघ के महामंत्री दीनदयाल उपाध्याय और क्षेत्रीय मंत्री जगन्नाथ राव जोशी ने हैदराबाद का दौरा किया। वे पूरे दिन लोगों में व्यस्त रहे। दीनदयालजी ने विभिन्न राष्ट्रीय मुद्दों पर प्रेस के लिए ये बयान जारी किए।

बिना किसी अतिरिक्त क़र्ज़ के योजना को सफल बनाने के हित में इसका समय बढ़ाने में कोई बुराई नहीं है। समय बढ़ाना इसलिए भी ज़रूरी है, क्योंकि हम इसे पूरा करने के लिए और कर बढ़ाने की स्थिति में नहीं हैं, और न अब विदेशी सहायता मिलने की कोई संभावना है। यदि योजना को आम आदमी पर बिना और कोई कर लादे असरदार बनाने के लिए नवाबों और महाराजाओं को उनकी संपत्ति देने के लिए दबाव डाला जाता है तो भी हमें कोई आपत्ति नहीं है।

केरल में क़ानून-व्यवस्था की स्थिति

केरल में आम क़ानून-व्यवस्था की स्थिति बाक़ी जगहों से कोई अलग नहीं है, सिवाय इसके कि वामपंथियों द्वारा क़ानून-व्यवस्था को अपने हाथ में लेने के कारण अन्य राजनीतिक पार्टियों में असुरक्षा की भावना आ गई है। बावजूद इसके हमारे कार्यक्रम और दौरे बिना किसी बाधा के चल रहे हैं।

भूमि सुधार

जनसंघ का मानना है कि भूमि सुधार एक एकीकृत मुद्दा है, जिसका हल टुकड़ों-टुकड़ों में नहीं करना चाहिए। भूमिहीनों के नाम पर सिर्फ़ ज़मीन के टुकड़े नहीं दिए जाने

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

चाहिए। आर्थिक रूप से अव्यावहारिक जोत का वितरण आर्थिक आधार पर ही होना चाहिए। यह भूमि सुधार की दिशा में प्राथमिक क़दम है।

जनसंघ गोहत्या जारी रहने की ज़ोरदार भर्त्सना करता है और गोवध पर प्रतिबंध की अपनी पुरानी माँग पर क़ायम है कि गाय का मुद्दा पूरी तरह भावनात्मक है, चाहे इसका आर्थिक पक्ष जो भी हो।

उत्तर प्रदेश का खाद्य आंदोलन और विधानसभा में घटित घटनाएँ

विपक्षी दलों ने सरकार को अहसास करा दिया है कि इस दिशा में आम सहमति से क़दम उठाने की आवश्यकता है। विधानसभा में जो भी घटित हुआ, उससे उत्तर प्रदेश की सत्ताधारी पार्टी की गिर रही प्रतिष्ठा में और एक घटना जुड़ गई।

—ऑर्गनाइज़र, अक्तूबर 20, 1958

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

44

शिक्षा : व्यक्ति निर्मात्री एवं समाज संचालिका

शिक्षा का संबंध जितना व्यक्ति से है, उससे अधिक समाज से। हम ऐसे मानव की कल्पना कर सकते हैं, जिसे किसी भी प्रकार की शिक्षा न मिली हो और जो अपनी सहज प्रवृत्तियों के सहारे ही जीवनयापन करता हो, किंतु बिना शिक्षा के समाज संभव नहीं। किसी काल विशेष में कोई मानव समूह मात्र समाज की संज्ञा प्राप्त नहीं कर सकता। उस समूह में प्रत्येक क्षण कुछ व्यक्ति घटते और कुछ बढ़ते रहते हैं। मानव की आयु मर्यादा के अनुसार एक कालावधि में किसी भी मानव समूह के सभी घटक भौतिक दृष्टि से बदल जाते हैं। किंतु इसके उपरांत भी यदि उस मानव समूह का व्यक्तित्व एवं उसकी चेतना बनी रहे, नए घटकों को पुराने घटकों से अपने संबंध का भान रहे तथा वे पुराने घटकों की जीवन की अनुभूति को अपनी अनुभूति मानकर और समझकर आगे चलें, तो उस समूह को 'समाज' नाम प्राप्त हो जाता है। अर्थात् एक के बाद एक मानव जब दूसरों को जो प्राय: उसके बाद जनमे हों, विभिन्न क्षेत्रों के अपने संपूर्ण अनुभव को अथवा उसमें के सारभूत अंश को विभिन्न उपायों द्वारा प्रदान या संसर्गित करता है, तो इस प्रक्रिया में एक निरंतर गतिमान मानव समूह की सृष्टि होती है, जिसे समाज कहते हैं। अनुभव प्रसारण की इस क्रिया को ही वास्तव में 'शिक्षा' कहते हैं। यदि शिक्षा न हो तो 'समाज' का जन्म ही न हो। अत: शिक्षा के प्रश्न को मूलतः सामाजिक दृष्टिकोण से ही देखना होगा। हमारे शास्त्रों के अनुसार यह ऋषि ऋण है, जिसे चुकाना प्रत्येक का कर्तव्य है। जब हम भावी संतति की शिक्षा की व्यवस्था करते हैं, वास्तव में हमारी उनके प्रति उपकार की भावना नहीं रहती, अपितु हमें जो कुछ धरोहर अपने पूर्वजों से प्राप्त हुई

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

है, उसे आगे की पीढ़ी को सौंपकर उनके ऋण से उद्धरण होने की मनीषा रहती है। जॉन बुकन[1] ने इसी भाव को इन शब्दों में व्यक्त किया है, ''हम भूत के ऋण से उऋण हो सकते हैं, यदि हम भविष्य को अपना ऋणी बनाएँ।''

शिक्षा संस्थाएँ

'शिक्षा' की जितनी व्यापक और गहरी व्यवस्था होगी, समाज उतना ही अधिक पुष्ट और गंभीर होगा। नई पीढ़ी के जितने लोगों को और जितनी अधिक मात्रा में पिछली ज्ञान निधि प्राप्त होगी, उसी पूँजी को लेकर वह जीवन के कार्यक्षेत्र में उतरेगी। यह भी स्वाभाविक है कि वह प्राप्त पूँजी में अपने प्रयत्न और अनुभव के आधार पर वृद्धि करे। इस प्रकार यह पूँजी बराबर बढ़ती जाएगी। किंतु इसके लिए जहाँ शिक्षा की व्यापक और विविधतापूर्ण योजना करनी होगी, वहाँ 'प्रदेय' के असारभूत अंगों का परित्याग एवं तत्त्व का संरक्षण भी बड़े मनोयोग से करना होगा। एतदर्थ ऐसे लोगों की आवश्यकता हो जाती है, जो पीढ़ियों के संचित ज्ञान को आत्मसात् करके सुबोध बना सकें। 'शिक्षा' के व्यापक अर्थों में समाज का प्रत्येक घटक 'शिक्षक' होने के उपरांत भी उपर्युक्त कारणों से 'शिक्षण संस्था' का उदय हुआ।

राष्ट्र जीवन के 'मानस' का ज्ञान

प्रत्येक पीढ़ी के साथ समाज की प्राचीन निधि का संरक्षण, संवर्धन एवं आने वाली पीढ़ी को हस्तांतरण होता रहता है। किंतु नई अनुभूतियों का जब तक़ प्राचीन अनुभूतियों के साथ एकीकरण नहीं होता, तब तक वे 'समाज' के मानस में स्थान नहीं पा सकतीं। यह तभी संभव है, जबकि 'समाज' के आज तक के संपूर्ण अनुभवों और जीवन व्यापारों का समन्वित, एकीकृत, सुसंबद्ध एवं सर्वांश में व्यापक ज्ञान प्राप्त हो। इस ज्ञान की छाप जितनी गहरी, सुस्पष्ट और सुव्यवस्थित रहेगी, उतना ही मानव अपनी जीवन यात्रा में सरलता और शांति से पग बढ़ा सकेगा। यदि उसको अपने राष्ट्र के 'मानस' का ठीक-ठीक ज्ञान नहीं हो तो वह अपने जीवन में सदैव ही उखड़ा-उखड़ा सा अनुभव करेगा।

शिक्षा के माध्यम

राष्ट्र मानस के ज्ञान अथवा शिक्षा के प्रमुख माध्यम हैं—1. संस्कार, 2. अध्यापन और 3. स्वाध्याय। मनुष्य अनजाने ही अपने चारों ओर के समाज से संस्कार ग्रहण करता रहता है। उसमें समाज का प्रत्येक व्यक्ति 'शिक्षक' का काम करता है। 'संस्कार' यद्यपि दोनों ओर से चलने वाली प्रक्रिया है, तथापि मानस की अनुकरण (Imitation), संवेदना

1. जॉन बुकन (1875-1940) स्कॉटिश लेखक व इतिहासकार थे, जो बाद में कनाडा के 15वें गवर्नर जनरल (1935-40) बने।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

(Sympathy) एवं सूचनात्मक (Suggestion) प्रवृत्तियों के नियम के अनुसार समर्थ कर्ता की क्रियाएँ ही प्रभावकारी होती हैं। स्वभावत: पिछली पीढ़ी के आचार-विचारों का संस्कार नई पीढ़ी पर पड़ता है। माता-पिता, परिजन, पुरजन, गुरुजन, अग्रपाठी, सहपाठी, समाज के नेता और अधिष्ठाता ये सभी विभिन्न प्रकार से निरंतर संस्कार डालते रहते हैं। वे यह नहीं सोचते कि उनकी क्रियाओं का परिणाम केवल उन पर ही नहीं, बल्कि अन्यों पर भी पड़ता है। स्वयं को ही नहीं, अन्यों को भी वे अपने कर्म बंधन में बाँधते हैं।

अध्यापन व लोकशिक्षा

'अध्यापन' शिक्षा का सर्वसामान्य साधन है। साधारणतया 'अक्षर ज्ञान' तथा पाठ्य-पुस्तकों अथवा तत्संबंधी पाठ्यक्रम का अध्यापन ही इस क्षेत्र के अंतर्गत समझा जाता है। किंतु वास्तव में यह क्षेत्र भी बहुत विस्तीर्ण है। मानव के ज्ञान का बहुत ही थोड़ा अंश भाषा के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है और उसमें से भी एक अंश मात्र लिपिबद्ध है। अत: लिपि ज्ञान अथवा भाषा ज्ञान से शिक्षा का पूर्ण उद्देश्य सिद्ध नहीं होता। 'अध्यापन' के अंतर्गत वे सब क्रियाएँ आती हैं, जिनके द्वारा कोई भी व्यक्ति या व्यक्ति समूह अपने पास के ज्ञान को दूसरे को देने का चेतनापूर्वक प्रयास करता हो। यह प्रयास पाठशालाओं और विश्वविद्यालयों में ही नहीं, घर-घर में तथा खेत-खलिहान, कारख़ानों, दुकानों, पाठशालाओं, कलाभवनों, खेल के मैदानों और मल्ल शालाओं में भी चलता रहता है। साथ ही जीवन के पहले आश्रम में ही नहीं, बाद में भी मनुष्य का विभिन्न प्रकार से अध्यापन होता रहता है। प्राचीन काल से कथा और कीर्तन तथा आज के रेडियो, सिनेमा, समाचार-पत्र आदि सभी इस सीमा में आते हैं।

स्वाध्याय

'स्वाध्याय' मनुष्य का स्वयं का अध्यापन है। लिपि ज्ञान स्वाध्याय के लिए बहुत आवश्यक है। पठन, मनन और चिंतन के सहारे मनुष्य ज्ञान को आत्मगम्य करता है। बिना स्वाध्याय के न तो प्राप्त ज्ञान टिकता है और न बढ़ता है। स्वाध्याय के बिना ज्ञान को जीवन का अंग बनाकर 'तेजस्वीय' बनाने का तो प्रश्न ही नहीं। अत: 'स्वाध्यायान्मा प्रमद:'—यह कुलपति का स्नातक को दीक्षांत के अवसर पर आदेश रहता था। पुस्तकालय आदि की व्यवस्था स्वाध्याय के लिए आवश्यक है।

शिक्षा का यदि सर्वांगपूर्ण विचार किया जाए तो शालेय शिक्षा क्रम तथा उसका माध्यम क्या हो, यह सहज ही समझा जा सकता है। व्यक्ति यदि भूत की ज्ञान निधि को भविष्य तक पहुँचाने वाला एक अभिकर्ता मात्र है तो उसकी शिक्षा में इसका समावेश होना चाहिए।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

यदि यह नहीं हुआ तो वह समाज का चेतनशील एवं प्रभावी घटक होने के स्थान पर समाज से असंबद्ध एवं मृत प्राण जैसा होकर समाज के लिए अहितकर ही होगा।

शालेय शिक्षा अकेली ही मनुष्य का निर्माण नहीं करती। संस्कार और अध्यापन का बहुत सा क्षेत्र ऐसा है, जो शालेय क्षेत्र से बाहर है। यदि इन दोनों क्षेत्रों में विरोध रहा तो विद्यार्थी के जीवन में एक अंतर्द्वंद्व उपस्थित हो जाता है। एक समन्वित, एकीकृत, सर्वांगपूर्ण, अखंड व्यक्तित्व का विकास होने के स्थान पर उसकी प्रकृति में विभक्त निष्ठाओं का समावेश हो जाता है। समाज और उसके बीच एक खाई पड़ जाती है।

इस दृष्टि से यह स्वाभाविक है कि शिक्षा का माध्यम स्वभाषा ही हो सकती है। भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं, वह स्वयं भी एक अभिव्यक्ति है। भाषा के एक-एक शब्द, वाक्य-रचना, मुहावरों आदि के पीछे समाज के जीवन की अनुभूतियाँ, राष्ट्र की घटनाओं का इतिहास छिपा हुआ है। फिर स्वभाषा व्यक्ति को अलग-अलग प्रकोष्ठों में नहीं बाँटती।

शिक्षा के इस सामाजिक उद्देश्य को पूरा करने का प्रयास किया गया तो व्यक्ति सहज ही चतुर्विध पुरुषार्थों के लिए प्रयत्न की योग्यता और सामर्थ्य प्राप्त कर लेगा।

—पाञ्चजन्य, नवंबर 10, 1958

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

45

सिख गुरुद्वारों के नियंत्रण का विकेंद्रीकरण किया जाना चाहिए

शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के चुनाव में मास्टर तारा सिंह की हार[1] काफ़ी महत्त्वपूर्ण है। अभी उनके अगले क़दम का कोई आकलन करता, उसके पहले ही उन्होंने यह धमकी जारी कर दी कि वह सरकार और गद्दारों के 'षड्यंत्र' के ख़िलाफ़ मोरचा बनाएँगे। लगता है, पंजाब का इतिहास फिर से दुहराया जाने वाला है। सिखों के लिए मूल मुद्दा गुरुद्वारा प्रबंधक का चुनाव और उसका नियंत्रण होना चाहिए। लेकिन अकाली दल की धर्म और राजनीति के बीच अंतरंग संबंध की धारणा व इसके लिए गुरुद्वारों के उपयोग ने पूरे मामले को राजनीतिक महत्त्व का मुद्दा बना दिया है।

अपने ग़ैर-सांप्रदायिक नज़रिये के दावे के बावजूद इन चुनावों में कांग्रेस की ख़ासी दिलचस्पी रही है। चाहे जैसे भी हो, एस.जी.पी.सी. पर नियंत्रण होना चाहिए, इस तरह की दलों की कोशिशों ने अलगाववादियों को अतिरिक्त बढ़ावा दिया। जब मास्टरजी शीर्ष पर होते हैं तो वह अपनी राजनीति चमकाने के लिए गुरुद्वारों का इस्तेमाल करते हैं और जब नीचे होते हैं तो शीर्ष पर बैठे लोगों को नीचे गिराने के लिए परिस्थितियों का फ़ायदा उठाने की कोशिश करते हैं। जहाँ तक गुरुद्वारों पर नियंत्रण प्राप्त कर राजनीतिक गोटियाँ सेट करने की बात है तो इस मामले में मास्टर तारा सिंह, ज्ञानी करतार सिंह और प्रताप सिंह कैरों के बीच कोई अंतर नहीं है। यदि नवनियुक्त अध्यक्ष 31 वर्षीय एम.एल.सी. सरदार प्रेम सिंह लालपुरा यह कहते हैं कि गुरुद्वारों का इस्तेमाल राजनीतिक उद्देश्यों के

---

1. 16 नवंबर, 1958 को शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी प्रमुख के लिए हुए चुनाव में प्रेम सिंह लालपुरा ने मास्टर तारा सिंह (अकाली नेता, जो अलग पंजाबी भाषी राज्य की माँग कर रहे थे) को शिकस्त दी थी। इसमें प्रेम सिंह को 77 तथा तारा सिंह को 74 मत प्राप्त हुए थे।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

लिए नहीं किया जाना चाहिए, तो इसके पीछे भी एक राजनीतिक मंशा है।

हम यह आशा नहीं कर सकते कि एस.जी.पी.सी. के चुनाव परिणाम से हुए बदलाव के बाद राज्य की उलझन व जटिल राजनीतिक परिस्थितियाँ सुलझ जाएँगी। ऐसा कहना भी सही नहीं है कि पंजाब का भविष्य एस.जी.पी.सी. के चुनाव से ही बँधा हुआ है। यदि ऐसा कहते हैं तो आम चुनाव और अन्य सेकुलर पार्टियों के महत्त्व को कम करते हैं। लोगों को समष्टि में चीज़ों को तय करने दीजिए। इसलिए ज़रूरी है कि गुरुद्वारों के नियंत्रण को विकेंद्रीकृत किया जाए। इसके लिए एस.जी.पी.सी. के संविधान में संशोधन की ज़रूरत है।

यदि गुरुद्वारों के प्रबंधन का विकेंद्रीकरण कर दिया जाता है तो इससे स्थानीय भागीदारी बढ़ेगी। इसका यह आशय बिल्कुल नहीं है कि पंथ के उपदेशों और समारोहों में कोई बदलाव किया जाए। अन्य क्षेत्रों की तरह इस क्षेत्र में विकेंद्रीकरण समय की माँग है। अब जबकि मास्टरजी बाहर हो गए हैं तो जो अब सत्ता में हैं, वे लोगों के हित में त्याग का बड़ा उदाहरण प्रस्तुत कर सकते हैं। चुनाव जीतने के कारण जो अधिकार उन्हें मिला है, उसका उन्हें दुरुपयोग नहीं करना चाहिए, उन्हें बाहर रखने के लिए भी नहीं, जिन्हें वे राजनीतिक और गुटीय कारणों से अवांछनीय मानते हैं। वे सफल नहीं हो सकते। जहाँ तक घोषित उद्‌देश्यों की बात है, तो वे अपने ही कर्मों से उसे असफल कर देंगे। इसका एक ही समाधान है कि गुरुद्वारों का प्रबंधन स्थानीय इकाइयों को सौंप दिया जाए।

सिखों ने श्री गुरु गोविंद सिंहजी के महाप्रयाण के बाद पवित्र ग्रंथ साहिब को ही अपना गुरु माना। इस निर्णय को शब्दों और भावनाओं में पूरी तरह अपनाया जाए। कोई भी अपने को इस महान् और पवित्र धरोहर का इकलौता प्रवक्ता होने का दावा नहीं कर सकता। संख्यात्मक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक तौर पर पूरे सिख समुदाय के लिए बात करने की कोशिश का अर्थ है, महान् गुरुओं के कार्य को नकारना। ऐसा अब कोई नहीं कर सकता। गुरुद्वारा प्रबंधन के कथित उद्‌देश्य के लिए गठित कमेटी, इसके अध्यक्ष और अन्य पदाधिकारी जो समुदाय के नेता या प्रमुख के नाते सामने आए हैं, वे भी। अध्यात्म और धार्मिक क्षेत्र का नेतृत्व चुनावों के ज़रिये पैदा नहीं किया जा सकता। संत का कभी चुनाव नहीं हो सकता—समुदाय और उसके निर्माता उनकी वाणी के रहस्य किसी चुनाव के ज़रिये मान्यता प्राप्त करने के मुहताज नहीं होते। सच्चाई यह है कि लोकतांत्रिक चुनाव की पूरी प्रक्रिया में धार्मिक और आध्यात्मिक क्रिया-कलापों के मामले सही नहीं बैठते। विकेंद्रीकरण सिख पंथ को और मज़बूती ही प्रदान करेगा।

—ऑर्गनाइज़र, नवंबर 24, 1958

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

46

जम्मू में राज्यविहीन लोग

उधमपुर से चार मील दूर पठानकोट-उधमपुर रोड के पास स्थानी में 13 से 18 नवंबर तक प्रजा परिषद् के कार्यकर्ताओं का अध्ययन वर्ग लगा। जम्मू संभाग के लगभग 100 कार्यकर्ताओं ने इस वर्ग में भाग लिया, जिसमें चार मुसलिम कार्यकर्ता भी शामिल थे। वहाँ यह निर्णय लिया गया कि कश्मीर घाटी में भी कार्य आगे बढ़ाया जाए। दीनदयालजी ने जनसंघ के मूलभूत सूत्रों और आर्थिक नीतियों पर भाषण दिया। प्रजा परिषद् के अध्यक्ष प्रेम नाथ डोगरा, पंजाब भारतीय जनसंघ के सचिव यज्ञ दत्त शर्मा और दिल्ली भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष बलराज मधोक ने भी वर्ग में आए कार्यकर्ताओं को संबोधित किया। दीनदयालजी का वक्तव्य।

विभाजक शक्तियों को जिस तरह की छूट दी जा रही है, उसका परिणाम देश के विखंडन के रूप में ही आएगा। जम्मू-कश्मीर को सर्वोच्च न्यायालय के पूर्ण अधिकार क्षेत्र में लाने, राज्य से लोकसभा के लिए प्रत्यक्ष चुनाव कराने और राज्य में आने-जाने के लिए परमिट व्यवस्था को समाप्त करने की तत्काल आवश्यकता है।

ऐसा माना जा रहा है कि विभाजन के बाद पंजाब और नॉर्थ-वेस्ट फ्रंटियर प्रोविंस[1] से आकर जम्मू में बसे एक लाख लोगों को नागरिकता व राज्य में वोट का अधिकार

---

1. उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रांत (NWFP), ब्रिटिश इंडिया में प्रशासनिक सुगमता के नामपर अंग्रेज़ों ने 1901 में बनाया था। स्वतंत्रता के बाद पाकिस्तान के हिस्से के रूप में आठ साल रहने के बाद 1955 में यह खैबर पख्तूनख्वा प्रांत बन गया था।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

देने से इनकार कर दिया गया है। इसका आशय यह हुआ कि ये लोग राज्यविहीन हो गए हैं। चूँकि अब उनके पास पाकिस्तान या भारत के किसी भी राज्य में वोट का अधिकार नहीं रहा, इसलिए उनकी समस्या वैसी ही हो गई है, जैसी राज्यविहीन सिलोन[2] के लोगों की है।

—ऑर्गनाइज़र, नवंबर 24, 1958

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

---

2. अब श्रीलंका।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

47

हमारी अधोमुखी योजनाएँ

देश की जटिल आर्थिक समस्याओं से जुड़े मुद्दों पर दीनदयालजी का एक साक्षात्कार।

प्रश्न : क्या आप यह मानते हैं कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना अति महत्त्वाकांक्षी है?

उत्तर : इस मायने में कि यह बेरोज़गारी और निम्न मानकों की समस्याओं से निपटने के आधार पर तैयार की गई है। यह एक छोटी योजना है, लेकिन यह भारी उद्योग के पक्ष में होने के कारण असंतुलित है। संसाधन के मामले में भी यह कमज़ोर है। हाँ, यह एक अति महत्त्वाकांक्षी योजना है।

प्रश्न : क्या आप यह मानते हैं कि तीन स्टील मिलों की स्थापना भी अति महत्त्वाकांक्षी है?

उत्तर : हाँ, यदि हम पहली पंचवर्षीय योजना अवधि में एक भी स्टील मिल[1] स्थापित कर पाते तो हम उतनी ही आसानी से दूसरी या तीसरी मिल भी स्थापित कर लेते, लेकिन वे ऐसा नहीं कर सके। और अब हम पूरी ताक़त लगा रहे हैं कि एक साथ तीन स्टील मिलों को लगाने के लिए ज़रूरी संसाधन जुटा लें। भारी उद्योग के साथ समस्या यह है कि ये बाक़ी की अर्थव्यवस्था, जो कि अपेक्षाकृत पिछड़ी हुई है या धीरे चल रही है, उससे तारतम्य नहीं बनाते। तब भी जब सरकार लघु उद्योग पर पैसा ख़र्च करती है,

---

1. दुर्गापुर इस्पात संयंत्र की स्थापना ब्रिटेन की सहायता से 1955 में की गई थी। इसने 1956 से कार्य करना प्रारंभ किया।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

क्योंकि इसका अधिकांश चरखा आदि पर ख़र्च होता है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में लघु उद्योग के लिए 160 करोड़ रुपए आवंटित किए गए हैं, लेकिन इनमें से एक-चौथाई पैसा ही यंत्रीकृत लघु उद्योगों को गया है। इसके ठीक उलट बड़े उद्योगों को 790 करोड़ दिए गए। इतना ही नहीं, बड़े उद्योगों के लिए आकलन लगातार बढ़त की दिशा में संशोधित किए जाते हैं। वे लघु उद्योग के संसाधनों को भी खा जाते हैं। लक्षित संसाधन को जुटाने की विफलता स्थिति को काफ़ी ख़राब बना देती है।

प्रश्न : क्या ऐसा आप रेलवे के ख़र्च के बारे में कह सकते हैं?

उत्तर : हाँ, बिल्कुल। देश के लोगों को रेलवे के मुक़ाबले मोटर परिवहन बेहतर सेवा प्रदान कर सकते हैं। लेकिन सरकार सड़क परिवहन के बजाय रेलवे पर अधिक ध्यान दे रही है। रेलवे से आय केवल 40 करोड़ रुपए की होती है, वह भी 1400 करोड़ के निवेश पर मिल रहे ब्याज के रूप में। इसमें किसी तरह का कोई लाभ प्राप्त नहीं हो रहा है। दूसरी तरफ़ निजी क्षेत्र के सड़क परिवहन से सरकार को विभिन्न करों के ज़रिये 80 करोड़ रुपए प्राप्त हो रहे हैं। इसके अतिरिक्त सड़क परिवहन से 20 लाख लोगों को रोज़गार मिल रहा है, जबकि रेलवे से केवल 11 लाख लोग ही जुड़े हैं।

अब आप बैलगाड़ी का ही मामला ले लें। आधिकारिक आँकड़ों के अनुसार बैलगाड़ी से रेलवे के मुक़ाबले अधिक माल की ढुलाई होती है। इस क्षेत्र में लगभग 900 करोड़ रुपए के निवेश का अनुमान है, थोड़ा सा इस क्षेत्र को प्रोत्साहन मिल जाए तो यह परिवहन व्यवस्था को मज़बूती प्रदान करने में बहुत आगे जा सकता है।

प्रश्न : कैसे?

उत्तर : ग्रामीण सड़क बनाकर। रबर के टायर के उपयोग करने की स्थिति बनाकर, बैलों की उन्नत नस्लें विकसित करने के लिए सहायता प्रदान कर आदि-आदि।

प्रश्न : श्री जे.सी. कुमारप्पा[2] ने पुनर्नवीकरण रबर के टायरों का विरोध किया है?

उत्तर : शायद इसलिए कि ये टायर गाँवों में नहीं बनते। जो भी हो, हम ऐसा नहीं सोचते कि सिर्फ़ गाँवों में बने सामानों का ही उपयोग ग्रामीण करें। हमारी सोच सरकार और सर्वोदयी लोगों के बीच की है।

---

2. जे.सी. कुमारप्पा (1892-1960) भारत में गांधीवादी अर्थशास्त्र के प्रथम गुरु माने जाते हैं। ग्राम-विकास संबंधी आर्थिक सिद्धांतों के अग्रदूत थे। इन्होंने गांधीवाद पर आधारित आर्थिक सिद्धांतों का विकास किया।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

और हाँ, नौका परिवहन भी है। नदियों की ऐसी सफ़ाई नहीं की गई है कि आसानी से नौकायन किया जा सके। थोड़ा सा ध्यान दे दिया जाए तो नौका परिवहन भी रेल और सड़क परिवहन को टक्कर दे सकता है। लेकिन यहाँ लोग सिर्फ़ बड़ी-बड़ी चीज़ों की ही बातें करते हैं। किसी को यह ध्यान नहीं है कि छोटी-छोटी चीज़ों से भी कितना अंतर आ सकता है।

प्रश्न : आप विदेशी क़र्ज़ को कैसे देखते हैं?

उत्तर : अगर वे स्वतः आते हैं तो ठीक है। लेकिन उन पर पूरी निर्भरता की सोच बहुत ही ग़लत है। विदेशी ऋण पर असहाय निर्भरता का परिणाम ख़ुद को पंगु बनाने के रूप में आ सकता है। यह बड़ा ही दुःखद है कि हर वित्त मंत्री भीख का कटोरा लेकर विदेश जाए।

मैं सोचता हूँ कि हमारे पास संतुलित योजना के लिए पर्याप्त संसाधन हैं। लेकिन सरकार इस व्यवसाय की ओर नहीं जा रही है। हमारे पास साहूकारों के रूप में प्राचीन बैंकिंग व्यवस्था है। वह ग्रामीण अर्थव्यवस्था की अधिकांश ज़रूरतें पूरी कर देती है। इस संस्था में सुधार करने और इसकी आपत्तिजनक ख़ामियों को दूर करने के बजाय सरकार केवल इसकी खिल्ली उड़ा रही है। यद्यपि वर्तमान ग्रामीण साख व्यवस्था को ख़त्म करना बहुत आसान है, लेकिन वे यह भूल रहे हैं कि आधुनिक बैंक पिछड़ी ग्रामीण अर्थव्यवस्था के अनुकूल नहीं बैठ सकते। उदाहरण के लिए कोई बैंक ग्रामीणों को उनके काम के ख़र्च के लिए क़र्ज़ उपलब्ध नहीं करा सकता, जबकि किसानों की यह सबसे वास्तविक ज़रूरत है।

विदेशी ऋण न केवल राष्ट्रीय स्वाभिमान को कमज़ोर करते हैं, बल्कि यह कोई अच्छा आर्थिक प्रस्ताव भी नहीं है। अधिकतर क़र्ज़ अमरीका से आते हैं। लेकिन अमरीकी क़र्ज़ की क़ीमत ब्रिटिश क़ीमत से भी अधिक है।

फिर कुछ आयातित मशीनें हमारे लिए अत्याधुनिक हैं तो उन्हें चलाने के लिए हमें विदेशी विशेषज्ञों को बुलाना पड़ता है। ये सारी चीज़ें हमारे लिए बेकार हैं।

जैसा कि मैंने कहा है कि लघु उद्योगों, जो कि अकेले बड़ी संख्या में लोगों को रोज़गार दे सकते हैं और उन्हें छोटे निवेश की आवश्यकता है, पर कोई ध्यान नहीं देता। महाराष्ट्र में इचलकरंजी पावरलूम के लिए बख़ूबी जाना जाता है, पर उसे पर्याप्त बिजली नहीं मिल रही। बगल में ही कोयना परियोजना से बिजली पैदा होती है, लेकिन यहाँ से बहुत दूर बंबई में बड़े उद्योगों के लिए बिजली भेजी जाती है और इचलकरंजी को कम बिजली ख़र्च करने

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

तथा शाम 7 बजे के बाद काम बंद करने के लिए कहा जा रहा है।

प्रश्न : क्या आप सोचते हैं कि जोत की सीमा और आकार निश्चित होना चाहिए?

उत्तर : हाँ, हम सोचते हैं कि पाँच एकड़ से कम एक आर्थिक रूप से अनुकूल जोत नहीं हो सकती। इससे नीचे के विभाजन को रोकना चाहिए। जहाँ तक जोत की सीमा की बात है, तो वह ऐसा भूखंड तय किया जाना चाहिए, जो अपनी उपज से 10,000 रुपए की आय कर ले। मैं नहीं समझता कि योजना आयोग ने जो कृषि उपज से प्राप्त आय की सीमा 3,600 रुपए तय की है, वह बहुत उचित है। जो लोग सामाजिक न्याय के नाम पर शोर मचा रहे हैं, वे यह समझने के लिए तैयार नहीं हैं कि केवल ज़मीन ही नहीं है, जिसके चारों ओर घूमें। हम समझते हैं कि सीमा से अधिक भूमि सीधे किसानों को दी जानी चाहिए। इसी से केवल भूमि के सही उपयोग को सुनिश्चित कर सकते हैं। जोत की छोटी सीमा पूरे देश को एक समान ग़रीब बना देगी।

प्रश्न : तीसरी पंचवर्षीय योजना के बारे में आप क्या सोचते हैं?

उत्तर : मैं समझता हूँ कि तीसरी योजना की यह असमय चर्चा दूसरी योजना की विफलता से लोगों का ध्यान हटाने के लिए शुरू की गई है। यह ध्यान भटकाने वाली बात है।

—ऑर्गनाइज़र, नवंबर 24, 1958

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

48

जनसंघ तेज़ी से न बढ़ा तो देश का कल्याण नहीं

खंडवा में, 23 नवंबर, 1958 को हुए मध्य प्रदेश जनसंघ के तृतीय अधिवेशन में दीनदयालजी के उद्‌गार।

आज विश्व तथा देश की राजनीति में तेज़ी के साथ उथल-पुथल हो रही है। ऐसी स्थिति में देश में शांतिपूर्ण प्रजातंत्र तथा भारतीय जीवन पद्धति को बनाए रखने के हेतु यह आवश्यक है कि देश में जनसंघ के सामर्थ्य को बढ़ाया जाए। आज समाज में प्रवृत्तियाँ बदल रही हैं, इस स्थिति में शांत होकर बैठना हानिकर होगा।

आज देश की राजनीति में तेज़ी से परिवर्तन हो रहा है तथा जनता का विश्वास उठ चुका है। बहुसंख्यक जनता कांग्रेस से नाराज़ है और अधिकांश जनता आज किसी भी दल के पीछे नहीं है। यह स्थिति सबसे भयानक है।

आज देश के प्रायः प्रत्येक विभाग में धाँधलियाँ हो रही हैं। यह कोई नई बात नहीं है, और इसकी केवल चर्चा करने अथवा विरोध से ये धाँधलियाँ समाप्त नहीं होंगी।

धन, धौंस और धाँधली के बल पर चलने वाली सरकार अधिक दिन तक नहीं चल सकती। उसे हटाने के लिए एक धक्का पर्याप्त है, परंतु यह धक्का प्रजातांत्रिक आधार पर तथा सामर्थ्य प्राप्त करके ही हो सकता है। जब तक प्रबल जनमत का सामर्थ्य नहीं होगा, ये धाँधलियाँ मिटना असंभव है।

नियमों से धाँधली एक मर्यादा तक रोकी जा सकती है। इसे केवल चुनाव जीतकर भी समाप्त नहीं किया जा सकता। हम जिन अधिकारों तथा बातों की माँग करें, उनकी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बुनियाद में नागरिकता की भावना होना आवश्यक है। जनसंघ कार्यकर्ताओं को हमेशा निश्चित सैद्धांतिक लक्ष्य को ग्रहण करके ही चलना चाहिए। जनता के अधिकाधिक समीप पहुँचकर ही हम उसकी समस्याएँ हल कर सकेंगे।

आज परिवर्तन काल में हमें कई बातों का निर्णय करना होगा। हमें यह भी निर्णय करना होगा कि इस देश में कौन सी जीवन पद्धति चलेगी और यह कार्य केवल सत्ता प्राप्त करने मात्र से नहीं होगा, इसके लिए जनता को भी जाग्रत् करना आवश्यक है।

आज सब प्रकार के विरोधों के बावजूद जनसंघ ने प्रगति की दिशा में क़दम बढ़ाया है। आज यही एक ऐसा संगठन है, जिसे शुरू से आज तक अपनी आर्थिक नीति में परिवर्तन नहीं करना पड़ा।

—पाञ्चजन्य, दिसंबर 1, 1958

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

49

गायों के लिए संघर्ष आज़ादी और लोकतंत्र का संघर्ष है

गोवध पर प्रतिबंध की हमारी माँग बहुत पुरानी है। इस प्रतिबंध के पक्ष और विपक्ष में बहुत कुछ कहा जा चुका है। समय-समय पर इससे जुड़े सभी तरह के आर्थिक, राजनीतिक और संवैधानिक मुद्दे भी उठाए जा चुके हैं। गायों के संरक्षण की कठिनाइयाँ और समस्याएँ किसी भी सरकार के व्यवहार से ऊपर नहीं हैं। न वे मना कर सकती हैं और न इससे मुँह मोड़ सकती हैं। एक ऐसे वर्ग के लोग, जिन्होंने स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी। विक्टोरिया राज को क़ानूनी, संवैधानिक और राष्ट्रीयता की भावना से अपदस्थ किया। लेकिन ठीक इसके उलट लोकमान्य तिलक ने मूल मुद्दे को उठाते हुए कहा कि 'स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम उसे लेकर रहेंगे।' उसी तरह 1942 में महात्मा गांधी ने भारत छोड़ो आंदोलन की शुरुआत करते हुए ऐलान किया कि 'वह ग़ुलाम रहने से ज़्यादा पसंद करेंगे अराजक कहलाना।' भावनाओं का यह ज्वार ही आज़ादी देने से इनकार करने वाले तर्कों का ठोस जवाब था। जब तक हम आज़ादी के लिए अंग्रेज़ों से बातचीत के ज़रिये मसले को सुलझाने में लगे रहे, तब तक हम इस प्रयास में कभी सफल नहीं हो सके। अंग्रेज़ों के लिए बड़ा आसान था कि वे हमारे लिए हर बार एक नई समस्या खड़ी कर देते थे।

लोगों का ऐसा भी वर्ग था, जिसने विक्टोरिया घोषणा के विरुद्ध और अन्य कानूनी, संवैधानिक और राष्ट्रीय भावना से जुड़े मुद्दों पर बल देते हुए स्वाधीनता का युद्ध लड़ा। इन तौर-तरीक़ों और उनके उद्देश्य से बिल्कुल ही अलग लोकमान्य तिलक ने मूलभूत मुद्दे पर ज़ोर दिया और सर्वथा नए नारे 'स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

लेकर रहूँगा' के साथ देश में नई ऊर्जा का संचार किया। इसके पश्चात् 1942 में महात्मा गांधी को भी भारत छोड़ो आंदोलन शुरू करना पड़ा और उन्होंने स्पष्टतया घ।।षत किया कि वह अनवरत दासता के बजाय अराजकता को ही वरीयता देंगे। इस मनोभाव की प्रबलता ही स्वतंत्रता प्रदान करने के विरोध में दिए जा रहे सभी तर्कों का मुखर और चतुराई भरा उत्तर था। स्वतंत्रता प्रदान करने के रास्ते में अंग्रेज़ों द्वारा उपस्थित की गई बाधाओं के बारे में जब भी हमने समझौता-वार्त्ता की, अपने प्रयास में कभी सफल नहीं हुए; क्योंकि अंग्रेज़ों के लिए यह स्वाभाविक और बेहद आसान था कि वे हर बार नई कठिनाइयाँ पैदा कर दें।

गाय राष्ट्र की पहचान है

गोहत्या निरोधी समिति[1] हमेशा यह मानती रही है कि गाय का मुद्दा हमारे लिए उनता ही महत्त्वपूर्ण है, जितना कि भारतीयों के लिए उनके मौलिक अधिकार। इस मौलिक अधिकार की स्वीकृति या अस्वीकृति ही भारतीय स्वतंत्रता की प्रकृति को नियत करेगी। वे जो यह मानते हैं कि स्वराज का आशय केवल शासन के हस्तांतरण से है, तो वे स्वराज और परराज के बीच अंतर और असंतुलन को समझने में विफल हैं। हमारे लिए स्वराज की संकल्पना हमारे मूल्यों का पुनर्जन्म और सम्मान के प्रतीकों का अभ्युदय है। और गाय हमारे सम्मान के सभी प्रतीकों का केंद्र है। इसलिए जब भी विदेशी आक्रांताओं ने हमारे देश पर आक्रमण किया, सबसे पहले उन्होंने गायों पर विशेषकर प्रहार किया। स्वतंत्रता की हमारी चाहत हमेशा से गायों के संरक्षण के साथ जुड़ी रही है।

हमारे जीवन में यह द्वंद्व देश में सरकार का वह स्वरूप है, जिसे हमारे देश ने अपनाया है। जो भारत में विदेशी मूल्यों को स्थापित करना चाहते हैं, जो विदेशों से आयातित नीतियों के धरातल पर भारत का भविष्य देखना चाहते हैं, जिन्होंने हमारी प्राचीन जीवन पद्धति को पूरी तरह भुला दिया है, वे ही गो संरक्षण की समस्या पर अपनी भौंहें तानते हैं और नाक सिकोड़ते हैं। पर लाखों भारतीय आज भी उनके सोचने के तरीक़े को बदलने का सामर्थ्य रखते हैं। यही कारण है कि ये शासक न चाहते हुए भी गोवध पर रोक लगाने से सीधा इनकार करने से बच रहे हैं और चाहते हैं कि लोगों को बहलाते रहें। लेकिन हम इसे स्थानीय लोगों पर विदेशी राज स्थापित करने का उनका मूखर्तापूर्ण प्रयास ही कह सकते हैं। इसलिए गो संरक्षण का यह मुद्दा न सिर्फ़ आज़ादी के संघर्ष से, बल्कि यह हमारे लोकतंत्र से भी जुड़ा हुआ है।

1. प्रभुदत्त ब्रह्मचारी (1885-1990) ने शंकराचार्य निरंजन देव, स्वामी करपात्री महाराज और महात्मा रामचंद्र वीर के साथ 'गोहत्या निरोध समिति' की स्थापना की थी। इनके नेतृत्व में नवंबर 1966 में संसद् पर लाखों लोगों ने गोहत्या पर क़ानून बनाने को लेकर ऐतिहासिक प्रदर्शन किया था। इन्होंने 1967 में गोहत्या के प्रश्न पर 80 दिन अनशन किया था।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कुछ भ्रामक बहाने

क्या हम उन लोगों से पूछ सकते हैं, जो गोवध पर प्रतिबंध लगाने के रास्ते में आर्थिक दुश्वारियों का बहाना बनाते हैं, कि क्या हम सभी तरह के चुनावों पर भी प्रतिबंध लगा दें, क्योंकि चुनाव कराने में करोड़ों ख़र्च होते हैं। यदि लोकतंत्र की खातिर हम एक ऐसी व्यवस्था को अपना सकते हैं, जो न सिर्फ़ ख़र्चीली है, धीमी है और बेअसर है तो हमारे धार्मिक विश्वास और सम्मान के लिए गोवध पर प्रतिबंध के कारण आने वाले आर्थिक बोझ (यदि ऐसा मान भी लेते हैं कि गोवध के कारण आर्थिक नुक़सान हो सकता है, जबकि वास्तव में इसका अर्थव्यवस्था पर कोई असर नहीं आने वाला है।) को क्यों नहीं उठा सकते? ये सब इस बात पर निर्भर करता है कि हम राष्ट्र को किस रूप में लेते हैं। वे जिनके लिए राष्ट्र की अवधारणा कुछ लोगों के समूह तक सीमित है, जो साथ मिलकर खाते-पीते हैं, शादी-विवाह करते हैं, वे कभी भी गाय का माहात्म्य नहीं समझ सकते और न राष्ट्र-निर्माण में सफल हो सकते हैं।

वास्तव में राष्ट्र के भौतिक मानव समूहों के पीछे प्रेरणादायक मन का बल भी है। इसका अस्तित्व आध्यात्मिक परंपराओं और धार्मिक मूल्यों पर आधारित होता है, जो अकेले जीवन प्रदान करता है और अंगों में उत्साह भरता है। गाय न केवल राष्ट्र मन के केंद्र में है, बल्कि वह ब्रह्मा की तरह हमारे अस्तित्व में विद्यमान है।

गो संरक्षण का यह हमारा नारा न सिर्फ़ लंबे समय से दमित हमारी इच्छाओं की पूर्ति में सहयोग करेगा, बल्कि संपूर्ण राष्ट्र जीवन में स्वयं चेतना की तरंगें भी भरेगा। यह मौजूदा सरकार के स्वरूप का भी कायापलट कर देगा। आज जो यह सरकार राष्ट्रीय सम्मान के सूचकों को संशय की भावना से देखती है, कल वही सरकार गो संरक्षण और गो विकास में गर्व की अनुभूति करेगी। तभी सरकार निरंतर प्रयास के ज़रिये प्रगति के रास्ते पर ठीक से चल पाएगी और राष्ट्र को महान् बना पाएगी।

इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए ज़रूरी नहीं था कि सरकार 15 अगस्त, 1947 को ही गोवध पर प्रतिबंध की घोषणा कर देती। अब हमारे संविधान में एक संशोधन के ज़रिये इसकी घोषणा की जा सकती है। गोवध पर अंकुश लगाने के लिए जिन राज्यों ने कई क़ानून पास करवाए हैं, वे राष्ट्रीय आत्मा व विवेक को कुछ हद तक संतुष्ट कर सकते हैं, लेकिन यदि राष्ट्रीय चेतना को समय के साथ जगाना है तो एक ही विकल्प है, और वह यह कि गोवध पर संवैधानिक प्रतिबंध लगाया जाए। तभी हम वास्तविक जीत हासिल कर सकेंगे।

—ऑर्गनाइज़र, दिसंबर 15, 1958

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

50

भारतीय जनसंघ वार्षिक अधिवेशन, बंगलौर महामंत्री प्रतिवेदन*

भारतीय जनसंघ का सप्तम राष्ट्रीय वार्षिक अधिवेशन बंगलौर में 23-25 दिसंबर, 1958 को संपन्न हुआ था। एक ही वर्ष में जनसंघ का यह दूसरा अधिवेशन था। इस अधिवेशन की अध्यक्षता पुनः जनसंघ के अध्यक्ष आचार्य देवाप्रसाद घोष ने की थी। अप्रैल 1958-दिसंबर 1958 तक की जनसंघ की गतिविधियों का ब्योरा दीनदयालजी ने अपने प्रतिवेदन में प्रस्तुत किया।

पिछला वार्षिक अधिवेशन अंबाला में 4, 5 और 6 अप्रैल को हुआ था। एक वर्ष के अंदर ही हम यहाँ सप्तम वार्षिक अधिवेशन में एकत्र हैं। आम चुनावों के कारण सन् 1957 में दलीय चुनावों एवं समितियों के गठन आदि के कार्य में विलंब होने के कारण हमने पिछला अधिवेशन तीन महीने बाद किया था। इस वर्ष हमने अपने कार्यक्रम उसी समय सारिणी के अनुसार बनाए हैं। अत: यह सत्र केवल नौ मास का हो रहा है।

अंबाला में हम लोगों ने इस वर्ष अपने संगठन की ओर अधिक ध्यान देने व उसका जाल व्यापक फैलाने का निर्णय लिया था। तदनुसार कार्य भी हुआ है। प्राप्त सूचनाओं के अनुसार इस वर्ष की सदस्य संख्या 2,10,000, स्थानीय समितियाँ 1782 तथा 455 मंडल समितियाँ बनी हैं। पिछले वर्ष एक लाख सदस्य, 375 मंडल समितियाँ तथा 1000 स्थानीय समितियाँ थीं। इस प्रकार हमने प्रगति तो अवश्य की है तथा कुछ प्रदेशों ने इस ओर अच्छा प्रयास भी किया है। किंतु हमने 1000 मंडल समितियों का जो लक्ष्य रखा

---

* देखें परिशिष्ट II, पृ. 287

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

था, उससे हम बहुत दूर हैं। कई स्थानों पर जनसंघ की शाखाएँ होने के बाद भी वैधानिक दृष्टि से समितियों का संगठन कतिपय संविधान की दुरूहताओं के कारण, जिन्हें दूर करने के लिए अक्तूबर में भारतीय कार्यसमिति ने एक उपसमिति संगठित की थी तथा मुख्यतया कार्यकर्ताओं की उपेक्षावृत्ति से नहीं हो पाता। जब हमने पिछले आम चुनावों में 1000 से अभिक मंडलों में चुनाव लड़े तो कोई कारण नहीं है कि हम इस लक्ष्य को पूरा न कर पाएँ।

इस वर्ष हमने यह भी निश्चय किया था कि जो प्रदेश अछूते रह गए हैं वहाँ भी जनसंघ का संदेश पहुँचाने के लिए विशेष प्रयत्न किए जाएँ। इस दृष्टि से केरल में हमने विधिवत् संगठन खड़ा कर लिया। इस वर्ष वहाँ सदस्यता से लेकर प्रदेश कार्यसमिति तक संपूर्णत: वैधानिक इकाइयाँ गठित हुई हैं। तमिलनाडु में तदर्थ समिति बनी है। वहाँ के गणमान्य व्यक्तियों ने स्वयं प्रेरणा से इस कार्य को हाथ में लिया है। निश्चित ही हम आशा कर सकते हैं कि हमारी शाखा इस प्रदेश में अत्यंत ही सुदृढ और प्रभावी होगी। आसाम और उत्कल के दौरे पूर्वांचल के संगठन मंत्री श्री नानाजी देशमुख ने किए हैं। आसाम में श्री रमेश कुमार मिश्र संयोजक के रूप में नियुक्त हुए हैं, शीघ्र ही वहाँ विभिन्न समितियों की स्थापना होगी। उत्कल में भी हम शीघ्र ही पहुँचने का प्रयास करेंगे। इस प्रकार देश के सभी प्रदेशों में जनसंघ का संगठन खड़ा करने का काम पूरा हो सकेगा।

कार्यकर्ता शिक्षण

पिछले वर्ष हमने विलासपुर में सार्वदेशिक आधार पर एक कार्यकर्ता शिक्षण वर्ग का आयोजन किया था। इस वर्ष विभिन्न प्रदेशों में प्रादेशिक एवं विभागीय स्तर पर इसका आयोजन हुआ। आंध्र, बिहार और गुजरात को छोड़कर शेष सभी प्रदेशों में ये वर्ग लगे। इनमें कुल मिलाकर 1700 से ऊपर कार्यकर्ताओं ने भाग लिया। इन वर्गों का कार्य की दृष्टि से बहुत लाभ हुआ है। जनसंघ की विचारधारा एवं कार्यक्रम का अधिक ज्ञान एवं स्पष्टीकरण होने के अतिरिक्त आपस में विचार विनिमय के द्वारा कार्यकर्ताओं ने एक-दूसरे की समस्याओं को भी समझा है तथा इस प्रकार के सामूहिक इच्छा और प्रेरणा लेकर काम करने वाले सक्रिय गट हम प्रत्येक प्रांत में तैयार कर पाए हैं। इनके द्वारा हम स्वाध्याय मंडलों की, जिनकी आवश्यकताओं और उपयोगिता का हम प्रतिवर्ष प्रतिपादन करते रहते हैं, स्थापना और उनका भलीभाँति संचालन कर सकेंगे।

चुनाव

चालू सत्र से जनसंघ को राज्य विधानसभा के तीन उपचुनावों—सीहोर (मध्य प्रदेश), महुआ (राजस्थान) तथा अफजलगढ़ (उत्तर प्रदेश)—में विजय प्राप्त हुई। ये

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

तीनों ही उपचुनाव राजनीतिक दृष्टि से अपना महत्त्व रखते हैं। सीहोर में हमारा प्रत्याशी पिछले आम चुनावों में रिटर्निंग ऑफिसर की धाँधलियों के कारण थोड़े से वोटों से हरा दिया गया था। उसके विरुद्ध याचिका में जीते हुए एक उपमंत्री महोदय को हम न केवल अपदस्थ करने में सफल हुए अपितु उपचुनाव में भी बहुत भारी मतों से पुराने प्रत्याशी श्री महाजन ने कांग्रेस को पराजित किया। महुआ और अफजलगढ़ में हमने परिगणित जनजाति तथा परिगणित जाति के प्रत्याशियों को असुरक्षित स्थान से खड़ा किया। उनकी विजय ने यह स्पष्ट कर दिया है कि यदि ढँग से काम किया जाए तो बिना किसी भेदभाव के सभी जाति के बंधु समाज का नेतृत्व और प्रतिनिधित्व कर सकते हैं। पिछले वर्ष के वृत्त में मैंने इस आवश्यकता की ओर संकेत किया था। संविधान द्वारा प्रदत्त संरक्षण 1961 में समाप्त हो जाएँगे। इन संरक्षणों ने अपने परिगणित समाज के बंधुओं को केवल कुछ निर्वाचन क्षेत्रों तक ही सीमित कर दिया है और यहाँ भी समाज के साथ घुल-मिलकर उसका विश्वास संपादन करने और मार्गदर्शन करते हुए आगे बढ़ने के स्थान पर किसी-न-किसी अन्य प्रत्याशी के साथ गठबंधन कर उसके सीहोर के चुनाव में जीतने की आशा करते रहते हैं। यह उनके स्वस्थ विकास में बाधक है।

इनके अतिरिक्त नजीबाबाद (उत्तर प्रदेश) और जालौर (राजस्थान) सुरक्षित क्षेत्रों में हमारे प्रत्याशियों ने कांग्रेस को टक्कर तो अच्छी दी किंतु सफलता प्राप्त नहीं कर सके। कांग्रेस ने दोनों ही क्षेत्रों में जातिवाद एवं सांप्रदायिकता को जी भर उभाड़ा।

मौलाना आज़ाद की मृत्यु के कारण रिक्त लोकसभा के गुड़गाँव क्षेत्र के उपचुनाव[1] में जनसंघ ने अपना कोई प्रत्याशी नहीं खड़ा कर के आर्य समाज के प्रसिद्ध नेता श्री प्रकाशवीर शास्त्री का समर्थन करने का निश्चय किया। जनसंघ के कार्यकर्ताओं ने भारी लगन और परिश्रम से कार्य किया तथा हमारे पुराने प्रत्याशी श्री मूलचंद माहेश्वरी ने इस चुनाव को अपने स्वयं के चुनाव से भी अधिक दिलचस्पी से लड़ा। फलस्वरूप श्री प्रकाशवीर शास्त्री[2] ने कांग्रेस को भारी बहुमत से परास्त किया। जनसंघ के कार्य और प्रतिष्ठा दोनों को ही इस चुनाव से भारी लाभ हुआ।

राज्य विधान परिषदों में इस वर्ष एक स्थान आंध्र में, दो पंजाब में तथा एक उत्तर प्रदेश में प्राप्त किया है। आंध्र में एक स्वतंत्र सदस्य जनसंघ दल में सम्मिलित हो गए हैं। मद्रास की तदर्थ समिति के अध्यक्ष विधान परिषद् के पुराने सदस्य हैं। इस प्रकार इस

---

1. 1958 में मौलाना अबुल कलाम आज़ाद की मृत्यु के बाद रिक्त गुडगाँव लोकसभा के लिए हुए उपचुनाव में आर्य समाजी नेता प्रकाशवीर शास्त्री को 94,517 मत मिले, जबकि कांग्रेसी उम्मीदवार एम. चंद्र को सिर्फ़ 56,554 मत प्राप्त हुए थे।
2. प्रकाशवीर शास्त्री (1923-1977) लोकसभा सदस्य, जिन्हें अटल जी ने अपने से भी बेहतर वक्ता कहा। 1957 में आर्य समाज द्वारा संचालित हिंदी आंदोलन में उनके भाषणों ने ज़बरदस्त जान फूँक दी थी। पूरे देश से हज़ारों सत्याग्रहियों ने पंजाब आकर गिरफ़्तारियाँ दीं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

समय विभिन्न विधान परिषदों में जनसंघ के 10 सदस्य हैं।

दिल्ली से राज्यसभा के लिए एक उपनिर्वाचन में सभी विरोधी दलों का संगठन कर के स्वतंत्र उम्मीदवार श्री अहमद अली को सफल बनाने का श्रेय जनसंघ ले सकता है। दिल्ली निर्वाचन मंडल में विभिन्न राजनीतिक दलों की स्थिति कुछ इस प्रकार की है कि किसी का बहुमत नहीं है। फिर भी कांग्रेस के 37 सदस्यों के मुक़ाबले में जनसंघ के 27 सदस्यों द्वारा समर्थित उम्मीदवार विजयी हुआ, यह सबको आश्चर्य में डालने वाली घटना रही है।

स्थानीय निकाय

स्थानीय निकायों के चुनावों में जनसंघ प्रगति के संबंध में प्रदेशानुसार पूर्ण विवरण प्रस्तुत न करते हुए इतना ही कहा जा सकता है कि वह साधारण रही है। हाँ, अंबाला छावनी में पिछले अधिवेशन में जो चुनाव हुए, उसमें जनसंघ के अतिरिक्त और कोई उम्मीदवार सफल नहीं हो सका। सभी दलों के सम्मिलित प्रयत्नों के उपरांत जनसंघ की यह शत-प्रतिशत विजय वहाँ की जनता के जनसंघ के प्रति गहरे विश्वास का प्रतीक है।

आंदोलन

जनसंघ के कार्यकर्ताओं एवं शाखाओं ने जो भिन्न-भिन्न प्रकार के आंदोलन चलाए, उनसे उनकी जागरूकता का परिचय मिलता है।

नेहरू-नून समझौते का सार्वदेशिक आधार पर विरोध किया गया। जनसंघ के कार्यकर्ताओं ने बड़ौदा, भोपाल, इंदौर, कलकत्ता आदि स्थानों पर प्रधानमंत्री के आगमन के अवसर के समय प्रदर्शनों के द्वारा जनभावनाओं को प्रकट किया। जनसंघ के प्रधान आचार्य देवा प्रसाद घोष, पश्चिम बंगाल जनसंघ के मंत्री श्री सत्येंद्र बसु, संगठन मंत्री श्री रामप्रसाद दास एवं अन्य कार्यकर्ताओं ने सीमा क्षेत्र का दौरा किया तथा आतंकित जनता को आश्वस्त किया। पूर्वांचल के संगठन मंत्री श्री नानाजी देशमुख ने भी आसाम और त्रिपुरा के प्रभावित क्षेत्रों का दौरा किया।

भारत की सुरक्षा को जनसंघ ने सदैव प्राथमिकता दी है। चुनाव घोषणा-पत्र तथा तदुपरांत चुनावों में भी हमने इस प्रश्न की ओर बराबर ध्यान दिलाया। इस वर्ष 'अखंड भारत दिवस' के साथ 'भारत सुरक्षा दिवस' मनाकर इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न की ओर जनता और शासन का ध्यान आकृष्ट किया।

गो हत्या निरोध समिति ने संविधान में संशोधन के द्वारा गोहत्या बंद कराने के लिए जो देशव्यापी जनजागरण का कार्य हाथ में लिया, उसमें जनसंघ के सभी कार्यकर्ताओं ने स्थान-स्थान पर पूर्ण योगदान दिया। इसके पूर्व भी महाराष्ट्र जनसंघ ने श्री रामभाऊ

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

महालगी[3] द्वारा बंबई की विधानसभा में गोहत्या प्रतिबंध विधेयक उपस्थित करने पर व्यापक प्रदर्शनों का आयोजन किया। हैदराबाद में श्री रामचंद्र शर्मा 'वीर'[4] के अनशन के समय इस प्रश्न पर जनमत का संगठन किया। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के उपरांत जो क़ानून अप्रभावी हो गए हैं, उनमें आवश्यक संशोधन करने के निमित्त जनसंघ के विधायकों ने उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश में सब प्रकार का प्रयास किया। मध्य प्रदेश और राजस्थान से ग्वार की निकासी पर रोक लगाई जाए, यह भी प्रयास हुआ। ग्वार का गम (गोंद) बनाने में प्रयोग तथा उसका भारी मात्रा में निर्यात होने से पशुओं के लिए खाद्य का प्रश्न और विषम हो गया है। राजस्थान में इस दृष्टि से भी काफ़ी काम हुआ। चोरी-छिपे गोहत्या अनेक स्थानों पर होती है। बिजनौर और गुड़गाँव में इसका प्रमाण बहुत अधिक था। जनसंघ के कार्यकर्ताओं ने इसका पता लगाने और उसे रोकने के लिए बहुत प्रयास किया और काफ़ी मात्रा में सफलता भी पाई। मुजफ्फरनगर में भी इस प्रश्न पर जनमत काफ़ी क्षुब्ध रहा। खेद है कि शासन क़ानून की अवज्ञा करने वालों का ही प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष साथ देकर जनसंघ कार्यकर्ताओं का भिन्न प्रकार से दमन करने का ही प्रयत्न करता है।

खाद्यान्न के बढ़ते हुए भावों को रोकने में शासन की असफल नीति के विरुद्ध स्थान-स्थान पर आंदोलन किए गए। उत्तर प्रदेश में इस आंदोलन ने सत्याग्रह तक का स्वरूप ले लिया। इसमें जनसंघ के हज़ारों कार्यकर्ता जेल गए, जिनमें प्राय: सभी पदाधिकारी, संसद् एवं विधान मंडलों के सदस्य भी सम्मिलित थे। अन्य दलों ने भी यह आंदोलन किया। किंतु हमारा कार्यक्रम उनसे भिन्न शांतिमय सत्याग्रह के द्वारा वसूली रोकने, सस्ते गल्ले की दुकानें खोलने तथा सर्वदलीय समिति के गठन की अपनी माँगों को रखने का था। गल्ला गोदामों को लूटने के कार्यक्रम को, जिसे कुछ राजनीतिक दलों ने अपनाया, हमने अनुचित समझा और उसकी सार्वजनिक रूप से निंदा की।

योजना के अंतर्गत विभिन्न परियोजनाओं के लिए शासन ने किसानों की भूमि हस्तगत की है। विस्थापितों को बसाने का तो कोई सुविचारित कार्यक्रम भी शासन के पास नहीं है किंतु उन्हें क्षतिपूर्ति भी बहुत कम और विलंब से दी जाती है। अभी बहुत से दावेदारों को कोई क्षतिपूर्ति नहीं मिली। कई स्थानों पर तो सरकार ने ज़मीन भी ले ली, साथ ही उसका लगान भी किसानों से वसूल करती जाती है। भाखड़ा बाँध में डूबने वाले

3. रामभाऊ म्हालगी (1921-1981), संयुक्त महाराष्ट्र आंदोलन के दौरान हुए 1957 के विधानसभा चुनाव में मावल सीट (पुणे के समीप) से विधायक।

4. महात्मा रामचंद्र शर्मा 'वीर' (1909-2009) एक यशस्वी लेखक, कवि तथा ओजस्वी वक्ता थे। सन् 1932 से ही गोहत्या के विरुद्ध जनजागरण किया। 'हमारी गोमाता', 'वीर रामायण' (महाकाव्य), 'हमारा स्वास्थ्य' जैसी दर्जनों पुस्तकें लिखकर साहित्य सेवा में योगदान किया। वीर जी ने देश की स्वाधीनता, मूक प्राणियों व गोमाता की रक्षा तथा हिंदू हितों के लिए 28 बार ज़ेल की यातनाएँ सहन की थीं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बिलासपुर नगर, नांगल के पास के 17 गाँवों तथा मिर्जापुर ज़िले में कई गाँवों के प्रश्न को लेकर जनसंघ को बहुत हलचल करनी पड़ी। जनसंघ के अनेक कार्यकर्ता ज़ेल में भी गए। चंबल बाँध के सिलसिले में भी क्षतिपूर्ति दिलाने के लिए जनसंघ को आंदोलन करना पड़ा। संपूर्ण महाराष्ट्र में इसके लिए आंदोलन का आयोजन किया गया।

विस्थापितों के पुनर्वास का यद्यपि शासन अनेक बार दावा कर चुका है किंतु यह सर्वविदित है कि अभी बहुत काम बाक़ी है। शासन ने क्षतिपूर्ति के दावे देने की जो पद्धति अपनाई है, उससे तो जो बस गए थे, उनके फिर से उजड़ने की नौबत आ गई है। स्थान-स्थान पर जनसंघ ने उनके प्रश्नों को हाथ में लिया है। कानपुर जनसंघ के कार्यकर्ता श्री देवीदास आर्य ने प्रधानमंत्री पंडित नेहरू के निवास पर धरना देकर देहाती विस्थापितों के प्रश्न की ओर शासन का ध्यान खींचा। चेंबूर में भी जनसंघ के कार्यकर्ता बहुत सक्रिय हैं। दिल्ली में केंद्रीय पुरुषार्थी सभा के मंच से विस्थापितों के प्रश्नों को सुलझाने का प्रयास श्री विजय कुमार मल्होत्रा एवं अन्य कार्यकर्ता करते रहते हैं।

पूर्वी बंगाल के विस्थापितों का प्रश्न और भी गंभीर है। शासन उनके प्रति अपने दायित्व का बिल्कुल निर्वाह करने के लिए तैयार नहीं। हाल ही में 'पूर्व भारत वास्तुहारा संसद्' नाम से एक संगठन बना है। पाकिस्तान के भूतपूर्व केंद्रीय मंत्री श्री जोगेंद्र नाथ मंडल[5] एवं पश्चिम बंगाल के जनसंघ के कार्यकर्ताओं ने इसके संगठन में विशेष कार्य किया है। बिहार में बेतिया शिविर में भी जनसंघ कार्यकर्ता सक्रिय रूप से उनकी समस्याओं को सुलझाने में प्रयत्नशील रहे हैं।

इनके अतिरिक्त अनेक स्थानीय एवं प्रादेशिक महत्त्व के प्रश्न हैं, जिनको जनसंघ की शाखाओं ने आंदोलन का विषय बनाया। पुलिस के अत्याचारों से लेकर लिपि परिवर्तन (लखनऊ लिपि) तक जीवन के विभिन्न पहलुओं से ये प्रश्न संबंध रखते हैं। उनकी व्याप और विविधता यही बताती है कि जनता की समस्याओं के समाधान के लिए बहुत कुछ किया जा सकता है।

यद्यपि कोई भी राजनीतिक दल सार्वदेशिक प्रश्नों को अपनी आंदोलन कक्षा से बाहर नहीं कर सकता। किंतु हमारा अधिक ध्यान स्थानीय समस्याओं की ओर ही होना चाहिए। सार्वदेशिक प्रश्न देश की भावात्मक एकता को जाग्रत् एवं पुष्ट करते हैं। राष्ट्र की राजनीतिक गतिविधि के विषय में समाज के सभी घटकों का अधिक ज्ञान एवं अभिरुचि वांछनीय है। किंतु दुर्भाग्य से भारत में जो भी सार्वदेशिक प्रश्नों को लेकर

5. जोगेंद्र नाथ मंडल (1904-1968) बंगाल के प्रसिद्ध समाज सुधारक और राजनीतिज्ञ। 1946 में पं. नेहरू के नेतृत्व में बनी अंतरिम सरकार में मंत्री रहे। आज़ादी के बाद पाकिस्तान के प्रथम क़ानून व श्रम मंत्री (1947-50) बने, लेकिन पाकिस्तान प्रशासन द्वारा हिंदू विरोधी क़दमों से आहत हो इस्तीफ़ा देकर 8 अक्तूबर, 1950 को भारत वापस आ गए थे।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

आंदोलन चलाता है, वह शासन और जनता के बीच एक लड़ाई का रूप धारण कर लेता है। जनतंत्र में आंदोलन का अर्थ लड़ाई या विद्रोह नहीं अपितु जनता की भावनाओं का प्रकटीकरण है। इसी माध्यम से जनता शासन की नीतियों को प्रभावित करती है। जनता द्वारा शासन का यही अर्थ है। अत: शासन का कर्तव्य इन आंदोलनों का दमन नहीं अपितु उनकी व्यापकता और गहराई को समझना है। शासन की दमन नीति से जनता और शासन के बीच बढ़ने वाली खाई विरोधी दलों को लाभ पहुँचा सकती है किंतु देश के लिए शुभ नहीं। शासन जब जनता की माँग को अनसुनी कर देता है तो वह अनुत्तरदायी हो जाती है। कुछ राजनीतिक दल उसकी इस अनुत्तरदायित्व की भावना को बढ़ाने का ही कार्यक्रम हाथ में लेकर चले हैं। मैं समझता हूँ कि हमें इस विषय में गंभीर चिंतन करना चाहिए तथा सभी दलों एवं शासन को परंपराएँ और मर्यादाएँ निश्चित करनी चाहिए।

स्थानीय समस्याएँ यदि ढंग से ली जाएँ तो साधारणतया प्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं बनतीं। इसमें स्थानीय नेतृत्व के विकास एवं जनता के संगठन की बहुत गुंजाइश है। जनता भी कोई दूर बैठा हुआ शासन हमारी समस्याएँ सुलझा देगा, इस अप्रजातांत्रिक भाव को छोड़कर अपने दायित्व को अधिक समझती है। देशव्यापी नीतियों के सैद्धांतिक पक्ष की व्यावहारिक परख स्थानीय आधार पर ही होती है। वहीं उसके ब्योरे पता लगाते हैं। यदि इनकी ओर ध्यान दिया तो हमारी नीतियाँ और आलोचनाएँ यथार्थवादी और साधार रहेंगी।

रचनात्मक एवं सहायता कार्य

जनसंघ के कार्यकर्ताओं ने कई स्थान पर पाठशाला, शिशु मंदिर, औषधालय, वाचनालय, पुस्तकालय आदि विभिन्न प्रकार के रचनात्मक कार्य हाथ में ले रखे हैं। समाज की विविध आवश्यकताओं की पूर्ति एवं जनसंपर्क के माध्यम के रूप में इनका बहुत उपयोग है। किंतु इनका संचालन स्वतंत्र रूप से करना होता है। आज जब शासन प्रत्येक प्रश्न की ओर दलगत दृष्टि से ही देखता हो, कांग्रेस इतर व्यक्तियों को समाज सेवा के ये काम करना अधिकाधिक कठिन होता जाता है। जो स्वतंत्र काम करते हैं, उनके मार्ग में तरह-तरह से बाधाएँ डाली जाती हैं; दूसरी ओर कांग्रेस इन सभी साधनों का अपने दलीय स्वार्थों को बढ़ाने के लिए बराबर उपयोग करती है। इसी विचार से शासन शैक्षिक क्षेत्र पर अधिकाधिक नियंत्रण करता जा रहा है। शिक्षा का यह सरकारीकरण प्रजातंत्र के लिए तो संकट है ही, शिक्षा क्षेत्र के स्वस्थ विकास में भी बाधक है।

बाढ़, महामारी आदि प्रकृति के प्रकोप से समाज के संत्रस्त होने पर सभी समाजसेवियों का सहायता के लिए दौड़ पड़ना स्वाभाविक है। जनसंघ के कार्यकर्ता इसमें सदैव

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अगुआ रहे हैं। पंजाब में घुस्सी बाँध के टूट जाने पर जनसंघ के 100 कार्यकर्ताओं ने लगातार 10 दिन काम कर के उसकी मरम्मत की। उत्तर प्रदेश एवं महाराष्ट्र के बाढ़ पीड़ितों की सहायतार्थ जनसंघ की प्रदेश शाखाओं ने धन, कपड़े आदि सामान के एकत्रीकरण एवं वितरण का कार्यक्रम हाथ में लिया।

विधान मंडलीय कार्यक्रम

राज्य विधान मंडलों एवं संसद् में जनसंघ के प्रतिनिधियों ने उपस्थित प्रश्नों पर जनसंघ का दृष्टिकोण रखा तथा समय-समय पर उत्पन्न परिस्थितियों और समस्याओं की ओर शासन का ध्यान आकृष्ट किया। उन सबका विवरण बहुत लंबा होगा। यह दुःख का विषय है कि उनको जितना समाचार-पत्रों में स्थान मिलना चाहिए, उतना नहीं मिला। राजस्थान प्रदेश जनसंघ ने 'राजस्थान विधानसभा में जनसंघ का एक वर्ष' नाम से पुस्तक छपवाकर अच्छा काम किया है। अन्य विधायक दल भी इसका अनुकरण कर सकते हैं।

दिल्ली में विधानसभा न होने के कारण वहाँ के प्रश्न संसद् अथवा नगर निगम में ही उठाए जाते हैं। लोकसभा के जनसंघ के सदस्यों ने दिल्ली प्रदेश जनसंघ के विचारों का सफल प्रदर्शन किया है। नगर निगम की शक्तियाँ सीमित हैं। जनसंघ दल ने सदैव ही उन सीमाओं के अंतर्गत राजधानी की जनता की समस्याओं को सुलझाने के लिए रचनात्मक सुझाव दिए हैं। दुःख है कि कांग्रेस-कम्युनिस्ट आदि दलों ने इस मंच का उपयोग अपने दलीय हितों की दृष्टि से किया है। हिंदी और बस व्यवस्था संबंधी प्रस्तावों पर उनके भाषण और वोट उसके उदाहरण हैं। जनसंघ ने सदैव एक संतुलित और समन्वित दृष्टि अपनाई है। फलस्वरूप उसकी अनेक बार भारी विरोध के बावजूद विजय हुई है।

भावी कार्यक्रम

यद्यपि पिछले सात वर्षों से जनसंघ का पग बराबर बढ़ता जा रहा है, फिर भी आज हम जिस विषम परिस्थिति से गुज़र रहे हैं, उसकी माँग है कि इस विषय में अपनी गति तेज़ी से बढ़ाएँ। पाकिस्तान के आक्रमणात्मक इरादे स्पष्ट हैं। उसके द्वारा सीमा पर होने वाले आक्रमण भारत की प्रभुता की चुनौती एवं उसके (भारत के) लिए अप्रतिष्ठाकारक हैं। जनसंघ को छोड़कर कोई अन्य दल इस प्रश्न पर मुँह नहीं खोलता। उन्हें डर लगता है कि पाकिस्तान के समर्थक मुसलमानों का वे चुनावों में समर्थन खो देंगे। पाकिस्तान के संबंध में ही नहीं, मुसलिम सांप्रदायिक एवं विस्फोट तत्त्वों की पंचमांगी गतिविधियों के विषय में भी वे मौन ही रहते हैं। दलगत स्वार्थ के लिए राष्ट्रहित के बलिदान का यह अपना ही निंदनीय उदाहरण है। यदि हमने जनता को आने वाले संकटों से सावधान कर

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रबल जनमत के दबाव से भारत शासन की नीतियों में परिवर्तन नहीं कराया तो राष्ट्र का भविष्य अंधकारपूर्ण होगा।

जम्मू-कश्मीर राज्य तथा पूर्व के सीमा क्षेत्र ऐसे नाज़ुक बिंदु हैं, जिनकी ओर हमें विशेष ध्यान देना होगा। अत्यंत दुःख का विषय है कि शासन स्वयं तो इन प्रदेशों की जनता को दृढ सुरक्षा की व्यवस्था का आश्वासन देता ही नहीं, जो वहाँ जाकर उसका ढाढ़स बँधाते हैं, उन्हें भी जेल में डाल देता है। बंगाल जनसंघ के संगठन मंत्री तथा श्रीराम दा इसी अपराध में निवारक निरोध अधिनियम के अंतर्गत बंदीवास भुगत रहे हैं।

राष्ट्र की सुरक्षा के साथ-साथ देश में प्रजातंत्र की भावना को बलवती करना भी हमारे सम्मुख एक आवश्यक कार्य है। विश्व के अनेक देशों में प्रजातंत्र की हत्या एवं तानाशाही शासनों के आविर्भाव के कारण भारत में भी अनेक लोग उन घटनाओं की आवृत्ति की मनोकामना करने लगे हैं। हमें प्रजातंत्र के इन शत्रुओं से सावधान रहना होगा। यह तो सत्य है कि आज प्रजातंत्र के लिए भारत में भी भारी कठिनाइयाँ हैं। आज का शासन स्वयं उसकी जड़ें काट रहा है। प्रथम प्रजातंत्रीय सरकार के रूप में कांग्रेस शासन ने जो अपना स्वरूप प्रकट किया है, वह प्रजातंत्र के संबंध में प्रेम के स्थान पर विरक्ति ही उत्पन्न करने वाला है। भ्रष्टाचार, अव्यवस्था, दलबंदी और दीर्घसूत्रता और अदूरदर्शिता प्रजातंत्र के स्वाभाविक अंग समझे जाने लगे हैं। इनके साथ ही कांग्रेस शासन प्रजातंत्र की रट लगाते हुए भी जीवन के सभी क्षेत्रों को राज्य के अधीन लाता जा रहा है। जितनी कमेटियाँ बनती हैं तथा सरकारी-ग़ैर सरकारी सभी कामों में कांग्रेस दल के सदस्यों और हितों को ध्यान में रखा जाता है। श्रीमन्नारायण अग्रवाल को कांग्रेस के महामंत्री पद से हटाकर योजना आयोग पर नियुक्ति ऐसी घटना है, जिसने आयोग की निष्पक्षता एवं योजना की सर्वदलीय सहमति से निर्मिति की सभी संभावनाओं को समाप्त कर दिया है। आज दिल्ली में यद्यपि जनसंघ ही प्रमुख विरोधी दल है किंतु जितनी भी शासन की ओर से संपर्क समितियाँ बनी हैं, उनमें उसके सदस्यों को प्रयत्नपूर्वक दूर रखा गया है।

जम्मू और कश्मीर राज्य में तो शासन और दल का एकीकरण बिल्कुल ही नंगे रूप में है। वहाँ दोनों में कोई भेद नहीं किया जाता। चुनाव भी केवल दिखावा मात्र रह गया। कोई भी उम्मीदवार जीते, घोषणा नेशनल कॉन्फ्रेंस के उम्मीदवारों के जीतने की ही की जाती है! हाल ही में कठुआ और विशेना के टाउन एरिया के चुनावों में हुई धाँधलियाँ हमें विवश करती हैं कि हम प्रजातंत्र पर होने वाले इस प्रहार को रोकने के विषय में गंभीरतापूर्वक विचार करें।

शासन के साथ राजनीतिक दलों को भी अपने लिए आचार संहिता बनानी होगी। संविधान में दी हुई व्यवस्था में तथा क़ानून से भी अधिक प्रभावी परंपराएँ होती हैं,

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

जिनका पालन राजनीति में किया जाता है। प्रजातंत्र यद्यपि भारत के लिए नया नहीं, फिर भी दलीय प्रणाली पर आधारित संसदीय जनतंत्र को हमने पहली बार अपनाया है। पश्चिम में विशेषकर ब्रिटेन में इस प्रकार के प्रजातंत्र की परंपराओं का विकास हुआ है। हमने उन्हें पूरी तरह नहीं अपनाया है और न अपना ही सकते हैं। हमारी अपनी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि है। पिछले 100 वर्षों के राजनीतिक आंदोलन का भी हमारे जीवन पर प्रभाव है। आज के यद्यपि हमारी राजनीति के उद्देश्य उससे भिन्न हैं, किंतु जनता के मनों पर एक आंदोलनात्मक कार्यपद्धति की छाप है, शासनाधिकारियों की भी राजनीतिक दलों तथा आंदोलनों की ओर देखने की एक दृष्टि है। हमें राजनीतिक गतिविधि का नियंत्रण करने वाली अपनी परंपराओं का निर्धारण एवं पालन करना होगा। भारतीय जनसंघ की कार्यसमिति ने इस उद्देश्य से एक उपसमिति का गठन अक्तूबर में किया था। उसका प्रतिवेदन आपके समक्ष प्रस्तुत होगा। विचारकर के हमें अपने ऊपर स्वयं ही कुछ नियंत्रण लगाने होंगे।

किसी भी विकासोन्मुख दल को शासन का दायित्व सँभालने के लिए अपने आपको तैयार करना पड़ता है। इस हेतु शासन को विभिन्न प्रक्रियाओं तथा क़ानूनों का ज्ञान उसके कार्यकर्ताओं को चाहिए। जहाँ शासन की नीतियों को जनता पर होने वाली प्रतिक्रिया को प्रकट करने, उसका प्रतिनिधित्व करने तथा उससे शासन को प्रभावित करने की आवश्यकता है, वहाँ हमारा यह भी कर्तव्य है कि शासन की कठिनाइयों को भी जानें और उनका एक सहानुभूतिपूर्ण तथा रचनात्मक दृष्टिकोण से विचार कर सुझाव निकालें। इस हेतु हमें अधिकाधिक अध्ययन करना होगा। शासन का दृष्टिकोण ठीक-ठीक समझने का हमें बराबर प्रयास करते रहना चाहिए।

विस्तार, व्यवस्था, दृढता तथा गहराई सभी दृष्टियों से हमें अपने संगठन को बढ़ाना होगा। हम योजना बनाएँ कि अगले वर्ष (1) जिन प्रदेशों में अभी जनसंघ का कार्य नहीं है, वहाँ जनसंघ की शाखा खोल देंगे, (2) जिन प्रदेशों में आज शाखाएँ हैं व अभी तक जो ज़िले अछूते रह गए हैं, वहाँ ज़िला शाखा स्थापित करें, (3) जिन ज़िलों में शाखाएँ हैं, वे अपने सभी मंडलों तक पहुँच जाएँ, (4) वर्तमान मंडल समितियाँ कम-से-कम एक-तिहाई निर्वाचन क्षेत्रों में स्थानीय समितियाँ क़ायम करें, (5) आज की स्थानीय समितियाँ अपनी सदस्य संख्या अपने क्षेत्र की लोकसंख्या का कम-से-कम एक प्रतिशत कर लें।

हमें स्वाध्याय मंडलों तथा सदस्यता सम्मेलनों पर बहुत बल देना चाहिए। उस ओर का दुर्लक्ष्य मेरी दृष्टि से चिंता का कारण है। अपनी ज़िम्मेदारियों और आकांक्षाओं की ओर पूर्ति के लिए हमें अधिकाधिक कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होगी। समय आ गया है कि हम शेष प्रश्नों को एक ओर हटाकर इस अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न को सुलझाने के लिए आगे बढ़ें। आज हम स्पष्ट देख रहे हैं कि जनसंघ को छोड़कर और कोई दूसरा पक्ष

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

नहीं, जो राष्ट्रीय सुरक्षा के विषय में निर्भयता से बोलता हो तथा जो प्रजातंत्र को आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक सभी स्वरूपों में समन्वित एवं सर्वांगीण दृष्टि से स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील हो। यदि हम इन दोनों विशिष्टताओं को जीवित रखना चाहते हैं तो इन्हें संकटमुक्त करना ही होगा। हम दृढता, विश्वास एवं निस्स्वार्थ भाव से अपने काम में परिश्रमपूर्वक जुट जाएँ, भगवान् के आशीर्वाद से सफलता हमारा वरण करेगी।

वंदे मातरम्!

—दिसंबर 23-25, 1958

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

51

भारतीय अर्थ-नीति विकास की एक दिशा

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri
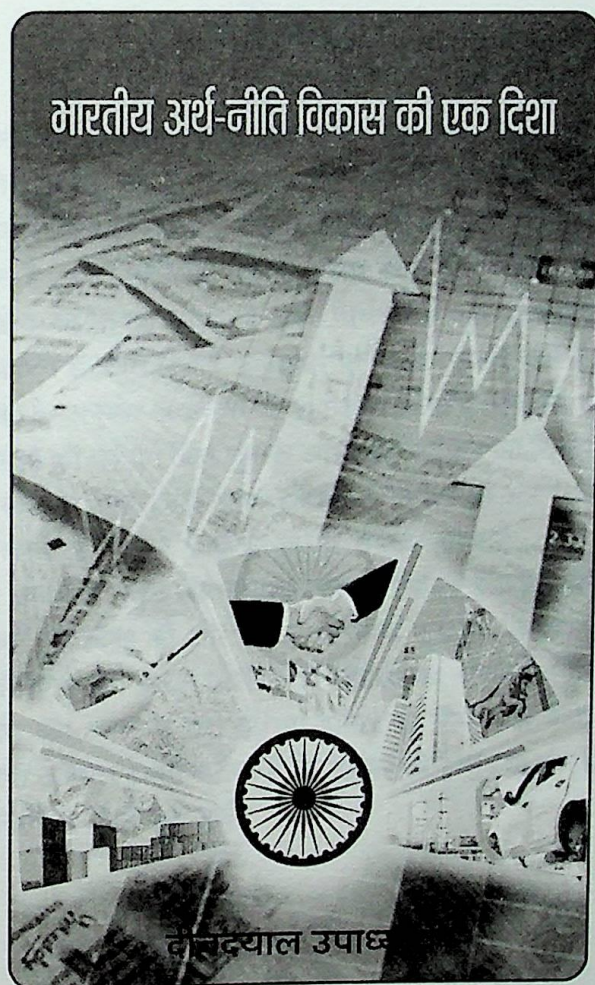
दो शब्द

भारतीय अर्थनीति से साधारणतया प्राचीन भारत के अर्थ संबंधी कल्पनाओं अथवा आधुनिक भारत की अर्थव्यवस्था और नीतियों का बोध होता है। दोनों ही व्यापक और गंभीर चिंता के विषय हैं। प्रस्तुत पुस्तक में इस चिंता के निवारण का प्रयास नहीं किया गया है। इन विषयों पर अलग-अलग बहुत कुछ लिखा भी गया है। एक इतिहास की खोज का विषय रहा है तो दूसरा अर्थशास्त्री और राजनीतिज्ञों के विवेचन का। अर्थशास्त्रियों ने सरकारी रिपोर्टों के आधार पर पाठ्य-पुस्तकें रची हैं तो राजनीतिज्ञों ने अपनी भूमिका के अनुसार अर्थव्यवस्था का चित्रण किया है। हाल में भावी की अनेक योजनाएँ भी प्रस्तुत की गई हैं। किंतु भूत के आधार पर वर्तमान का विचार कर भावी की दिशा निश्चित करने का प्रयास नहीं हुआ। इतिहासज्ञ, अर्थशास्त्री और राजनीतिज्ञ अलग-अलग विचार करते रहे हैं। इन पृष्ठों का विचार समन्वयात्मक है, अतः एकांगी विचार करने वालों के लिए वह अधूरा और निराशाजनक ही रहेगा। जैसा कि पुस्तक के नाम से प्रकट होगा, यहाँ एक दिशा की ओर संकेत भर किया गया है। विकासोन्मुख भारत की मोटी रेखाएँ खींची गई हैं। अनेक छोटी-छोटी रेखाओं का अंकन एवं चित्र में रंग भरने का काम प्रकृति और पुरुष के द्वारा ही पूरा होगा। यह जैसे-जैसे होता जाएगा, चित्र वैसे-वैसे उभरता जाएगा। हमारा कर्तव्य है कि दर्शक की उत्सुकता छोड़कर निर्माता की लगन और पुरुषार्थ से उसमें जुट जाएँ।

—लेखक

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अनुक्रमणिका

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

1

अर्थ चिंतन

घर-गृहस्थी के चक्र में फँसे हुए किसी सामान्य व्यक्ति से जब आप देश, धर्म, साहित्य आदि की चर्चा करें, तो उसके मुख से अनायास ही यह लोकोक्ति सुनने को मिलती है—

भूले गए राग-रंग, भूल गए छकड़ी।
तीन चीज़ याद रहे, नोन तेल लकड़ी॥

आज के समाज का यही चित्र है, जिसमें बहुजन समाज नोन, तेल, लकड़ी की चिंता में ही सुबह से शाम करते हुए दिन, महीने और वर्ष बिताता हुआ अपने जीवन की घड़ियाँ काट जाता है। जीवन के शेष प्रश्न उसके सामने कभी प्रमुख रूप से आते ही नहीं। आए भी तो वह उन्हें द्वितीय स्थान देता है। 'आधी पोटोबा मग विठोबा' की मराठी उक्ति के अनुसार, वह पहले भोजन और फिर भजन की चिंता करता है, और जब भोजन की चिंता में ही सब समय और शक्ति लग जाती है तो भजन के लिए अवकाश ही कहाँ बचता है।

जनसाधारण ही नहीं तो समाज के अग्रणी एवं विचारकों के भी चिंतन का यही प्रमुख विषय रह गया है। 15 अगस्त, 1947 तक देश के सभी आंदोलनों एवं प्रयासों का हेतु था स्वतंत्रता की प्राप्ति। स्वदेशी, खादी और ग्रामोद्योग, नमक और जंगल सत्याग्रह, करबंदी और लगानबंदी जैसे आंदोलन, तिलक करोड़ फंड अथवा पैसा फंड के आधार पर स्थापित उद्योग, कपड़े और चीनी की मिलों की स्थापना, संरक्षण और अवमूल्यन आदि के प्रश्नों की ओर देखने का हमारा दृष्टिकोण आर्थिक न होकर राजनीतिक था। इनके सहारे हम स्वतंत्रता संग्राम को बल देना चाहते थे। किंतु स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद हमारे दृष्टिकोण में अंतर आया है। अब हम प्रत्येक प्रश्न को आर्थिक दृष्टिकोण से देखते हैं। देश की आर्थिक समृद्धि अब हमारा लक्ष्य हो गया है। राजनीतिक दलों के

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कार्यक्रम एवं शासन की योजनाएँ इसी उद्‌देश्य से बनाई जा रही हैं। हमारी संपूर्ण शक्ति इसी एक प्रश्न पर केंद्रित है।

साध्य साधन विवेक

आंदोलनात्मक दृष्टि से इस केंद्रीकरण के पक्ष में चाहे जो तर्क उपस्थित किए जाएँ, किंतु इससे मानव जीवन की वास्तविकता, उसके उद्‌देश्य और हेतु एवं उच्चतम विकास की सीमाएँ आदि के संबंध में एक एकांगी तथा विकृत दृष्टिकोण का प्रसार बड़ी तेज़ी के साथ होता जा रहा है। साध्य और साधन का विवेक समाप्त हो रहा है। अर्थोत्पादन जीवन का आवश्यक आधार ही नहीं, संपूर्ण जीवन बन गया है। आर्थिक विकास के हेतु धन प्राप्त करने के लिए हम अपनी सेना को भंग कर दें, यह भी सुझाव दिए जाते हैं। सेना के अभाव में यदि हम अपनी स्वतंत्रता से हाथ धो बैठे तो फिर आर्थिक विकास किसका करेंगे? क्या हमें पराधीनता की स्वर्ण शृंखलाएँ स्वीकार होंगी? और फिर ये स्वर्ण शृंखलाएँ लोहे की बेड़ियों में नहीं बदलेंगी यह कौन कह सकता है।

मनुष्य के जीवन का लक्ष्य और उसमें अर्थ का स्थान निश्चित न होने के कारण हम उस मार्ग का भी ठीक निर्धारण नहीं कर पा रहे हैं, जिस पर चलकर श्री और समृद्धि का उपभोग कर सकें। साध्य का पता लगे बिना साधन का निश्चय कैसे हो सकता है? हमारी परंपरा और संस्कृति हमें बताती है कि मनुष्य केवल भौतिक आवश्यकताओं और इच्छाओं का पिंड नहीं अपितु वह एक आध्यात्मिक तत्त्व है, जिसने भौतिक शरीर धारण कर रखा है। अत: मंदिर की सब प्रकार से चिंता करते हुए भी उसका मंदिरत्व उसमें प्रतिष्ठित मूर्ति के कारण है तथा मूर्ति का शृंगार, धूप-दीप, नैवेद्य, अर्चन आदि उसमें आरोपित देवत्व के कारण हैं, इस तथ्य का विस्मरण नहीं होना चाहिए। यदि मंदिर की रक्षा और निर्माण में मूर्ति को भूल गए तो हमारा संपूर्ण परिश्रम व्यर्थ ही जाएगा। किंतु जिस पश्चिम का अनुकरण कर हम अपने अर्थनैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठापना कर रहे हैं, वहाँ जीवन के इस सर्वसंग्राही भाव के लिए कोई स्थान नहीं। फलत: आज हमारे मन, वचन और कर्म में अंतर्विरोध उत्पन्न हो गया है। अंतश्चेतना और बाह्यकर्म दो विरोधी दिशाओं में खींच रहे हैं। यह संघर्ष हमें अपनी संपूर्ण शक्ति से आर्थिक समृद्धि की आज की योजनाओं को पूर्ण करने में भी जुटने नहीं देता। जो कुछ हम करते हैं, वह अन्यमनस्क भाव से और जब हमें अपने प्रयास सफल होते हुए नहीं दिखते तो मन में एक विफलता, आत्मज्ञान और आत्मविश्वासहीनता का भाव उत्पन्न होता है। इस भाव को हम प्रचारतंत्र से, वास्तविकता से आँखें मूँदकर, दूसरों को अपनी असफलता के लिए दोषी ठहराकर, अवास्तविक समस्याओं और संकटों का भूत खड़ा करके तथा हवाई आदर्शों और भविष्य की अधिकाधिक स्वर्णिम कल्पनाजनित आशाओं से दबाने का प्रयत्न करते हैं। फलत:

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

हमारा मानस अधिकाधिक उद्विग्न होता जाता है। हम यथार्थ की भूमि से दूर हटते जा रहे हैं। इस गुत्थी को सुलझाए बिना हम आगे नहीं बढ़ सकेंगे।

पश्चिम के अर्थशास्त्र की अनुकूलता

जीवन के विभिन्न आदर्शों के कारण ही नहीं, देश और काल की भिन्न परिस्थितियों के कारण भी हमारे आर्थिक विकास का मार्ग पश्चिम से भिन्न होना चाहिए। किंतु हम मार्शल और मार्क्स से बुरी तरह बँध गए हैं। अर्थशास्त्र के जिन नियमों की उन्होंने विवेचना की उन्हें हम शाश्वत मानकर चल रहे हैं। वे व्यवस्था सापेक्ष हैं, जो यह जानते हैं, वे भी उनकी परिधि से बाहर नहीं निकल पाते। पश्चिम की आर्थिक समृद्धि ने उनकी अर्थोत्पादन पद्धति के विषय में हमारे मन में निरपवाद रूप से श्रद्धा उत्पन्न कर दी है। पाश्चात्य अर्थशास्त्रज्ञों ने इतना विवेचनात्मक साहित्य उत्पन्न किया है कि उसके भार से हम सहज ही दब पाते हैं। हम उससे ऊपर उठ नहीं सकते। इस अर्थ विज्ञान में अनेक ऐसे विवेचन भी हो सकते हैं, जो देश काल व्यवस्था निरपेक्ष हों तथा सबके लिए उपयोगी सिद्ध हो सकें, किंतु खरे-खोटे की परख कोई पारखी ही कर सकता है। हमारी शिक्षा और दीक्षा इन पारखियों को उत्पन्न नहीं कर सकी है। हमारे अर्थशास्त्री पश्चिम के अर्थशास्त्र में पारंगत हो सकते हैं, किंतु वे उस अर्थशास्त्र के विकास में कोई ठोस योगदान नहीं दे सके हैं, क्योंकि भारत की अर्थव्यवस्था उस दृष्टि से उनके लिए न तो विचार प्रवण हो सकती है और न प्रयोग भूमि ही। स्वतंत्र भारतीय अर्थशास्त्र के विकास की या तो उन्होंने आवश्यकता नहीं समझी या उसमें उन्होंने स्वयं को असमर्थ पाया। गांधीवादी तथा सर्वोदयवादी विचारधाराओं में जिस अर्थशास्त्र की चर्चा की गई है, वह इस आवश्यकता को पूर्ण नहीं कर पाता। वह अनिश्चित ही नहीं सामयिक और भूदान आंदोलन के माध्यम के रूप में जनता के सम्मुख आया है। पश्चिम की अर्थव्यवस्था की कुछ बुराइयों की ओर उसने भले ही सफल संकेत किया हो, किंतु भारत के भावी का विधान करने का सामर्थ्य उसमें नहीं है।

नई परिभाषाएँ

पाश्चात्य अर्थशास्त्रियों में से बहुतों ने अर्ध-विकसित क्षेत्रों की समस्याओं पर नया साहित्य प्रस्तुत किया है। संयुक्त राष्ट्र संघ की अनेक एजेंसियों और समितियों ने भी इस विषय में बहुत कुछ कार्य किया है। उन सबके प्रति कृतज्ञ होते हुए भी हम यह नहीं कह सकते कि उनका रोग निदान और प्रस्तावित चिकित्सा सही है। यदि वे किन्हीं निहित स्वार्थों का प्रतिनिधित्व न भी करते हों तो भी वे अपने पूर्वग्रहों तथा निष्ठाओं से मुक्त होकर पूर्णतः वस्तुनिष्ठ विवेचन कर सकेंगे, यह मानना कठिन है। और फिर हमारे

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मानस की पृष्ठभूमि में हमारी श्रद्धाओं के आधार पर विचार कर सकना तो उनके लिए असंभव सा ही है। अत: इस साहित्य का उपयोग भी हमें सावधानी से ही करना होगा। हम यह भी नहीं भुला सकते कि पश्चिम के सबल राष्ट्र अपने हितों का संरक्षण करने के लिए नई-नई उपाय योजनाएँ कर रहे हैं। उपनिवेशवाद और राजनीतिक ग़ुलामी जहाँ बीते युग की चीज़ें बनती जा रही हैं, वहाँ आर्थिक और वैचारिक आधार पर देशों को अपने अधीन बनाए रखने के गूढ़ उपाय अपनाए जा रहे हैं। फलत: शब्दों की परिभाषाएँ बदल रही हैं। पूँजी विनियोग आर्थिक सहायता के नाम से पुकारा जाने लगा है, तो कुछ राष्ट्रों ने अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के चोले में अपने पग बढ़ाना उपयुक्त समझा है। यह भी सच है कि हम इन राष्ट्रों द्वारा बढ़ाए गए सहायता के प्रत्येक हाथ को शक़ की नज़र से देखकर झटक नहीं सकते। ऐसा भी हो सकता है कि दोनों के हित पूरक हों और कभी सार्वभौम परिस्थितियाँ किसी पग विशेष के लिए विवश करें। किंतु हमारा हित और अहित किसमें है, इसका भी तो तब तक ज्ञान नहीं हो सकता, जब तक हम अपनी व्यवस्था की भली-भाँति मीमांसा न कर लें।

निहित स्वार्थ

पाश्चात्य अर्थशास्त्र के भारतीय विद्वानों के अतिरिक्त भारत में ऐसे लोग भी बहुत बड़ी संख्या में हैं, जिनके हित पाश्चात्य अर्थव्यवस्था एवं उत्पादन प्रणाली से जुड़े हुए हैं। पिछले सौ वर्षों में जिस अर्थव्यवस्था का भारत में विकास हुआ, उसने भारत और पश्चिम के औद्योगिक देशों की व्यवस्थाओं को एक-दूसरे का पूरक बनाया। इसमें भारत के हितों का संरक्षण नहीं हुआ बल्कि उसका बराबर शोषण ही होता रहा। किंतु इस शोषण की क्रिया में पाश्चात्य आर्थिक हितों ने भारत के कुछ वर्गों को भी अपने अभिकर्ता के रूप में साझीदार बना लिया। प्रारंभ में व्यापारी और कमीशन एजेंट के रूप में और बाद में कुछ अंश में उद्योगपति, स्वतंत्र अथवा साझीदार के रूप में इनके हित संबंध विदेशी आर्थिक हितों के साथ बँध गए। इस वर्ग का देश के आर्थिक जीवन पर पर्याप्त प्रभुत्व रहा है। आज भी संख्या तथा देश की आर्थिक आय में उनका योगदान कम होते हुए भी वे समाज और देश के अर्थ जीवन पर भारी प्रभाव रखते हैं। इस वर्ग की आकांक्षाएँ निश्चित हैं। वे अधिकाधिक अपने विदेशी प्रतिद्वंद्वियों का स्थान ग्रहण करना चाहते हैं। समाज के सर्वसामान्य जीवन पर उसका क्या परिणाम होगा, इसकी उन्हें चिंता नहीं। पाश्चात्य अर्थशास्त्र के भारतीय विद्वानों से उनका सहज ही समसंयोग मेल बैठ जाता है। भारत के सभी समाचार-पत्र, विशेषकर अंग्रेज़ी के, उनके प्रभाव क्षेत्र में हैं। ये सब मिलकर जान या अनजान में ऐसा मायाजाल रच देते हैं कि साधारण जन उसमें से निकल ही नहीं पाता।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

शासन की सीमाएँ

शासन का भी जैसा स्वरूप है, वह इस इंद्रजाल से नहीं बच पाया। प्रथम तो प्रशासन का पूरा ढाँचा हमें अंग्रेज़ों से विरासत में मिला। हम उसे न तो बदल सकते थे और न बदल पाए। जब कांग्रेस के नेताओं ने भी 1947 के बाद अपनी राष्ट्रीयता केवल खादी के कुरते और टोपी तक ही सीमित कर दी तथा शेष अपनी बातों में प्रगति के पश्चिमी मानदंडों को ही उत्तरोत्तर स्वीकार कर लिया, तो देश के भृत्यवर्ग के लिए भी अपनी पुरानी विचार परंपराओं से जकड़े रहना आवश्यक हो गया। हमारे नियोजकों का आर्थिक चिंतन इसी परिधि में चक्कर काटता रहता है। फिर विदेशी सहायता, विदेशी विशेषज्ञों की सम्मतियों तथा विदेशी जीवन का चित्ताकर्षक बाह्य स्वरूप तथा थोड़ी अवधि में कुछ कर दिखाने की राजनीतिक आवश्यकताओं ने उनको जन-जीवन से दूर हटाकर उसकी समस्याओं का यथार्थ आकलन करने में अक्षम बना दिया। फलतः योजना के बाद योजनाएँ बनाई जा रही हैं, किंतु हम जनसाधारण के जीवन में सुख और समाधान की सृष्टि करने में समर्थ नहीं हो सके हैं।

मौलिक विचार की आवश्यकता

अतः आवश्यकता है कि हम अपने जीवन-दर्शन का विचार कर भारतीय अर्थव्यवस्था का मौलिक निरूपण करें तथा आज की समस्याओं को यथार्थ की कंटकाकीर्ण, ऊबड़-खाबड़ किंतु ठोस भूमि पर खड़े होकर सुलझाएँ। भारत के 'स्व' का साक्षात्कार किए बिना हम अपनी समस्याओं को सुलझा नहीं पाएँगे। यदि किसी क्षेत्र में संयोगवश थोड़ी-बहुत सफलता मिल भी गई तो उसका परिणाम हमारे लिए हितकर नहीं होगा। हम परानुकरण की ओर अधिक प्रवृत्त होंगे। अपने स्वत्व और सामर्थ्य के विकास के स्थान पर परावलंबन का भाव हमारे मन में घर कर जाएगा। आत्महीनता का यह भाव घुन की तरह राष्ट्र की जड़ें खोखली कर देगा। इस प्रकार जर्जर मूल राष्ट्र कभी झंझावातों में खड़ा नहीं रह सकता। यदि हमें देश का विकास करना है तो इस प्रश्न का अंतर्मुख होकर विचार करना ही होगा। यदि उसमें कुछ देर भी लगे तो भी वह स्थायी एवं सर्वहितकर हल होगा।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

2

भारतीय संस्कृति में अर्थ

आर्थिक प्रश्नों के समाधान हेतु पश्चिम की ओर देखने का एक प्रमुख कारण यह भ्रममूलक धारणा है कि भारतीय संस्कृति और धर्म अध्यात्म प्रधान होने के कारण भौतिक जीवन की समस्याओं के प्रति उदासीन है। यह भ्रम दूषित प्रचार एवं आध्यात्मिकता का ग़लत अर्थ करने का परिणाम है। वास्तविकता तो यह है कि हमारे धर्म की व्याख्या भौतिकता का पूर्ण विचार करके चलती है। "यतोऽभ्युदयनिः श्रेयससिद्धि स धर्मः" अर्थात् जिससे ऐहिक और पारलौकिक उन्नति प्राप्त हो, वह धर्म है। जिसने इस लोक को छोड़ दिया, वह परलोक को नहीं बना सकेगा। भौतिकता और आध्यात्मिकता परस्पर विरोधी अथवा विलग भाव नहीं है। आध्यात्मिकता जीवन का एक दृष्टिकोण है, जिससे हम सभी प्रश्नों की ओर देखते हैं। अध्यात्मवाद यदि विश्व की सही व्याख्या कर सकता है तो कोई कारण नहीं कि उसके द्वारा हम विश्व की समस्याओं का समाधानकारक हल न प्राप्त कर सकें।

धर्मस्य मूलमर्थः

भारत ने भौतिक जगत् का ही नहीं, अर्थ का भी विचार किया है। महर्षि चाणक्य ने कहा, 'सुखस्य मूलं धर्मः। धर्मस्य मूलमर्थः।' सुख धर्ममूलक है तो धर्म अर्थमूलक। अर्थ के बिना धर्म नहीं टिकता। यहाँ हम धर्म की व्यापक परिभाषा लेते हैं, वह संकुचित एवं आधुनिक भ्रमपूर्ण अर्थ नहीं, जो धर्म का मत, मजहब या रिलीजन समझ लेता है। जिससे समाज की धारणा हो, जो ऐहिक और पारलौकिक उन्नति में सहायक हो, जिसके कारण मानव के कर्मों का निर्धारण होकर वह कर्तव्य की संज्ञा प्राप्त कर ले, जिससे व्यक्ति अपनी सब प्रकार की उन्नति करता हुआ समष्टि के अभ्युत्थान में सहायक हो सके, वह नियम व्यवस्था और उसके मूल में निहित भाव धर्म है। यह धर्म अर्थ के

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अभाव में नहीं टिक सकता। कहा जाता है कि विश्वामित्र ने क्षुधा से अत्यंत पीड़ित होने पर रात्रि के समय चोरी करके चंडाल के घर से कुत्ते का जूठा मांस खाया। उन्होंने धर्म की अनेक मर्यादाओं को भंग किया। आपद् धर्म की संज्ञा देकर शास्त्रकारों ने उनके इस व्यवहार को उचित ठहराया। यदि अर्थ के अभाव की यह आपत्ति बराबर रहे तो फिर आपद् धर्म अर्थात् चोरी ही धर्म बन जाए और यदि यह आपत्ति समष्टिगत हो जाए अथवा समष्टि का बहुतांश इससे व्याप्त हो तो वे एक-दूसरे की चोरी करके अपने आपद् धर्म का निर्वाह करेंगे। किंतु जहाँ अभाव होगा, वहाँ चोरी भी किसकी होगी? अर्थात् उस परिस्थिति में समाज नष्ट हो जाएगा।

अर्थ का प्रभाव

अर्थ का अभाव ही नहीं, अर्थ का अत्यधिक प्रभाव भी धर्म का नाश करता है। यह भारत का अपना विशेष दृष्टिकोण है। पश्चिम के लोगों ने अर्थ के प्रभाव का विचार नहीं किया। अर्थ जब अपने में या उसके द्वारा प्राप्त पदार्थों में और उनसे प्राप्त भोग-विलास में संग (आसक्ति) उत्पन्न कर देता है, तब अर्थ का प्रभाव कहा जाता है। जिसे केवल पैसे की ही धुन लगी रहे, वह देश, धर्म, जीवन का सुख सबकुछ भूल जाता है। इसी प्रकार विषयासक्त मनुष्य पौरुषविहीन होकर स्वयं और समाज के नाश का कारण बनता है। प्रथम प्रकार के प्रभाव में अर्थ की साधनता नष्ट होकर वह साध्य बन जाता है। द्वितीय में अर्थ धर्माचरण का साधन न होकर विषय-भोगों का साधन बन जाता है। विषय तृष्णा की कोई मर्यादा न होने के कारण एक ओर तो ऐसे व्यक्ति के सम्मुख सदैव अर्थ का अभाव ही बना रहेगा, दूसरे पौरुषहानि से उसकी अर्थोपार्जन की क्षमता भी कम होती जाएगी।

जब 'अर्थ' ही समाज के प्रत्येक व्यवहार और व्यक्ति की प्रतिष्ठा का मानदंड बन जाए, तब भी अर्थ का प्रभाव हो जाता है। ऐसे समाज में 'सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति' की उक्ति चरितार्थ होती है। मान, सम्मान, राजनीतिक अधिकार तथा समाज में स्थान जब केवल धनवान व्यक्ति को ही प्राप्त हो, वहाँ लोगों में धनपरायणता आ जाती है। जब समाज में सभी धनपरायण हो जाएँ, तो प्रत्येक कार्य के लिए अधिकाधिक धन की आवश्यकता होगी। धन का प्रभाव प्रत्येक के जीवन में अर्थ का अभाव उत्पन्न कर देता है।

जीवन के मानदंड

समाज से अर्थ के प्रभाव व अभाव दोनों को मिटाकर उसकी समुचित व्यवस्था करने को 'अर्थायाम' कहा गया है। आवश्यकता है कि समाज के मानदंड ऐसे बनाए जाएँ

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कि हर वस्तु पैसे से न ख़रीदी जा सके। निश्चित ही यह कार्य केवल अर्थव्यवस्था के आधार पर नहीं किया जा सकता। देश के लिए लड़ने वाला सैनिक अपने जीवन की बाज़ी अर्थ की कामना से नहीं लगाता। अर्थ का लालच उसे देशद्रोह सिखा सकता है, देशभक्ति नहीं। स्त्री के सतीत्व का अपना मूल्य है, उसे अर्थ की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता। वैद्य रोगी की चिकित्सा के बदले में अर्थ किन मूल्यों के आधार पर ले सकेगा? अध्यापक विद्यादान का मूल्य नहीं लगा सकता। सरकारी कर्मचारी किस आधार पर एक फ़ाइल को आगे सरकाने के लिए मूल्य लेगा? दुर्बल की रक्षा करने वाली पुलिस जब अपनी सेवाओं का मूल्य माँगे, तब या तो दुर्बल की रक्षा ही नहीं हो पाएगी अथवा शरीर शक्ति में दुर्बल अपनी बुद्धि का उपयोग कर धूर्तता से धन कमाकर रक्षा का मूल्य चुकाएगा। श्रम का, शारीरिक और मानसिक, फिर उनका उपयोग चाहे दृश्य वस्तुओं के उत्पादन अथवा सेवाओं में हुआ हो, रुपए पैसे में मूल्य आँकना असंभव है। फिर रुपया वह भी तो स्थिर मूल्य नहीं। श्रम और पारिश्रमिक दोनों का, अर्थशास्त्र के क्षेत्र में घनिष्ठ संबंध होने पर भी, व्यवहार जगत् के लिए सर्वमान्य एवं सर्वंकष मूल्य सिद्धांत निश्चित करना न तो सरल है और न उपादेय ही। वास्तविकता तो यह है कि दोनों का मूल्यांकन पृथक् मानदंडों से होता है। श्रम की प्रतिष्ठा उससे मिलने वाले अर्थ के कारण नहीं, अपितु उसके धर्मत्व से है। इसी प्रकार किसी भी व्यक्ति को दिया गया पारिश्रमिक उसके द्वारा किए श्रम का प्रतिदान नहीं, बल्कि उसके योगक्षेम की व्यवस्था है। श्रीमद्भगवद्गीता में इसीलिए कर्म और फल दोनों को अलग-अलग रखा गया है। कर्म लोकसंग्रहार्थ एवं ईश्वर भक्ति के रूप में करना है। श्री भगवान् ने 9वें अध्याय में कहा है—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत् तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥'

हे अर्जुन! तुम जो कुछ करते हो, जो खाते हो, जो हवन करते हो, जो देते हो और जो तप करते हो, वह सब मुझे अर्पण कर दो। हमारे कर्म का लक्ष्य भगवत् आराधना ही हो सकता है। ऐसे भक्तों की चिंता का भार स्वयं भगवान् ने अपने ऊपर लिया है। उसी अध्याय में वे कहते हैं—

अनन्याश्चिन्तयन्तौ मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

जो अनन्य भाव से मेरी उपासना करते हैं, उन नित्य कर्मयोगियों के योगक्षेम का मैं विचार करता हूँ।

गीतोक्त उक्त सिद्धांत के अनुसार कर्म की मूल प्रेरणा अनियंत्रित प्रतियोगिता अथवा लाभ की वृत्ति नहीं हो सकती। पाश्चात्य अर्थशास्त्र की ये मान्यताएँ भारत के जीवनदर्शन से मेल नहीं खातीं। यह कहने से काम नहीं चलेगा कि आज हमारे व्यवहार

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

और दर्शन में भारी अंतर है। वास्तव में तो समाज में आज भी अधिकांश व्यक्ति अपने व्यवसाय और वृत्ति में कर्तव्य भाव से ही लगे हुए हैं। जितना हम इस भाव से दूर हटते जाते हैं, उतना ही हमारी समस्याएँ विषम होती जाती हैं। हमें यदि अपने राष्ट्र का युगनिर्माण करना है तो उसकी प्रेरणा अपने जीवनदर्शन से ही लेनी होगी।

पाश्चात्य अर्थशास्त्र की मान्यताओं की सीमाएँ

पाश्चात्य अर्थशास्त्र ने जिन सामान्य मान्यताओं के आधार पर अपना विश्लेषण प्रस्तुत किया है, वह एकांगी तथा अपूर्ण है। उसकी मान्यता है कि

1. राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मुख्यत: वैयक्तिक है, जिसका अलग से कोई सामाजिक पहलू नहीं है।
2. व्यक्तियों की निर्बाध और असीम प्रतिस्पर्धा ही सामाजिक जीवन की स्वाभाविक एवं सुरक्षापूर्ण नियामक है।
3. राजकीय एवं सामाजिक प्रथा द्वारा लागू नियमन सभी स्वाभाविक स्वतंत्रता का अतिक्रमण करते हैं।[1]

उपर्युक्त मान्यताएँ सत्य से बहुत दूर हैं। आज राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के अस्तित्व एवं आवश्यकता से कोई इनकार नहीं कर सकता। यदि राष्ट्र की अपनी कोई इकाई है और वह केवल व्यक्तियों के समुच्चय से भिन्न जीवमान निकाय है तो उसकी अभिव्यक्ति जीवन के प्रत्येक व्यवहार में अपनी विशिष्टताओं के साथ होनी चाहिए। यदि इन अदृश्य विशेषताओं को हम आँख से ओझल कर भी दें तो भी आज प्रत्येक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों के साथ अपने सभी आर्थिक संबंधों का निर्धारण एक पृथक् इकाई के आधार पर कर रहा है। संयुक्त राष्ट्र के अनेक संगठन तथा विभिन्न अंतरराष्ट्रीय अभिसमय इसके उदाहरण हैं।

व्यक्तियों की निर्बाध और असीम प्रतिस्पर्धा को न तो हम सामाजिक जीवन का नियामक मान सकते हैं और न सुरक्षापूर्ण ही। अर्थशास्त्र की यह मान्यता मत्स्य न्याय का प्रतिपादन करने वाली है। हमने इस न्याय को कभी धर्मसंगत नहीं माना। पश्चिम में भी इसकी प्रतिक्रिया हुई है, किंतु उन्होंने प्रतिस्पर्धा को समाप्त करने के लिए वर्गों की भयंकर प्रतिस्पर्धा पैदा कर एक वर्ग के द्वारा दूसरे के विनाश का मार्ग अपनाया है। प्रतिस्पर्धा का भाव केवल आर्थिक क्षेत्र में नहीं, अन्य क्षेत्रों में भी रह सकता है। अत: वर्ग विनाश से प्रतिस्पर्धा समाप्त नहीं होती। प्रतिस्पर्धी वर्ग दूसरे आधार पर उत्पन्न होकर मत्स्य न्याय को चलाते रहते हैं। उससे बचने का रास्ता तो धर्म के आधार पर संपूर्ण जीवन का नियमन ही है।

तीसरा सिद्धांत यद्यपि मूलत: सत्य है किंतु समाज में मानव की कुछ स्वतंत्रताओं

---

1. जी.बी. जठार-के.जी. जठार : भारतीय अर्थशास्त्र , पृष्ठ 2

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पर मर्यादाएँ आवश्यक होती हैं। अनियंत्रित स्वतंत्रता केवल कल्पना की वस्तु है। हाँ, यह नियंत्रण जितना बाहरी होगा, उतना ही मानव को कष्टदायक होगा। शिक्षा और संस्कार, दर्शन और आदर्शवादी व्यवहार में मनुष्य को आत्मनियंत्रण सिखाते हैं। इसी प्रकार समाज की प्रथाएँ एक व्यवस्था बनाकर मानव का कार्य सरल एवं सुविधाजनक कर देती हैं। खेत काटने की परंपरानुसार निश्चित मज़दूरी पाश्चात्य अर्थशास्त्र के माँग और पूर्ति के नियमों का चाहे पालन न करती हो, किंतु वह किसान और मज़दूर दोनों के लिए सामाजिक ही नहीं, आर्थिक दृष्टि से भी लाभदायक है।

सर्वांगीण दृष्टिकोण की आवश्यकता

पाश्चात्य अर्थशास्त्र के जितने भी नियम हैं, वे एक अर्थपरायण व्यक्ति (Economic man) की कल्पना करके चलते हैं। यह अर्थमापी व्यक्ति जीवन में कहीं नहीं मिलता। स्वयं जे.एस. मिल ने माना है—"संभवत: कोई भी व्यावहारिक प्रश्न ऐसा नहीं होता, जिसका निर्णय आर्थिक सीमाओं के अंदर ही दिया जा सके। अनेक आर्थिक प्रश्नों के महत्त्वपूर्ण राजनीतिक एवं नैतिक पहलू होते हैं, जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।" किसी समय विशेष पर मानव व्यवहार जीवन के अनेक मूल्यों के आकर्षण-विकर्षण से निश्चित होता है। विभिन्न शास्त्रों के विद्वान् उसी एक व्यवहार का विश्लेषण अपने-अपने दृष्टिकोण से करते हैं। वे एक ऐसी स्थिति की कल्पना करके चलते हैं, जिसमें अन्य प्रवृत्तियों का अस्तित्व न हो। किंतु उनके काल्पनिक जगत् और व्यवहार जगत् में सदैव ही बहुत बड़ा अंतर रहता है। उनके सिद्धांत सही भी हों तो भी सीमित उपयोग के रहते हैं।

चार पुरुषार्थ

भारत ने इसीलिए मनुष्य का विभाजित विचार न करके पूर्णता के साथ विचार किया। मनुष्य की विभिन्न प्रवृत्तियों का चार मोटे-मोटे भागों में वर्गीकरण करके उन सबकी संतृप्ति ही मानव का पुरुषार्थ बताया। ये चार पुरुषार्थ हैं : धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। ये चारों एक-दूसरे के पूरक हैं। जो कर्म इन सबको प्राप्त कराने वाला हो, वही श्रेष्ठ है। इनमें से किसी की भी अवहेलना करके चलने वाला व्यक्ति दु:ख और अशांति का भागी बनता है।

इन चारों में से किसी एक को भी श्रेष्ठ या शेष का आधार समझना भी ठीक नहीं होगा। वैसे मोक्ष को परम पुरुषार्थ कहा है, क्योंकि उसको प्राप्त करने के बाद कुछ भी प्राप्तव्य नहीं बच रहता। किंतु बिना धर्म, अर्थ और काम के मोक्ष की प्राप्ति संभव नहीं। महर्षि वेदव्यास ने कहा है, "धर्मादर्थश्चकामश्च," अर्थात् धर्म से ही अर्थ और काम

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

की प्राप्ति होती है। जहाँ कोई व्यवस्था ही नहीं, वहाँ अर्थ और काम की प्राप्ति कैसे हो सकती है? किंतु दूसरी ओर हमने इसका पूर्व विवेचन किया है कि किस प्रकार अर्थ के बिना धर्म नहीं टिक पाता। वास्तव में ये चारों पुरुषार्थ अन्योन्याश्रित हैं। एक से दूसरे की रक्षा और संवर्धन होता है। जिस प्रकार प्राण अन्न से बलवान होते हैं तथा सबल प्राण अन्न को पचा सकते हैं, वैसे ही धर्म से अर्थ और काम की तथा अर्थ और काम से धर्म की धारणा होती है।

चार विद्याएँ

इन चारों पुरुषार्थों को प्राप्त कराने वाली विद्याओं के संबंध में विवेचन करते हुए भी कौटिल्य ने लिखा है : "आन्वीक्षकी त्रयी वार्त्ता दण्डनीतिश्चेति विद्या।" आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्त्ता और दंडनीति, ये चार विद्याएँ हैं। इसके पूर्वाचार्यों ने इनमें से किसी एक, दो या तीन को ही विद्या माना किंतु कौटिल्य ने चारों को मान्यता दी। उन्होंने लिखा— "चनस्त्र एवं विद्या कौटिल्य। तामिर्धर्मार्थौयद्विद्यात्तद्विद्यानां विद्यात्वम्।"[2] अर्थात् कौटिल्य के मत से चारों ही विद्या हैं, जिनसे धर्म और अर्थ का ज्ञान होता है, वे वास्तव में विद्या हैं और उन्हें उस रूप में मानना चाहिए।

मनुष्य के जीवन का यह सर्वांगपूर्ण विचार ऐसी किसी भी अर्थ-रचना की कल्पना नहीं कर सकता, जिसमें नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्यों की प्रतिष्ठापना किए बिना ही मनुष्य को सुखी बनाया जा सके। इतना ही नहीं, कोई भी अर्थ-रचना अपनी सफलता और अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक इच्छा, उत्साह और सामर्थ्य का सृजन स्वयं नहीं कर सकती। अपनी ही गति से बराबर गतिमान अर्थव्यवस्था असंभव है। उसे गति देने के लिए और बाद में भी कम-से-कम रुकावट के साथ सुचारु रूप से चलते रहने के लिए व्यक्ति और समाज के जीवन में प्रेरणा का स्रोत अर्थ के अतिरिक्त कहीं अन्यत्र ढूँढ़ना होगा। राष्ट्र की राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाएँ, प्रेरणाएँ अर्थ-रचना को बनाने और टिकाने में सहायक होती हैं। अतः हम समाज या व्यक्ति की समस्याओं एवं उसके लक्ष्यों का टुकड़ों में विचार नहीं सकते। यह हो सकता है कि समय विशेष पर हम किसी एक अंग को अधिक महत्त्व दें किंतु हम शेष की भी अवहेलना नहीं कर सकते।

---

2. इन विद्याओं की व्याख्या करते हुए लिखा है : "सांख्यं योगो लोकायतं चेत्यान्वीक्षकी। धर्माधर्मौ त्रय्यामर्थानर्थौ वार्तायां नयानयौ-दण्डनीत्याम्।" अर्थात् संपूर्ण दर्शन, योग आदि उपासना शास्त्र तथा लोकायत साहित्य आन्वीक्षकी के अंतर्गत आता है। त्रयी से धर्म और अधर्म का, वार्त्ता से अर्थ और उसके अभाव का तथा दंडनीति से राजनीति और दुर्नीति का ज्ञान होता है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

3

आधारभूत लक्ष्य

हम जब भारत के लोग आर्थिक कार्यक्रम का विचार करते हैं तो हमारे सम्मुख कुछ ऐसे निश्चित लक्ष्य एवं तथ्य आते हैं, जिन्हें हम बदलना नहीं चाहेंगे, बल्कि सब प्रकार से उनका संरक्षण एवं संवर्धन ही हमारे प्रयत्नों का उद्देश्य होना चाहिए। प्रथम, भारत ने बड़े प्रयत्नों के बाद अंग्रेज़ों से मुक्ति पाई है। हम किसी भी शर्त पर इस स्वतंत्रता को गँवाना नहीं चाहेंगे। हमारी योजनाओं का प्रथम लक्ष्य होना चाहिए, अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता की रक्षा का सामर्थ्य उत्पन्न करना। दूसरे, हमने अपने लिए एक प्रजातंत्रीय ढाँचा चुना है। यदि आर्थिक समृद्धि का कोई भी कार्यक्रम हमारी प्रजातंत्रीय पद्धति के मार्ग में बाधक होता है तो वह हमें स्वीकार नहीं होगा। तीसरे हमारे जीवन के कुछ सांस्कृतिक मूल्य हैं जो हमारे लिए तो राष्ट्रीय जीवन के कारण, परिणाम और सूचक हैं तथा विश्व के लिए भी अत्यंत उपादेय हैं। विश्व को इस संस्कृति का ज्ञान कराना हमारा राष्ट्रीय जीवनोद्देश्य हो सकता है। इस संस्कृति को गँवाकर यदि हमने अर्थ कमाया भी तो वह निरर्थक और अनर्थकारी होगा।

हमारा आर्थिक कार्यक्रम यद्यपि इन मर्यादाओं के अंतर्गत ही रहेगा, फिर भी इनसे हमारे प्रयत्नों के मार्ग में कोई रुकावट नहीं। ये नियोजकों के पैर की बेड़ियाँ नहीं बल्कि उनके मार्ग के संबल हैं। यदि इन तीनों भावनाओं का सही-सही उपयोग किया जाए, तो उनसे राष्ट्र के सामूहिक प्रयत्नों को भारी बल मिल सकता है। यदि कल की समृद्धि के लिए आज कष्ट उठाने हैं, तो उसके लिए मन की तैयारी इन भावनाओं के अतिरिक्त आर्थिक उद्देश्यों से नहीं की जा सकती।

सैनिक सामर्थ्य की अभिवृद्धि

राजनीतिक स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए राष्ट्र का सैनिक दृष्टि से संरक्षण

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

करना आवश्यक है। इस हेतु हम युद्ध सामग्री के लिए दूसरों पर निर्भर नहीं रह सकते। यह निर्भरता एक ओर तो हमें दूसरों का कृपाकांक्षी बना देगी, दूसरी ओर युद्ध सामग्री पैदा करने वाले राष्ट्रों के मन में अपने इस सामग्री के बाज़ार बनाए रखने और बढ़ाने के लिए, सदैव ही युद्ध की विभीषिका निर्माण करने का मोह उत्पन्न करेगी। यदि भारत जैसा सामरिक महत्त्व की स्थिति वाला देश सैनिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हो जाए तो विश्व की शांति को भंग करने की संभावनाएँ भी कम हो जाएँगी।

आत्मनिर्भरता

यह भी आवश्यक है कि हम आर्थिक क्षेत्र में भी आत्मनिर्भर बनें। यदि हमारे कार्यक्रमों की पूर्ति विदेशी सहायता पर निर्भर रही तो वह अवश्य ही हमारे ऊपर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से बंधनकारक होगी। हम सहायता देने वाले देशों के आर्थिक प्रभाव क्षेत्र में आ जाएँगे। अपनी आर्थिक योजनाओं की सफल पूर्ति में संभव बाधाओं को बचाने की दृष्टि से हमें अनेक स्थलों पर मौन रहना पड़ेगा। जो राष्ट्र दूसरों पर निर्भर रहने की आदत डाल लेता है, उसका स्वाभिमान नष्ट हो जाता है। ऐसा स्वाभिमानशून्य राष्ट्र कभी अपनी स्वतंत्रता की क़ीमत नहीं आँक सकता। यह भी निश्चित है कि बाहर का कोई भी देश हमें हमारे ढंग से उपभोग करने के लिए सहायता नहीं देगा। हमारी योजनाओं की वे छान-बीन करेंगे और फिर हमें वे योजनाएँ बनानी पड़ेंगी, जो चाहे हमारे अनुकूल न हों, किंतु विदेशी सहायता के साथ मेल खा सकें।

प्रजातंत्र का पोषण

हमारा आर्थिक कार्यक्रम प्रजातंत्र का संरक्षक एवं पोषक होना चाहिए। राष्ट्र की शासन व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को सहभागी बनाना ही प्रजातंत्र का उद्देश्य है। इसके लिए चुनाव की प्रणाली साधन के रूप में अपनाई गई है। चुनाव से प्रजातंत्र प्रतिनिधितंत्र का रूप धारण कर लेता है। पुराने यूनान के नगर राज्यों के समान प्रजा द्वारा प्रत्यक्ष शासन एक विशाल क्षेत्र में संभव नहीं। अतः प्रतिनिधियों की आवश्यकता है। किंतु शासन के बहुत से कार्य ऐसे हैं, जिन्हें हम स्थानीय आधार पर कर सकते हैं। इन्हें प्रतिनिधियों द्वारा चलाई गई सत्ता को सौंपने की आवश्यकता नहीं। अतः प्रशासनिक विकेंद्रीकरण राजनीतिक प्रजातंत्र के लिए नितांत आवश्यक है।

प्रतिनिधियों का निर्वाचन जितना निष्पक्ष और स्वतंत्रता से हो सकेगा, उतना ही अधिक वे प्रजातंत्र को सार्थक कर सकेंगे। चूँकि मनुष्य का कोई भी निर्णय एकांगी नहीं होता, इसलिए इस स्वतंत्रता के लिए आवश्यक है कि वह आर्थिक दृष्टि से भी स्वतंत्र हो। राजनीतिक प्रजातंत्र बिना आर्थिक प्रजातंत्र के नहीं चल सकता। जो अर्थ की दृष्टि

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

से स्वतंत्र है, वही राजनीतिक दृष्टि से अपना मत स्वतंत्रतापूर्वक अभिव्यक्त कर सकेगा। भीष्म पितामह जैसे व्यक्ति को भी आर्थिक परतंत्रता के कारण अपने राजनीतिक विचारों पर प्रतिबंध लगाना पड़ा। सभा में वे अन्याय का प्रतिकार नहीं कर पाए। उन्होंने स्वीकार किया कि पुरुष अर्थ का दास होता है (अर्थस्य पुरुषो दासः), अतः अर्थ की स्वतंत्रता आवश्यक है।

व्यक्ति के अधिकार

व्यक्ति के नाते जब हम आर्थिक स्वतंत्रता अथवा प्रजातंत्र का विचार करते हैं तो हमें उसके कुछ अधिकारों को मान्यता तथा उनके संरक्षण की गारंटी देनी होगी। (उत्पादन और उपभोग इन दो प्रमुख कर्मों के द्वारा व्यक्ति आर्थिक क्षेत्र में अवतीर्ण होता है। यदि उसे उत्पादन और उपभोग इन दोनों की स्वतंत्रता प्राप्त हो गई तो हम कह सकते हैं कि वह आर्थिक स्वतंत्रता का उपभोग कर रहा है।) इनमें भी उत्पादन की स्वतंत्रता प्रमुख है, क्योंकि उसके द्वारा ही व्यक्ति अपने उपभोग की पात्रता प्राप्त करता है। यदि वह सामूहिक उत्पादन में सहभागी न हो तो वह न तो राष्ट्र को अपना योगदान दे सकेगा और न उपभोग की क्षमता सिद्ध कर सकेगा। हाँ, यह अवश्य है कि वह पूरे जीवन तथा सभी अवस्थाओं में उत्पादन नहीं कर सकता। बच्चा और बूढ़ा, रोगी और अपंग साधारणतः काम में नहीं लग सकता, फिर भी उन्हें उपभोग तो करना पड़ता है और कई बार तो उनका हिस्सा 'नॉर्मल' से अधिक ही होता है। अतः जहाँ हमें व्यक्ति को इस बात की आश्वस्ति देनी होगी कि वह हमेशा काम पा सकेगा, वहाँ हमें इसकी भी व्यवस्था करनी होगी कि जिन अवस्थाओं में वह काम नहीं कर सकता, उस समय भी उसे अपने उपभोग की स्वतंत्रता से वंचित न होना पड़े।

प्रत्येक को काम

'प्रत्येक को वोट' जैसे राजनीतिक प्रजातंत्र का निकष है, वैसे ही 'प्रत्येक को काम' यह आर्थिक प्रजातंत्र का मापदंड है। काम का यह अधिकार बेगार या दास मज़दूरी (Slave Labour) से उसी प्रकार नहीं होता जिस प्रकार कम्युनिस्ट देशों को 'वोट' प्रजातंत्रीय अधिकार का उपभोग नहीं है। काम प्रथम तो जीविकोपार्जनीय हो तथा दूसरे व्यक्ति को उसे चुनने की स्वतंत्रता हो। यदि काम के बदले में राष्ट्रीय आय का न्यायोचित भाग नहीं मिलता तो उस काम की गिनती बेगार में होगी। इस दृष्टि से न्यूनतम वेतन, न्यायोचित वितरण तथा किसी-न-किसी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था आवश्यक हो जाती है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मर्यादाएँ

उत्पादन और उपभोग की अमर्यादित स्वतंत्रताओं की कल्पना नहीं की जा सकती। यदि एक व्यक्ति द्वारा उत्पादन की स्वतंत्रता दूसरे के मार्ग में बाधक होती है तो वह नहीं दी जा सकती। एक बड़े कारख़ाने का मालिक यद्यपि स्वयं उत्पादन की स्वतंत्रता का उपभोग करता है, किंतु वह छोटे-छोटे उद्योगों को समाप्त कर उनकी स्वतंत्रता का अपहरण करता है। फिर कई बार उसके कारख़ाने में काम करने वाले मज़दूरों की स्वतंत्रता भी बहुत ही सीमित हो जाती है। अत: नियमन आवश्यक है। हमें इस बात का भी विचार करना होगा कि एक की उत्पादन की स्वतंत्रता दूसरे की उपभोग की स्वतंत्रता को समाप्त न कर दे। खाद्य में मिलावट उत्पादन की स्वतंत्रता के नाम पर नहीं की जा सकती। यह जो शुद्ध खाद्य चाहता है, उसकी स्वतंत्रता के प्रतिकूल है।

कहा जाता है कि स्वतंत्र एवं प्रतिस्पर्धीगण व्यक्ति को उपभोग की स्वतंत्रता प्रदान करता है। इसके अनुसार जब कोई व्यक्ति किसी वस्तु को ख़रीदता है तो वह आर्थिक क्षेत्र में अपने मताधिकार का प्रयोग करता है। इस प्रकार वरण के द्वारा उपभोक्ता उत्पादकों में से अपना प्रतिनिधि चुनकर अर्थव्यवस्था की दिशा और गति निश्चित करता है। यह तर्क व्यवहार में पूरा नहीं उतरता। प्रारंभ में उपभोक्ता किसी वस्तु का वरण करके उसके उत्पादक को अवश्य ही उसकी योग्यता और कुशलता, किफ़ायतसारी और बढ़िया माल पैदा करने की क्षमता के लिए पुरस्कृत करता है। किंतु जिनको वह अपना मत नहीं देता वे आर्थिक क्षेत्र से धीरे-धीरे हट जाते हैं। विरोधियों के समाप्त होने पर जब एक या कुछ उत्पादकों का उस क्षेत्र में एकाधिपत्य हो जाता है तो वे उपभोक्ता से उसके प्रजातंत्रीय अधिकार को छीन लेते हैं। फिर मूल्य माँग और पूर्ति के नियमों से निश्चित न होकर उत्पादकों की अपनी इच्छा और योजना से होते हैं। आर्थिक क्षेत्र में यह एक प्रकार की डिक्टेटरशिप है। प्राप्त शक्ति तथा प्रचार तंत्र के सहारे दोनों ही सामान्य जन को उसके अधिकार से वंचित रखते हैं। एतदर्थ आवश्यक है कि उत्पादन के सामर्थ्य की मर्यादाएँ स्थापित की जाएँ, जो कि विकेंद्रीकरण से ही संभव हैं। केवल राजनीतिक क्षेत्र में ही नहीं, आर्थिक क्षेत्र में भी विकेंद्रीकरण चाहिए।

अर्ध-बेकारी

जैसे बेगार हमारी दृष्टि में काम नहीं है, वैसे ही व्यक्ति के द्वारा काम में लगे रहते हुए भी अपनी शक्ति भर उत्पादन न कर सकना भी काम नहीं। अंडर एंप्लायमेंट भी एक प्रकार की बेकारी है। भारत जैसे देश के लिए जहाँ श्रम ही हमारी सबसे बड़ी पूँजी है, श्रम का सामर्थ्यानुसार अनुपयोग घातक है। अत: विकेंद्रीकरण के साथ हमें इस बात पर भी ध्यान देना होगा कि राष्ट्र के उत्पादन में व्यक्ति अपना पूर्ण योगदान दे सके। बिना इसके

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

न्यूनतम स्तर और सामाजिक सुरक्षा की गारंटी के द्वारा उपभोग की स्वतंत्रता बेमानी हो जाएगी। ये व्यवस्थाएँ मौद्रिक अवमूल्यन के कारण मनुष्य को अपेक्षित स्तर प्रदान नहीं कर सकेंगी।

विकेंद्रीकरण

जैसे एक स्थान पर आर्थिक अथवा राजनीतिक सामर्थ्य का केंद्रीकरण प्रजातंत्र के विरुद्ध है, वैसे ही एक ही व्यक्ति या संस्था के पास राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक शक्ति का केंद्रीकरण लोकतंत्र के मार्ग में बाधक है। साधारणतया तो जब किसी भी एक क्षेत्र की शक्ति केंद्रित हो जाती है तो केंद्रस्थ व्यक्ति प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रीति से अन्य क्षेत्रों की शक्ति भी अपने हाथ में लेने का प्रयास करते हैं। इसमें से ही ख़िलाफ़त और कम्युनिस्टों की तानाशाही सरकारें पैदा हुईं। यद्यपि मनुष्य का जीवन एक है और उसकी विभिन्न प्रवृत्तियाँ एक-दूसरे की पूरक हैं, फिर भी उन प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करने वाले निकाय अलग-अलग रहने चाहिए। साधारणतया राज्य की विभिन्न इकाइयों को प्रशासन के क्षेत्र से हटकर अर्थ के क्षेत्र में प्रवेश नहीं करना चाहिए। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था पहले आर्थिक क्षेत्र पर आधिपत्य जमाकर फिर परोक्ष रूप से राज्य पर अधिकार करती है तो समाजवाद राज्य को ही संपूर्ण उत्पादन के साधनों का स्वामी बना देता है। दोनों व्यवस्थाएँ व्यक्ति के प्रजातंत्रीय अधिकार एवं उसके स्वस्थ विकास के प्रतिकूल हैं। अत: हमें विकेंद्रीकरण के साथ-साथ शक्तियों के विभक्तीकरण का भी विचार करना पड़ेगा।

भारतीय संस्कृति के मूल्यों का अधिक विवेचन करने की यहाँ आवश्यकता नहीं। इतना ही कहा जा सकता है कि उसने मानव व्यवहार की आधारशिला आत्मीयता मानी है। कुटुंब से लेकर संपूर्ण विश्व तक इस सर्वात्मैक्य की भावना की व्यावहारिक मर्यादाएँ रखी हैं। जिस व्यवस्था में मानव-मानव के बीच का व्यवहार, उसकी अपनी स्थिति के अनुसार, कृत्रिम न होकर आत्मीयता के आधार पर हो सके, वही हमारे लिए उपयुक्त होगी। केंद्रित व्यवस्थाएँ मानव को मानव न मानकर उससे एक टाइप के साथ व्यवहार करती हैं। उनमें मानव की विविधताओं और विशेषता के लिए कोई स्थान नहीं। फलत: वे उसे ऊँचा उठाने के स्थान पर एक मशीन का पुर्जा मात्र बना देती हैं। उसका अपना व्यक्तित्व मारा जाता है। अत: विकेंद्रीकरण हमारी संस्कृति के भी अनुकूल है। इस व्यवस्था में व्यक्ति व्यवहार करता है। निश्चित ही इसमें मानव संबंधों और मानव के सुधार तथा विकास की बहुत गुंजाइश है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि राष्ट्रीय सुरक्षा, पूर्ण रोज़गारी, न्यूनतम उपयोग की आश्वस्ति तथा विकेंद्रीकरण हमारे आर्थिक कार्यक्रम के आधारभूत आवश्यक लक्ष्य हो सकते हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

4

प्राथमिकताएँ

जब भारत की आर्थिक अवस्था की ओर हम देखते हैं तो हमारे सम्मुख अनेक तथ्य आते हैं। भारत की राष्ट्रीय आय प्रति व्यक्ति 1956-57[1] में चालू मूल्यों पर 294.3 रुपया आँकी गई है। 1948-49[2] के मूल्यों पर वह केवल 284 रुपया रहती है। जब हम इस अंक की तुलना विश्व के दूसरे देशों की प्रति-व्यक्ति आय राष्ट्रीय आय से करते हैं तो भारी अंतर मिलता है। संयुक्त राज्य अमरीका, ब्रिटेन (U.K.), कनाडा और जापान के लिए ये आँकड़े[3] क्रमशः 8784 रुपए, 4057 रुपए, 6056 रुपए तथा 922 रुपए हैं। इस तालिका में भारत सबसे नीचे आता है। किंतु हम इन आँकड़ों से यदि कोई आनुपातिक निष्कर्ष निकालेंगे तो भूल कर जाएँगे। राष्ट्रीय आय जिन सिद्धांतों पर कूती जाती है, वे भारत में पूरी तरह लागू नहीं होते। भारत में ऐसा बहुत सा उत्पादन है, जो मुद्रा क्षेत्र के अंतर्गत नहीं आता। हमारे यहाँ व्यापक पैमाने पर हिसाब-क़िताब रखने की, और वह भी राष्ट्रीय आय कूतने के लिए जो उपयोगी हो, उस प्रकार की पद्धति नहीं। आँकड़े इकट्ठा करने और उनका सार्वदेशिक आधार पर विवेचन करने में भी अनेक कठिनाइयाँ हैं। हम संक्षेप में इतना ही कह सकते हैं कि देश में निर्धनता व्यापक पैमाने पर है, जिसे दूर करना चाहिए।

उत्पादन वृद्धि

ग़रीबी को दूर करने के लिए प्रथम आवश्यकता है देश का उत्पादन बढ़ाने की। साथ ही हमें यह भी देखना होगा कि उत्पादन का समाज में समतर वितरण हो सके, जिससे जो

---

1. 1969-70 : 589.3
2. 1960-69 : 339.4
3. 26835, 10883, 96852, 8415

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

आज ग़रीब हैं, वे सघनता का अनुभव कर सकें। साधारणतया आर्थिक उत्पादन प्रकृति और मनुष्य के सम्मिलित प्रयत्नों का परिणाम होता है। राष्ट्रीय दृष्टि से मोटे तौर पर हम यह कह सकते हैं कि प्रकृति प्रदत्त साधनों का विधायन इस प्रकार कर सकें कि हमारी आवश्यकताएँ पूर्ण हो जाएँ। अत: उत्पादन के पूर्व हमें आवश्यकताओं का विचार करना होगा। यदि हमारी आवश्यकताएँ बदल जाएँ तो हमें उत्पादन भी बदलना पड़ेगा। भारत की सबसे बड़ी समस्या यही है कि हमारी आवश्यकताएँ इतनी तेज़ी से बढ़ और बदल रही हैं कि उत्पादन उनके साथ क़दम नहीं मिला पाता। इस अंतर का कारण जहाँ एक ओर बढ़ती हुई जनसंख्या तथा हमारा तेज़ी के साथ बदलता हुआ रहन-सहन का तरीक़ा है, वहाँ दूसरी ओर उत्पादन प्रक्रिया और अर्थव्यवस्था की गतिशून्यता भी है। जिन वस्तुओं को हम परंपरागत पैदा करते आ रहे हैं, उनकी हमें आज आवश्यकता नहीं और जिनकी हमें आवश्यकता है, उन्हें हम पैदा नहीं कर पा रहे। भारतीय जीवन पद्धति से अरुचि तथा परानुकरणशील एवं स्वाभिमानशून्य दृष्टिकोण का यह परिणाम है। देशभक्ति और संस्कृतिनिष्ठा के इस आर्थिक पहलू को हम आँख से ओझल नहीं कर सकते।

जनसंख्या की वृद्धि

जनसंख्या की वृद्धि का भी विचार करना होगा। उस वृद्धि को रोक दिया जाए और वह भी संतति निरोध के कृत्रिम उपायों से, यही एकमात्र उपाय पश्चिम के विद्वान् सुझाते हैं। शासन इसी का अवलंबन कर रहा है। यह समस्या का समाधान नहीं। फिर इससे जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में तथा दूरगामी क्या-क्या परिणाम होंगे, इनका भी हमें गंभीरता से विचार कर लेना चाहिए। जनसंख्या की वृद्धि का यह व्यापक भय क्या हमारी जीवन से आस्था समाप्त नहीं कर देगा? जीवन से एक बार रस उठ गया कि फिर मानव प्रयत्नों की प्रेरणा ही नष्ट हो जाएगी। इन उपायों का व्यापक रूप से अवलंबन सरल नहीं और उनकी सफलता भी, जिन वर्गों में वह विशेषकर वांछित है, संदेहास्पद है। इसके विपरीत यदि आर्थिक प्रगति एवं सामाजिक सुरक्षा के आधार पर मानव को निश्चिंतता प्रदान की जाए तो वह अधिक फलदाई होगी।[4]

उपभोग्य वस्तुओं का आधिक्य

उत्पादन मुख्यतया दो प्रकार की वस्तुओं का होता है—(1) उपभोग्य वस्तुएँ तथा (2) उत्पादन वस्तुएँ, अर्थात् वे पदार्थ तथा वस्तुएँ, जिनका मनुष्य उपभोग न करके उपभोग्य

4. प्राचीन शास्त्रकारों ने भी समाज की असामान्य वृद्धि से उत्पन्न समस्याओं का विचार किया है। "जाति रूपी वृक्ष अनभीष्ट अंश को उत्पन्न न होने देकर और उत्पन्न हुए अनभीष्ट अंश को निकालकर उसको अवपात से बचाए रखना जातीय लवन कहा गया है।" इसके तीन मुख्य अंग माने गए हैं : (1) बालब्रह्मचर्य, (2) वानप्रस्थ, (3) युद्ध।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

वस्तुओं के उत्पादन में काम में लाता हो। क्योंकि मानव की सभी आर्थिक क्रियाओं का अंतिम लक्ष्य उपभोग्य वस्तुओं की प्राप्ति है, जितनी अधिक मात्रा में तथा कम शक्ति ख़र्च करके वह इन्हें प्राप्त कर सकेगा, उतना ही अच्छा रहेगा। यदि किसी अर्थव्यवस्था में उपभोग वस्तुओं के लिए आवश्यकता से ज़्यादा उत्पादक वस्तुओं का उत्पादन हो तो वह मनुष्य को सुख नहीं दे पाएगी। पश्चिम ने वह उत्पादन प्रणाली अपनाई है, जिसमें उपभोग की वस्तुएँ प्राप्त करने के लिए अनेक उत्पादन वस्तुओं की आवश्यकता होती है। यह तो सच है कि एक बार यह लंबा वृत्त पूरा हो जाए तो अपेक्षाकृत कम प्रयास से अधिक उपभोग्य वस्तुओं की प्राप्ति हो सकेगी। किंतु इस मार्ग को तय करने में पश्चिम को सदियाँ लगीं, और उसे करोड़ों मानवों से श्रम और शक्ति का शोषण करने का अवसर मिल गया। तिस पर भी इस प्रणाली ने संपत्ति उत्पादन के अतिरिक्त मानव संबंधों की तथा वितरण की ऐसी समस्याएँ उत्पन्न कर दी हैं कि जिनका हल करने के प्रयास में मानव अपने व्यक्तित्व को ही गँवा बैठा है। हमें अभी इष्टतम स्तर (Optimum level) ढूँढ़ना है, जहाँ उत्पादन वस्तुएँ उतनी ही लगे, जितनी कि नितांत आवश्यक हों। टेढ़ी-मेढ़ी प्रक्रिया को छोड़ना होगा। भारत में इस प्रक्रिया को अपनाने के कारण उत्पादन और उपभोग की आवश्यकताओं में और भी अंतर बढ़ गया है।[5]

उत्पादन की सीमा

जब हम समाज की आवश्यकताओं का विचार करते हैं तो ऐसी कोई सीमा-रेखा नहीं खींची जा सकती, जिसके आगे समाज की इच्छाएँ और आवश्यकताएँ न बढ़ें और इसलिए अनेक प्रकार का एवं किसी भी मात्रा तक उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। किंतु हमें निम्न बातों का ध्यान रखना होगा—

1. प्रकृति के जिन साधनों का विधायन करके हम नई-नई चीज़ें निर्माण करते हैं, वे सीमित हैं। यद्यपि मनुष्य अपनी बुद्धि से एक ही वस्तु को प्राप्त करने के एकाधिक साधन खोजता जा रहा है, फिर भी यह बुद्धिमानी नहीं होगी कि हम बेतहाशा और बिना बिचारे उन्हें ख़र्च करते जाएँ।
2. प्रकृति में एक संतुलन (Equilibrium) है। नित्य परिवर्तनशील एवं गतिशील जगत् में भी इसी के कारण विभिन्न शक्तियों, क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं के बीच संतुलन बना है। प्रकृति अपनी पद्धति से क्षय की पूर्ति करती रहती है। मानव यह मानकर कि संपूर्ण दुनिया उसके लिए ही बनाई गई है, इतनी तेज़ी से उनका विनाश कर रहा है कि न तो प्रकृति क्षति-पूर्ति ही कर पाती है और न उसका संतुलन ही

5. अर्थ को मुख्य और गौण दो रूपों में बाँटकर पुराने शास्त्रकारों ने बताया है कि गौण-अर्थ मुख्य अर्थ से कभी प्रबल और अधिक नहीं होना चाहिए। यह अर्थ के प्रभाव का द्योतक है मुद्रा तथा उत्पादक वस्तुएँ गौण-अर्थ के अंतर्गत आती हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

टिक पाता है। प्रत्येक क्रिया के सर्वांगीण परिणामों का विचार करने लायक़ ज्ञान का अभी भी मानव के पास अभाव है। और जहाँ ज्ञान है भी, वहाँ उन परिणामों को रोक सकने का सामर्थ्य तो बहुत ही कम है। तेज़ी से जंगलों को काटने, नहरों से भूमि का सेम (Waterlogging) के कारण अनुपजाऊ होना आदि कुछ उदाहरण हैं।

3. उत्पादन की प्रक्रिया ऐसी होना चाहिए कि पैदा माल की बराबर खपत होती रहे। अर्थात् साधारण जन की क्रयशक्ति के बढ़ाने के साथ-साथ उत्पादन बढ़ा तो मंदी और बेकारी की समस्याएँ उत्पन्न नहीं होंगी। सामाजिक सुरक्षा के नियम, प्रशासनिक नियंत्रण आदि रोग के उपचार हैं, स्वस्थ जीवन के नियम नहीं।

उपभोग की न्यूनतम मर्यादा

उपर्युक्त मर्यादाओं के अंतर्गत उत्तरोत्तर बढ़ने के साथ ही हमें उत्पादन की निम्नतम अवस्था तथा भावी कार्यक्रम के लिए वरीयताओं का निर्णय भी करना होगा। मोटे तौर पर यह कह सकते हैं कि 'रोटी, कपड़ा, मकान, पढ़ाई और दवाई,' ये पाँच ऐसी आवश्यकताएँ हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति की पूरी होनी चाहिए। यदि किसी देश के जीवन स्तर का भौतिक दृष्टि से हमें अंदाज़ा लगाना है तो इसे प्रारंभ का शून्य बिंदु मानकर चलना होगा। यदि समाज के किसी भी वर्ग को ये सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं तो हम उस समाज का जीवन स्तर ऋण में मानकर चलेंगे।

खाद्य

इन पाँचों मौलिक आवश्यकताओं में भी 'खाद्य' एक ऐसी आवश्यकता है, जिसके बिना प्राणिमात्र जीवित नहीं रह सकता। 'अन्नं वै प्राण:' अन्न ही जीवन है। ऐसी कोई अर्थव्यवस्था जो पर्याप्त खाद्य उपलब्ध नहीं करा सकती, टिक नहीं सकती। जो लोग खाद्योत्पादन में नहीं लगे हैं, उन्हें भी खाद्य चाहिए। यह तभी संभव है जबकि खाद्योत्पादक अपनी आवश्यकता से अधिक पैदा करके अन्य लोगों के लिए कुछ बचा लें। साथ ही जो लोग खाद्योत्पादन के अतिरिक्त कामों में लगे हैं, उनकी सेवाएँ ऐसी होनी चाहिए, जिनकी आवश्यकता खाद्योत्पादकों को हो। इस प्रकार एक-दूसरे की माँग को पूरा करते हुए व्यवस्था आगे बढ़ती है।

कृषि पदार्थ, दुग्ध, मांस, मछली, अंडे आदि खाद्य के अंतर्गत आते हैं। इन सब में कृषि ही मानव के खाद्य का मुख्य सहारा है। भारत के लिए यह विशेषकर लागू है। अत: हमारे सामने प्रमुख प्रश्न यही है कि किसान की उपज में से उसकी आवश्यकता से बचा हुआ अधिकाधिक अतिरिक्त खाद्य (Surplus) कैसे प्राप्त किया जाए। इसके तीन मार्ग हो सकते हैं—

1. खेती पर निर्भर लोगों की संख्या घटाकर।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

2. सरकारी आदेश, भूधृति अथवा और विपणन, मौद्रिक एवं वित्तीय नीतियों के द्वारा किसान को अधपेट रखकर अधिकाधिक अतिरेक प्राप्त करना।
3. गल्ले की उपज बढ़ाकर।

कृषि पर भार

1951 की जनगणना के अनुसार 24.90 करोड़ व्यक्ति अर्थात् कुल जनसंख्या का 69.8 प्रतिशत कृषि के द्वारा जीवकोपार्जन करते हैं। इनमें से 18 प्रतिशत कृषि श्रमिक एवं उसके आश्रित हैं। शेष में ऐसे कृषकों की संख्या भी काफ़ी है, जिनके पास अनुत्पादक जोतें हैं। ये सब जो कुछ पैदा करते हैं, उसमें से अपनी आवश्यकताओं के बाद प्राय: कुछ भी नहीं बचा पाते। इस दृष्टि से अन्य देशों के साथ तुलनात्मक आँकड़े उपयोगी होंगे।

प्रति 1000 व्यक्तियों में विभिन्न पेशों में लगे व्यक्ति

	भारत	सं. राज्य अमरीका (U.S.A.)	ब्रिटेन (U.K.)
1. कृषि, पशुपालन, वन एवं मत्स्य पालन	706	128	50
2. खनन, विधायन और व्यापार	153	456	555
3. अन्य उद्योग एवं सेवाएँ	141	416	395
	1000	1000	1000

यह निर्विवाद है कि आनुपातिक दृष्टि से भारत में बहुत बड़ी संख्या भूमि पर निर्भर है। पिछले बीस वर्षों में यह संख्या 66 प्रतिशत से बढ़कर 70 प्रतिशत हो गई है। यदि हम इस संख्या को कम कर सकें तो स्वाभाविकत: खाद्यान्न का विपणनीय अतिरेक (Trade Surplus) बढ़ जाएगा। यदि यह संख्या कम हुई तो कृषि का अपखंडन रुक जाएगा तथा विकास के लिए अधिक साधन जुटाए जा सकेंगे।

औद्योगीकरण और कृषि

कृषि पर निर्भर व्यक्तियों की संख्या घटाने का एकमात्र उपाय लोगों को उद्योगों एवं अन्य व्यवसायों में लगाना है। किंतु जब इन्हें दूसरे उद्योगों में लगाया जाएगा तो शेष किसानों को न केवल इनके लिए बचाकर अन्न ही देना पड़ेगा, बल्कि वह कच्चा माल भी तैयार करना होगा, जिसके बल पर ये उद्योग चल सकें। यदि कल कारख़ानों में लगे हुए व्यक्तियों की ये आवश्यकताएँ पूर्ण नहीं हो पाईं तो फिर वे वहाँ काम नहीं कर सकेंगे, बल्कि लौटकर खेती पर लग जाएँगे। अत: कुछ लोगों का मत है कि किसानों को प्रारंभिक भार वहन करना चाहिए। जबरिया गल्ला वसूली, कच्चे और पक्के माल के दामों में अंतर तथा भूधृति (Tenancy) की ऐसी व्यवस्था की जाए, जिससे किसान अपना जीवन स्तर ऊँचा उठाने की अपेक्षा अन्यों के लिए कृषि सामग्री जुटाता और उन्हें आवश्यक बाज़ार प्रदान करता

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

रहे। उद्योगों के ठीक-ठीक जम जाने के बाद विकासक्रम की दिशा निश्चित हो जाएगी और फिर किसान की भी दशा सुधारी जा सकेगी।

यह तर्क भ्रममूलक है। भारत एवं अन्य उपनिवेशों के किसानों ने इसी व्यवस्था के आधार पर इंग्लैंड के उद्योग-धंधे खड़े किए, किंतु उसका लाभ उन्हें आज तक नहीं हो पाया। इतना ही नहीं संयुक्त राज्य अमरीका में भी जहाँ के हज़ार में से 128 खेती पर लगे, व्यक्ति इतना पैदा करते हैं कि केवल अपने देश की आवश्यकता ही पूर्ण नहीं करते, अपितु निर्यात भी कर सकते हैं। किसानों को अपनी समृद्धि के लिए शासन की मूल्य स्थिरीकरण आदि की नीतियों पर निर्भर रहना पड़ता है।

कृषि की आय वृद्धि की आवश्यकता

भारत में यद्यपि खेती पर 69.8 प्रतिशत व्यक्ति निर्भर करते हैं, किंतु उनका राष्ट्रीय आय का योगदान केवल 51 प्रतिशत है। प्रति व्यक्ति कृषि आय केवल 500 रुपए आती है, जबकि ख़ानों और कारख़ानों में वह 1700 रुपए है। यह अंतर निश्चित ही उन मूल्य नीतियों के कारण है जो किसान के हित में निर्धारित नहीं होती।

यदि हम गंभीरता से विचार करें तो कृषि आय को बिना बढ़ाए उद्योगों को भी नहीं टिकाया जा सकता। किसान अपनी बचत के बदले में जितनी मात्रा में अधिक औद्योगिक वस्तुएँ ख़रीद सकेगा, उतना ही अधिक लोगों को कृषीतर पेशों में काम मिल सकेगा। यह बात सत्य है कि भारत में कृषि पर निर्भर रहने वाले लोगों की इतनी भारी संख्या है कि भारत में उनकी सामान्य एवं नितांत आवश्यकताओं की पूर्ति में भी काफ़ी लोगों को काम मिल सकता है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए क्रयशक्ति जुटाने के लिए वे हर संभव उपाय से गल्ला बचाते हैं। यहाँ तक कि स्वयं कम खाकर भी बाज़ार से कपड़ा, तेल, हल आदि ख़रीदने के लिए गल्ला बेचते हैं। अत: जब गल्ला महँगा हो जाता है तो वे कम गल्ला बेचने की आवश्यकता समझते हैं तथा शेष को अपने खाने के लिए रख लेते हैं। जब बाज़ार में गल्ला कम आता है और वह महँगा हो जाता है तो उद्योग-धंधों में काम करने वालों को अपनी मज़दूरी बढ़ानी होती है या अनुत्पादक इकाइयों को बंद करना होता है। इस प्रकार दुष्चक्र चलता रहता है। फलत: यह मानकर चला जाता है कि किसान से अधिकाधिक गल्ला प्राप्त कर कल कारख़ानों को चालू रखा जाए। इस स्थिति में किसान न तो अपने जीवन स्तर को ऋण से मुक्त अवस्था में ला पाता है और न कृषि में सुधार करने के लिए कुछ बचा पाता है। समस्या का हल किसान की स्थिति का अनुचित लाभ उठाकर ज़बरस्ती उससे बचत कराना नहीं बल्कि उसके अंदर अपने विकास के लिए बचत की इच्छा पैदा करना है। जब तक वह विकासोन्मुख नहीं होगा तब तक हम उत्तरोत्तर वृद्धिगत बाज़ार नहीं पैदा कर सकेंगे। बिना बाज़ार बढ़ाए उद्योग-धंधे भी विकास की दिशा में बराबर आगे नहीं बढ़ सकेंगे।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कृषि उत्पादन की वृद्धि

खेती का विपणनीय अतिरेक (Marketable Surplus) प्राप्त करने का सर्वोत्तम उपाय है कृषि की पैदावार बढ़ाना। जब कृषक अपनी आवश्यकता से अधिक उत्पन्न करेगा तथा उसको अपना जीवन स्तर ऊँचा उठाने के निमित्त औद्योगिक माल की आवश्यकता होगी तो कृषि और उद्योग दोनों एक दूसरे के पूरक हो सकेंगे। राष्ट्रीय दृष्टि से यदि विचार किया जाए तो खेती की पैदावार नितांत आवश्यक है। विभाजन के उपरांत भारत खाद्यान्न की दृष्टि से आत्मनिर्भर नहीं रहा। पिछले ग्यारह वर्षों में उसे भारी मात्रा में बाहर से अन्न मँगाना पड़ा है।

खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता

खाद्यान्न जैसे महत्त्व के विषय में पर निर्भर होना हमारे लिए किसी भी समय संकट उत्पन्न कर सकता है। राजनीतिक एवं अन्य पहलुओं को यदि हम छोड़ भी दें तो आर्थिक दृष्टि से भी हमें इस प्रश्न को सुलझाना होगा। कारण, जिन देशों से हम खाद्यान्न लेते हैं, उन्हें वापस देने के लिए हमारे पास कुछ नहीं है। अमरीका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया और अर्जेंटाइना ऐसे मुख्य देश हैं, जो हमें गेहूँ दे सकते हैं तथा देते रहे हैं। किंतु हमारा और उनका व्यापार पूरक नहीं। हम जिस औद्योगीकरण की ओर बढ़ रहे हैं, उसमें अपने यहाँ का माल इन देशों में नहीं खपा पाएँगे। अभी तक हमने लड़ाई के समय जमा पौंड पावना अथवा विभिन्न रूप में प्राप्त विदेशी ऋण एवं सहायता का लाभ उठाकर यह अन्न प्राप्त किया है। हमारा पौंड पावना समाप्तप्राय है तथा विदेशी सहायता सदैव ही संदिग्ध रहती है, अतः हमें दृढ नींव पर खड़े होने की आवश्यकता है।

हम यदि मान भी लें कि विदेशों से किसी-न-किसी रूप में हम बराबर अन्न प्राप्त करते रहेंगे तथा उससे अपने कल कारख़ानों में काम करने वाले मज़दूरों की उपजीविका की व्यवस्था कर सकेंगे तो भी भारत की समृद्धि का हमारा उद्देश्य पूरा नहीं होगा। भारत को बाहर बाज़ार ढूँढ़ने के पहले अपने घर के विशाल बाज़ार का विकास करना चाहिए। यह कृषि की उपज बढ़ाने से ही संभव हो सकेगा।

इस प्रकार हम (1) कृषि (2) उद्योग (3) वाणिज्य (4) समाज सेवाएँ; यह प्राथमिकताएँ निश्चित कर सकते हैं। किंतु हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि ये चारों एक दूसरे से इतनी संबद्ध हैं कि हम एक का विकास दूसरों की उपेक्षा करके नहीं कर सकते। हमारा विचार तौलनिक ही हो सकता है।[6]

6. 'उत्तम खेती मध्यम बान, निकृष्ट चाकरी भीख निदान', इस लोकोक्ति में अर्थशास्त्र का अनुभवपूत तत्त्व निहित प्रतीत होता है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

5

कृषि

खेती पर भार

कृषि की पैदावार बढ़ाने का जब हमारे सम्मुख प्रश्न आता है तो कृषि की आज की स्थिति एवं उसकी समस्याओं की ओर हमारा ध्यान जाता है। पैदावार एवं प्रति एकड़ भूमि की प्राप्ति दोनों ही दृष्टियों से भारत बहुत पीछे है। सन् 1951 की जनगणना के आधार पर प्रति व्यक्ति कर्षित क्षेत्र केवल 84 सेंट्स है। पिछले 30 वर्षों से इस दृष्टि से बराबर ह्रास हो रहा है।

प्रति व्यक्ति कर्षित भूमि

वर्ष	क्षेत्र (सेंट्स में)
1891	109
1901	103
1911	109
1921	111
1931	104
1941	94
1951	84
*1961	2.6 हेक्टर

बढ़ी हुई जनसंख्या का अधिकाधिक भार भूमि पर ही पड़ता गया है। इस भार को कम करने की दृष्टि से सर्वप्रथम हमारा ध्यान उस भूमि की ओर जाता है, जिस पर अभी तक खेती नहीं होती। भारत का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 80.63 करोड़ एकड़ है। इसमें

* अनुमानित।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

से केवल 71.95 करोड़ एकड़ भूमि के उपयोग के संबंध में जानकारी प्राप्त है। 1955-56 में 12.54 एकड़ भूमि में जंगल, 9.64 करोड़ एकड़ भूमि में चरागाह, कुंज तथा वृक्ष आदि, 5.97 करोड़ एकड़ भूमि ऐसी थी, जो कृषि के लिए उपलब्ध नहीं थी। जो ज़मीन बंजर पड़ी है, उसे खेती के उपयोग में लाया जा सकता है। किंतु जब हम इन आँकड़ों को व्यावहारिक दृष्टि से विश्लेषण करते हैं तो अनेक कठिनाइयाँ सामने आती हैं। जिन क्षेत्रों में ज़मीन का जितना अधिक भार है, वहाँ भूमि उतनी ही कम उपलब्ध है। ऐसे स्थानों पर बंजर प्रायः मिलेंगे ही नहीं। केरल में प्रति व्यक्ति कर्षित भूमि केवल 59 सेंट्स है। वहाँ खेती योग्य बंजर भी केवल 473 हज़ार एकड़ है। जब राजस्थान में प्रति व्यक्ति कर्षित भूमि 2.07 एकड़ होने के बाद भी 19,469,000 एकड़ बंजर भूमि और उपलब्ध हो सकती है। अन्य प्रदेशों की स्थिति भी इसी प्रकार है। फिर बंजर ज़मीन को तोड़ने और खेती करने में परिश्रम और धन के व्यय का विचार करें तो प्रस्ताव का क्रियान्वयन इतना सरल नहीं रह जाएगा। जब इस बढ़ती हुई आबादी तथा विभिन्न प्रकार के अन्य कामों के लिए आवश्यक भूमि का विचार करते हैं तो अपने देश के कर्षित क्षेत्र को प्रति व्यक्ति बढ़ाने की संभावनाएँ और भी मर्यादित हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में हमारे सामने एक ही मार्ग रह जाता है और वह है घनी खेती द्वारा प्रति एकड़ उपज बढ़ाकर कुल उत्पादन में वृद्धि करना। कृषि विकास के कार्यक्रम मुख्यतया इसी दृष्टि से आयोजित होने चाहिए।

द्विविध कार्यक्रम

कृषि विकास का कार्यक्रम दो प्रकार का हो सकता है—(1) प्राविधिक (Technical) तथा (2) संस्थागत (Institutional)। पहले कार्यक्रम का संबंध खेती की पद्धति से है। किन साधनों का तथा किस मात्रा में उपयोग किया जाए, इसका विचार करना होगा। दूसरे में हमें भूवृत्ति के नियमों में सुधार करना होगा तथा कृषि के लिए आवश्यक साधनों को जुटाने तथा विपणन की व्यवस्था के लिए संस्थाएँ बनानी होंगी। हमें इस दृष्टि से एक समन्वित एवं सुनियोजित (Integrated) कार्यक्रम हाथ में लेना होगा। कृषि ही नहीं, उद्योग-धंधों का भी इसके साथ विचार करना चाहिए।

खेती की पद्धति में सुधार

जहाँ तक खेती की पद्धति का संबंध है, भारत के किसान ने परिस्थितियों के अनुरूप उपयुक्त पद्धति का विकास किया है। युगों से चली आई पद्धतियों को आज की उन प्रक्रियाओं के पक्ष में, जिन पर न तो पूरे-पूरे प्रयोग हुए हैं और न भारत की समसमान अवस्थाओं में उन प्रयोगों को किया गया है, एकाएक नहीं छोड़ देना चाहिए। भारत का किसान फ़सलों की अदल-बदलकर बुवाई, हरी खाद का प्रयोग, मलमूत्र के खाद को पकाकर उपयोग

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

करना, भूक्षरण रोकने के लिए मेंड़ बाँधना तथा वृक्ष लगाना आदि अनेक विधियों को भलीभाँति जानता है। उसने युगों से भूमि की उर्वरता को बनाए रखा है। हाँ, पिछले दिनों में विभिन्न कारणों से वह अपने ज्ञान का पूरा उपयोग नहीं कर पाया।

अदेवमात्रिका कृषि

भारत की कृषि मुख्यतया इंद्रदेव की कृपा पर निर्भर करती है। वर्षा का चार्ट ही भारत के किसान का कार्डियोग्राफ है। यद्यपि यहाँ वर्षा के महीने निश्चित हैं, फिर भी कहाँ, कब और कितनी वर्षा होगी, इसके संबंध में बताना कठिन है और यदि ज्ञान भी हो जाए तो उसके अभाव की पूर्ति तथा आधिक्य का निराकरण करना कठिन है। अत: प्रारंभ से हमारे भारतीय शासन का यह ध्येय रहा है कि वह सिंचाई की योग्य व्यवस्था करे। कृषि को 'अदेवमात्रिका' बनाने का शास्त्रों का आदेश है।

छोटी योजनाएँ

यद्यपि भारत ने अमरीका की नक़ल करके सिंचाई के लिए बड़े-बड़े बाँध बनाने का कार्यक्रम हाथ में लिया है किंतु सर्वतोमुखी दृष्टि से विचार किया जाए तो हमारे लिए छोटे-छोटे सिंचाई के साधन ही अधिक उपयोगी हैं।

बड़े बाँधों की योजनाएँ पूँजी प्रधान हैं। भाखड़ा-नांगल, दामोदर घाटी परियोजना और हीराकुंड इन तीनों को लें तो उनके अनुमान बराबर बढ़ते जा रहे हैं। दूसरी ओर इनसे खाद्योत्पादन में भी छोटी योजनाओं की तुलना में कम लाभ हुआ है। जैसा कि निम्न तालिका से विदित होगा—

विभिन्न योजनाओं से कृषि उत्पादन में वृद्धि 1951-56

योजना	लक्ष्यों की प्रतिशत उपलब्धि	
	उत्पादन	व्यय
1. बड़ी सिंचाई योजनाएँ	47	92
2. छोटी सिंचाई योजनाएँ	91	63
3. भूमि पुनरुद्धार तथा विकास	77	75
4. खाद एवं उर्वरक	50	59
5. उन्नत बीज	55	56

बड़ी योजनाओं की सबसे बड़ी ख़राबी यह है कि वे थोड़े दिनों में भूमिगत जल की ऊँचाई बढ़ाकर खेतों और आबादी को नुक़सान पहुँचा देती हैं। भूमि के क्षार भी तल पर आ जाते हैं, जिससे ज़मीन बंजर, अनुपजाऊ हो जाती है। पीने का पानी भी अस्वास्थ्यकर

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

हो जाता है। पानी के बहाव के प्राकृतिक मार्ग में बाधा डालकर तथा ज़मीन की सोखने की शक्ति को नष्ट करके वे थोड़ी सी भी वर्षा में आसपास के क्षेत्रों में बाढ़ की स्थिति पैदा कर देती है। पंजाब के भटिंडा, फिरोजपुर, अमृतसर, गुरुदासपुर आदि तथा उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर, मिर्जापुर और गाजीपुर ज़िलों में सेम (Waterlogging) की समस्या विषम होती जा रही है। कुछ क्षेत्रों में पंप लगाकर पानी को फिर से नहरों में डाला जा रहा है। नहरों की तलें कंक्रीट की बनाई जाएँ, यह भी सुझाव है। दोनों ही ख़र्चीली योजनाएँ हैं। अत: हमारे देश के लिए तो छोटी योजनाएँ ही उपयोगी सिद्ध होंगी, क्योंकि—

1. कम ख़र्च की होने के कारण वे हमारे आर्थिक सामर्थ्य के अंदर है।
2. इनकी आयात निर्भरता न्यूनतम है। न तो बाहर से मशीनों और न विशेषज्ञों के लिए इन्हें रुकना पड़ता है।
3. इनकी पूर्ति में समय कम लगता है, अत: वे आशु फलदाई हैं।
4. बड़े बाँधों की भाँति वे पहले से ही कर्षित भूमि के बड़े-बड़े क्षेत्रों को जलमग्न नहीं करतीं।
5. जहाँ बड़ी योजनाओं में केवल 55 प्रतिशत पानी ही सिंचाई के काम में आता है, छोटी में 95 प्रतिशत तक काम में लाया जा सकता है।
6. स्थानीय सहयोग और प्रयत्नों का इसमें अधिकाधिक उपयोग हो सकता है।

अनुभव ने शासन को छोटी योजनाओं की ओर ध्यान देने की ओर बाध्य तो किया है, किंतु अभी तक उसका कोई व्यापक एवं समन्वित कार्यक्रम हाथ में नहीं लिया गया। दूसरी ओर नए कुएँ और तालाब बनाने के साथ-साथ हमें पुरानों को ठीक रखने तथा उनकी मरम्मत का भी विचार करना होगा। बहुधा एक ओर नए कुएँ बनते हैं और पुराने ढहते जाते हैं। पुराने ताल और तलैया को खोदने का काम कुछ प्रचारात्मक दृष्टि से वर्ष-दो वर्ष चला और बाद में बंद हो गया। अभी भारत में लगभग 25 लाख कुएँ हैं। हम यदि प्रयत्न करें तो इस संख्या को कम से कम एक करोड़ तक तो सहज में ले जा सकते हैं। नल-कूप भी काफ़ी उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। पहाड़ी क्षेत्रों में छोटी-छोटी नहरों, गूलों और नालों की ओर भी ध्यान देना उपयोगी होगा।

हल या ट्रैक्टर

सिंचाई के अतिरिक्त किसान को अच्छे औजार, बैल, खाद एवं उर्वरक तथा उन्नत बीज की भी आवश्यकता है। कुछ लोग मशीनों में अडिग श्रद्धा रखने के कारण भारत के खेतों में भी पश्चिम के तरीक़े से ट्रैक्टरों से कृषि के पक्ष में हैं। किंतु भारत के लिए वे अनुपयुक्त हैं। प्रथम तो हमारे यहाँ खेत बहुत छोटे हैं तथा एक किसान की जोत भी इतनी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कम है कि उसमें ट्रैक्टर नहीं चलाया जा सकता। ट्रैक्टर के लिए खेत बड़े किए जाएँ तथा उनमें सामूहिक खेती का अवलंबन किया जाए, यह भी सुझाव दिया जाता है। सामूहिक खेती भारत के भूमिजल अनुपात, प्रजातंत्रीय पद्धति, बेकारी का निवारण, प्रति एकड़ अधिकतम उत्पादन, कृषि में मानकों के निर्धारण की असंभवनीयता, किसान का भूमि प्रेम एवं हमारे जीवन-मूल्य सभी दृष्टियों से हमारे लिए अनुपयुक्त है। किंतु सामूहिक खेती को यदि छोड़ भी दिया जाए तो भी हम भारत की जलवायु एवं उसमें होने वाले भू क्षरण के कारण बहुत बड़े-बड़े खेत, जिनमें ट्रैक्टर चलाए जा सकें, नहीं रख सकते। फिर न तो ट्रैक्टर अपने देश में अभी बनते हैं और न उनको चलाने वाला ईंधन ही अभी तक पर्याप्त मात्रा में प्राप्त है। उनके ड्राइवर और मरम्मत करने वाले, जल्दी और भारी मात्रा में नहीं किए जा सकते। अतिरिक्त पुर्जों की प्राप्ति और मरम्मत के कारख़ानों का गाँव-गाँव में अथवा कम-से-कम केंद्रीय स्थानों पर खोलना भी एक भारी काम है। यदि यह सब संभव भी हो गया तो हमारे पशुधन का उपयोग हमारे सामने एक समस्या उत्पन्न करेगा। आज भारत में 15 करोड़ 89 लाख गोवंश तथा 3 करोड़ 51 लाख महिष वंश हैं। बैल और भैंसाओं की संख्या क्रमशः 6.42 करोड़ तथा 63 लाख है। गाय और भैंसों का उपयोग दूध के लिए होगा किंतु बैल यदि हमारे कृषि के उपयोग में नहीं आता तो भार बन जाएगा। पश्चिम के देश गोमांसभक्षी हैं, अतः वे बैलों को खा जाते हैं। किंतु भारत के लिए यह कल्पना करना उसकी परंपरा एवं राष्ट्रभावना के प्रति अज्ञानमूलक एवं अव्यावहारिक होगा। पशुधन को अनुत्पादक (Uneconomic) कहकर काटा नहीं जा सकता बल्कि उसे उत्पादक (Economic) बनाकर अपने आर्थिक ढाँचे को सुदृढ किया जा सकता है। बैल हमारी खेती का धुरा है। ट्रैक्टर लाकर हम अपना सब महल ढहा देंगे।

हल और खेती के दूसरे औजार यद्यपि हमारे लिए बहुत कुछ उपयुक्त हैं, किंतु उनमें फिर भी छोटे-छोटे सुधार किए जा सकते हैं। कृषि आयोग ने इनके संबंध में लिखा था, "भारत में कृषि के औजार साधारणतया स्थानीय अवस्थाओं के बहुत अनुकूल हैं। वे बैलों के सामर्थ्य के अनुरूप हल्के, वहनीय, सस्ते तथा सरलता से निर्माण योग्य हैं तथा अत्यंत महत्त्व की बात यह है कि वे सहज उपलब्ध भी हैं।" जब से लोहा महंगा हुआ है तथा औजारों के बनाने का काम गाँव के बढ़ई और लुहार के हाथ से निकलकर कारख़ाने वालों के हाथ में आ गया है, तबसे वे सुलभ और सस्ते नहीं रहे। हमें इस बात की व्यवस्था करनी होगी।

खाद और उर्वरक

अन्न की उपज बढ़ाने के लिए तथा भूमि की उपजाऊ शक्ति को बनाए रखने के लिए खाद की आवश्यकता है, किंतु ज़मीनों का ठीक-ठाक सर्वेक्षण उत्पादन की पद्धति,

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

फ़सल, सिंचाई के साधन आदि का विचार करके ही उसके उपयुक्त एवं योग्य मात्रा में खाद एवं उर्वरक का उपयोग होना चाहिए। पिछले दस वर्षों में उर्वरकों के विषय में काफ़ी प्रचार किया गया है तथा अमोनिया सल्फेट के प्रयोग में भी भारी वृद्धि हुई है। यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि लगातार रासायनिक उर्वरकों का यदि उपयोग किया जाए तो खेतों की उर्वरा शक्ति बढ़ने के बजाय कम हो जाती है। अत: उनका उपयोग गोबर आदि की खाद के साथ मिलाकर सीमित मात्रा में ही करना चाहिए। सरकार द्वारा वितरित एवं कई बार किसानों को ज़बरदस्ती दिया गया, अमोनियम सल्फेट खेतों में कितना डाला गया है, इस विषय में भी निश्चित नहीं कहा जाता। मद्य निषेध के कारण कई जगह उसका उपयोग ग़ैरक़ानूनी शराब खींचने में किया जाने लगा है।

गोबर, मल-मूत्र आदि भारत के लिए अत्यंत उत्तम खाद के साधन हैं। अनुमान है कि देश में 8000 लाख टन गोबर का उत्पादन होता है। इसमें कम-से-कम 50 प्रतिशत के उपले बनाकर जला दिए जाते हैं। यह मत तो अनेक बार व्यक्त किया गया है कि ईंधन की दूसरी व्यवस्था करके गोबर को खाद के रूप में ही काम में लाया जाए, किंतु इस ओर कुछ भी नहीं हुआ है। पेड़ों की भारी कमी है। जंगलात के नए क़ानूनों के अनुसार, जो किसान ईंधन के लिए सूखी और टूटी लकड़ियाँ इकट्ठा कर लेते थे, वह भी संभव नहीं रहा। अभी कुछ प्रयोग हुए हैं, जिनसे गोबर से गैस तैयार की जा सकती है। ईंधन एवं प्रकाश के लिए उसका उपयोग करने के बाद बचे हुए गोबर को खाद के लिए उपभोग किया जा सकता है। शासन को इसका परीक्षण करना चाहिए कि कहाँ तक यह यंत्र व्यापक एवं उत्पादक आधार पर काम में लाया जा सकता है। फ़सलों की हेराफेरी से भी ज़मीन के नष्ट हुए उत्पादक तत्त्वों की पूर्ति की जा सकती है। जो नई फ़सलें आजकल पैदा की जाने लगी हैं, इनकी अदल-बदल अन्य फ़सलों से कैसे की जा सकती है, इसका ज्ञान किसान को देने की आवश्यकता है।

भारतीय पृष्ठभूमि का विचार

उन्नत बीज के संबंध में शासन ने जो कार्यक्रम बनाए हैं, वे व्यवहार में नहीं लाए गए। प्रशासनिक अव्यवस्था और लाल फीताशाही के परिणामस्वरूप समय पर बीज नहीं मिल पाता। फ़सलों को रोगों से बचाने के लिए भी कार्रवाई करने की आवश्यकता है। ये सब ऐसे कार्यक्रम हैं, जिनमें मतभेद के लिए गुंजाइश नहीं। हम विदेशों के परीक्षणों से लाभ अवश्य उठा सकते हैं किंतु अनुकरण नहीं कर सकते। हमें बाहर से प्राप्त ज्ञान के आधार पर अपने यहाँ अनुसंधान केंद्रों में पहले परीक्षण करके अपनी गाँव की परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में ही उसका उपयोग करना चाहिए।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भूधृति

कृषि उत्पादन का संबंध कृषक से भी आता है। खेत और खेतिहर इन दोनों का एक अविभाज्य संबंध है। भूमि में सुधार करने तथा अधिकाधिक श्रम से अधिकतम उत्पादन करने के लिए यह आवश्यक है कि उसको इस बात की निश्चिति हो कि वह भूमि से हटाया नहीं जाएगा तथा पैदा की हुई फ़सल का अधिकांश भाग उसका अपना ही होगा। विभिन्न ऐतिहासिक कारणों से भारत की भूमि व्यवस्था में बहुत से मध्यस्थों का समावेश हो गया है। ज़मींदार और जागीरदार तो अब समाप्त कर दिए गए हैं किंतु रैयतवारी प्रथा के अंतर्गत भी ऐसे बहुत से व्यक्ति हैं, जो स्वयं खेती नहीं करते बल्कि दूसरों को पट्टों पर देकर उनसे बदले में आधा से लेकर छठा भाग तक लेते रहते हैं। सैद्धांतिक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि जब तक विभिन्न प्रकार की संपत्तियों को किराये पर उठाने का अधिकार है, तब तक भूमिपति (Land-holder) को अपनी ज़मीन किराये पर देने से रोकना अन्याय होगा। किंतु हमें भूमि एवं अन्य संपत्तियों में भेद करना होगा, विशेषकर आज के समय, जबकि भूमि में व्यापक सुधार कर हमें उत्पादन बढ़ाने की नितांत आवश्यकता है। हम यह जानते हैं कि देश में छोटी-छोटी जोतों की संख्या बहुत ज़्यादा है। यदि थोड़ी-बहुत उन्नति करके कृषक अपनी फ़सल बढ़ाता है तो उसके पास बचत नहीं बढ़ती, जिसको वह पूँजी के रूप में आगे लगा सके। कई बार तो वह खेती से ज़्यादा पैदा करना ही नहीं चाहता, क्योंकि उसे यह भय बना रहता है कि यदि अधिक पैदा हुआ तो खेत की क़ीमत बढ़ जाएगी और फिर उसको वहाँ से हटाकर या तो मालिक ख़ुद ही ज़मीन जोतेगा अथवा किसी दूसरे को अधिक किराये पर दे देगा। इसलिए आवश्यक हो गया है कि सब प्रकार की बेदखलियाँ समाप्त कर दी जाएँ। जो समाज प्रत्येक को काम देने की ज़िम्मेदारी लेना अपना आवश्यक कर्तव्य समझता हो, वह बेदख़ल करके किसान को उपजीविका के साधन से कैसे वंचित कर सकता है? हाँ, यदि वह भूमि को स्वयं न जोतकर अपनी उपजीविका किसी दूसरे रास्ते से कमा ले तो उसे भूमि पर स्वामित्व बनाए रखने का कोई अधिकार नहीं होना चाहिए।

व्यावहारिक दृष्टि से हमें इस सिद्धांत की मर्यादाएँ समझनी होंगी। आज मध्यम वर्ग के ऐसे बहुत से लोग हैं, जिनकी आय का प्रमुख साधन भूमि का किराया ही है। शासन को यह ध्यान में रखना होगा कि जैसे वह इनको अपनी आय के साधनों से वंचित करे वैसे समाज सेवाओं के योग्य विस्तार से उनके जीवन स्तर को गिरने न दे। क्योंकि मध्यवर्गीय समाज ही आज विभिन्न क्षेत्रों में काम करने, बढ़ने और विकास के लिए योग्य भूमि और प्रेरणा प्रदान करता है। संत्रस्त मध्यम वर्ग सभी विकास योजनाओं के मार्ग में रोड़ा बनकर बैठ जाएगा जबकि वह जागरूक होकर व्यवस्था को गति दे सकता है। अतः जहाँ निहित स्वार्थों को बनाए रखना अनुचित है, वहाँ उनको समाप्त करते हुए उन्हें योग्य दिशा देने की व्यवस्था होनी चाहिए।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

जोतने वाले की भूमि : व्याख्या

'जोतने वाले की भूमि' का यह अर्थ कदापि नहीं लगाया जा सकता कि जो हल की मूठ पकड़ता है, वही भूमि का स्वामी होगा तथा अपनी मेहनत को छोड़कर किसान किसी दूसरे की सेवाओं से लाभ नहीं उठा सकता। उसे आवश्यकतानुसार मज़दूर रख सकने का अधिकार होना चाहिए, अन्यथा खेती चौपट हो जाएगी। 'जोतने वाले' का साधारण अर्थ यही हो सकता है कि वह खेती के हानि-लाभ के लिए उत्तरदायी हो, उसमें पूँजी लगाता हो तथा उसकी देखभाल करता हो। फिर वह कृषि के भिन्न-भिन्न कामों में से कितने स्वयं करता है और कितने दूसरों से मज़दूरी पर करवाता है, यह विचारणीय नहीं हो सकता।

ऐसी अवस्थाएँ भी हो सकती हैं, जब किसी कारणवश किसान एक या दो वर्ष के लिए खेती न कर सकता हो। यदि उस अवस्था में भी वह अपनी ज़मीन दूसरे को कुछ समय के लिए खेती करने के लिए नहीं दे सकेगा तो वह या तो खेत को बिना बोये हुए छोड़ देगा या केवल क़ाग़जी कार्रवाई के लिए उस पर खेती करेगा। इसका परिणाम कृषि उत्पादन के करने में होगा। अत: हमें कुछ अपवाद अवश्य करने होंगे।

अधिकतम जोत

भूधृति के साथ भूमि की अधिकतम जोत का प्रश्न भी सबके सम्मुख है। बहुतांश तो इस प्रश्न की ओर केवल सामाजिक न्याय की दृष्टि से ही देखता है। वे यह अनुचित समझते हैं कि जहाँ बहुमत के पास अपने गुजारे भर को भी ज़मीन न हो, वहाँ थोड़े से लोग भारी मात्रा में ज़मीन दबाकर बैठ जाएँ। समाज की विषमताओं को कम करने के लिए ज़मीन की अधिकतम जोत निश्चित करनी होगी। विषमताओं की कमी सर्वमान्य उद्देश्य है, किंतु किसान स्वाभाविक रूप से पूछ सकता है कि जब अन्य क्षेत्रों में इस ओर कोई पग नहीं उठाए जाते, तब खेती को ही इसके लिए क्यों चुना जा रहा है। वह यह भी कह सकता है कि उसे उत्पादन के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया जाए तथा विषमताओं की कमी विभिन्न प्रकार के कराधान से की जाए। सामाजिक न्याय का उद्देश्य इससे पूरा हो जाएगा।

भू-वितरण

भूमि की अधिकतम जोत की आवश्यकता इसलिए भी प्रतिपादित की जाती है कि उससे अतिरिक्त भूमि लेकर भूमिहीनों को दी जा सकेगी। भूमिहीनों में अधिकांश हरिजन वर्ग के होने के कारण समस्या को आर्थिक के साथ सामाजिक एवं राजनीतिक स्वरूप भी प्राप्त हो गया है। भूमिहीनों को भूमि देना संभव होगा या नहीं, यह विवाद का विषय

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

है, जो आँकड़े दिए गए हैं वे सर्वमान्य नहीं तथा अपने-अपने निष्कर्ष निकालने को भिन्न-भिन्न प्रकार के आँकड़े दिए जाते हैं। योजना आयोग ने जो आँकड़े दिए हैं, उनमें जोतों की संख्या निश्चित करते समय विभिन्न मध्यवर्ती अधिकारों का कोई ध्यान नहीं रखा गया, और न सिंचित एवं असिंचित भूखंडों में विभेद किया गया है। अतः उससे कोई निश्चित निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते। कृषि श्रमिक जाँच समिति ने इस ओर महत्त्वपूर्ण काम किया है तथा ज़मीन वाले और बेज़मीन वाले खेतिहर मज़दूरों का अनुमान लगाया है, किंतु वहाँ भी प्रत्येक को कितनी ज़मीन और कैसे दी जाएगी, इसका विचार नहीं हुआ। वास्तविकता तो यह है कि ज़मीन बाँटने की जितनी कल्पनाएँ हैं, वे एक स्थिर अर्थव्यवस्था का आधार लेकर चलती हैं। यदि हम अपनी अर्थव्यवस्था को गतिशील बनाना चाहते हैं तथा समाज के सभी वर्गों के सामने वृत्ति के अनेक द्वार खोलना चाहते हैं तो भूमि के बारे में इतनी भूख नहीं रहेगी। फिर समाज सुधार से यदि हमने समता लाई तथा खेतिहर मज़दूर की उचित मज़दूरी की व्यवस्था कर दी तो यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक के पास भूमि हो ही। फिर मज़दूरों में ऐसा बहुत बड़ा वर्ग है, जो साल में कुछ ही दिनों खेत पर काम करता है। खेती में बुवाई और कटाई के समय काफ़ी लोगों की ज़रूरत पड़ती है। ऐसे समय हमें उन मज़दूरों की सहायता लेनी ही होगी, जो प्रमुख रूप से खेती के अतिरिक्त अन्य उद्योग-धंधों में लगे हुए हैं। यदि हमने नाम मात्र को ज़मीन दे भी दी तो हम उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकेंगे। उल्टे ज़मीन से चिपटे रहने के कारण वे न तो दूसरे धंधों की ओर ठीक तरह से लग पाएँगे और वे न आवश्यकता पड़ने पर दूसरों की खेती पर मज़दूरी ही कर सकेंगे। अतः भू-वितरण में हमें यह ध्यान रखना होगा कि जिसको ज़मीन मिले, वह उसका आर्थिक जोत के रूप में उपयोग कर सके। उस दृष्टि से भूमिहीनों की अपेक्षा उन्हें प्राथमिकता प्राप्त हो, जिनके पास अभी अनार्थिक एवं अपर्याप्त जोतें हैं।

अधिकतम जोत क्यों?

हम अधिकतम जोत के प्रश्न का मुख्यतया आर्थिक दृष्टि से विचार करेंगे। हमने भारत के लिए घनी खेती की अनिवार्यता को स्वीकार किया है। यदि हम प्रति एकड़ अधिकतम उत्पादन करना चाहते हैं तो हमें किसान की दृष्टि में उत्पादन के अन्य साधनों की अपेक्षा प्रति एकड़ भूमि का मूल्य बढ़ाना होगा। उत्पादन के जो उपादान दुर्लभ होंगे, उनका ही अधिकतम उपयोग करना होगा। पश्चिम में श्रम की कमी होने के कारण वे प्रति व्यक्ति अधिकतम उपज की चिंता करते हैं। हमारे पास भूमि की कमी है, अतः हमें प्रति एकड़ भूमि का सीमांत उपयोग बढ़ाना होगा। इतनी भूमि रहने देना, जिसके किसी भी भाग को अकारण परती छोड़ना पुसाता हो अथवा जहाँ कम आदमी लगाकर अधिक

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

उत्पादन की प्रेरणा हो, वहाँ हम अपनी अर्थव्यवस्था को गति नही दे सकेंगे। कुछ लोगों का कहना है कि यदि थोड़े से लोगों के हाथ में बड़े-बड़े फार्म रख दिए तो स्वाभाविकत: विपणनार्थ गल्ला बेशी प्राप्त होगा बजाय उस अवस्था के, जब अधिक लोगों के हाथ में अपेक्षाकृत छोटी जोतें हों। जहाँ तक शहर में रहने वाले मध्यम वर्ग का प्रश्न है, उसके लिए यह अवस्था अल्पकालिक दृष्टि से उपयोगी रहेगी, किंतु इसका अर्थव्यवस्था को लाभ नहीं होगा। प्रथम तो हमें गल्ला संपूर्ण देश का पेट भरने को पैदा करना है। इसमें छोटे किसान अधभूखे रह जाएँगे। दूसरे कुछ लोगों के पास जब गल्ला अधिक बचेगा तो गल्ले के दाम नीचे आएँगे। इससे छोटे किसान जो कुछ थोड़ा बचा भी पाएँगे, उससे उन आवश्यक वस्तुओं को भी नहीं ख़रीद सकेंगे, जिनसे वे अपना गुज़ारा कर सकें अथवा थोड़ा-बहुत अपनी खेती में सुधार कर सकें। जहाँ तक निर्मित वस्तुओं के मूल्यों का प्रश्न है, वे गल्ले के मूल्य के साथ आनुपातिक दृष्टि से कम नहीं होंगे। यद्यपि मज़दूर की आमदनी का बहुत बड़ा भाग खाद्यान्नों के ख़रीदने में जाता है, फिर भी आज की अवस्था में उसकी मज़दूरी गल्ले के गिरते हुए दामों के साथ गिराई नहीं जा सकती। फिर मुनाफे, मशीनों के दाम तथा विदेशों के मूल्य, जिनका परिणाम भी कारख़ानों की वस्तुओं की क़ीमत पर पड़ता है, हमारे कच्चे माल और खाद्यान्न की क़ीमत पर निर्भर नहीं करते। पिछले 10 वर्षों का अनुभव भी यही है कि कच्चे माल और खाद्यान्नों के मूल्य में भारी गिरावट होने पर भी पक्के माल के मूल्यों में विशेष परिवर्तन नहीं आया। उल्टे जिन पर नियंत्रण था अथवा एकाधिपत्य था, उनके मूल्य बढ़े ही। सस्ते गल्ले के कारण नौकरी-पेशा तथा शहरी मध्यम वर्ग की अन्य वस्तुओं की क्रयशक्ति कुछ अवश्य बढ़ेगी तथा वे कुछ कल-कारख़ानों को चालू रख सकेंगे। किंतु भारत में यह वर्ग अत्यंत ही सीमित होने के कारण वे उस बाज़ार को नहीं पैदा कर सकते, जो व्यापक औद्योगीकरण की नींव रखे। इसके लिए तो हमें सर्वसामान्य कृषक का उत्पादन बढ़ाकर उसकी क्रयशक्ति बढ़ानी होगी। मूल्यों के स्थिरीकरण में जोतों की विषमता में कमी बहुत सहायक होगी।

हमने यह भी निश्चित किया है कि जोतने वाला ही खेत का मालिक होगा। साथ ही मशीनीकरण को अनुपयुक्त माना है। इस अवस्था में एक व्यक्ति कुछ मर्यादा तक ही खेत को जोत बो और उसकी देखभाल कर सकता है। यदि हमने उसके पास मर्यादा से अधिक खेत रखा तो उसमें से दूरवासी ज़मींदार पद्धति तथा मध्यस्थों की उत्पत्ति निश्चित ही हो जाएगी। यदि इन बुराइयों को दूर रखा तो फिर खेती का अधिकतम उत्पादन की दृष्टि से उपयोग नहीं हो सकेगा।

कुछ लोगों का यह भी कहना है कि उत्पादन वृद्धि के कार्यक्रम तो वे ही हाथ में ले सकेंगे, जिनके पास कुछ साधन हैं। ऐसे साधन-संपन्न व्यक्ति बड़ी-बड़ी जोतों वाले किसान ही हो सकते हैं। यदि हमने उनकी ऊर्ध्व सीमा निश्चित कर दी तो एक ओर तो

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

वे अपने साधनों का उपयोग नहीं कर पाएँगे तथा दूसरी ओर साधनविहीन खेतों के मालिक ठीक प्रकार से भूमि का विकास और दोहन नहीं कर सकेंगे। इसमें कुछ सत्य अवश्य है किंतु यदि अतिरिक्त भूमि का वितरण अनार्थिक जोतों को आर्थिक बनाने की दृष्टि से किया तो अधिकतम लोगों के बेकार पड़े हुए साधनों अथवा अर्ध प्रयुक्त साधनों का पूरा-पूरा उपयोग हो जाएगा। हमने अनार्थिक जोतों की संख्या ही बढ़ा दी तो हमें विशेष लाभ नहीं होगा। जिन साधनों से हम खेती करने का विचार कर रहे हैं, वे ऐसे हैं, जो आज अधिकांश किसानों को सहज सुलभ कराए जा सकते हैं। हाँ, यदि खेती पश्चिम के ही तरीक़े से करनी है तो फिर संपूर्ण दृष्टिकोण बदलना होगा।

जोत की मर्यादाएँ

अधिकतम जोत होनी चाहिए, इस संबंध में अधिक विरोध नहीं, किंतु वह क्या हो, इस विषय में भारी मतभेद है। इसका निर्णय आवश्यक आँकड़ों के अभाव में किसी वैज्ञानिक आधार पर नहीं किया जा सकता। देश में विभिन्न प्रकार की ज़मीनों, अनेक प्रकार की फ़सलों तथा उनके विभिन्न मूल्य, सिंचाई के साधनों की विभिन्नता, विभिन्न भूधृति के नियम, बागानों तथा कुछ यंत्रप्रयोगी फार्मों के अस्तित्व ने इस समस्या को और भी विषम बना दिया है। वर्तमान की आवश्यकताएँ तथा दीर्घकालीन उपाय दोनों में कई बार विरोध आ जाता है। संविधान के अनुसार जब क्षतिपूर्ति की अनिवार्यता सम्मुख आती है तो आज की वित्तीय संकट की अवस्था में व्यावहारिक कठिनाइयाँ भी उपस्थित हो जाती हैं। इसका ऐसा कोई हल देना जो सबके साथ पूरा-पूरा न्याय कर सके तथा प्रत्येक परिस्थिति में आर्थिक, सामाजिक एवं प्राकृतिक न्याय के मापदंडों पर खरा उतरे संभव नहीं। फिर गतिमान अर्थनीति में तो यह और भी कठिन हो जाता है, अतः हमें इस संबंध में निर्णय लेते समय नैयायिक की भूमिका को छोड़कर ही चलना होगा।

पहले हमें एक कुटुंब की जोत का निर्णय करना होगा। 5 व्यक्तियों के एक साधारण कुटुंब का सामान्य जीवनस्तर जिस जोत के सहारे प्राप्त किया जा सके, उसे हम एक आर्थिक जोत कहेंगे। यह भूमि की अवस्था, सिंचाई के साधन, अन्य उपादानों की प्राप्ति आदि पर अवलंबित रहेगी। योजना आयोग ने इन बातों को ध्यान में रखते हुए उस भूमि को कुटुंब की इकाई के रूप में माना है, जिससे 1200 रुपए प्रतिवर्ष की आय ख़र्चों को काटकर, किंतु किसान के श्रम को सम्मिलित करके होती है। जनसंघ ने अच्छी सिंचाई की भूमि का 5 एकड़ इस प्रकार का न्यूनतम माना है। इस आधार पर अधिकतम 30 एकड़ स्वीकार किया है। अर्थात् यदि योजना आयोग द्वारा निश्चित 1200 रुपए की आय 5 एकड़ से मान लें तो 30 एकड़ से 7200 रुपए की कम से कम आय आँकनी चाहिए। प्रारंभिक अवस्थाओं में इस आय के बढ़ने की ही संभावना है। किंतु योजना

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

आयोग ने केवल 3 पारिवारिक जोतों को अधिकतम जोत के रूप में स्वीकार किया है। इसके अनुसार राजस्थान में 2400 रुपए, तेलंगाना में 3600 रुपए तथा शेष आंध्र में 5400 रुपए की मर्यादाएँ निश्चित करने के प्रस्ताव हो रहे हैं।

यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि इतनी कम जोत निर्धारित करना आर्थिक ही नहीं, अन्य कारणों से भी समीचीन नहीं होगा। प्रजातंत्र में यद्यपि प्रत्येक नागरिक को समान अधिकार प्राप्त रहते हैं, किंतु उसका व्यावहारिक स्वरूप प्रातिनिधिक होने के कारण हमें ऐसे वर्ग की आवश्यकता लगती है, जो समाज के प्रत्येक वर्ग से प्रत्यक्ष संपर्क रखते हुए, उनका जीवन व्यतीत करते हुए भी लोकमंडलों में विधायक काम के लिए समय और सामर्थ्य जुटा सके। यह कार्य मध्यम वर्ग ही सदैव से संपन्न करता आया है। हम यदि किसानों में से इस वर्ग को नष्ट कर देंगे तो भारत जैसे देश में जहाँ किसानों का बहुमत है, लोकतंत्र सही रूप से नहीं चल सकेगा। शहरों और गाँवों में ख़र्चों की भिन्नता के कारण आय में कुछ अंतर तो समझ में आ सकता है, किंतु इतना भारी अंतर कभी भी न्याय्य नहीं ठहराया जा सकता। कृषि में सुधार करने की दृष्टि से भी यह आवश्यक है कि गाँव में एक ऐसा वर्ग रहना चाहिए, जो कुछ साहस करके नए-नए प्रयोग कर सके। जहाँ बहुत बड़ी जोत वाले निश्चिंतता के कारण प्रयोग और अनुसंधान की वृत्ति खो बैठते हैं, वहाँ छोटी जोत के लोग इस विषय में साहस ही नहीं कर सकेंगे। अत: एक अच्छा मध्यम वर्ग रहा तो वह प्रत्येक किसान के लिए 'मॉडल फार्म' बनाकर दिखाने की क्षमता रखेगा। कृषि समाज उसका अनुकरण करके ही अनेक नवीन विधियों को अपना सकेगा। सरकारी प्रचार और नौकरशाही से यह कार्य संभव नहीं।

अधिकतम जोत एवं उसके निर्धारण का सिद्धांत निश्चित करके उसका व्यवहार भी कुशलता से करना चाहिए। अनिश्चितता विकास के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। योजना आयोग ने यद्यपि पहली पंचवर्षीय योजना में ही अधिकतम जोत निर्धारण की आवश्यकता का निर्देश किया था, किंतु तब से अब तक प्रचार को छोड़कर कोई काम नहीं हुआ। फलत: केवल इच्छाधीन कृषक ही नहीं, भूमि के मालिक किसान भी अपने भविष्य के संबंध में अनिश्चित हो गए हैं। वे खेती के विकास में पूँजी लगाने से हिचक रहे हैं। आवश्यकता है कि इस कार्यक्रम को तुरंत लागू किया जाए।

अधिकतम जोत निर्धारण के तीन मुख्य अंग हैं—

1. भावी ख़रीद एवं अवाप्ति,
2. वर्तमान जोत,
3. पट्टेदार से स्वयं की खेती के लिए भूमि की प्राप्ति।

प्रथम और तृतीय प्रकार की अधिकतम मर्यादाएँ तो अनेक राज्यों में निश्चित कर

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

दी गई है, किंतु वर्तमान जोत अभी अछूती है। उत्तर प्रदेश में बृहत् जोत कर लगाकर ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करने का प्रयास किया गया है कि बड़ी जोतों वाले स्वयं ज़मीन छोड़ दें। प्रयास कितना सफल होगा, यह अभी कहना कठिन है।

अपवाद

वर्तमान जोतों के संबंध में जहाँ विधेयक प्रस्तुत किए गए हैं, उनमें बहुत से अपवाद रख दिए गए हैं। बागानों को तथा बड़े-बड़े और मशीनों को काम में लाने वाले फार्मों तथा सुव्यवस्थित फार्मों को और सहकारी समितियों को अधिकतम जोत के प्राविधानों से मुक्त कर दिया है। बागान की खेती की अपनी विशेषता होने के कारण उन्हें मुक्त करना सकारण हो सकता है। किंतु अन्य अपवाद सयुक्तिक नहीं। शासन ने इस प्रकार अपने हाथों में पक्षपातकारी शक्ति ले ली है तथा लोगों को ट्रैक्टर ख़रीदकर अथवा सहकारी समिति बनाकर क़ानून की अवज्ञा करने की व्यवस्था कर दी है। जब यांत्रिक खेती को हम भारत के लिए अनुपयुक्त समझते हैं तो उन्हें विशेष सुविधाएँ देकर क्यों प्रोत्साहित किया जाए?

सहकारी खेती

योजना आयोग तथा कांग्रेस दोनों सहकारी खेती पर बहुत बल दे रहे हैं। चीन से प्रेरणा लेकर इसे भारत की कृषि समस्या का एकमात्र हल समझा जा रहा है। एक शिष्टमंडल भेजकर चीन की पद्धतियों को अध्ययन भी कराया गया था। शिष्टमंडल की रिपोर्ट ने स्वाभाविकत: सहकारी खेती का समर्थन किया है, किंतु उसके दो सदस्यों ने अपना विमतिपत्र रिपोर्ट के साथ प्रस्तुत किया है।

सहकारी खेती का यह लाभ बताया है कि उसमें अनेक छोटे-छोटे टुकड़े एक साथ आकर बड़े पैमाने पर खेती हो सकती है तथा सभी सुविधाएँ प्राप्त की जा सकती हैं। बड़े पैमाने की खेती की अनुपयुक्तता का हम विचार कर चुके हैं। सहकारी खेती का अंतिम स्वरूप क्या होगा तथा वह कितनी स्वेच्छया होगी, इस संबंध में कोई निश्चित नीति नहीं है। जहाँ तक व्याख्यानों का प्रश्न है, सदैव यह कहा जाता है कि सहकारी समिति स्वेच्छा से बननी चाहिए किंतु यह कितना व्यावहारिक होगा? योजना आयोग ने बताया है कि शासन की ओर से प्राप्त होने वाली सभी सुविधाएँ सहकारी समितियों को मिलनी चाहिए। क्या यह कृषकों को स्वतंत्रतापूर्वक अपनी खेती करने एवं उसके विकास के लिए सभी साधन प्राप्त करने की सुविधा से वंचित करने का दूसरा रास्ता नहीं है? इतना ही नहीं, कांग्रेस भूमि सुधार समिति ने तो अपनी रिपोर्ट में स्पष्ट लिखा है कि "यदि स्वयंस्फूर्त प्रयत्नों का कोई दृश्य परिणाम नहीं निकला तो अनिवार्यता की पद्धति अपनानी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पड़ेगी।'' अर्थात् चीन के समान सहकारी नाम पर सामूहिक खेती चलाई जाएगी।

सहकारी खेती के विषय में जनमत कितना विरुद्ध है और उसके कारण क्या हैं, इसका उल्लेख स्वयं चीन जाने वाले शिष्टमंडल ने अपनी रिपोर्ट में किया है। वह लिखता है—''भारतीय विचारकों, प्रशासकों तथा जननेताओं ने सहकारी खेती की उपयोगिता तथा व्यावहारिकता के संबंध में घोर आशंकाएँ प्रकट की हैं। कुछ-और वे हमारे राष्ट्रजीवन के महत्त्वपूर्ण अंग है—यह मानते हैं कि सहकारी खेती हमारी प्रकृति और प्रतिभा के प्रतिकूल है। भूमि के प्रति किसान का भारी लगाव है। वे यह भी मानते हैं कि ज़ोर-ज़बरदस्ती के बिना, जिसकी प्रजातंत्र में कोई गुंजाइश नहीं, यह कार्यक्रम क्रियान्वित नहीं हो सकता। सामूहिक खेती का स्वाभाविक परिणाम एक ऐसे अत्यधिक प्रशासित एवं प्रतिष्ठान प्रधान समाज की रचना होगा, जो कृषक के व्यक्तित्व एवं संसदीय प्रजातंत्र दोनों के विकास के मार्ग में बाधक होगा। उन्हें यह भी भय है कि सहकारी खेती में किसान की उद्योग प्रेरणा नष्ट हो जाएगी तथा उत्पादन गिर जाएगा और ख़र्चे बढ़ ही जाएँगे।'' किंतु दुर्भाग्य है कि शासन ने इस महत्त्वपूर्ण विचार की ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

सहकारी खेती से देश की बेकारी समस्या और भी भीषण हो जाएगी। चीन ने एक तानाशाही पद्धति से उन्हें विभिन्न कामों पर तथा दूर-दूर लगा दिया। किंतु हम वैसा नहीं कर पाएँगे। कृषि में निर्जीव वस्तु का उत्पादन अथवा विधायन नहीं होता अपितु एक जीवमान सृष्टि की रचना होती है। हम इसके कार्य को विभिन्न निश्चित एवं मानकीकृत प्रक्रियाओं में नहीं बाँट सकते। भारत में जहाँ पशु धन ही सबसे बड़ी पूँजी है और जिसके संरक्षण और संवर्धन के लिए मानव हृदय एवं संबंधों की आवश्यकता होती है, हम एक सहकारी पद्धति की केवल काम में काम वाली व्यवस्था नहीं अपना सकते।

सहकारी खेती का अंतिम उद्देश्य ग्राम का सामूहिक प्रबंध है। विनोबाजी का ग्रामदान भी इसी उद्देश्य को लेकर चला है। निश्चित है कि इसमें ग्राम स्तर पर हम एक संकेंद्रित व्यवस्था उत्पन्न कर देंगे। गाँव पंचायतों अथवा प्रबंध समितियों के हाथ में भारी शक्ति आ जाएगी तथा शेष कृषक केवल खेतिहर मज़दूर मात्र रह जाएँगे। यदि शेष चुनाव भी अप्रत्यक्ष रूप से गाँव पंचायतों के द्वारा ही हों, जैसा कि प्रस्ताव है, तो इनके हाथ में इतनी अधिक शक्ति आ जाएगी कि साधारण लोग उन्हें कभी बदल ही नहीं सकेंगे।

सही रास्ता तो यह होगा कि किसान की आवश्यक चीज़ों को प्राप्त करने तथा उसकी जिंसों को बेचने के लिए सहकारी समितियों की स्थापना की जाए तथा उसे स्वतंत्र रूप से परिवार की इकाई के आधार पर खेती करने दी जाए। हाँ, जहाँ वे साझे में

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

खेती करना चाहें, कर लें। ज़मीन का स्वामित्व केवल क़ाग़जी न होकर प्रत्यक्ष एवं व्यावहारिक होना चाहिए।

अंतर्विभाजन एवं अपखंडन

भूमि का अंतर्विभाजन एवं अपखंडन भी भारतीय कृषि की एक समस्या है। इसे चकबंदी द्वारा रोकने के प्रयास किए गए हैं। यद्यपि भूमि के टुकड़ों-टुकड़ों में बँटने के पक्ष में भी दलीलें दी जा सकती हैं किंतु चकबंदी के लाभ निस्संदेह बहुत अधिक हैं। जिन तरीक़ों और क़ानूनों के अंतर्गत चकबंदी की जा रही है, उनमें पक्षपात एवं विभेद के लिए बहुत गुंजाइश है। फलतः छोटे-छोटे किसानों को असंतोष है। साथ ही भू-वितरण एवं चकबंदी कार्य यदि एक साथ किया जाता तो बहुत लाभ होता। आवश्यकता तो यह है कि प्रत्येक ग्राम के लिए एक सर्वांगीण विकास की योजना (मास्टर प्लान) बनानी चाहिए। फिर उसे क्रियान्वित चाहे धीरे-धीरे ही किया जाए, किंतु प्रत्येक कार्यक्रम समन्वित ढंग से हाथ में लिया जाना चाहिए। सामुदायिक योजनाओं का इस दृष्टि से उपयोग किया जा सकता है।

हाल ही में बने हिंदू उत्तराधिकार क़ानून ने अपखंडन की प्रवृत्ति को और भी बढ़ा दिया है। बेटी को बाप की जायदाद में से हिस्सा होने के कारण ज़मीन का बँटवारा होता है और वह भी उस गाँव में, जहाँ वह नहीं रहती। अच्छा तो यह हो कि उसे श्वसुर की जायदाद में से हिस्सा मिले। कम से कम यह तो व्यवस्था होनी ही चाहिए कि वह पिता की भूमि में से हिस्सा लेने के स्थान पर उसके बदले में उसका नकद मूल्य भाइयों से पाने की अधिकारिणी हो।

भूक्षरण

भूक्षरण को रोकने के भी कार्यक्रम बनाने होंगे। सिंचाई, जंगलों और पेड़ों की कटाई, नई ज़मीनों को तोड़ने की कोशिशें, चकबंदी, अंधाधुंध चराई विशेषकर बकरियों द्वारा तथा पहाड़ी ढालों पर खेती आदि अनेक कारण भूक्षरण के लिए ज़िम्मेदार हैं। जितनी ज़मीन हम हल के नीचे लाने की कोशिश करते हैं, उससे कई बार नष्ट हो जाती है। बड़े-बड़े बाँधों ने नदी के तलों को छिछला बना दिया है, फलतः वे वर्षा के पानी को पूरी तरह थाम नहीं पाते। बाढ़ के साथ ही वे रेत भी आसपास की ज़मीन पर बिछाकर उसे खेती के अयोग्य बना देते हैं। राजस्थान की मरुभूमि धीरे धीरे पूर्व की ओर बढ़ती जा रही है। सेम की समस्या का पहले ज़िक्र किया जा चुका है। वनारोपण एवं वनसंरक्षण, छोटी-छोटी झाड़ियों एवं पौधों की रक्षा, मेंड़ें बनना, पानी के बहाव की तेज़ी को रोकना, हेरफेर कर चराई आदि कार्यक्रमों से इस समस्या के निदान की उपाय योजना की जा सकती है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

विपणन

उत्पादन वृद्धि के कार्यक्रमों के साथ ही कृषि माल के विपणन एवं ऋण की व्यवस्था भी करनी होगी। अभी तक गाँव का साहूकार कुछ अंशों में दोनों ओर कुछ अंशों में एक कार्य करता रहा है। किंतु बाज़ारों की योग्य व्यवस्था न होने के कारण किसान को कभी उचित दाम नहीं मिल पाया है। कच्चे माल के कम दामों के लिए साधारणत: आढ़तियों तथा व्यापारियों को दोषी ठहराया जाता है। वे कभी-कभी किसान की गर्ज और विवशता का अनुचित लाभ उठा लेते होंगे, किंतु इसके लिए तो संपूर्ण अर्थव्यवस्था ही मूलत: दोषी है। इसमें कच्चे माल और पक्के माल में मूल्यों के बीच कोई ताल-मेल नहीं। यद्यपि पक्के माल की अपेक्षा कच्चे माल की आवश्यकता अधिक होती है, फिर भी कच्चे माल को पक्के माल की तुलना में अधिक देर तक संचय करके नहीं रखा जा सकता। पक्का माल अधिक दिनों तक टिक सकता है तथा उसकी उत्पादन की जो पद्धति स्वीकार की गई है, उसमें उनके निर्माणकर्ताओं का अपने माल को रोक रखने का सामर्थ्य भी अधिक है। किसान की जिंस एक थोड़े से समय में बाज़ार में सबकी सब आ जाती है। जबकि माल की अंतिम माँग संपूर्ण वर्ष फैली रहती, उसकी पूर्ति एक साथ होती है। पण्य व्यवस्था के अनुसार वास्तविक माँग की अपेक्षा व्यापारी द्वारा अनुमानित माँग और संभरण की अंतर्क्रिया से मूल्य का निर्धारण होता है। अत: किसान के साथ न्याय करने के लिए आवश्यक है कि गाँवों में कोठार एवं गोदाम बनाए जाएँ तथा किसान को अपनी फ़सल की साख पर योग्य ऋण प्राप्त हो जाए। सहकारी समितियाँ यह काम भलीभाँति कर सकती हैं।

यदि उत्पादक और उपभोक्ता के बीच दूरी कम की जा सके तथा बिचौलियों को हटाया जा सके तो मूल्यों का यह भारी अंतर तथा उतार-चढ़ाव भी बहुत कम हो जाएगा। शुक्रनीति में वैश्य की व्याख्या करते हुए लिखा है—

क्रयविक्रय कुशले नित्यपण्य जीविन:।
पशु रक्षा कृषि करास्ते वैश्या: कीर्तिता भुवि॥

अर्थात् जो क्रय-विक्रय में कुशल हैं, पण्यजीवी हैं, पशु रक्षा तथा कृषि करते हैं, वे विश्व में वैश्य के नाते कीर्ति प्राप्त करते हैं। इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि किसानी और व्यापार दोनों ही कार्य एक साथ रखे गए हैं। जबसे वैश्य ने केवल वाणिज्य ही अपने पास रख लिया तथा अपना दूसरा काम छोड़ दिया तब से ही यह विषमता पैदा हो गई तथा वाणिज्यजीवी लोगों की संख्या बढ़ गई। केवल विनिमय के माध्यम के रूप में ही जो जीवित रहता हो, वह अर्थ के प्रभाव की सृष्टि करेगा। हमें इस संख्या को न्यूनतम करना होगा। व्यापारी, उद्योगपति अथवा कृषक बनकर उत्पादक बने, यह आवश्यक है। सहकारी समितियों को उनका स्थान लेना चाहिए।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मूल्य निर्धारण

फ़सल के विक्रय की जब तक ठीक-ठीक व्यवस्था नहीं होती, यह आवश्यक है कि शासन उचित मूल्यों का निर्धारण कर उन पर ख़रीदने की तैयारी रखे। साथ ही उसे कम आय वाले व्यक्तियों के लिए सस्ते भावों पर बेचने की भी व्यवस्था करनी चाहिए।

जब से किसान के सभी कामकाज मुद्रा के माध्यम से चलने लगे हैं, उसे अपनी फ़सल का बेचना आवश्यक हो गया है। मुद्रा का आधिक्य सदैव स्फीतिकारी होता है, जिसका लाभ कृषक को न मिलकर मध्यस्थों को मिलता है। प्राचीन शास्त्रों में अर्थ के प्रभाव को रोकने के लिए मुद्रा को सीमित रखने तथा विनिमय प्रथा की रक्षा की आवश्यकता बताई है। विनिमय आजकल एक अविकसित अर्थव्यवस्था का चिह्न समझा जाता है। हमें इस सिद्धांत का विचार करना होगा तथा कम-से-कम कुछ बातों के लिए इसकी व्यवस्था करनी होगी। उदाहरणार्थ, बीज को सवाई पद्धति पर दिया जाए। अन्य ऋण भी गल्ले के रूप में वसूल किए जा सकते हैं। विशेषकर बहुउद्‌देशीय सहकारी समितियों द्वारा दिए गए ऋण। किसान की अन्य आवश्यक वस्तुएँ भी फ़सल के बदले में दी जाएँ, खेतिहर मज़दूर का पारिश्रमिक मुद्रा के रूप में न चुनकर गल्ले में ही दिया जाए। ऐसी कुछ व्यवस्थाओं से हम किसान के हित में मूल्यों का बहुत कुछ नियंत्रण कर सकते हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

6

उद्योग

औद्योगीकरण की आवश्यकता

कृषि के उपरांत हमें उद्योगों का विचार करना होगा। भारत का औद्योगीकरण सभी दृष्टियों से आवश्यक है। बिना इसके खेती पर निर्भर व्यक्तियों की संख्या नहीं घटाई जा सकती। कृषि पर अधिक भार होने के कारण ही नहीं, अपितु उसका योग्य विकास करने तथा सभी व्यक्तियों को पूरा काम देने के लिए लोगों को उद्योग-धंधों में जुटाना नितांत आवश्यक है। अभी तक भारत कच्चा माल पैदा करता रहा तथा पक्के माल के लिए विदेशों पर निर्भर रहा। फलतः वह कभी आत्मनिर्भर नहीं हो पाया। अंतरराष्ट्रीय व्यापार में, विशेषकर मंदी के दिनों में उसे भारी संकटों का सामना करना पड़ा। प्राचीन शास्त्रकारों ने वाणिज्य, शिल्प एवं उद्योगों के संबंध में यह लिखा है कि उन्हें अपरमात्रिक होना चाहिए। अर्थात् किसी आवश्यक वस्तु के लिए उन्हें दूसरे देशों पर निर्भर न रहना पड़े। हाँ, देश के उद्धर्त माल को बाहर निकालने के लिए अंतरराष्ट्रीय व्यापार का उपयोग होना चाहिए। उस स्थिति में अपने देश की चीज़ों को अत्युत्तम बनाने का प्रयास होगा, जिससे उनकी बाहर खपत हो सके। जहाँ अपने यहाँ के उद्योगों को टिकाने के लिए जैसे भारत के कपड़े की मिलों को चलाए रखने के लिए मिस्र की रुई, अथवा माल के उद्धर्त न होते हुए भी देश के लोगों को उपभोग से वंचित करके जैसे आजकल शक्कर, खली, ज्वार आदि का भारत से निर्यात, अंतरराष्ट्रीय व्यापार का आवश्यक अंग हो जाए, वह देश कभी 'अपरमात्रिक' नहीं बन पाता। उसकी अर्थव्यवस्था ठीक नहीं चल सकती। सुरक्षा की दृष्टि से भी अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्र व युद्ध सामग्री तैयार करने के लिए हमें उद्योगों का विकास करना होगा।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

विचारणीय उपादान

औद्योगिक नीति का विचार करते समय हमें श्री मो. विश्वेश्वरैया के अनुसार इन सात बातों का विचार करना चाहिए—(1) Men (2) Material (3) Money (4) Machinery (5) Management (6) Motive power (7) Market अर्थात् (1) मनुष्य (2) माल (3) मुद्रा (4) मशीन (5) प्रबंध (6) शक्ति और (7) माँग। इन सातों का ठीक-ठीक मेल बिठाए बिना यदि हमने उद्योग-धंधे प्रारंभ किए तो वे चल नहीं पाएँगे। ये सातों एक दूसरे के पूरक हैं। यदि इनमें से एक में भी बदल किया तो फिर दूसरों में परिवर्तन आवश्यक हो जाता है। जो मनुष्य एक साधारण छापे की मशीन पर काम कर सकता है। वह 'रोटरी' पर उपयोगी सिद्ध नहीं होगा। जो गाड़ी बैल से चलाई जा सकती है, वह पेट्रोल से नहीं चल सकती। जहाँ धोतियों के लिए बाज़ार है, वहाँ फ्रॉक बनाना बुद्धिमानी नहीं होगी। जिसके पास केवल दस हज़ार रुपए हैं, वह एक लाख की मशीन लगाकर उद्योग प्रारंभ नहीं कर सकता। जो दस आदमियों के एक छोटे से कारख़ाने की देखभाल कर सकता है, वह दस हज़ार आदमियों की मिल का प्रबंधक नहीं बन सकता। जहाँ पत्थर मिलता ही न हो, वहाँ पत्थर कूटने की मशीन लगाना निरी मूर्खता ही होगी।

सामाजिक उद्देश्य

उपर्युक्त सातों उपादानों का मेल बिठाते समय कई बार उनमें से एक या दो को आधार मानकर शेष को उनके अनुरूप बदलना पड़ता है। कई बार हमारा अंतिम लक्ष्य क्या है, इसका विचार करके भी इनमें से एकाधिक को प्रमुखता देनी होती है। उदाहरणार्थ, जहाँ हमें किसी-न-किसी प्रकार से बहुत मात्रा में थोड़े समय में कोई माल तैयार करना है, जैसे लड़ाई के काल में, वहाँ हम ऐसी मशीन लगाएँगे, जो अधिक उत्पादन कर सके। किंतु जब हम प्रत्येक व्यक्ति को काम देना ही अपना लक्ष्य रखते हों तो हमें श्रम बचाने वाली मशीनों की आवश्यकता नहीं होगी।

किसी उद्योग के स्वरूप का जब एक व्यक्ति विचार करता है तो वह यही देखता है कि सभी उपादानों का इस प्रकार उपयोग किया जाए कि उत्पादित माल बाज़ार में सस्ता एवं अच्छा होने के साथ प्रतिस्पर्धा में टिक सके। उसके इस प्रयास में अन्य व्यक्तियों और उद्योगों पर कौन सा परिणाम होता है, उसकी वह चिंता नहीं करता। किंतु इस ओर प्रथम प्रयास करने वालों को सदैव ही उन लोगों से कठिन संघर्ष लेना पड़ता है, जो पहले से उस क्षेत्र पर प्रभुत्व जमाकर बैठे हैं। उसका सामर्थ्य जब कम पड़ता है तो वह समाज से सहायता की याचना करता है। विभिन्न देशों की संरक्षण नीतियों का जन्म इसमें से ही हुआ। यह आश्चर्य का विषय है कि जो संरक्षण के सहारे बढ़े, वे दूसरों को उनके

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मुक़ाबले में संरक्षण दिया जाता है तो विरोध करते हैं। समाज को अपनी उद्योगनीति का निर्धारण व्यापक सामाजिक उद्देश्यों एवं लक्ष्यों के हित में करना होगा। हमने इसके पूर्व ही यह निश्चित किया है कि हमारे सामाजिक लक्ष्य राष्ट्र की सुरक्षा सामर्थ्य को बढ़ाना, उपभोग एवं उत्पादक वस्तुओं की वृद्धि, प्रत्येक को काम, न्यूनतम जीवन स्तर की आवाप्ति, विषमताओं की कमी तथा विकेंद्रीकरण हैं। खुले व्यापार तथा उन्मुक्त प्रतिस्पर्धा के आधार पर हम देश के उद्योग-धंधों को बढ़ा नहीं पाए हैं। राज्य का संरक्षण तथा स्वदेशी भावनाओं के सहारे जन-बल का संरक्षण प्राप्त करके ही देश के कुछ उद्योग-धंधे बढ़े हैं। आज जब हम सर्वांगीण विकास का विचार करते हैं तो संरक्षण की अनिवार्यता को स्वीकार करके चलते हैं। यह संरक्षण देश में उद्योगों को विदेशी उद्योगों की प्रतिस्पर्धा से तथा देश में छोटे उद्योगों को बड़ों की प्रतिस्पर्धा से देना होगा।

विद्यमान उद्योग

औद्योगिक नीति का विचार करते समय यह भी ध्यान में रखना होगा कि हम आज एक कोरी स्लेट पर नहीं लिख रहे हैं। देश में पहले से कुछ उद्योग-धंधे चल रहे हैं। उनमें जहाँ एक ओर पूरी तरह संगठित एवं अद्यतन प्रविधियों का उपयोग करने वाले उद्योग हैं, तो दूसरी ओर पुराने चले आने वाले असंगठित एवं अर्धविकसित उद्योग हैं। हमें अपनी नीति का निर्धारण इन सबका विचार करके करना होगा। विशेषकर जब हम कोई नई तकनीक अपनाते हैं तो उसका परिणाम पुरानी इकाइयों पर भी पड़ता है। एक ओर नई मशीनों के लिए सब प्रकार की व्यवस्था करनी होती है तो दूसरी ओर पुराने धंधे में लगी पूँजी बेकार हो जाती है। नए कारख़ानों के लिए प्रशिक्षित व्यक्तियों का अभाव होता है तो दूसरी ओर पुराने कारीगरों को काम नहीं मिलता। जहाँ एक ओर अपने कारख़ानों को चलाने के लिए बाहर से कच्चा माल तथा उत्पादक वस्तुएँ मँगानी पड़ती हैं, वहाँ दूसरी ओर देश के कच्चे माल के लिए बाज़ार नहीं रहे। यह सब हमारी असुविचारित उद्योग नीति के कारण है। हमने पश्चिम की तकनीकी प्रक्रिया का आँख बंद करके अनुकरण किया है। हमारे उद्योगों का स्वाभाविक विकास नहीं हो रहा है। वे हमारी अर्थव्यवस्था के अभिन्न एवं अन्योन्याश्रित अंग नहीं, अपितु ऊपर से लादे हुए हैं। उनका विकास या तो विदेशी उद्योगपतियों द्वारा विदेशी माल के देश में विधायन के निमित्त शाखा खोलने, या देश के ही कच्चे माल को विदेशी हितों और पद्धतियों से तैयार करने अथवा विदेशियों के अनुकरणशील सहयोगी अथवा अभिकर्ता कतिपय देशी व्यापारियों द्वारा हुआ है। यही कारण है कि भारत के उद्योगपतियों में सबके सब व्यापारी, आढ़तिया तथा सटोरियों में से आए हैं। उद्योग एवं शिल्प में लगे हुए कारीगरों का विकास नहीं हुआ है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

नई प्रौद्योगिकी की आवश्यकता

देश के उपलब्ध उपादानों के अनुरूप उत्पादन प्रक्रिया का निर्धारण एवं विकास हमारी सबसे बड़ी समस्या है। श्री एम.एस. ठक्कर ने मद्रास में भारतीय विज्ञान कांग्रेस के सभापति पद से बोलते हुए कहा था, "अभी तक हमने बाहर के देशों से स्फूर्ति ली है। हमने मशीनों, कारख़ानों, तज्ञों तथा कारीगरों का आयात किया है। शायद यह उन परिस्थितियों में आवश्यक हो। परिणाम यह हुआ कि भारत में जो बड़े यांत्रिक उद्योग स्थापित हुए हैं, वे दूसरे देशों की नक़ल भर हैं। देशी आविष्कारों पर विकसित उद्योग कदाचित् ही मिलेंगे। हमें पश्चिम से बड़ी उदारता से सहायता मिलेगी। हम ज्ञान, विज्ञान एवं सौहार्द को जहाँ से भी वह मिलेगा लेंगे, किंतु प्रत्येक पुष्प से मधु लेकर भी शहद में परिवर्तित करने वाली मधुमक्षिका की भाँति हमें संपूर्ण प्राप्त सहायता को अपनी आवश्यकताओं और लक्ष्यों के अनुरूप ढालकर देश में औद्योगीकरण के ऐसे ढाँचे का विकास करना होगा, जिसे हम अपना कह सकें। यह भारत के वैज्ञानिक एवं प्राविधिकों के ऊपर दायित्व है।" यह चुनौती है, जो हमें स्वीकार करनी चाहिए।

भारत में जब उपलब्ध साधनों का विचार करते हैं तो हम निश्चित ही निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हमारी उत्पादन प्रक्रिया श्रम प्रधान होनी चाहिए। हमारे पास प्रथम तो पूँजी की कमी है और जो कुछ हम बचा पाते हैं, उसे जब हम श्रम बचत की योजनाओं के आधार पर अचल पूँजी के रूप में परिवर्तित करते हैं तो वह विदेशों में चली जाती है तथा उसका हमें वास्तविक लाभ कम हो पाता है। इसके अतिरिक्त हमारे पुराने औजार और मशीनें बेकार हो जाती हैं, जिससे पूँजी विनाश (Decapitalization) तथा बेकारी (Disemployment) तेज़ी से बढ़ते जाते हैं। इस बढ़ी हुई बेकारी के कारण देश में अधिकांश लोगों का जीवन स्तर ऊँचा उठने के बजाय घटता है। पश्चिमी ढंग की तथा बहुत ही गूढ़ (Complex) उत्पादन प्रणाली से थोड़े बहुत लोगों को काम अवश्य मिल जाता है, किंतु देश में वह गतिशील प्रक्रिया उत्पन्न नहीं हो पाती, जो अर्थव्यवस्था को बदलकर समाज में गहरे एवं क्रांतिकारी परिवर्तन ला सके। यदि हमें ऐसी उद्योग व्यवस्था क़ायम करनी है, जो कृषि के साथ सुसंबद्ध हो सके तथा कृषि से भार कम कर सके तो उसके लिए बड़े उद्योगों के स्थान पर छोटे उद्योगों को प्रमुखता देनी होगी। थोड़े लोगों तथा सरल औजारों के साथ छोटी-छोटी इकाइयाँ ही आज की परिस्थिति में हमारे लिए सर्वोत्तम हैं। देश की तथा समाज की संपूर्ण अवस्था की आर्थिक क्षेत्र में इसी रूप में अभिव्यक्ति हो सकती है। अर्थात् हमें जो कुटीर एवं छोटे-छोटे उद्योग चल रहे हैं तथा जो कारीगर उनमें काम कर रहे हैं, उन्हें आधार बनाकर उनके विकास की व्यवस्था करनी चाहिए। बहुधा यह देखा जाता है कि छोटे उद्योगों की सहायता के नाम पर कुछ ग्रामोद्योगों (जिन्हें कांग्रेस ने अपने रचनात्मक कार्यक्रम में सम्मिलित किया था) सहायता

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

दे दी जाती है। वे अनुदानों पर निर्भर रहकर किसी-न-किसी प्रकार जीवित रहते हैं। आवश्यकता तो यह है कि उन्हें औद्योगिक कार्यक्रम का आधार बनाकर उनका विकास किया जाए। उनमें एक स्वयं की शक्ति उत्पन्न करनी होगी। कई बार शौक़िया भी कुछ ऐसे लोगों को, जिनका उनसे कभी संबंध नहीं रहा, ग्रामोद्योगों में प्रशिक्षित करने का प्रयास किया जाता है। यह धन का अपव्यय है।

जब हम बड़े उद्योगों का विरोध करते हैं तो मशीन का विरोध नहीं करते। हाँ, उसकी मर्यादाएँ अवश्य अनुभव करते हैं। आज शासन की उद्योग नीति में विशालकाय बड़े उद्योग तथा चरखा जैसे छोटे ग्रामोद्योग ही आते हैं। वे छोटे-छोटे उद्योग, जो आज की जीवन की अनेक आवश्यकताओं को आधुनिक उत्पादन पद्धति से पूरा करते और कर सकते हैं, अभी तक उपेक्षित हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

7

मनुष्य और मशीन

बेकारी

औद्योगिक नीति का उद्देश्य प्रत्येक समय और स्वस्थ व्यक्ति को लाभकारी काम देना होना चाहिए। इस दृष्टि से हमें उनकी संख्या, योग्यता, उत्पादकता, काम और बेकारी की प्रकृति और व्याप, संक्रमणशीलता आदि का विचार करना पड़ेगा। रोज़गार और बेकारी संबंधी आँकड़ों का पूर्णतया अभाव है। हाल ही में भारत शासन ने इस संबंध में एक समिति बिठाई है। मोटे तौर पर हम यदि यह मान कर चलें कि 15 से लेकर 55 तक की आयु के व्यक्तियों को पूरा काम मिलना चाहिए तो उनकी संख्या 1951 की जनगणना के अनुसार 53.4 प्रतिशत अर्थात् 19 करोड़ के लगभग थी। आत्मनिर्भर एवं अर्जक आश्रितों की संख्या क्रमश: 10.44 करोड़ तथा 3.79 करोड़ थी। यदि एक करोड़ के लगभग मध्यमवर्गीय उन महिलाओं की संख्या लगा लें, जो आश्रित होते हुए भी अन्य प्रकार से कुटुंब के लिए उपयोगी हैं और जो जीविकोपार्जन के लिए नौकरी आदि की चिंता नहीं करेंगी, तो भी लगभग 3 करोड़ 67 लाख व्यक्ति ऐसे रहते हैं, जिन्हें काम नहीं मिल सका।[1] अर्थात् संयुक्त कुटुंब प्रणाली के कारण इनमें से अधिकांश आश्रित के नाते जीवन निर्वाह करते हैं तथा काम चाहने वाले बेकारों की संख्या में संभवतया न आएँ। ज्यों-ज्यों यह प्रथा टूटती जा रही है तथा उसके कारण प्राप्त सामाजिक सुरक्षा से व्यक्ति वंचित होता जा रहा है, यह छिपी हुई बेकारी प्रकट होती जाती है।

पूर्ण रोज़गार

यदि हम बेकारी निवारण के अभावात्मक प्रश्न के स्थान पर पूर्ण रोज़गार के भावात्मक कार्यक्रम को हाथ में लें तो हमें अपनी जनशक्ति का, जो कि हमारी सबसे

---

1. द्वितीय पंचवर्षीय योजना में यह अनुमान गाँवों में 28 लाख तथा शहरों में 25 लाख, इस प्रकार कुल 53 लाख को लगाया है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बड़ी पूँजी है, अधिकतम उपयोग करना होगा। एक अनुमान तो यहाँ तक लगाया गया है कि हमारी लगभग 64 प्रतिशत जनशक्ति का हम उपयोग नहीं कर पाते। गाँव में खेतिहर मज़दूर जाँच समिति के अनुसार पुरुष मज़दूर 1 वर्ष में 218 दिन काम पाता है, शेष में 49 दिन वह अपने काम में लगाकर 98 दिन बेकार रहता है। किसान भी इसी प्रकार वर्ष में 3 मास के लगभग बिना काम के बिताता है। जिन दिनों वे काम करते हैं, उन दिनों भी वे पूर्ण कार्यरत (Fully employed) हैं, ऐसा कहना कठिन है। शक्कर आदि अनेक उद्योग भी ऐसे हैं, जिनमें काम मौसमी आधार पर होता है। हमें इन सबको पूरा-पूरा काम देने की व्यवस्था करनी होगी।

संगठित उद्योगों में औद्योगिक विवाद के कारण भी हमारा बहुत सा श्रम बेकार है। इन विवादों और उनसे होने वाली क्षति के कुछ आँकड़े निम्नलिखित हैं :

वर्ष	कामबंदी	मज़दूर संबंधित	व्यक्ति दिवस की क्षति
1951	1071	691321	3,818,928
1952	963	809242	3,336,961
1953	772	466697	3,382,608
1954	840	477138	3,372,630
1955	1166	527767	5,697,848
1956	1258	722334	709,560*

सन् 1957 में इन विवादों के कारण 54 लाख 66 हज़ार व्यक्ति दिनों के काम की हानि हुई। यह केवल उन विवादों का वृत्त है, जिनमें 10 से अधिक व्यक्ति सम्मिलित हों तथा काम बंद हो जाए, यह हमारी श्रमशक्ति का दुरुपयोग है। इसी प्रकार ग़ैर-हाज़िरी का औसत भी 24 प्रतिशत तक आता है। निश्चित ही हम प्रति इकाई पूँजी का अधिकतम उपयोग नहीं कर पाते।

ग्रामीण बेकारी की विशेषता

जब हम भारत की काम की स्थिति का और अधिक विश्लेषण करते हैं तो गाँव में कुछ दिन ऐसे रहते हैं, जब कोई भी बेकार नहीं रहता बल्कि काम करने वाले आदमियों की कमी पड़ जाती है, जबकि बाक़ी दिनों में लोगों के पास काम की कमी रहती है। यदि हमने गाँव से कुछ लोगों को स्थायी रूप से हटा दिया तो कटाई और बुआई के समय श्रमिकों की कमी से हमारी खेती को भारी हानि पहुँचेगी। भारत की जलवायु तथा वर्षा

* मूल पुस्तक में संभवतः प्रूफ की त्रुटि के कारण यही आँकड़ा है। यद्यपि यह सही नहीं लगता।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

की स्थिति के कारण न तो हम इन कामों को धीरे-धीरे एक लंबे समय में पूरा कर सकते हैं और न हम मशीनों का ही उपयोग कर सकते हैं। अत: हमें गाँवों में ही उद्योग-धंधे खोलकर लोगों को पूरे समय के लिए काम में लगाना होगा।

संक्रमणशीलता

भारत के श्रमिक को सदैव ही असंक्रमणशील बनाया गया है। जहाँ तक उसके व्यवसाय और वृत्ति का संबंध है, उसके इस गुण ने समाज की व्यवस्था को भारी बल प्रदान किया है। व्यवसाय को धर्म मानकर चलते हुए उसने अनेक प्रकार के परंपरा प्राप्त कौशल एवं ज्ञान को जीवित रखा है। युद्ध, तेज़ी और मंदी की कठिनाइयों में इन्हीं उद्योग-धंधों ने राष्ट्र और व्यक्ति की आवश्यकताओं को पूर्ण किया है। जब हम विकास का विचार करते हैं तो इस पुराने ढाँचे को तोड़कर व्यक्ति को असहाय एवं अनिश्चित बनाने के बजाय इस ढाँचे को मज़बूत, आर्थिक दृष्टि से लाभकारी तथा अन्य कालक्रमानुसार उत्पन्न बुराइयों से मुक्त करना होगा। गाँवों में छोटे उद्योग इस कसौटी पर पूरे उतरते हैं।

प्रादेशिक संक्रमणहीनता का आरोप भारतीय श्रमिक पर ग़लत लगाया जाता है। भाखड़ा, भिलाई, कोयना, नेयवेली, चंबल, मोकामा आदि में, जहाँ विभिन्न योजनाओं पर काम हो रहा है, हमें संपूर्ण भारत के मज़दूर काम करते हुए मिलेंगे। इसके पूर्व भी भारत से लाखों की तादाद में श्रमिक गिरमिटिया क़ानून के अंतर्गत विदेशों तक गए। जमशेदपुर, अहमदाबाद, बंबई और मद्रास के कारख़ानों में दूर-दूर से लोगों ने आकर नौकरी की। हाँ, यह बात सत्य है कि समाज की व्यवस्था तथा भूमि और कृषि की अवस्था ने उसको सदैव के लिए गाँव से बंधन नहीं तोड़ने दिया। आज भी यदि हम चाहते हैं कि गाँव का जीवन नीरस न हो तथा वहाँ राजनीतिक एवं आर्थिक सामर्थ्य का विकास हो तो हमें योग्यतर लोगों को शहर की ओर जाने से रोकना होगा।

पाश्चात्य अर्थशास्त्र के अनुसार नगरीकरण का स्तर विकास का आधार माना जाता है। भारत में भी धीरे-धीरे नगरों की संख्या तथा आबादी बढ़ती जा रही है। शहरों ने पश्चिम के जीवन में अनेक सामाजिक, नैतिक, स्वास्थ्य संबंधी तथा राजनीतिक समस्याएँ उत्पन्न कर दी हैं। उनके ऊपर होने वाला ख़र्च बहुत ज़्यादा है। भारत के गरम जलवायु के कारण तो जमघट बनाकर रहना हमारे लिए बहुत ही हानिप्रद्र है। यक्ष्मा आदि भयंकर रोगों की वृद्धि का यह बहुत बड़ा कारण है। हमारे शहरों में कटड़े (Slums) बढ़ते जा रहे हैं। आवश्यकता नए शहरों की नहीं अपितु गाँवों के औद्योगीकरण की है।

कारीगरी

मनुष्य केवल दो हाथ-पैर से उत्पादक नहीं बनता। जिन मशीनों या औजारों के

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सहारे उत्पादन हो सकता है, उसके पास उनके प्रयोग की योग्यता चाहिए। एतदर्थ शिक्षा और तज्ञता की आवश्यकता होती है। बड़े-बड़े उद्योग-धंधों में सदैव ही योग्य अभियांत्रिकों की कमी पड़ जाती है। शिक्षा के लिए समय ही नहीं चाहिए अपितु उसमें सहज कुशलता एवं विशेषता के लिए चारों ओर का वातावरण भी सहायक होना चाहिए। अत: देश का प्रौद्योगिकीय स्तर (Technological level) समाज से एकदम असंबद्ध नहीं होना चाहिए। आज की भारतीय स्थिति में छोटी और सरल तथा कुछ अंशों में स्वयंचालित भी, मशीनें ही हमारे उपयुक्त होंगी। यदि इनको आज के काम में आने वाले औजारों और मशीनों से संबद्ध कर दिया तथा उनके आधार पर विकसित किया तो प्रशिक्षण का अभाव कभी अनुभव नहीं होगा। आज बड़े-बड़े तकनीकदाओं की ही नहीं, साधारण प्रशिक्षित यांत्रिकों की भी कमी अनुभव हो रही है। काम दिलाऊ दफ़्तरों के एक वृत्त के अनुसार सन् 1956 में सब ओवरसियरों में 60.3 प्रतिशत, ओवरसियरों में 46.1 प्रतिशत, ड्राफ्ट्समैनों में 42.8 प्रतिशत तथा मेकैनिकों में 42.2 प्रतिशत तथा मेकैनिकों में 41.2 प्रतिशत स्थान आवश्यक प्रशिक्षित व्यक्तियों के अभाव में भरे नहीं जा सके। बड़े-बड़े विशेषज्ञ तो हमें भारी-भारी तनख्वाहों पर विदेशों से ही बुलाने पड़ते हैं। निश्चित ही हमें अपनी प्रौद्योगिकी को अपने अनुकूल बनाना होगा, अन्यथा हम धन व्यय करके भी उससे उत्पादन नहीं बढ़ा सकेंगे।

मशीन

प्रौद्योगिकी का संबंध मशीन से है। हमें उनका चुनाव विचारपूर्वक करना पड़ेगा। वास्तव में तो इसके चुनाव का परिणाम अन्य सभी उपकरणों पर पड़ता है। यदि योग्य मशीन रही तो हम श्रमिक को श्रमिक की संज्ञा देकर उसे उत्पादक बना सकते हैं अथवा वह केवल उपभोक्ता बनकर रह जाएगा। जो बैल हल के लिए उपयोगा हैं, वे ही ट्रैक्टरों का प्रयोग करने पर निरर्थक सिद्ध होंगे। साधारण बुद्धि तो यह कहती है कि हम अपने देश में उपलब्ध उत्पादक उपकरणों के साथ मेल खाने वाली मशीन का प्रयोग करें। श्रम और शक्ति, पूँजी और प्रबंध, माल और माँग, ये सब मशीन के स्वरूप को निश्चित करने वाले होने चाहिए। मनुष्य ने इनके बदलते हुए स्वरूप के साथ ही मशीन का आविष्कार किया। कहावत है कि 'आवश्यकता आविष्कार की जननी है।' किंतु आज कुछ ऐसा हो रहा है कि हम मशीन को ध्रुव मानकर उसके अनुसार शेष सबको बदलने का विचार करते हैं। मशीन के लिए मनुष्य को बदलने पर विवश कर रहे हैं। संपूर्ण उत्पादन प्रणाली एक मशीन पर केंद्रित हो गई है। आविष्कार आवश्यकताओं का निर्माण कर रहे हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पश्चिमी यंत्रों की अनुकूलता

पश्चिम से जो मशीनें हमें मिलती हैं, वे उन देशों द्वारा पिछली कई शताब्दियों में विकसित हुई हैं। उनका मानकीकरण करके वे आज बाज़ार में बेच रहे हैं। हम उन्हें ख़रीदते हैं, किंतु यह भूल जाते है कि वे एक लंबे आर्थिक विकास का कारण नहीं, उसके परिणाम भी हैं। जिन लोगों के सहारे वे आविष्कृत हुईं एवं आज प्रयुक्त होती हैं, उनकी पृष्ठभूमि और परंपरा हमसे भिन्न है। सबसे प्रमुख बात तो यह है कि उनके सामने काम करने वाले मनुष्यों की कमी थी तथा बाज़ार बहुत थे। हमारे सामने तो आज मनुष्यों की अधिकता तथा बाज़ारों की कमी है। हमारी जलवायु भी इन शीतोष्ण देशों की जलवायु से भिन्न है। हमारे यहाँ अभी प्राविधिक शिक्षा का अभाव है। अत: हमें तो ऐसी मशीनें लेनी होंगी, जो सरल हों तथा सबको काम दे सकें। हमने यदि ये बड़ी-बड़ी मशीनें ख़रीदीं तो हमारे सामने कई समस्याएँ खड़ी होंगी। प्रथम तो ये बहुत महँगी हैं तथा हमारे वित्तीय साधनों के बाहर हैं। इन्हें एक बार ख़रीदने के बाद हमें उनके कल-पुर्जों के लिए भी दूसरे देशों पर निर्भर रहना पड़ेगा। इतना ही नहीं, उनकी जटिलता के कारण हम जल्दी ही उन्हें अपने देश में पैदा भी नहीं कर पाएँगे। यदि उदाहरण ही लें तो आज हम कपड़ा बुनने की तथा दूसरी प्रकार की कुछ मशीनें पैदा करने लगे हैं। किंतु हमारे वस्त्र उद्योग का आग्रह है, स्वयंचालित करघे लगाने का। प्रश्न होगा कि क्या हम ये करघे अपने देश में पैदा कर सकते हैं? यदि हम बराबर अपने औद्योगीकरण के लिए विदेश की अद्यतन मशीनों पर निर्भर रहे तो कभी आत्मनिर्भर नहीं रह सकेंगे। हमें मशीनों को ही नहीं, उनको फिट और ठीक करने वाले भी बाहर से ही बुलाने होंगे। हम यह भूल जाते हैं कि उत्पादन केवल मशीन से ही नहीं होता बल्कि उसके ठीक प्रकार से काम करने और बिगड़ जाने पर जल्दी मरम्मत की सुविधा होने से होता है। विदेशों में ये सब सुविधाएँ उपलब्ध हैं, किंतु भारत में आज स्थिति इससे भिन्न है। अत: मशीन पर हमें तुलनात्मक दृष्टि से बहुत अधिक ख़र्चा करना पड़ता है। फिर इन मशीनों को काम में लाने के लिए और भी कई काम करने पड़ते हैं।

हम एक बड़ी मशीन का विचार करते हैं किंतु जहाँ उसका कारख़ाना खड़ा होता है, वहाँ माल को पहुँचाने तथा अन्य सुविधाओं के लिए हमें कितना व्यय करना पड़ेगा, इसका हम विचार नहीं करते। इनके द्वारा आज हमारे पास उपलब्ध धन का हम अधिकतम उपयोग नहीं कर सकते। मशीनों की उत्पादन क्षमता की इकाई बड़ी होती है तथा वह अविभाज्य रहती है। फलत: जितनी आवश्यकता होती है, उससे अधिक क्षमता अधिष्ठापित हो जाती है। यह राष्ट्रीय दृष्टि से धन का अपव्यय है। ये मशीनें श्रम बचत योजना के अनुसार होने के कारण कुछ लोगों को काम से हटा देती हैं। व्यक्तिगत विचार से कोई उद्योगपति उनकी ज़िम्मेदारी चाहे अपने ऊपर न समझे, किंतु राष्ट्रीय दृष्टि से तो उनका

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भरण-पोषण करना ही होगा। अत: जब तक हम उन्हें दूसरी जगह काम न दे सकें, तब तक सामाजिक दृष्टि से हमारा मशीनों पर व्यय अपव्यय ही सिद्ध होगा। समाज को दुहरा ख़र्च करना होगा। हाँ, यदि हटाए हुए श्रमिकों को दूसरी जगह काम पाने की गुंजाइश और माँग है तो मशीन पर व्यय ठीक कहा जा सकता है।

उपयुक्त मशीन

ये सब ऐसे कारण हैं, जो हमारे लिए मशीन का स्वरूप निर्धारण करते हैं। वह निश्चित ही छोटी, सरल, हलकी तथा सस्ती होनी चाहिए। इस प्रकार की मशीनों का हमें विकास करना होगा। वैसे हम दूसरे देशों की ओर भी देखें तो हमें ऐसी छोटी मशीनें भी मिल सकती हैं। वास्तविकता तो यह है कि जब से बिजली का आविष्कार हुआ है तथा उसे आसानी से वितरित किया जा सकता है, बड़े-बड़े कारख़ानों और मशीनों की आवश्यकता ही नहीं रही। यदि पश्चिम में वे चल रहे हैं तो उसके कारण ऐतिहासिक हैं। भाप इंजन के युग में वे स्थापित हो चुके थे, छोटे-छोटे शिल्पी स्वतंत्र कर्मियों की हैसियत समाप्त करके मज़दूर बन चुके थे, अत: बिजली के आविष्कार के बाद भी वे पीछे की ओर नहीं जा सकते थे। बस उन्होंने इतना ही परिवर्तन किया कि भाप की जगह बिजली को काम में लाने लगे। फिर भी अमरीका में हाल की एक जाँच से पता चला है कि वहाँ छोटी मशीनों और कारख़ानों की ओर प्रवृत्ति बढ़ रही है। भारत जब औद्योगीकरण का प्रारंभ ही कर रहा है, वह क्यों न आधुनिकतम आविष्कारों का लाभ उठाए? उसके लिए यह आवश्यक नहीं कि वह 18वीं और 19वीं शताब्दी की ताक़तों से अपने आपको बाँध दे।[2]

मशीन से उत्पादन क्षमता की वृद्धि

आधुनिक मशीनें एक ओर श्रम बचत का माध्यम बनकर मनुष्य को बेकार बनाती हैं तो दूसरी ओर श्रम की उत्पादन क्षमता बढ़ाकर उसे वास्तव में कमकर बनाती हैं। बिना मशीन के यदि मनुष्य बेकार रहता है तो वह कुछ मशीनों के सहारे अर्ध बेकार भी रहता है। श्रम अंकशास्त्रियों की नवीं अंतरराष्ट्रीय परिषद् ने अर्ध बेकारी की यह व्याख्या स्वीकृत की है, ''अर्ध बेकारी उस व्यवस्था को कहेंगे, जब—

1. कोई व्यक्ति पूरे समय तक काम नहीं करता तथा यदि उसे अवसर मिले तो वह अधिक काम करने की इच्छा और क्षमता रखता हो,
2. व्यक्ति की आय या उत्पादकता को बढ़ाया जा सके, यदि उसकी काम

---

2. "a strong case for small industries has been made out by the fact that new technological developments like automatics machinery, synthetic alloys, die-casting, small scale precision instruments and the developments in power distribution have reduced the technological disadvantages of small scale production."

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

करने की पद्धति और अवस्था को, उसका व्यावसायिक कुशलता का ध्यान रखते हुए, सुधार दिया जाए।''

पहले प्रकार का दृश्य अर्ध बेकारी कही जाती है, जबकि दूसरी अदृश्य है। अदृश्य अर्ध बेकारी को दूर करने के लिए उत्पादन की प्रणाली में परिवर्तन करना आवश्यक होता है। अर्ध बेकार को पूरा काम देकर यदि उसकी आय में परिवर्तन कर दिया जाए तो बढ़ी आय से वह औरों को भी काम दे सकेगा। इसके विपरीत, यदि उसकी आय को सीमित रखा जाए तो वह जैसे-तैसे अपना पेट भरता रहेगा। रोटी-कपड़े आदि प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति में ही उसकी संपूर्ण आय ख़र्च हो जाएगी। बचत न होने के कारण न तो वह अन्य वस्तुओं को ख़रीद सकेगा और न उसके उत्पादनों को कोई काम ही दे सकेगा। अत: एक विकासशील अर्थव्यवस्था को गति देने के लिए मशीनों का प्रयोग कर मनुष्य की उत्पादकता बढ़ाना नितांत आवश्यक है।

मशीन और बेकारी

किंतु मशीन के प्रयोग से जब मज़दूरों की छँटनी होती है तथा वे बेकार होकर समाज पर भार बन जाते हैं, तो फिर से खेती में लगाकर खेती का विपणनीय अतिरेक कर देते हैं तो एक ओर गल्ले का दाम बढ़ जाता है तथा दूसरी ओर किसान की मशीनों से बने माल की माँग कम हो जाती है। जिन मज़दूरों की इस प्रकार आमदनी प्रारंभ में बढ़ती है, उन्हें गल्ले के लिए अधिक देने के कारण उनके पास बाक़ी माल ख़रीदने के लिए पहले जितना ही और कई बार उससे भी कम बच रहता है। दूसरे, माँग के कम होने के कारण उन्हें भी अधिक उत्पादकता होने के बाद भी उत्पादन माल की कम खपत होने से अपना उत्पादन कम करना पड़ता है। इस प्रकार वे भी एक प्रकार से दृश्य रूप से अर्ध बेकार हो जाते हैं। काम के घंटे कम हो जाते हैं, काम की पारियाँ कम करनी पड़ती हैं। अत: मशीन के सुधार के कारण जब छँटनी होती है तो उससे अर्थव्यवस्था में एक प्रतिक्रिया उत्पन्न हो जाती है।

मशीन की मर्यादाएँ

उपर्युक्त कारणों से आज देश में जहाँ एक ओर मशीन के श्रद्धालु भक्त हैं तो दूसरी ओर कट्टर दुश्मन भी मौजूद हैं। एक मशीनों के अभिनवीकरण के अभाव को ही भारत की ग़रीबी का कारण मानकर चलते हैं तो दूसरे अभिनवीकरण और यंत्रीकरण को ही देश के विनाश के लिए ज़िम्मेदार ठहराते हैं। वास्तव में मशीन न तो मनुष्य का शत्रु है और न मित्र। वह एक साधन है तथा उसकी उपादेयता समाज की अनेक शक्तियों की क्रिया-प्रतिक्रिया पर निर्भर करती है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

किसी भी नई मशीन के कारण अर्थव्यवस्था को गति प्राप्त हो सकती है, यदि :

1. बढ़ी हुई उत्पादकता से प्राप्त आय का श्रमिकों और पूँजी लगाने वालों में ठीक-ठीक वितरण हो सके;
2. इस आय का कुछ न कुछ अंश वित्तसंचय तथा उपभोग दोनों के काम आए;
3. देश में पूँजी निर्माण की गति इतनी हो कि नई मशीनों के ख़रीदने में व्यय करने के बाद भी वह इतनी बच रहे कि केवल छँटनी किए हुए मज़दूरों को ही नहीं, अन्यों को भी काम देने के लिए उद्योग-धंधे प्रारंभ किए जा सकें।[3]

पूर्ण रोज़गार से क्रयशक्ति में वृद्धि

यदि हम इन बातों का ध्यान रखेंगे तो देश में विभिन्न प्रकार के माल के लिए प्रभावी माँग में कमी नहीं होगी। यदि वह बराबर बढ़ती गई तो औद्योगीकरण भी तेज़ी से बढ़ता जाएगा। प्रभावी माँग को बढ़ाने का प्रथम एवं आवश्यक मार्ग है क्रयशक्ति को बढ़ाना। उत्पादन की लागत कम करना दूसरा तरीक़ा है। यदि देश की क्रयशक्ति बढ़े बिना ही उत्पादन व्यय कम हो गया तो उसका लाभ व्यक्तिगत उत्पादक को दूसरों की प्रतिस्पर्धा में समय विशेष के लिए हो सकता है, किंतु देश को नहीं होगा। क्रयशक्ति को बनाए रखने के लिए ही संपूर्ण रोज़गार (Full employment) की व्यवस्था आवश्यक हो जाती है। सर विलियम वीवरिज ने तो यहाँ तक कहा कि ''लोगों को बेकार रखने के बजाय उन्हें गड्ढा खोदने और उसे फिर से भरने का काम देकर रखना अच्छा है। जो इस प्रकार बेकार का काम करते हैं, वे कम-से-कम कमाए धन का व्यय करके दूसरों को तो काम में लगाए रखेंगे'', इसी विचार से पुराने जमाने में अकाल आदि के समय शासन भवन निर्माण आदि के कार्य प्रारंभ करके लोगों को काम देता था। कहा जाता है कि लखनऊ के इमामबाड़े को बनाते समय यही व्यवस्था थी कि दिन भर दीवारें चुनी जाती थीं तथा रात्रि को उन्हें गिरा दिया जाता था। जो लोग शर्म के कारण दिन में काम नहीं करते थे, वे रात्रि को केवल ईंट हटाने का काम करते थे। व्यापक सार्वदेशिक दृष्टि से अभिनवीकरण की जो योजना पूरे काम की व्यवस्था के विपरीत जाए, उचित नहीं कही जा सकती। किंतु यह भी सत्य है कि बेकारी के भय से हम बिल्कुल ही पुरानी मशीनों से चिपके नहीं रह सकते। विशेषकर छोटे और स्वतंत्र उद्योगों में नई मशीनों के प्रवेश की बहुत गुंजाइश है। वहाँ बेकारी का भय नहीं, बल्कि इस प्रकार उत्पादकों की क्षमता और आय में वृद्धि हो सकेगी।

---

3. "The workers have good logic behind them when they oppose measures of rationalisation and technical change. It is not proper to delude them with the thesis of self-compensation. The latter does not function except in the context of a vigorously growing economy in which the maximum rate of accumulation that is possible is being obtained."
C.N. Vakil : Planning for an Expanding Economy.
B. Dutt : The Economics of Industrialisation.

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सर्वतोमुखी वैज्ञानिक

अदृश्य अर्ध बेकारी को दूर करना हितावह है, किंतु वह कितनी मात्रा में विद्यमान है इसका अंदाजा लगाना सरल नहीं। साधारणतया हम भारत के किसी भी श्रमिक की उत्पादकता और आय की तुलना पश्चिम के देशों से करके विद्यमान अंतर के आधार पर उसे अर्ध बेकार ठहरा देते हैं। वास्तव में तो हमें यह तुलना समान परिस्थितियों में काम करने वाले एक औसत व्यक्ति की आय उत्पादकता से करनी होगी। हमें यह भी विचार करना होगा कि पश्चिम में श्रम की कमी होने के कारण प्रतिव्यक्ति अधिकतम उत्पादन ही उनका एकमेव लक्ष्य है। किसी भी देश में दुर्लभ उपादान की अधिकतम उपयोगिता ही अर्थोत्पादन प्रणाली का आधार होता है। हमारे यहाँ पूँजी दुर्लभ है। अतः हमें पूँजी की प्रति इकाई की अधिकतम उत्पादकता प्राप्त करनी होगी। हम यदि सर्वांगीण दृष्टि से विचार करें तो हमें वह स्तर ढूँढ़ना होगा, जिस पर सभी उत्पादन उपकरणों के समुच्चय की सीमांत उपयोगिता हमारे लिए अधिकतम हो। इस विचार से केवल मशीन में ही नहीं, उत्पादन की पद्धति में अन्य प्रकार से परिवर्तन करके भी हम उत्पादकता बढ़ा सकते हैं। हमें प्रबंध और व्यवस्था, पूँजी और पण सबका वैज्ञानिक आकलन करना होगा। काम करने का स्थान और समय, पद्धति और प्रक्रिया इनमें बहुत कुछ सुधार की गुंजाइश है। जापान ने इस प्रकार उत्पादकता में भारी वृद्धि की है। किसी बाँध को बनवाने में एक हज़ार मज़दूरों की जगह मशीन का उपयोग करके किफ़ायतशारी करने के बजाय भारी ख़र्चे वाले प्रशासन में भी बचत की जा सकती है। योजना आयोग का अनुमान है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत 1500 करोड़ रुपए के भवन निर्माण कार्यक्रम में कम-से-कम 100 करोड़ रुपए की बचत सहज ही की जा सकती है। उद्योगों में इस प्रकार के सुधार से क्रयशक्ति को कम किए बिना ही उत्पादन व्यय को कम किया जा सकेगा।

शक्ति

यद्यपि आजकल अणु और सौर शक्ति की चर्चा की जाती है किंतु मनुष्य, पशु, भाप, तेल और बिजली यही मशीनों को चलाने की प्रमुख शक्तियाँ हैं। पानी और हवा का उपयोग भी नहीं के बराबर है। हाँ, पानी से बिजली पैदा कर उसका उपयोग अवश्य किया जा सकता है। भारत में पेट्रोल की तो अभी खोज ही हो रही है, किंतु शेष शक्तियाँ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध की जा सकती हैं। किसका कहाँ उपयोग है, करना इसका हमें प्रत्येक विषय में अलग-अलग निर्णय करना होगा। कोई एक नियम बनाकर उसके पक्ष में निर्णय देना हितावह नहीं होगा। ऐसे बहुत से उद्योग हैं, जहाँ आज भी मानव शक्ति का ही उपयोग हो सकता है। हस्त कौशल और कला की जहाँ गुंजाइश है, वहाँ औजारों

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

को चलाने के लिए बिजली नहीं लगाई जा सकती। हम स्वयंचालित करघे की उपयोगिता प्रतिपादित कर सकते हैं, फिर भी काफ़ी बड़ा क्षेत्र ऐसा रहेगा, जहाँ हमें हाथ-करघे का ही सहारा लेना पड़ेगा। कुछ ऐसे भी काम हैं, जो मनुष्य शक्ति के साथ आज बिजली या भाप से चलाने वाली मशीनों से होने लगे हैं, जैसे धान कूटना, आटा पीसना, दवाइयाँ बनाना, तेल निकालना आदि। किंतु इन मशीनों के प्रयोग में हम कितना उपयोगी तत्त्व नष्ट कर देते हैं, इसका हमें विचार करना होगा। माल ढोने और दाँय चलाने, कोल्हू पेरने आदि के लिए पशु शक्ति के स्थान पर मशीनों की शक्ति काम में लाई जा सकती है, किंतु हमें उसकी मर्यादाएँ ध्यान में रखनी होंगी। अपने पशुधन का अधिकतम उपयोग करने के बाद ही हमें पर्यायों की ओर दौड़ना चाहिए।

उपर्युक्त मर्यादाओं के अधीन हमारा औद्योगीकरण विशेषतः विद्युत् शक्ति को आधार बनाकर चल सकता है। जलविद्युत् उत्पादन की अनेक योजनाएँ शासन ने हाथ में ली है। उन्हें और भी आगे बढ़ाया जा सकता है। गोबर से गैस तथा बैल के श्रम से बिजली पैदा करने के भी प्रयोग हुए है। उनकी विकास की संभावनाओं की खोज की जा सकती है। किंतु सर्वाधिक बल हमें गाँव-गाँव में तथा छोटे-छोटे कस्बों में बिजली पहुँचाने पर देना चाहिए। हमें यह भी देखना चाहिए कि इसका मुख्यतः उपयोग औद्योगिक कार्यों के लिए हो। आज बिजली से रेल चलाने की योजनाएँ बनाई जा रही हैं। देश के कोयले को बचाने की दृष्टि से यह आवश्यक है। किंतु यदि उद्योगों की बिजली की माँग को बिना पूरा किए हुए उसे रेल चलाने में लगाया तो वह ग़लत अर्थ नीति होगी।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

8

पूँजी और प्रबंध

बचत की योजना

आर्थिक विकास एवं औद्योगीकरण के लिए पूँजी का प्रश्न सर्वाधिक महत्त्व का है। पूँजी के लिए बचत चाहिए, जो कि उत्पादन और उपभोग का अंतर है। राष्ट्रीय दृष्टि से जिस देश का उपभोग स्तर बहुत नीचा हो, वहाँ बचत संभव नहीं होती। बिना बचत के उत्पादन नहीं बढ़ता। कम उत्पादन से अधिक उपभोग कैसे मिलेगा? यह एक दुष्चक्र है, जो चलता रहता है। इससे निस्तार के साधारणतया दो मार्ग सुझाए जाते हैं : (1) राष्ट्रीय आय का असमान वितरण करके कुछ लोगों में बचत का सामर्थ्य उत्पन्न करना, (2) विदेशों से पूँजी आयात करना। असमान वितरण से समाज में विषमता उत्पन्न न हो, अत: राज्य के हाथ में ही पूँजी निर्माण और उपयोग के अधिकार सौंप दिए गए। वह कराधान, मूल्य एवं मुद्रा नीतियों से जनसाधारण को राष्ट्रीय आय में से उनके न्यायोचित अंश से वंचित रखता है। न्यायोचित पूँजीवादी पद्धति में कुछ व्यक्ति, मूल्य, पारिश्रमिक, साख संबंधी नीतियों पर पण एवं संस्थाओं के नियंत्रण के द्वारा सामान्य जन की आय का एक अंश अपने पास रखकर उसे पूँजी के रूप में लगाते हैं। दोनों पद्धतियों से यद्यपि देश का विकास तो होता जाता है, किंतु पूँजी के स्वामित्व के कारण आर्थिक सामर्थ्य, राज्य अथवा उद्योगपतियों के हाथों में केंद्रित होता जाता है। साथ ही उपभोग में व्यक्ति को विवशतापूर्वक कमी करनी पड़ती है, अत: वह अंदर-ही-अंदर कुढ़ता रहता है। उसकी आत्मा एक दबाव का अनुभव करती है। इस कठिनाई से बचने का एकमेव मार्ग है, सामान्य नागरिक में बचत की सामर्थ्य और इच्छा पैदा करना। राष्ट्रीय आय की अभिवृद्धि में हमें उसे सहभागी बनाना चाहिए। संयम का भाव इस दिशा में भारी काम करता है। भारत की संस्कृति इसमें विशेष रूप से सहायक सिद्ध हो सकती है, किंतु हमने राजनीतिक कारणों तथा पश्चिम की कल्पनाओं का अनुसरण कर उपभोग प्रवणता बड़ी तेज़ी से उत्पन्न की है। पश्चिम की समस्या पूँजी एवं उत्पादन के साधनों के खोज की नहीं बल्कि उनका पूरा-पूरा उपयोग होता रहे, यह

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

है। हमारे सामने प्रथम प्रश्न है पूँजी और साधन जुटाने का, जिससे अपनी माँग को पूरा करने का सामर्थ्य जुटा सकें। अतः यहाँ कीन्स का अर्थशास्त्र उपादेय नहीं होगा।

पूँजीकरण का मार्ग

संयम से जो बचाया है, उसका भावी उत्पादन के लिए विनियोग किए बिना वह पूँजी नहीं बनेगी। यदि बचाने वाले के सामने पूँजी विनियोग के अधिकाधिक मार्ग खुले हों तो वह अधिक बचाने का प्रयास करेगा। इसके लिए आवश्यकता है उद्योग-धंधों के व्यापक प्रसार तथा ऋण और अधिकोषण की अच्छी व्यवस्था की। यदि हम कृषक की आय बढ़ाना चाहते हैं तो हमें उसके सदुपयोग की भी साथ ही व्यवस्था करनी होगी, अन्यथा वह मुक़दमे, भोज और प्रतिष्ठा संबंधी अनेक अनावश्यक कामों में ख़र्च हो जाएगी, या सोना और ज़मीन-जायदाद ख़रीदने के काम आएगी। देश में सोने की माँग तथा उसका तस्कर व्यापार यह सिद्ध करता है कि जिनके पास पैसा है, वे उसका विनियोजन योग्य मार्ग से नहीं कर पा रहे हैं। छोटे उद्योग स्वयं वित्त संचय में भारी योगदान दे सकते हैं। शासन की कोई उल्लेखनीय सहायता न होने पर भी देश में छोटे उद्योग-धंधों का राष्ट्रीय आय में योगदान सदैव ही अधिक रहा है। कृषि की आय के साथ उनका संबंध निम्न तालिका से स्पष्ट प्रकट होता है—

कुछ औद्योगिक स्रोतों से भारत की राष्ट्रीय आय (रुपए करोड़)

	कृषि, पशुपालन तथा तत्संबंधी कार्य	कारख़ाने	छोटे उपक्रम
1955-56	4410	780	970
1954-55	4230	750	960
1953-54	5200	690	980
1952-53	4710	640	970
1951-52	4910	640	950
1950-51	4780	550	910

हम यह जानते ही हैं कि छोटे उपक्रमों की वास्तविक आय कूतना कठिन है। उनमें बहुत सा क्षेत्र ऐसा है, जो अंक विशेषज्ञों की पहुँच के बाहर है।

पूँजी का सही उपयोग

आज यदि हम बड़े उद्योग-धंधों के पक्ष में निर्णय लेकर इन छोटे उद्योगों को अपने भाग्य पर या पिछड़ा हुआ कहकर विनाश योग्य समझकर छोड़ दें तो निश्चित ही हमारी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बहुत सी पूँजी बेकार चली जाएगी। पुन:संस्थापन (Replacement) तथा अभिनवीकरण (Rationalisation) के नाम पर विस्थापन (Displacement) तथा विपूँजीकरण (Decapitalisation) योग्य नहीं होगा।

भारत में पूँजी की कमी होने के कारण हमें ऐसे उद्योग छाँटने होंगे, जो पूँजी प्रधान न हों तथा श्रम प्रधान हों। श्री पी.एस. लोकनाथन ने 1943 में यह निष्कर्ष निकाला था कि 100 रुपए के मूल्य का कपड़ा उत्पादन करने में बड़ी मिलों में 1846 रुपए तथा 1.54 श्रमिक, स्वयंचालित करघे पर 1125 रुपए तथा 12.5 श्रमिक तथा हाथ करघे पर 778 रुपए तथा 22.2 श्रमिक लगेंगे। निश्चित ही हाथ करघा और स्वयंचलित करघा हमारे लिए सर्वाधिक उपयुक्त रहेंगे। स्वयंचालित करघे को यदि लक्ष्य रखकर चला जाए तो हम हाथ करघों को धीरे-धीरे उनमें बदल सकते हैं। अन्य उद्योगों के संबंध में भी देश की वित्तीय अवस्था को देखते हुए यही नीति अपनानी होगी।

विदेशी पूँजी

देश में पूँजी की कमी को विदेशी पूँजी से पूरा करने का भी सुझाव दिया जाता है और आज हम भारी मात्रा में बाहर से विभिन्न रूपों में पूँजी मँगा भी रहे हैं। विदेशी पूँजी के यदि राजनीतिक पहलू छोड़ भी दिए जाएँ तो आर्थिक दृष्टि से भी वह एक अंश तक ही उपादेय होती है। 'पूँजी' शब्द से जनसाधारण को कल्पना इतनी ही होती है कि हमें धन मिल जाएगा, जिसे हम अपनी दृष्टि से उपयोग कर सकेंगे। वास्तविकता यह नहीं। विदेशी पूँजी को हमें विदेशों में ही ख़र्च करना होता है, अत: वह घर की बचत का पर्याय नहीं बन सकती। घर में बचत को जब हम पूँजी के रूप में प्रयोग करते हैं तो हम केवल जिन उद्योगों में पूँजी लगाते हैं, उनमें ही लोगों को रोज़गार नहीं देते, बल्कि जिन मशीनों और साधनों पर पूँजी ख़र्च करते हैं, उनके बनाने वालों को भी रोज़गार देते हैं।

औद्योगीकरण पर प्रभाव

विदेशी पूँजी तीन प्रकार से प्राप्त हो सकती है—(1) वैयक्तिक उद्यमियों से, (2) अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं से, (3) विदेशी सरकारों से। इनका यह सहयोग ऋण देकर अथवा भागीदार बनकर हो सकता है। देश में या तो वे स्वतंत्र रूप से कोई उद्योग प्रारंभ करें अथवा सरकार या निजी क्षेत्र के उद्यमियों के साथ सहयोग करें। इन सभी संभव विकल्पों में आधारभूत बात यह है कि जिन मशीनों और साधनों पर वह रुपया हम बाहर ख़र्च करेंगे, वे हमारे देश के लिए उपयोगी हैं या नहीं, इसका हम निर्णय नहीं कर सकेंगे। इतना ही नहीं, हमें विदेशों की प्रौद्योगिकी स्वीकार करनी होगी। विदेशी तज्ञ एवं उद्योगपति अपने देश में प्रचलित एवं उपलब्ध तकनीकी और मशीनों को लेकर ही यहाँ उत्पादन करेंगे। यह देश

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

के आज तक के औद्योगीकरण को कुछ पग आगे बढ़ा सकता है, किंतु एक ऐसे विकासशील उद्योग की नींव नहीं रख सकता, जिसकी नींवें ज़मीन में गहरी जमी हों। यदि हम छोटे उद्योगों को अपना आधार बनाना चाहें तो उसके लिए न तो विदेशी पूँजी ही मिलेगी और न विदेशी उद्योगपति ही यहाँ आने को उत्सुक होंगे। यहाँ तो वे बड़े-बड़े पूँजीपति गुट ही आ सकते हैं, जिन्होंने अपने औद्योगिक साम्राज्य खड़े कर लिए हैं। हम उनका देश के कुछ उद्योगपतियों अथवा सरकार के साथ गठबंधन कर सकते हैं, जैसा कि बिड़ला नफील्ड, टाटा इंपीरियल केमिकल, टाटा बेंज, सेन-रेले आदि का निजी क्षेत्र में तथा सरकार के साथ विभिन्न संयोजनों और सरकारों का इस्पात एवं अन्य उद्योगों में हो रहा है। किंतु एक ओर ये भारी, आधुनिकतम तकनीकीयुक्त तथा सर्वसाधन-संपन्न उद्योग और दूसरी ओर अनेक सीमांत इकाइयाँ कैसे एक साथ चल सकेंगी? फिर इन कुछ क्षेत्रों में ही नहीं, विदेशी पूँजी उपभोग वस्तुओं के क्षेत्र में भी प्रवेश करेगी। आज भी जूट और बागानों पर उनका प्रभुत्व है। साबुन और माचिस, सिगरेट, बिजली का सामान, पेट्रोलियम, रबर के सामान आदि में उन्होंने इतना प्रभाव जमा रखा है कि छोटे उद्योगों का तो प्रश्न ही नहीं, बड़े उद्योगपति भी उनके सामने टिक नहीं पाते। उद्योग रक्षा आयोग (1949-50) ने लिखा था, ''बड़े उद्योगों के जिस ढाँचे की हम कल्पना करते हैं, वह अमरीका और इंग्लैंड की अत्यधिक पूँजीप्रचुर तथा भारत की प्रमुखतया ग्राम अर्थव्यवस्था के मध्य में होगा।'' क्या विदेशी पूँजी से बननेवाला औद्योगिक ढाँचा इस कल्पना को साकार कर सकेगा?

विदेशी पूँजी के प्रकार और उनका तौलनिक महत्त्व

विदेशी पूँजी ऋण अथवा स्वामित्व दोनों रूप से आ सकती है। पहले प्रकार में यह कठिनाई है कि उसको (1) ब्याज सहित लौटाना पड़ता है, जो कि विशेषकर मंदी एवं प्रतिकूल भुगतान संतुलन के दिनों में भारी कठिनाई उत्पन्न करता है, (2) यदि उसका उपयोग आवश्यक अचल पूँजी या उपभोग वस्तुओं की प्राप्ति में नहीं किया गया तो केंद्रीय बैंक की विदेश निधि में वृद्धि करके आंतरिक मुद्रास्फीति की स्थिति पैदा हो जाती है, (3) इसके साथ उद्योगों के प्रबंध एवं तकनीक का ज्ञान देश में आना आवश्यक नहीं।

प्रत्यक्ष पूँजी

प्रत्यक्ष पूँजी के साथ आवश्यक प्रबंध, युक्तीकरण, तज्ञता एवं अचल साधन भी उपलब्ध हो जाते हैं। किंतु इसका सबसे बड़ा दोष है निहित स्वार्थों का विकास, जो देश के लिए घातक सिद्ध हो सकते हैं। पेट्रोल के उत्पादन और परिशोधन में लगी पूँजी पश्चिम एशिया के देशों की राजनीति को सुस्थिर नहीं होने देती। देश के प्राकृतिक साधनों का दोहन भी यह पूँजी मितव्ययिता के साथ न करके अपने हितों में ही करती है। प्रबंध और नियंत्रण

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

तथा ऊँचे एवं महत्त्व के सभी स्थान विदेशियों के हाथ में रहते हैं। लाभ के पुनर्विनियोजन के कारण विदेशियों की संपत्ति बढ़ती ही जाती है, जबकि वास्तविक पूँजी का आयात कम ही होता है। रिज़र्व बैंक के अनुसार सन् 1956 में कुल निजी विदेशी पूँजी का आयात 24.3 करोड़ रुपए था। इसमें 17.9 करोड़ रुपया लाभ में से पुनर्विनियोजन, 3.2 करोड़ रुपया नकद तथा 9.6 करोड़ रुपए वस्तुओं के रूप में था। अनुमान लगाया गया है कि 1840 से 1914 तक अमरीका ने 300 करोड़ डालर विदेशों से उधार लिया, जबकि इसी बीच उसने ब्याज और लाभांश के रूप में 580 करोड़ डालर चुकता किए।[1] ब्रिटेन की 1870 से 1913 तक विदेशों में विनियोजन से आय एवं पूँजी के निर्यात का वार्षिक औसत इस प्रकार था—

(करोड़ पौंड में)

सन्	आय	निर्यात
1870-75	4.8	5.5
1876-80	4.8	.1
1881-93	7.5	4.8
1894-1904	10.0	2.4
1905-1913	15.5	14.3

इसी आधार पर जेवंस ने लिखा—"ब्रिटेन का अनुभव यही स्पष्ट करता है कि थोड़े दिनों में पूँजी निर्यातक देश अपने विनियोजन को आय के पुनर्विनियोजन से ही बनाए रख सकता है।" बाहरी पूँजी से मुक्ति की तब तक आशा नहीं करनी चाहिए, जब तक कि कोई विशेष स्थिति ही न उत्पन्न हो जाए। अमरीका ने अपना विकास तब किया, जब बाहर से पूँजी आनी 1914 के बाद बंद हो गई। भारत भी लड़ाई के ज़माने में जबकि बाहर से रुपया और मशीनें तथा औद्योगिक कच्चा माल प्राय: आ ही नहीं पाता था, एक क़र्ज़दार से साहूकार देश बन गया। यदि हमारे संचित पौंड पावने में से लड़ाई का ख़र्चा निकाल भी दिया जाए तो भी हमने बहुत कुछ अपने उद्योगों के विकास एवं उत्पादन की वृद्धि एवं निर्यात से कमाया था।

भारत में विदेशी पूँजी

हमें विदेशी पूँजी का आधार बनाकर कभी उद्योगों का विचार नहीं करना चाहिए। राष्ट्रीय योजना समिति ने इस संबंध में यही प्रस्ताव किया था—

(1) हमारी कृषि, ख़ानों और उद्योगों में विदेशी पूँजी के विनियोजन का परिणाम देश के आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन पर प्रभुत्व की प्रतिष्ठापना तथा राष्ट्रीय विकास को

1. John Knapp : Capital Export and Growth, *The Econimic Journal Vol. LK VII, Sept. 57*

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कुंठित करने में हुआ;

(2) इसके उपरांत विदेशी पूँजी को राष्ट्रीय महत्त्व के उद्योगों पर प्रबंध और स्वामित्व के अधिकार न दिए जाएँ;

(3) देश की पूँजी की आवश्यकता के लिए केवल राज्य के द्वारा ऋण के रूप में विदेशी पूँजी स्वीकृत की जाए;

(4) क़ानूनी व्यापारिक सुविधाएँ समाप्त की जाएँ तथा

(5) भारत में कुछ महत्त्वपूर्ण उद्योगों पर विदेशी हितों को उचित क्षतिपूर्ति देकर राज्य हस्तगत कर ले।

वर्ष 1922 के फिस्कल कमीशन में भी अल्पमत की ओर से विमतिपत्र देते हुए भारत के प्रतिनिधियों ने विदेशी पूँजी को सुविधा देने का विरोध किया था।

भारत की हाल की नीति इन सब भावनाओं के विरुद्ध है। अब शासन विदेशी पूँजी के स्वागत की हर प्रकार से तैयारी कर रहा है। शासन की इस नीति का परिणाम यह हुआ है कि भारत अब फिर क़र्ज़दार बन गया है। भारत की देन-लेन की स्थिति दिसंबर 1957 के अंत तक निम्न प्रकार थी—

भारत की कुल विनियोजन स्थिति

(करोड़ रुपयों में)

	देयता		परिसंपत्ति		निवल स्थिति	
	1956	1957	1956	1957	1956	1957
निजी	506	555[2]	—	—	(–)506	(–)555
बैंक	61	48	52	62	(–)9	14
सरकारी	220	455	955	725	735	270
कुल	787	1058	1007	787	220	(–)271

दिसंबर 1957 के अंत में भारत 271 करोड़ रुपए के लिए देनदार था। सरकारी परिसंपत्ति में वे 300 करोड़ रुपए भी सम्मिलित हैं, जो पाकिस्तान से विभाजन की अवस्था के अनुसार भारत द्वारा अविभक्त भारत की संपूर्ण देयता स्वीकार करने के कारण लेने हैं। पाकिस्तान की वर्तमान नीति में वह एक संदेहास्पद परिसंपत्ति ही है। जुलाई 1948 से दिसंबर 1957 तक हमारी लेनदारी में 1800 करोड़ रुपए की कमी हुई है। निजी क्षेत्र में देनदारी 30 जून, 1947 को 260 करोड़ रुपए से बढ़कर 1957 के अंत में 550 करोड़ रुपए हो गई, जबकि सरकारी क्षेत्र में हमने 1500 करोड़ रुपए की निवल परिसंपत्ति परिसमाप्त कर दी।

---

2. अनुमानित

स्रोत : रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया बुलेटिन : सितंबर 1958

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

विदेशी पूँजी की आवश्यकता का प्रतिपादन कुछ भारी उद्योगों, जनोपयोगी सेवाओं तथा उद्योगों के विकास हेतु किया जाता है। किंतु किसी भी स्वतंत्र देश में निजी क्षेत्र को इनमें प्रवेश की अनुमति नहीं दी जाती और न कोई विदेशी उनमें सहज प्रवेश ही करना चाहेगा, कारण—वे आशु फलदायी नहीं होते। वास्तव में तो अनेकदा विदेशी पूँजी इन प्राथमिक सेवाओं के विकास की बाट देखते हुए शांत बैठी रहती है। बहुधा शासन को ही अपनी ज़िम्मेदारी पर इस ओर पग बढ़ाना पड़ता है। 1948 से 1956 तक विदेशी पूँजी का विनियोग किस प्रकार हुआ यह निम्न सारिणी से स्पष्ट हो जाएगा :

उद्योगानुसार विदेशी विनियोजन (करोड़ रुपयों में)

	जून 1948	1953	1955	1956
निर्माण				
खनिज तेल एवं उत्पादन	1.01	9.69	28.49	15.46
बिजली का सामान	4.77	12.01	14.63	15.78
दियासलाई	1.73	3.22	2.29	2.34
सिगरेट और तंबाकू	6.17	25.65	24.94	25.03
औषधियाँ	0.45	5.53	7.65	8.29
लोहे एवं इस्पात का सामान	5.48	6.68	9.43	18.53
खाद्य वस्तुएँ तथा वनस्पति	1.82	3.97	3.22	3.22
अन्य	50.52	68.97	72.75	77.37
व्यापार				
खनिज तेल एवं उत्पादन	21.32	67.40	75.50	80.53
लौह और इस्पात उत्पादन	3.62	0.69	0.89	1.02
जूट एवं नारियल का सामान	2.64	0.82	0.42	0.59
खाद्य एवं वनस्पति	3.49	0.58	1.19	1.20
अन्य	33.28	25.29	14.24	26.25
जनोपयोगी सेवाएँ एवं परिवहन	31.23	50.54	53.05	59.51
उत्खनन	11.46	8.38	9.62	10.83
वित्तीय	6.87	10.70	28.53	28.14
बागान				
चाय	50.31	70.17	86.26	87.58
अन्य	1.94	1.33	0.94	0.64
विविध				
प्रबंध अभिकरण	14.40	26.20	24.62	22.92
अन्य	3.32	1.52	1.27	1.07
कुल योग	17.72	27.72	25.89	23.99

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

विदेशी पूँजी और भारतीयकरण

विदेशी पूँजी के एकाधिपत्य एवं दुष्प्रभावों से बचने तथा साथ ही उसका उपयोग करने की दृष्टि से देशी और विदेशी पूँजी का गठबंधन तथा देशी प्रबंध एवं तज्ञों के प्रशिक्षण की शर्त के साथ विदेशी पूँजी के प्रवेश की व्यवस्था की जाती है। इसमें वह एक केटेलिटिक एजेंट का काम करके देशी पूँजी को सक्रिय बना देती है। किंतु भारत में इस ओर भी कोई प्रगति नहीं हुई। कुछ विदेशी मालिकों ने राष्ट्रीय भावनाओं का लाभ उठाने तथा भारतीय पूँजी को दी जाने वाली संभाव्य सुविधाओं का लाभ उठाने के लिए अपने साथ कुछ भारतीय उद्योगपतियों को अवश्य साझीदार बना लिया है, किंतु नियंत्रण और प्रबंध सभी में अभी तक विदेशों का ही प्रभुत्व है। प्रशिक्षण की भी कोई व्यवस्था नहीं की गई है। कुछ दिनों से तो विदेशी पूँजी के संबंध में जो उत्सुकता और प्रेम प्रदर्शित किया जाने लगा है, उसके परिणामस्वरूप भारतीयकरण की जो थोड़ी-बहुत प्रक्रिया प्रारंभ हुई थी, वह भी उलट गई है। 1 जनवरी, 1956 को विदेशी फर्मों और कारख़ानों में काम करने वाले भारतीयों एवं अभारतीयों की क्या स्थिति थी, इसका अनुमान निम्न तालिका से लगाया जा सकता है :

विदेशी कारबारों में कर्मचारियों की संख्या 1-2-1956 को

कारबार	प्राविधिक		प्राबंधिक	
	भारतीय	अ-भा.	भारतीय	अ-भा.
ऑटोमोबाइल्स	7	14	17	10
रसायन एवं तत्संबंधी	174	164	321	176
मशीन एवं अभियांत्रिकी	478	649	366	247
चमड़ा एवं रबर	99	79	144	42
जनोपयोगी सेवाएँ	85	44	25	11
मैनेजिंग एजेंसी कं.	62	141	386	512
कपड़ा मिलें तथा प्रेसें	79	95	36	40
जूट मिलें तथा प्रेसें	68	364	25	153
बागान एवं तत्संबंधी	36	271	164	966
तेल कंपनियाँ	223	266	286	215
खनिज	66	123	38	30
कुल अन्यों को मिलाकर	1908	2855	2777	3711

स्पष्ट है कि भारतीयों को महत्त्व के स्थानों पर न तो रखा जाता है और न उन्हें प्रशिक्षित करने की व्यवस्था की जाती है। मैनेजिंग एजेंसियों में ग़ैर-भारतीयों की भारी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

संख्या इस बात का द्योतक है कि सब प्रकार का नियंत्रण उन्हीं के हाथों में है। जूट और बागान पर तो उनका एकाधिकार ही है। जहाँ भारतीयों ने बागान ख़रीदे भी हैं, वहाँ उनकी व्यवस्था और प्रविधि, विधायन और व्यापार सब विदेशियों के हाथ में हैं। वेतन का यदि विचार करें तो 1500 से 3000 रुपए तक की ग्रेड में प्राविधिक कर्मचारियों में 31.2 प्रतिशत भारतीय तथा 68.8 प्रतिशत अभारतीय तथा प्रबंध में 36.1 प्रतिशत भारतीय, 63.9 प्रतिशत अभारतीय हैं। किंतु 3000 रुपए से ऊपर तनख्वाह पाने वालों में भारतीयों का प्रतिशत केवल प्रविधि में 7.2 प्रतिशत तथा प्रबंध में 11.4 प्रतिशत है। व्यक्तियों तक ही नहीं, इन उद्योगों के कार्यक्रम का निर्धारण भी भारत की योजना और आवश्यकता के अनुसार नहीं बल्कि बाहर के हितों के अनुसार होता है। अफ्रीका में चाय की खेती प्रारंभ करने के कारण चाय बागान के मालिकों ने भारत में पुनरारोपण की ओर दुर्लक्ष्य प्रारंभ कर दिया है। बिड़ला-नफील्ड एवं अन्य, जो हाल ही में गठबंधन हुए हैं, उनमें एकत्रीकरण के अतिरिक्त उत्पादन की ओर वह भी टेक्निकल पुर्जों की कोई आवश्यकता नहीं। उसका कार्यक्रम विदेशी सहयोगियों के हाथ में ही है। औद्योगीकरण का यह कार्यक्रम शासन को तटकर से वंचित कर उसका कुछ भाग देश के उद्योगपतियों और मज़दूरों में बाँटने के अतिरिक्त अन्य दूरगामी महत्त्व का नहीं। देश में बढ़ते हुए आयात के बाद भी आयात कर में समानुपातिक वृद्धि का अभाव इसी तथ्य का द्योतक है। पिछले छह वर्षों के आँकड़े इस प्रकार हैं:

(करोड़ रुपए)

	1953-54	1954-55	1955-56	1956-57	1957-58
आयात	591.8	683.8	761.4	1095.6	1174.8[3]
आयात-कर	119.60	141.06	127.98	140.52	153.7[4]
प्रतिशत	20.2	20.6	16.8	12.8	13.1

भारतीय उद्योगपतियों का विदेशी पूँजी से चलने वाले उद्योगों में कितना हाथ है, इसका अंदाजा इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि दिसंबर 1956 के अंत में जो 506.30 करोड़ रुपए की विदेशी पूँजी भारत में लगी थी, उसमें से 428.99 करोड़ रुपए प्रत्यक्ष विनियोजन (direct investment) तथा 77.31 करोड़ रुपया पत्रोद्वह (portfolio) विनियोजन के रूप में था। विदेशी कंपनी की शाखाओं में 276.39 करोड़ रुपया तथा नियंत्रित भारतीय कंपनियों में 152.60 करोड़ रुपया लगाया गया था। 1956 में जो विदेशी पूँजी आई, उसमें प्रत्यक्ष विनियोजन 23.7 करोड़ रुपए का तथा अन्य 12.7 करोड़ रुपए था।

3. संशोधित बजट अनुमान।

4. प्रारंभिक

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अन्य में 12.1 करोड़ रुपए का अंतरराष्ट्रीय बैंक का ऋण सम्मिलित है। यदि उसे निकाल दें तो केवल 0.6 करोड़ रुपए ही इस मद के अंतर्गत आता है।

विदेशी पूँजी के उपयोग की क्षमता

यह सब देश के औद्योगीकरण का क्रांतिकारी कार्यक्रम नहीं प्रस्तुत कर सकता। हाँ, कुछ पुराने क्षेत्रों में अपने वर्चस्व को बढ़ाकर अथवा कुछ नए क्षेत्रों में विधायन का साधारण कार्यक्रम लेकर देश की स्वदेशी भावना का दुरुपयोग एवं विकासशील छोटे उद्योगों के मार्ग में काँटे अवश्य उत्पन्न कर सकता है। वास्तविकता तो यह है कि जिन योजनाओं के लिए हमें विदेशी पूँजी चाहिए, उनके लिए अन्य उपकरण भी देश में सहज नहीं जुटाए जा सकते। उप वित्तमंत्री द्वारा राज्य सभा के पटल पर 1 दिसंबर, 1958 को रखे गए एक वक्तव्य के अनुसार विदेशों से स्वीकृत 988.03 करोड़ रुपए की ऋणराशि में से सरकार केवल 372.53 करोड़ रुपए का उपयोग कर पाई है, जबकि 615.50 करोड़ रुपए अभी भी बाक़ी पड़ा हुआ है। उनकी योजनाएँ तैयार करने और वार्त्ता विमर्श का ही कार्य चल रहा है। जो ऋण हमें प्राप्त होता है, वह मुद्रा विशेष से ही नहीं, अतिरिक्त शर्तों से भी बँधा रहता है। यहाँ ऋण के ख़र्च करने में हमें स्वतंत्रता रहे तो हम अपने तरीक़े से उसकी योजना बना सकते हैं। वास्तव में तो आज की स्थिति अंतरराष्ट्रीय पैमाने पर विनिमय (बारटर) की है। इसमें केवल ऋण का उपयोग ही नहीं, भुगतान भी एक समस्या है। भुगतान के लिए केवल अपना निर्यात बढ़ाने या आयात कम करने और इस प्रकार भुगतान संतुलन अनुकूल बनाने से काम नहीं चलेगा, अपितु हमें वे विदेशी मुद्राएँ प्राप्त करनी होंगी, जिनमें हमें भुगतान करना है।

अर्ध विकसित देशों में शीघ्र ही जीवनस्तर ऊँचा उठाने की आवश्यकताओं तथा विदेशी पूँजी का भुगतान दोनों में विरोध उत्पन्न हो जाता है, यदि पूँजी के आने और अदायगी में लंबी अवधि का अंतर न हो तथा पूँजी का विनियोग उपभोग वस्तुओं के उत्पादन की अपेक्षा भारी उद्योगों की स्थापना में किया जाए। एक ओर जब औद्योगीकरण के कारण देश में धन का विनियोग होने के कारण उपभोग वस्तुओं की माँग बढ़ती है, दूसरी ओर विदेशी मुद्रा प्राप्त करने हेतु उन्हें अधिकाधिक मात्रा में निर्यात करना होता है। फलतः देश में उन्हीं वस्तुओं का अभाव हो जाता है, जिनको वह पैदा करता है। भारत में आज कपड़े, चीनी, तिलहन, ज्वार, खली आदि की आवश्यकता होने पर भी हमें उनका निर्यात करना पड़ रहा है। अपनी इस दुर्बलता के कारण जिन चीज़ों में हमारा एकाधिपत्य है, उनमें भी हम अपनी शर्तें नहीं मनवा पा रहे हैं।

उद्यमी

पूँजी का संबंध पूँजी लगाने वाले अर्थात् उद्यमी से भी आता है। इस दृष्टि से भारत

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

के पास शिल्पियों तथा व्यापारियों की परंपरा है। शिल्पकार अधिकांशत: श्रमिक, पूँजीपति, प्रबंधकर्ता, साहसिक सबकुछ स्वयं ही होता है। वह मज़दूरी पर काम नहीं करता, हाँ आढ़तियों और व्यापारियों से कच्चा माल अगाऊ लेकर उन्हीं को पक्का माल देकर कुछ-कुछ अधार पट्टे की सी व्यवस्था अवश्य करता है। हम एक ओर शिल्पियों को सहयोगी समितियों में गठित कर सकते हैं तो दूसरी ओर व्यापारियों को भी आधुनिक ढंग का उत्पादक बना सकते हैं। पंजाब, बंगाल आदि के उद्योग-धंधे इसी प्रकार विकसित हुए हैं। इन छोटी पूँजी वालों के सामने उत्पादन के बड़े कार्यक्रम रखना इन्हें या तो हतोत्साहित करना है या सटोरिया बनाना।

हम चाहे जिस पहलू से देखें, पूँजी की दृष्टि से भी भारत के लिए छोटे और मध्यम दर्जे के उद्योग ही उपयोगी रहेंगे।

प्रबंध या संगठन

प्रबंध और संगठन की कुशलता का भी उद्योगों के स्वरूप और अनुमान से गहरा संबंध है। कुशलता यद्यपि व्यक्तिगत गुण है तथा उसके संबंध में कोई नियम नहीं बनाया जा सकता, फिर भी सर्वसामान्य मर्यादाएँ अवश्य निश्चित की जा सकती हैं। बड़े-बड़े उद्योगों के नियमन और संगठन में जिस कुशलता की आवश्यकता होती है, वह विरल है। यदि हमने बड़े उद्योगों को ही आधार बनाया तो दो ही परिणाम हो सकते हैं कि साधारण व्यक्ति उनके संगठन का विचार ही न करें अथवा हम बहुत से उद्योगों को जन्म के कुछ ही दिनों बाद मरता देखें। भारत में ही नहीं, अमरीका जैसे देश में भी इन बड़े उद्योगों की बाल मृत्यु दर बहुत अधिक है। एक अनुमान के अनुसार संयुक्त राज्य अमरीका में प्रारंभ होने वाले कारख़ानों में 66 प्रतिशत एक वर्ष से आगे नहीं चल पाते तथा 5 वर्ष से आगे चलने वालों की संख्या केवल 20 प्रतिशत है। ये आँकड़े चौंका देने वाले हैं। किंतु जिस प्रतिस्पर्धी मात्स्यन्यायीन अर्थव्यवस्था को वे आधार बनाकर चले हैं, उसके लिए असंभव नहीं। भारत में जितने बड़े उद्योग चल रहे हैं, उनमें योग्य प्रबंधकों और व्यवस्थापकों का अभाव ही है। शासन के सामने भी यही कठिनाई है। उद्योगों की व्यवस्था और वह भी आज के गूढ़ अर्थ तंत्र में काफ़ी शिक्षण, ज्ञान, परिश्रम, कल्पकता, शतावधानता तथा बुद्धिमता की माँग करती है। इसके लिए योग्य वर्ग का विकास समय लेगा अन्यथा हम कुछ-न-कुछ उठक-पटक करने वाले और हेरा-फेरी करने वाले ही पैदा कर देंगे।

व्यक्ति की सीमाएँ

बड़े उद्योगों में धीरे-धीरे व्यक्ति का संबंध दूर का होता जाता है। एक मर्यादा के बाद तो कोई भी व्यक्ति उनकी ओर ईमानदारी से ध्यान नहीं दे सकता। श्री ओवन डी. यंग

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ने संयुक्त राज्य अमरीका की एक समिति के सम्मुख साक्षी देते हुए कहा था—''आजकल के औद्योगिक साम्राज्यों के आकार, प्रकार और व्याप के कारण किसी भी व्यक्ति या व्यक्तिसमूह के लिए, वे फिर कितने भी तीक्ष्ण बुद्धि क्यों न हों, इन जटिल, टेढ़े-मेढ़े, स्तूप संदृश्य संधाओं की कार्रवाई का कुशलता से संचालन करना तो दूर समझना भी असंभव है।'' बड़े उद्योग-धंधे यदि चलते और मुनाफ़ा देते रहते हैं तो उन अनुचित सुविधाओं के कारण, जो उन्हें आर्थिक के अतिरिक्त अन्य कारणों से प्राप्त होती रहती हैं। भारत में मैनेजिंग एजेंसी पद्धति की बुराइयों का मूल कारण उद्योगों का आकार तथा अंतर संबंध है। साथ ही इन उद्योगों की अवस्था प्रक्रिया के विषय में ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों का अभाव होने के कारण यह विकेंद्रीकरण की प्रवृत्ति और भी बढ़ती जा रही है।

मानव संबंध

भारत में विशेषकर तथा सभी जगह प्रारंभिक अवस्था में किसी भी कार्य की सफलता के लिए मानवी संबंधों के आधार पर प्रेरणा, मार्गदर्शन एवं नियंत्रण आवश्यक है। बड़े उद्योगों में मानव एक बड़ी भारी मशीन का, एक हृदयहीन समष्टि का पुर्जा मात्र बन जाता है। यह मानव के लिए उपयोगी नहीं। भारत की संस्कृति ने कभी मानव को हटाकर विचार नहीं किया। हमारे लिए ऐसी मशीन में काम करना अत्यंत कठिन है। यदि हमने किया भी तो उसमें हम अपने व्यक्तित्व का उज्ज्वलतम स्वरूप प्रकट नहीं कर सकेंगे। इस विचार से भी हमारे लिए उद्योगों की वही प्रणाली उपयुक्त है, जिसमें हम कुटुंब के आधार पर काम को जीवन का अंग बनाकर चल सकें। इसमें मालिक-मज़दूर, उत्पादक-उपभोक्ता आदि के संबंधों का ठीक-ठीक निर्धारण हो सकेगा। हम इन संबंधों का नियमन पश्चिम के मूल्यों से नहीं कर सकते। उन्होंने कटुता निर्माण कर दी है। फैक्टरी एक्ट, वेजेज एक्ट आदि सभी क़ानून पश्चिम की नक़ल करके बनाए गए हैं। वे उद्योगपति को उसी रूप में देखते हैं, जिसमें वह अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में ब्रिटेन व यूरोप के अन्य देशों में प्रकट हुआ तथा जिस रूप में कार्ल मार्क्स ने उसे चित्रित किया। भारत के कतिपय उद्योगपतियों ने भी पश्चिमी उद्योगों की परंपरा को भारत में चलाने के लिए उनका ही बाना धारण किया होगा, किंतु देश के व्यापक औद्योगीकरण में मानव-संबंधों का निर्माण हमें अपने ही मूल्यों पर करना होगा। छोटे उद्योगों से हम उनका स्वरूप निश्चित कर पाएँगे।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

9

माल, माँग और औद्योगिक प्राथमिकताएँ

आयात निर्भरता

औद्योगीकरण का अर्थ है कच्चे माल का विधायन करके उससे उपभोग योग्य वस्तुओं को तैयार करना। कच्चा माल और पक्के माल की माँग ही औद्योगीकरण के स्वरूप और मात्रा को निश्चित करते हैं। कच्चे माल के लिए व्यक्ति की दृष्टि स्वाभाविक तौर पर अपने आसपास की प्रकृति संपदा एवं कृषि उत्पादन पर जानी चाहिए। किंतु निर्मित वस्तुओं के जो स्वरूप पश्चिम में निश्चित हैं, उनसे ही बँधे रहने के कारण तथा निर्माणविधि का पूरा ज्ञान न होने के कारण हम अभी तक अपनी संपूर्ण संपत्ति का ठीक-ठीक उपयोग नहीं कर पाए हैं। प्रत्युत हमारा औद्योगीकरण अपने कच्चे माल का उपयोग न करके विदेशों से आयातित कच्चे अथवा अर्ध निर्मित माल के आधार पर चल रहा है। वैसे तो आज के आधुनिक उद्योगों में एकाध ही निकलेगा, जो अपने कच्चे माल की संपूर्ण आवश्यकताएँ देश में पूरा कर लेता हो किंतु जो उद्योग भारत में निर्मित माल के पर्याय या पूरक के रूप में उत्पादन करने के हेतु स्थापित हुए हों, उनकी परनिर्भरता तो बहुत खलती है। प्लास्टिक और रेयन ऐसे उद्योग हैं। इनको बहुतांश में अभी तक मशीनों के लिए ही नहीं, कच्चे माल के लिए भी विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है। भारत में यद्यपि काफ़ी तेल पैदा किया जा सकता है, किंतु साबुन के लिए तेल हमें बाहर से ही मँगाना पड़ता है। लंबी रेशे के कपास और जूट के लिए भी देश के विभाजन के बाद हम आत्मनिर्भर नहीं रहे। हम रेडियो तो ख़ूब बना रहे हैं किंतु उसके 90 प्रतिशत हिस्से बाहर से लाकर लगा देते हैं। ड्राइबैटरियों में 78 प्रतिशत और बिजली के बल्बों में 90 प्रतिशत आयात निर्भरता है। 1956-57 में हमें 138.73 प्रतिशत माल बाहर से मँगाना पड़ा। इसके अतिरिक्त लगभग 200 करोड़ रुपए का अर्धनिर्मित माल हम बाहर से मँगाते हैं।

हमारी इस अत्यधिक आयात निर्भरता का कारण उद्योग-धंधों में पूरी तरह विदेशी अनुकरण है। अनेक उद्योग जो विदेशी कंपनियों ने भारत में खोले हैं, वे बहुत सा कच्चा

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

माल भी बाहर से मँगाते हैं, जैसे साबुन और रंग का उद्योग। हाल के कुछ उद्योग केवल बाहर से माल लाकर उनका पैकिंग या एकत्रीकरण मात्र यहाँ करते हैं। दूसरी ओर यद्यपि देश के लिए तेल और खली दोनों की ही हमें नितांत आवश्यकता है, फिर भी हम उसे बराबर भारी मात्रा में बाहर भेजते जा रहे हैं। चमड़ा सिझाने के लिए अभी तक हम वाटल छाल को दक्षिण अफ्रीका से मँगा रहे हैं। यदि हम अपने पुराने उद्योगों का आधार बनाकर विकास का मार्ग निश्चित करेंगे तो फिर उल्टे बाँस बरेली को भेजने वाली उक्ति चरितार्थ नहीं होगी। जिन वस्तुओं का हम सर्वाधिक उत्पादन करते हैं, उनका विधायन करके हम एक प्रभावी स्थिति प्राप्त कर सकते हैं। दूसरे हम जिन साधनों से अनेक वस्तुएँ निर्माण करते आए हैं या तो उन्हें ही विकसित करेंगे अथवा उनके उपयुक्त पर्याय देश में ही ढूँढ़कर निकालेंगे। विदेशों से माल लाकर उनका थोड़ा-बहुत विधायन हमारे देश की समस्या का हल नहीं कर सकता।

खेत और कारख़ानों की दूरी

देश के अंदर भी कच्चे माल और उनके कारख़ानों का हमने ठीक मेल नहीं बिठाया है। बहुत से कारख़ाने विभिन्न ऐतिहासिक कारणों से बंबई और कलकत्ता के आसपास खुल गए हैं। अर्थात् जहाँ माल है, वहाँ कारख़ाने खोलने के स्थान पर हमने जहाँ कारख़ाने हैं, वहाँ माल ढोने की नीति अपनाई है। इसका परिणाम एक ओर तो देश का अत्यंत ही असंतुलित औद्योगीकरण तथा दूसरी ओर बिचौलियों की बढ़ती में हुआ है। कच्चे और पक्के माल के मूल्यों के बीच तालमेल भी इस कारण नहीं बैठ पाता। हम यदि इन सभी दृष्टियों से विचार करेंगे तो हमें औद्योगीकरण का जाल विकेंद्रीकरण के आधार पर सभी प्रदेशों एवं ग्राम-ग्राम में फैलाना होगा।

माँग

विदेशों में नए बाज़ारों की खोज

माँग और उद्योगों का जहाँ ठीक-ठीक संबंध हो जाता है, वहाँ एक संतुलित अर्थव्यवस्था रहती है। साधारणतया जिस चीज़ की माँग हो, उसे पैदा करना चाहिए, किंतु आजकल बाज़ार ढूँढ़ने, लोगों की अभिरुचि को समझने और परखने के अतिरिक्त विज्ञापन एवं प्रचारतंत्र के सहारे बाज़ार बनाने, लोगों की अभिरुचि निर्माण करने और बदलने पर भी बल दिया जाने लगा है। अतः हमें देश में जिन चीज़ों की माँग है, उनके लिए उद्योग प्रारंभ करने के साथ ही जिन चीज़ों को हम पैदा करते हैं उनके लिए नए-नए बाज़ार बनाने की भी चिंता करनी होगी। हमने पश्चिम के प्रचारतंत्र से अपनी अभिरुचि तो बदल दी और इस प्रकार अपने उद्योग-धंधों के लिए देश का बाज़ार

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

समाप्तप्राय कर दिया; किंतु इस बात का प्रयास नहीं किया कि इन उद्योगों के लिए हम दूसरा बाज़ार ढूँढ़ निकालें। यदि प्रयास किया जाए तो पश्चिम के देशों में बहुत बड़ी माँग हमारी वस्तुओं के लिए उत्पन्न की जा सकती है। मनुष्य स्वभाव से कभी एक ही प्रकार की वस्तु पसंद नहीं करता। यदि आज हम मानव हस्तकौशल और दक्षता के परिणामस्वरूप कलापूर्ण, विविधता भरी, कृतियों की सुंदरता से विमुख हो मशीनों की एकरूपता की ओर झुके हैं तो पश्चिम में निश्चित ही इसकी प्रतिक्रिया उत्पन्न होकर मशीन से मानव की कृति का प्रेम उत्पन्न होगा। हमें अपने बाज़ारों का विकास करना होगा।

देश में व्यापक बाज़ार

विदेशों में हम नए-नए बाज़ार खोजते और बढ़ाते रह सकते हैं, किंतु यह सत्य है कि वहाँ की माँग के आधार पर हम अपने देश के सुदृढ, टिकाऊ औद्योगिक ढाँचे को नहीं खड़ा कर सकते। हमारे कार्यक्रम का मुख्य आधार तो हमारे देश का बाज़ार ही हो सकता है। भारत इतना विशाल देश है तथा इसकी जनसंख्या इतनी अधिक है कि वह स्वयं तक आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था का आधार बन सकता है। हमारी माँग ही कोई कम नहीं है।

माँग और उत्पादन का मेल

जब हम देश की माँग का विचार करते हैं तो हमें मनुष्य की (1) प्राथमिक और इसलिए मुख्यत: आय निरपेक्ष (income inelastic) तथा (2) बढ़ती हुई आय के साथ पैदा होने वाली माँगों का विचार करना होगा। उत्पादन की पद्धति, वित्तसंचय एवं कराधान, वितरण-व्यवस्था, सामाजिक विधान और रहन-सहन में परिवर्तन, इन कारणों से भी कुछ माँगों में बदल होता है। हमें इनका ध्यान रखकर ही अपना कार्यक्रम बनाना चाहिए। जब लोगों को रोटी और कपड़े की माँग हो उस समय हम रेडियो सेट और झूठे मोती बनाने का उद्योग प्रारंभ करें तो उचित नहीं होगा। यदि आय के बढ़ने के कारण मोटे कपड़े के स्थान पर बढ़िया कपड़े की माँग है तो हमें पैदा करना होगा। शहर-प्रधान उत्पादन प्रणाली अपनाकर हमें नगरों में लगने वाली वस्तुओं का उत्पादन करना ही होगा। अर्थव्यवस्था के संपूर्ण ढाँचे का अभिन्न एवं अंतर्संबंध होने के कारण हमें अपनी प्रत्येक योजना का माँग पर होने वाला परिणाम दृष्टि में रखना होगा। उसकी घट-बढ़ के अनुसार ही हमें उपाय योजना करनी होगी। अत: जहाँ उद्योगों के स्वरूप के निर्धारण में श्रम, शक्ति, पूँजी और प्रबंध आदि को ध्यान में रखना होता है, वहाँ बाज़ार का विचार भी आवश्यक है। वास्तव में तो माँग रही तो फिर सब खेल ज़माने की ज़रूरत है, यदि वह नहीं तो केवल उद्योगों के लिए ही उद्योग तो स्थापित नहीं किए जा सकते। औद्योगीकरण के कार्यक्रम की सफलता इसमें भी है कि वह किसी भी स्तर पर तथा किसी भी क्षेत्र में माँग की पूर्ति

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

न कर सकने के कारण संकीर्णता (Bottleneck) तथा बिना माँग के उत्पादन के कारण मंदी (Depression) की स्थिति उत्पन्न न कर दे। इसके लिए हमें औद्योगिक कार्यक्रम की प्राथमिकताओं का विचार करना होगा।

उद्योगों के प्रसार

उद्योग-धंधों को हम इन तीन वर्गों में बाँट सकते हैं—(1) उपभोग वस्तु उद्योग, (2) उत्पादन वस्तु उद्योग, (3) मूल उद्योग। प्रथम श्रेणी में वे उद्योग आते हैं, जो मनुष्य के उपभोग में आने वाली वस्तुएँ, जैसे कपड़ा, साबुन, माचिस आदि पैदा करते हैं। दूसरी श्रेणी में वे उद्योग हैं, जो उन चीज़ों को पैदा कराते हैं, जिनसे उत्पादक वस्तुएँ बनती हैं अथवा जो उनके बनाने में प्रयुक्त होते हैं, जैसे सूत, टायर-ट्यूब, पेंसिल का लेड, मशीनें आदि। आधारभूत उद्योग वे हैं, जिनके सहारे उपभोग या उत्पादक वस्तुएँ बनती हैं। बिजली, लोहा, इस्पात, भारी रसायन आदि इसके अंतर्गत आते हैं। कुछ जनोपयोगी सेवाएँ रेल आदि भी इसी में शामिल हैं। यह वर्गीकरण मोटा-मोटा है। एक ही वस्तु एक स्थान पर उत्पादक वस्तु हो सकती है तो दूसरे पर उपभोग। साधारणतया विचार किया जाए तो आधारभूत उद्योग का पहला स्थान आता है, क्योंकि जब तक वे नहीं होंगे, बाक़ी उद्योग चल ही नहीं सकेंगे। उसके उपरांत उत्पादक वस्तुएँ और सबसे अंत में उपभोग वस्तुएँ बनाना, यही क्रम सामने आता है। किंतु जब हम माँग का विचार करते तो सबसे अधिक माँग उपभोग वस्तुओं की है। इतना ही नहीं तो वह बराबर बढ़ भी रही है। आधारभूत और उत्पादक उद्योगों में जिनको काम देते हैं, उनकी आय में वृद्धि होने के कारण उनकी माँग और बढ़ जाती है। इस बढ़ी हुई माँग को यदि पूरा करके योग्य उपभोग वस्तुओं का अभाव रहा तो मूल्य बढ़ जाएँगे। इसका परिणाम उत्पादक और आधारभूत उद्योगों के उत्पादन व्यय पर पड़ेगा, जो कि आगे चलकर उपभोग वस्तुएँ बाज़ार में आएँगी, तब तक मूल्य स्तर, जो कि स्फीतिजनक होगा, इतना बढ़ चुका होगा कि साधारणजन के लिए एक समस्या पैदा हो जाएगी। आधारभूत उत्पादनों का मूल्य तो उपभोग प्रकार निरपेक्ष है, किंतु उत्पादक वस्तुएँ सदैव प्रचलित अभिरुचि एवं फ़ैशन से सापेक्षिक संबंध रखती हैं। जब हम छुआछूत के कारण काँच के और चीनी के बरतनों का प्रयोग नहीं करते थे, उस समय बड़े पैमाने पर काँच के कारख़ाने खोलना हितावह नहीं होता। अत: ऊपर से स्वाभाविक दिखने वाली इन प्राथमिकताओं में हमें बदल करना होगा।

उपभोग वस्तुओं को प्राथमिकता

हमने कृषि उत्पादन की वृद्धि तथा कृषि पर से भार कम करने की आवश्यकता को अनुभव किया है। हमने यह भी स्वीकार किया है कि किसान हमारा प्राथमिक उत्पादक

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ही नहीं, वह हमारे मुख्य बाज़ार का क्रेता भी है। हम यदि उससे विपणनीय अतिरेक चाहते हैं तो हमें उसकी माँग पूरी करनी होगी। इस दृष्टि से कृषि के लिए उत्पादक वस्तुएँ तथा किसान की उपभोग-वस्तुओं का उत्पादन हमारी प्रथम आवश्यकता है। इन वस्तुओं के उत्पादन में लगे हुए लोगों तथा शेष के लिए भी हमें उपभोग-वस्तुओं का उत्पादन करना होगा, क्योंकि संपूर्ण बाज़ार को हम कृषक और ग़ैर-कृषक इस आधार पर नहीं बाँट सकते। इतने व्यापक बाज़ार की माँग पूरा करने वाले उद्योग हमने खड़े कर दिए तो हम अधिकांश लोगों को काम दे सकेंगे। किंतु प्रश्न उपस्थित होगा कि इन उद्योगों को खड़ा करने के लिए हम उत्पादक मशीनें आदि कहाँ से लाएँ। यदि हम कोरी स्लेट पर लिखते होते तो हमारे लिए यह बड़ी कठिनाई थी, किंतु हमारे देश में पहले से ही उपभोग-वस्तुओं का निर्माण करने वाले बहुत से उद्योग हैं। शासन अपनी विभिन्न नीतियों से उन्हें योग्य प्रोत्साहन प्रदान कर सकता है। कुछ अंशों तक उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हम आयात पर निर्भर रह सकते हैं, क्योंकि हम उस अर्थनीति की कल्पना करके नहीं चले, जिसमें अंतरराष्ट्रीय व्यापार से हमारा कोई संबंध न हो।

उत्पादक एवं मूल उद्योग

उपभोग-वस्तुओं के उद्योग के व्यापक प्रसार के साथ-साथ उत्पादक वस्तुओं के उद्योग स्वत: विकसित होते जाएँगे। आवश्यकतानुसार उन्हें संरक्षण आदि की सुविधाएँ दी जा सकती हैं। हाँ, आधारभूत उद्योगों में से कुछ को तो हमें जल्दी से जल्दी पूरा करना चाहिए तथा कुछ के लिए हम एक लंबी अवधि का कार्यक्रम बनाकर चल सकते हैं। ये उद्योग पूँजी प्रधान होने के कारण एकबारगी प्रारंभ नहीं किए जा सकते। बिजली प्रथम वर्ग में आती है तथा इस्पात, भारी रसायन आदि दूसरे वर्ग में। हम यह न मान लें कि इन उद्योगों को हम अभी टालकर किसी एक ही पंचवर्षीय योजना के अंदर पूरा कर लेंगे। किसी भी एक समय इन पर एकांगी भार कठिनाई पैदा कर देगा। हाँ, उपभोग उद्योगों का अधिक विस्तार होने तथा देश की प्राविधिक कुशलता आदि के बढ़ाने के कारण वह सुवह्य हो सकता है। वांछित तो यह है कि चालीस वर्षों का इस संबंध में कार्यक्रम बनाकर थोड़े से प्रारंभ कर उत्तरोत्तर बढ़ाते जाएँ। हर समय उपभोग वस्तुओं पर बल अधिक रहे। सब लोगों को काम मिलने तथा उनकी आय के अंतर्गत ही उपभोग वस्तुओं के सुलभ होने के कारण वे अपना जीवनस्तर ऊँचा उठा सकेंगे। उनके पास जो थोड़ा-बहुत बचे उसके अधिपोषण की व्यवस्था रही तो वित्त संचय बढ़ता जाएगा। छोटे-छोटे उद्योगों में पूँजी लगाने की उन्हें स्वयं भी सुविधा रहेगी। वित्त की वृद्धि के साथ हम अधिक पूँजी प्रधान उद्योगों की स्थापना कर सकेंगे। प्राविधिक एवं प्रबंध संबंधी योग्यता भी बढ़ती जाएगी तथा ऐसा कोई समय नहीं आएगा, जबकि उत्पादित वस्तु के लिए

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बाज़ार न मिलें, क्योंकि वह तो बढ़ती हुई आय और रोज़गारी के साथ बढ़ेगा ही। आज हमने एक पूँजी प्रधान योजना हाथ में ली है, जिसके परिणामस्वरूप एक ओर मुद्रास्फीति के मूल्य बढ़ रहे हैं तो दूसरी ओर कपड़े और सीमेंट का स्टाक जमा होता जा रहा है, यद्यपि लोग नंगे और आवासहीन घूमते हैं।

पूँजी प्रधान भारी उद्योगों को चलाने के लिए परिवहन आदि की व्यवस्था भी बड़े पैमाने पर करनी पड़ती है। फल यह होता है कि पूँजी की दुर्लभता और भी बढ़ती जाती है। पूँजी और देश के अन्य साधन जब इन कुछ भारी उद्योगों के लिए ही पूरे नहीं पड़ते तो शेष उद्योगों के सम्मुख साधनों का उत्तरोत्तर अभाव होता जाता है, जिसमें उनका विकास अवरुद्ध हो जाता है। समाज को इस प्रकार भारी मूल्य चुकाना पड़ता है।

सुरक्षा और भारी उद्योग

भारी और आधारभूत उद्योगों का सुरक्षा की दृष्टि से अवश्य महत्त्व है। आधुनिक शस्त्रास्त्र के लिए वे अपरिहार्य हैं। किंतु किसी भी देश की सुरक्षा केवल शस्त्रास्त्रों से नहीं होती। अन्न, वस्त्र आदि की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति की ओर दुर्लक्ष्य करके सुरक्षा की तैयारी नहीं की जा सकती। इन उद्योगों को खड़ा करने में ही यदि हमने अपने साधन लगा दिए तो युद्ध के समय तो हमारी स्थिति और नाजुक हो जाएगी। इसलिए सुरक्षा का विचार भी हम यथार्थवादी एवं सर्वतोमुखी दृष्टिकोण से करें।

भारी उद्योगों के लिए भारी बलिदान

सुरक्षा के समान ही कई बार प्रतिष्ठा की भावना से भी भारी उद्योगों का कार्यक्रम हाथ में लिया जाता है। यह विश्वास किया जाता है कि भारी उत्पादक और आधारभूत वस्तुओं की उत्पादन क्षमता हमें विश्व की आँखों में ऊँचा उठा देगी। किंतु ये सब कारण अर्थशास्त्र की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। इन्हें पूरा करने के लिए न केवल हमें अधिक दिनों तक अपने जीवनस्तर को नीचा रखना पड़ेगा बल्कि राजनीतिक क्षेत्र में भी प्रजातंत्र के सिद्धांतों की बलि देनी होगी। इस कार्यक्रम की सफलता केवल सोवियत मूल्यों की स्थापना और वहाँ जैसे नेतृत्व के प्रादुर्भाव और मान्यता पर ही नहीं अपितु उत्पादन और उपभोग और व्यापक नियंत्रण के सफल व्यवहार की संभावनाओं पर निर्भर करती है। जब तक यह नहीं होता और जब तक निजी क्षेत्र में उत्पादन की छूट तथा उपभोग-स्वतंत्रता विद्यमान है, तब तक पूँजी प्रधान उत्पादन के क्षेत्र में भारी वृद्धि का परिणाम मुद्रास्फीति और अंत में संपूर्ण योजना का विस्फोट ही होगा।

भवतोष दत्त : द इकोनॉमिक्स ऑफ इंडस्ट्रियलाइजेशन, पृष्ठ 170

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

10

छोटे और बड़े उद्योग

बड़े उद्योगों की अनुपयुक्तता

औद्योगीकरण के लिए आवश्यक उत्पादनों और उनकी प्राप्तव्यता तथा प्राथमिकताओं का विचार करते हुए हम इस निष्कर्ष पर सहज ही पहुँचते हैं कि भारत के लिए छोटे-छोटे उद्योग ही सर्वाधिक उपयुक्त हैं। भारी और बड़े उद्योग हम चाहे जिस दृष्टिकोण से देखें, हमारे सम्मुख समस्याएँ सुलझाने के स्थान पर पैदा अधिक कर देते हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि :

1. भारतीय परंपरा प्राप्त अर्थव्यवस्था से असंबद्ध होने के कारण वे कभी जीवमान समाज के साथ समरस नहीं हो सकते।
2. इनकी प्रतिष्ठापना से बहुतांश में परंपरागत उद्योगों का विकास या पुनर्संस्थापन न होकर विनाश और विस्थापन ही होता है। वे प्रचलित के पूरक नहीं अपितु उनका उत्थापन कर विस्थापन स्थान ग्रहण करते हैं।
3. उनके द्वारा भारत में प्रत्येक को काम देने की व्यवस्था नहीं हो पाती, बल्कि वे प्रौद्योगिक बेरोज़गारी (Technological unemployment) को बढ़ाते ही हैं।
4. वे पूँजी प्रधान हैं; अतः भारत में सामर्थ्य के बाहर हैं।
5. उनकी आयात निर्भरता अधिक है। फलतः वे हमारे भुगतान संतुलन पर भारी बोझा डालते हैं।
6. भारत में उपलब्ध प्रबंध और श्रमिक प्रशिक्षा उनके साथ मेल नहीं खाती।
7. वे श्रमिक को कुटुंब, कुल, जाति और ग्राम समाज से उच्छेद कर एक नवीन, कृत्रिम, बोझिल, मानवमूल्य विरहित वातावरण में खड़ा कर देते हैं। इस वातावरण

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

में मानव मज़दूर भर रह जाता है। उसके शेष सभी मूल्यों का विनाश होकर वह अपने व्यक्तित्व का विकास करने के स्थान पर विकृतियों का शिकार बनता है। भारत की संस्कृति का उनसे मेल नहीं खाता।

8. इन उद्योगों का सामाजिक मूल्य बहुत अधिक चुकाना होता है। नगरीकरण के परिणामस्वरूप स्वास्थ्य, आवास आदि की व्यवस्था भारी व्यय करके भी संभव नहीं हो रही।
9. भारी उद्योगों वाली उत्पादन प्रणाली जटिल एवं विविध प्रकार की संस्थागत व्यवस्थाओं (Institutional arrangements) पर निर्भर रहने के कारण एकबारगी हमारे दुर्लभ साधनों पर भारी बोझा डाल देती है, जिससे स्थान-स्थान पर अभावजन्य संकट (bottlenecks) उत्पन्न हो जाते हैं।
10. भारी उद्योग आशुफलदायी नहीं होते। अत: जहाँ भार सहन करने का सामर्थ्य कम हो, वहाँ वे उपयुक्त नहीं रहते। उनमें लगाई गई पूँजी का गुणक प्रभाव (Multiple effect) भी कम रहता है।
11. भारी उद्योगों और कृषि का निकट का संबंध नहीं बैठाया जा सकता। दोनों के बीच की दूरी अनेक मध्यजीवियों को जन्म देती है।
12. औद्योगिक श्रम संगठनों और नियमों की आज की स्थिति ने भारत में श्रम को महँगा एवं उत्तरदायी बना दिया है। वेतन वृद्धि का औचित्य माना जा सकता है। किंतु उत्पादकता में वृद्धि के अभाव में भार उपभोक्ता पर सरका दिया जाता है। वास्तव में तो धीरे-धीरे ऐसी स्थिति निर्माण हो रही है, जहाँ औद्योगिक पूँजी और श्रम मिलकर उपभोक्ता का शोषण कर सकेंगे।
13. भारत में कृषि के श्रम प्रधान होने के कारण तथा खेती के कुछ कामों के लिए भारी संख्या में श्रमिकों की आवश्यकता होने की वजह से गाँव के मज़दूर वर्ग को हटाकर शहरों में ले जाना कृषि पर परिणाम करेगा। शहरों में उद्योग-धंधों में आने वाला वर्ग गाँव का सबसे अच्छा और स्वस्थ वर्ग रहेगा। गाँवों में संख्या और गुण दोनों में ही पिछड़े हुए समाज से कृषि उत्पादन में तेज़ी से वृद्धि की आशा करना आकाश कुसुमवत् होगा।
14. जिन परिस्थितियों में पश्चिम के देशों ने बड़े उद्योगों की स्थापना की वे आज हमें उपलब्ध नहीं हैं। उनके पास उपनिवेशों के विस्तृत बाज़ार थे, जहाँ वे पक्का माल बिना किसी प्रतियोगिता के बेच सकते थे तथा कच्चा माल और खाद्य सस्ते भाव पर ख़रीद सकते थे; मज़दूरों को कम तनख़्वाह पर रखकर भारी मात्रा में पूँजी संचय कर सकते थे। इस पर भी उन्हें विकास में डेढ़ सौ वर्ष लगे। इस क्रमिक विकास में ऐसा कोई अवसर नहीं आया जब निकटभूत और आने वाले

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भविष्य के आर्थिक ढाँचे में उत्पादन, वितरण और उपभोग की व्यवस्थाओं में काफ़ी और मौलिक अंतर रहा हो। यूरोप की औद्योगिक क्रांति आज जो क्रांति हम करने जा रहे हैं, उसकी तुलना में राजा भोज के सामने गंगू तेली जैसी है।

15. बड़े उद्योगों में सदैव एक स्थान पर केंद्रीकरण की प्रवृत्ति रहती है। भारत में आज संगठित उद्योगों में काम करने वाले श्रमिकों का 77 प्रतिशत बंगाल, बंबई और मद्रास में हैं। इन प्रदेशों में भी संपूर्ण जमघट बंगाल, बंबई और मद्रास नगरों में है। पिछले सात वर्षों में जो-जो कंपनियाँ पंजीकृत हुई हैं, उनमें का अधिकांश इन्हीं राज्यों में है। इससे सार्वदेशिक एवं विस्तृत विकास के मार्ग में सदैव बाधा पड़ती है। बहुधा ऐतिहासिक कारणों से यह स्थानीकरण (localisation) होने के कारण इसमें आर्थिक लाभों का भी विचार नहीं किया जाता। भूमि पर जहाँ भार अधिक है, वहाँ उद्योगों का प्रारंभ न होकर व ऐसी जगह होते हैं, जहाँ या तो औद्योगीकरण के विशाल कार्यक्रम के लिए पर्याप्त भूमि उपलब्ध है अथवा बड़े-बड़े नगरों के पास सभी आधुनिक सुविधाएँ प्राप्त हैं। राजस्थान, उड़ीसा, आसाम, बिहार, उत्तर प्रदेश, पंजाब, आंध्र (तेलंगाना), मैसूर और सौराष्ट्र, जहाँ देश के श्रमिक वर्ग का दो-तिहाई से अधिक रहता है, उपेक्षित ही रहे हैं।
16. स्थानीकरण सुरक्षा की दृष्टि से बहुत हानिकारक सिद्ध होता है। उसके लिए विकेंद्रीकरण आवश्यक है। राजनीतिक दृष्टि से भी देश के कुछ भागों का विकास शेष में असंतोष उत्पन्न कर एकता और राष्ट्रीयता के लिए ख़तरा पैदा कर सकता है।
17. स्थानीकरण से देश के यातायात के साधनों पर बहुत भार पड़ता है। वे शांति के समय ही माल को इधर से उधर पूरी तरह से नहीं ढो सकते, युद्धकाल में तो समस्या दुहरी हो जाएगी।

इन आर्थिक एवं अन्य कारणों के अतिरिक्त हमें अपने आधारभूत लक्ष्यों का भी विचार करना होगा। विकेंद्रीकरण हमने सिद्धांत रूप से स्वीकार किए हैं। बड़े-बड़े उद्योग इन दोनों के विरोध में जाते हैं। इनसे समाज में शक्ति के केंद्रीकरण एवं विषमता की प्रवृत्ति बढ़ती है।

विषमता

बड़े उद्योगों के परिणामस्वरूप ऐसे शक्तिशाली आर्थिक गुट तैयार हो गए हैं, जो अनेक देशों की राजनीति पर भी क़ब्ज़ा करके बैठे हैं। प्रेसीडेंट रुजवेल्ट ने 1933 में कहा था—"संयुक्त राज्य अमरीका की 12.4 करोड़ आबादी में केवल 600 निगम देश के दो-तिहाई आर्थिक जीवन पर नियंत्रण करते हैं तथा शेष 1 करोड़ छोटे व्यापारी बाक़ी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

एक-तिहाई के भागीदार हैं।'' भारत में भी स्थिति इससे भिन्न नहीं। 1924 में प्रो. शाह और खंबागा ने हिसाब लगाया था कि भारत की आय में से यदि 900 रुपए बाँटे जाएँ तो 33 रुपए धनिक वर्ग के एक व्यक्ति के पास चले जाएँगे, 33 मध्यम वर्ग के व्यक्तियों के पास तथा शेष 34 रुपया काम करने वाले 66 लोगों के पास पहुँचेंगे। अर्थात् श्रमिक और मध्यम वर्ग की आय में 1 : 2 का अनुपात है तो श्रमिक और धनिक वर्ग की आय में 1 : 66 का अंतर है। तबसे यह स्थिति सुधरी नहीं अपितु बिगड़ी ही है। 1951-52 में आय कर देने वाले साढ़े-छह लाख व्यक्तियों की आय 582 करोड़ कूती गई थी। देश की कुल आय का अनुमान 9550 करोड़ था। इस प्रकार देश की 6 प्रतिशत आय केवल 0.45 प्रतिशत लोगों की ज़ेबों में गई। सन् 1955-56 में आयकर देने वालों की कुल आय 784.91 करोड़ रुपए आँकी गई, जबकि उनकी संख्या केवल 5 लाख 27 हज़ार 737 थी। अर्थात् जहाँ आय में वृद्धि हुई है, वहाँ आय--कर देने वालों की संख्या में कमी हुई है। 5 लाख से ऊपर की आय वालों की संख्या केवल 877 है तथा उनकी आय 161.78 करोड़ रुपए थी। आय-कर, सुपर कर आदि देकर भी यह आय 85.47 करोड़ रुपया बच रहती है, जिसका प्रति व्यक्ति औसत 9 लाख 60 हज़ार आता है, जबकि राष्ट्रीय आय का औसत केवल 252 रुपए है। यह भी हम भलीभाँति जानते हैं कि आयकर में, और वह भी ऊँची श्रेणियों में, भारी चोरी होती है। पहली पंचवर्षीय योजना की अवधि में आयकर के लिए निर्धारित आय कुल राष्ट्रीय आय के 6 प्रतिशत से बढ़कर 8 प्रतिशत हो गई, अर्थात् यह वृद्धि 36.5 प्रतिशत है, निर्धारित कर केवल 17.4 प्रतिशत ही बढ़ा, जबकि वसूली 3 प्रतिशत कम रही। उक्त आय का जब हम व्यवसायों के अनुसार वर्गीकरण करते हैं तो व्यापार, परिवहन और यातायात में कर निर्धारितियों की संख्या 59 प्रतिशत है तथा कर-निर्धारण 44 प्रतिशत है। 1952-53 से इस वर्ग की आय में 14 प्रतिशत की वृद्धि हुई है, किंतु व्यक्तियों की संख्या में कमी हुई है। स्पष्ट ही आय का केंद्रीकरण बढ़ा है।

केंद्रीकरण

इस विषमता का हम ठीक-ठीक अंदाजा तो तब लगा सकेंगे, जब इस भारी आय को प्राप्त करने वालों के साधनों का पता चलाएँगे। एक-एक व्यक्ति या मैंनेजिंग एजेंसी एक से अधिक कारख़ानों पर नियंत्रण करते हैं। ब्रिटेन की यूनीलिवर कंपनी का प्रभाव-क्षेत्र 43 देशों में 500 कंपनियों के ऊपर फैला हुआ है। भारत में यद्यपि इतने बड़े उद्योगपति नहीं हुए किंतु धीरे-धीरे प्रगति उस ओर ही है। श्री एम.एम. मेहता ने देश में होने वाले इस केंद्रीकरण का अध्ययन करके अपनी पुस्तक 'स्ट्रक्चर ऑफ इंडियन इंडस्ट्रीज़' में यह साधार मत प्रतिपादन किया है कि देश में छोटी इकाइयों को समाप्त

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

करके उद्योगों का कुछ हाथों में केंद्रीकरण एवं बृहदाकारीकरण होता जा रहा है। इतना ही नहीं, उत्पादन के क्षेत्र में अनेक उद्योगों में इतना अधिक केंद्रित सामर्थ्य है कि उनका एक प्रकार से एकाधिपत्य ही है। इसका कुछ अनुमान निम्न तालिका से लगाया जा सकता है—

भारत में उत्पादन क्षमता के केंद्रीकरण

उद्योग	कुल	केंद्रीकरण	
	इकाइयाँ	इकाइयाँ	उत्पादन
1. बॉल बेअरिंग	1		कुल का प्रति.
2. सूती मिलों की मशीनें	22	10	71.69
3. मशीन स्क्रू	9	3	93.15
4. ऑयल प्रेशर लेंप्स	10	3	85.47
5. चॉकलेट कवर	3	1	99.18
6. अल्युमिनियम शीट्स	3	1	88.78
7. बाइसिकल	12	4	76.91
8. मोटर में हवा भरने के पंप	5	1	75.85
9. प्लाइवुड	66	13	52.46

उद्योगों और आर्थिक सामर्थ्य का यह केंद्रीकरण पाश्चात्य उत्पादन प्रणाली की प्रकृति के अनुसार ही है। हम यदि उसे ही आधार बनाकर चलेंगे तो हमें समानता और न्याय की बातें छोड़ देनी चाहिए। विषमताओं को स्वीकार कर कराधान आदि से जितना हम सामाजिक सेवाओं के द्वारा उसे कम कर सकें, उससे संतोष मानना चाहिए। फिर जैसा कि इटली के अर्थशास्त्री लोग़िया ने एक बार चुभते शब्दों में कहा कि "कुछ लोग बिना काम के जीते हैं तो कुछ काम करते हुए भी नहीं जीते।"[2] यदि हम अपने देश में भी अनुभव करें तो हमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

कराधान और विषमता

शासन आज विभिन्न प्रकार के कर लगाकर इस विषमता को मिटाने का दावा करता है। किंतु भारी औद्योगीकरण और उसका यह दावा साथ-साथ नहीं चल सकता। वास्तविकता तो यह है कि पूँजी प्रधान योजनाओं के लिए यदि धन चाहिए तो वह बड़े-बड़े उद्योगपतियों के पास छोड़ना ही होगा। यह तो सच है कि पिछले पाँच वर्षों में शासन

1. देखिए : दी इंडियन इकोनॉमिक जरनल, अक्तूबर 1955
2. Some live without working and others work without living.

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ने जो भिन्न-भिन्न प्रकार के टैक्स लगाए हैं। उनसे पूँजीपतियों की तकलीफें बढ़ गई हैं, किंतु उनसे उनकी आय पर विशेष परिणाम नहीं हुआ। सन् 1952-53 में प्रत्यक्ष करों की आमदनी 186.99 करोड़ रुपया थी। 1956-57 में यह बढ़कर 207.44 करोड़ रुपया हुई। श्री टी.टी. कृष्णामचारी के कमरतोड़ बजट (1956-58) के संशोधित आँकड़ों के अनुसार यह आय 224.50 करोड़ रुपए होती है। किंतु जब इसकी तुलना अप्रत्यक्ष करों, जिनका अधिकांश भार जनता पर पड़ता है, से करें तो केंद्र में यह आय 1952-53 में 257.05 करोड़ रुपए 1956-57 में 365.40 करोड़ रुपया तथा 1957-58 के संशोधित आँकड़ों के अनुसार 457.12 करोड़ रुपए है। यदि इनमें हम राज्य सरकारों के आँकड़े और जोड़ दें तो 1957-58 में 246.87 अप्रत्यक्ष करों से तथा 87.69 करोड़ रुपया भू-राजस्व से प्राप्त किए जाने के संशोधित अनुमान हैं। अर्थात् सामान्य जन के ऊपर केवल करों के रूप में 791.68 करोड़ रुपए का भार पड़ता है, जबकि प्रत्यक्ष करों का भार 224.50 करोड़ रुपए + 6.77 करोड़ रुपए (कृषि आयकर) अर्थात् कुल 231.27 करोड़ रुपए था। हमने दोनों वर्गों की आयों में अंतर देखा है। उसके हिसाब से निश्चित ही धनिक वर्ग की आय बढ़ रही है। उस पर प्रतिशत करों का बोझा कम हो रहा है। हमें यह भी स्मरण रखना होगा कि प्रत्यक्ष करों का बहुत सा भार मध्यम वर्ग के लोगों को भी वहन करना पड़ता है। अत: यदि हम विषमताओं को कम करना चाहते हैं तो हमें कुछ अन्य उपायों का अवलंबन करना होगा।

औद्योगीकरण की इस पूँजी प्रधान पद्धति के कारण शासन ने प्रथम योजना की अवधि में और बाद में भी उद्योगपतियों को अनेक सुविधाएँ दी हैं। विभिन्न वित्त निगमों और बैंकों से ही उन्हें ऋण नहीं दिया गया, अपितु शासन ने स्वयं भी जैसे अतुल प्रोडक्ट्स में प्रत्यक्ष सहायता दी है। विश्व बैंक से भी रुपया दिलवाने की व्यवस्था की गई है। विश्व बैंक का अनुमान है कि प्रथम योजना की अवधि में शासन ने निजी क्षेत्रों को कुल 55 करोड़ रुपए की सहायता दी, जो कि उसके द्वारा नई पूँजी के रूप में एकत्र रुपए से ज़्यादा है। हमें यह भी स्मरण रखना होगा कि यह क्षेत्र देश में उत्पादन में केवल 8 प्रतिशत ही योगदान देता है।

क़ानून और कराधान आदि हमने काफ़ी कठोर कर भी दिए तो भी हमारा अभिप्राय सिद्ध नहीं होगा अपितु उसमें से बाक़ी बुराइयाँ पैदा हो जाएँगी। कुछ वीतराग महात्माओं की बात छोड़ दें, साधारणतया शक्ति और जीवन का भोग स्तर इनमें कुछ सामंजस्य रखना होता है। भृत्यवर्ग की तनख्वाहों के निर्धारण में भी हमें इसका विचार करके चलना होगा, अन्यथा वहाँ भ्रष्टाचार के लिए काफ़ी गुंजाइश हो जाएगी। इसलिए जहाँ शासन राष्ट्रीयकरण के द्वारा बड़े-बड़े कारख़ानों पर आधिपत्य कर लेता है, वहाँ भी बड़ी-बड़ी तनख्वाहों की व्यवस्था करनी होती है। आज तो जब एक ओर निजी क्षेत्र में

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

लोगों को तथा विदेशी तज्ञों को भारी पारिश्रमिक मिल रहे हों, शासन भी एकाएक अपने क्षेत्र में वह कभी नहीं कर सकता। अत: विषमताओं को कम करने के लिए ुमें उत्पादन की प्रणाली को ही विकेंद्रित करना पड़ेगा।

निजी संपत्ति का प्रश्न

साधारणतया काम और उसके लिए मिलने वाले पारिश्रमिक से भारी विषमताएँ नहीं पैदा होती। वह तो निजी संपत्ति पर मनुष्य के अधिकार एवं उसके उपयोग द्वारा अनर्जित आय की उपलब्धि से बढ़ती हैं। इस आधार पर समाजवादी निजी संपत्ति को ही समाप्त करने की बात करते हैं। किंतु उनके सिद्धांत और व्यवहार का दोनों ही दृष्टियों से समर्थन करना कठिन है। यद्यपि सृष्टि के आरंभ से ही अपरिग्रह एवं 'मा गृध: कस्य स्विद्धनम्' का उपदेश मिला है, किंतु यह संसार मेरा और तेरा का ही नाम है। साम्यवादी, जो निजी संपत्ति की भावना को जड़मूल से समाप्त कर देना चाहते थे, पहले पर्सनल (व्यक्तिगत) और फिर कुछ अंश तक निजी संपत्ति को भी स्वीकार करने लगे। निजी संपत्ति के कारण बुराइयाँ उत्पन्न होने पर भी हम उसका बहिष्कार नहीं कर सकते। हाँ, हमे निजी संपत्ति की मर्यादाएँ अवश्य स्थापित करनी होंगी। विकेंद्रीकरण इन मर्यादाओं की स्थापना का कार्यक्रम है।

विकेंद्रीकरण के विभिन्न स्वरूप

पश्चिम की बड़े आधार की प्रौद्योगिकी और विकेंद्रीकरण एक साथ नहीं चल सकते। बहुत से लोग विकेंद्रीकरण का अर्थ केवल प्रादेशिक विचार से करते हैं। वे विकेंद्रीकरण के नाम पर बंबई और अहमदाबाद जैसे कारख़ानों को गाँवों में स्थापित करके समाधान कर लेंगे। समाजवादी राजनीतिक शक्ति का बँटवारा करके संतुष्ट हो जाएगा तथा गाँव, ज़िला, प्रांत और केंद्र के चौखंभे राज्य के रूप में उसका समाजवाद पनपेगा। किंतु हर स्थान पर आर्थिक शक्ति राज्य की इकाइयों के हाथ में रहेगी तथा जिस प्रौद्योगिकी को लेकर स्थान-स्थान पर उत्पादन होगा, वह पश्चिमी ढंग का ही होगा। उनका झगड़ा स्वामित्व के बँटवारे का है, मौलिक नहीं। सर्वोदयवादी वर्तमान तकनीकी का तो विरोध करता है, किंतु उसके ग्रामराज्य में संपूर्ण गाँव की भूमि पर कृषि एक चक के रूप में ग्राम पंचायत की देखरेख में होगी। गाँव की शेष आर्थिक व्यवस्था भी पंचायत के अधीन रहेगी। व्यवहार में यह स्थिति रूस की सामूहिक खेती से भी ख़राब होगी। इसमें न तो आधुनिक मशीनें ही प्राप्त होंगी और न व्यक्ति को उत्पादन की स्वतंत्रता। समाजवादी तो वे फिर किसी रूप-रंग के क्यों न हों, पश्चिमी प्रौद्योगिकी में अमिट श्रद्धा लेकर चलते हैं। उनकी लड़ाई मशीन से नहीं बल्कि मशीन के मालिक से

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

है। फलतः वे उसकी मिल्कीयत राज्य को सौंपकर समाधान मान लेते हैं। सर्वोदयवादियों ने मशीन की बुराइयाँ समझीं और इसीलिए उसका बहिष्कार किया; निजी संपत्ति की बुराइयाँ देखीं, इसलिए उसे समाप्त करने का बीड़ा उठाया। समाजवादी राज्य की भारी और निरंकुश शक्ति देखकर उसे भी त्याज्य ठहराया तथा शासनविहीन समाज में संपूर्ण शक्ति गाँव की पंचायत को सौंप दी। यह सब अव्यावहारिक तो है ही, किंतु जिन बुराइयों से हमारा बचने का प्रयास है, वे अन्य रूप में पैदा हो जाएँगी। विकेंद्रीकरण की यह विडंबना है।

ये सभी विचारधाराएँ मानव को हाड़-मांस का बना हुआ, त्रिविध गुणसंपन्न, इच्छा, आकांक्षाओं तथा भावनाओं वाला जीवित प्राणी न मानकर उसके किसी भाव स्वरूप की कल्पना लेकर ही अपनी रचना करती हैं। व्यक्तिगत स्वतंत्रता का विचार लेकर चलने वाले प्रजातंत्र ने यदि एक 'अर्थ मानव' की सृष्टि की तो साम्यवाद ने एक 'सामान्य जन' (mass man) की उत्पत्ति की। यह सामान्यजन भगवान् की सृष्टि नहीं बल्कि राज्य द्वारा रचा जाता है। ''राज्य ही उसके संपूर्ण विचारों, भावनाओं, क्रियाओं और आदर्शों का विधान करता है, उसे विचार, व्यक्तिगत निर्णय और निश्चय से स्वतंत्रता प्राप्त रहती है और बदले में उसे एक मशीन मानव की सुरक्षा प्राप्त होती है।''[3] सर्वोदयवादी भी एक वैसे ही भाव जन की कल्पना लेकर चलता है तो सर्वस्वार्पण भाव से सर्वोदयवादी मनोवृत्ति से काम करता चला जाएगा।

साम्यवाद और पूँजीवाद में समानता

वर्तमान साम्यवाद तथा पूँजीवाद दोनों में स्वामित्व के स्वरूप का अंतर छोड़कर और कोई फ़र्क़ नहीं। अतः दोनों में ही व्यक्ति के विकास की कोई सुविधा नहीं तथा आर्थिक एवं राजनीतिक स्वतंत्रताएँ नाममात्र की ही प्राप्त हैं। साम्यवाद के संबंध में तो प्रिंस क्रोपाटकिन ने 1904 में ही लिखा था—''देखना है कि वे शताब्दी की प्रभावी प्रवृत्तियाँ, विकेंद्रीकरण, स्वराज्य तथा स्वतंत्र समझौते का अनुसरण करते हैं या उसके विपरीत विनष्ट सत्ता को पुनः प्रतिष्ठापित करते हैं।'' रूस में साम्यवादी क्रांति के पश्चात् उन्होंने पश्चिमी यूरोप में मज़दूरों को एक पत्र में लिखा था, ''मेरा यह कर्तव्य है कि आपसे बता दूँ कि मेरी सम्मति में एक केंद्रित राज्य और अत्यधिक कठोर पार्टी डिक्टेटरशिप के सहारे रूस में साम्यवाद स्थापित करने का प्रयास निश्चित ही असफल होगा। हम रूस में यह सीख रहे हैं कि साम्यवाद को कैसे न लाया जाए। जब तक देश का शासन एकदलीय तानाशाही से होगा, मज़दूर और किसानों की परिषद् बेमानी और अप्रभावी रहेगी। यहाँ ऐसी नौकरशाही विकसित हो जाएगी, जो फ्रांस को भी मात कर

3. Rene Fulop : Dehumnanization in Modern Society.

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

देगी, जहाँ कि सड़क पर तूफ़ान से गिरे हुए पेड़ को हटाने का आदेश देने के लिए कम-से-कम चालीस अफ़सरों की आवश्यकता होती है।'' प्रिंस क्रोपाटकि . जिस कम्युनिज्म की कल्पना करते थे, वही सच्चा कम्युनिज्म है या जो रूस में आज चल रहा है वह, यह तो कहना कठिन है किंतु यह सत्य है कि समाजवाद अफ़सरीकरण का ही दूसरा नाम है।

विकेंद्रीकरण की इकाई व्यक्ति और कुटुंब

विकेंद्रीकरण की मौलिक इकाई है व्यक्ति और कुटुंब। व्यक्ति के प्रयत्नों तथा कुटुंब के सहारे और स्वामित्व के द्वारा कभी व्यापक रूप से विषमता अथवा शोषण की संभावनाएँ नहीं उत्पन्न हो सकती हैं। ये प्रवृत्तियाँ तो तब बलवती हुईं, जब व्यक्ति इन मर्यादाओं से आगे निकलकर सामूहिक संस्थाओं और निगमों के द्वारा अधिकाधिक शक्तियों का स्वामी बनता गया। अत: साधारणतया उत्पादन का आधार व्यक्ति कुटुंब होना चाहिए। हमें उस प्रणाली को अपनाना पड़ेगा, जिसमें हम कुटुंब की इकाई को ही उत्पादन की इकाई बना सकें। खेती में इस प्रकार हम भूस्वामी कृषि (Peasant proprietor farming) उपयुक्त समझते हैं। उद्योग में भी कुटीर और छोटे-छोटे उद्योग, जो घर में ही चलाए जा सकते हों, हमारे व्यापक औद्योगीकरण का कार्यक्रम होंगे। हाँ, इनमें हम अच्छी मशीनों और बिजली का उपयोग कर सकते हैं।

छोटे कारख़ाने

यद्यपि हम सामान्य रूप से इन छोटे उद्योगों को ही आधार मानकर चलेंगे, किंतु कुछ ऐसी वस्तुएँ भी रहेंगी, जिनका उत्पादन केवल घर में बैठकर नहीं हो सकेगा। इनके लिए हमें छोटे-छोटे कारख़ाने स्थापित करने पड़ेंगे। छोटे-छोटे कारख़ानों की व्याख्या तो कठिन है किंतु आजकल शासन ने उन कारख़ानों को छोटे उद्योगों की संज्ञा दी है, जिनमें 5 लाख तक पूँजी लगी हो तथा 50 तक मज़दूर काम करते हों। हम भी इसे स्वीकार करके चलेंगे। साधारण व्यवहार में 90 प्रतिशत से अधिक वस्तुएँ इस अनुमाप (Scale) पर तैयार की जा सकती हैं। जो अन्य चीज़ें बचेंगी, उन्हें बड़े कारख़ानों में बनाया जा सकेगा। किंतु साधारणतया इन कारख़ानों में छोटे कारख़ानों में बनी चीज़ों के संग्रह और एकत्रीकरण की ही आवश्यकता पड़ेगी।

छोटे और कुटीर उद्योगों के प्रकार

देश-कालानुसार सामान्यतया छोटे और कुटीर उद्योगों में भेद किया जाता है। जिन उद्योगों में बिजली या मशीन की शक्ति का उपयोग न हो, उन्हें कुटीर उद्योग कहने की आदत पड़ गई है। कई बार पुराने ग्रामोद्योग भी इस परिभाषा के अंतर्गत आते हैं। किंतु जैसे-जैसे बिजली का उपयोग अधिक होगा दोनों के बीच भेद करना कठिन हो जाएगा।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

हम जिन्हें साधारणतया छोटे उद्योग कहते हैं, उन पर बल देते हैं। सन् 1949-50 के उद्योग रक्षा आयोग (Fiscal Commission) ने इनका निम्नलिखित रूप में वर्गीकरण किया है—
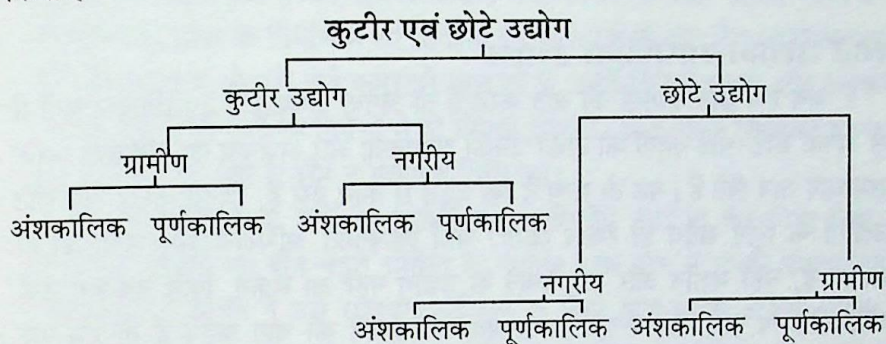
1. अंशकालिक ग्रामीण कुटीर उद्योगों के अंतर्गत वे सभी उद्योग आते हैं, जिनमें कृषक ख़ाली समय का उपयोग करता है, जैसे रस्सी बटना, हथकरघा, कोशकृमि पालन, डलिया बनाना आदि।
2. पूर्णकालिक ग्रामीण कुटीर उद्योगों में बढ़ई, लुहार, कुम्हार, तेली आदि के काम आते हैं।
3. अंशकालिक नगरीय कुटीर उद्योगों में खिलौने, आचार-मुरब्बे, क़ाग़ज के लिफ़ाफ़े आदि बनाने के कुछ उद्योग, किंतु अभी इस क्षेत्र में बहुत से काम प्रारंभ किए जा सकते हैं।
4. पूर्णकालिक नगरीय कुटीर उद्योगों में सुनार, दरज़ी, बढ़ई, हाथीदाँत, बरतन बनाने, रँगाई, छपाई आदि का काम।
5. अंशकालिक छोटे नगरीय उद्योग प्रायः मौसमी काम से संबंध रखते हैं, जैसे ईंट बनाना आदि।
6. पूर्णकालिक छोटे नगरीय उद्योगों का काफ़ी विकास हो रहा है। इनमें होजरी के कारख़ाने, अभियांत्रिक, साइकिल के पुर्जे, रेशम और सूती वस्त्र, सिलाई की मशीनें आदि अनेक चीज़ें बनती हैं। ये शहर की छोटी फैक्टरियाँ हैं, यद्यपि उन पर फैक्टरी एक्ट लागू नहीं होता।
7. अंशकालिक ग्रामीण लघु उद्योग में धान कूटने, खँड़सारी, गुड़ आदि का विधायन आता है।
8. पूर्णकालिक ग्रामीण लघु उद्योग का प्रायः अभाव है। वैसे मोतीहारी के आसपास सीप के बटन, फीरोजाबाद के पास चूड़ियाँ, रुड़की के पास ड्रॉइंग और इंजीनियरिंग का सामान आदि इसी प्रकार बनते हैं। यदि हम वास्तव में

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

देश का औद्योगिक ढाँचा बदलना चाहते हैं तो हमें इस वर्ग के उद्योगों की प्रतिष्ठापना करनी होगी। इससे हम गाँवों को पुनरुज्जीवित कर सकेंगे तथा नगरों की बहुत सी बुराइयों से भी बच सकेंगे।

छोटे उद्योग सापेक्षिक स्थान

जब हम छोटे उद्योगों की बात करते हैं तो अनेक अर्थशास्त्री उपरिनिर्दिष्ट वर्गों में से अनेक छोटे-मोटे कार्यों को लेकर उनकी व्यापकता और अजेयता का प्रतिपादन करके समाधान मान लेते हैं। यह तो सत्य है कि बहुत से काम ऐसे हैं, जिनमें कुटीर और छोटे उद्योगों के लिए सदैव ही स्थान रहेगा। जहाँ व्यक्तिगत अभिरुचि और कला को ही महत्त्व है, वहाँ मशीन और बड़े पैमाने के उद्योग नहीं आ सकते, किंतु जब हम उन्हें औद्योगीकरण का अभिन्न एवं आधारभूत अंग बनाने की बात कहते हैं तो हम एक व्यापक दृष्टि से विचार करते हैं। आज चलने वाले बड़े उद्योगों के साथ सापेक्षिक दृष्टि से देखें तो इन उद्योगों को तीन श्रेणियों में बाँट सकते हैं—

1. स्वतंत्र अस्तित्व वाले उद्योग, जिनमें छोटे आधार पर काम करने में विशेष सुविधाएँ प्राप्त हैं तथा जिन्हें बड़े उद्योग सहज ही नहीं हटा सकते, जैसे ताले, मोमबत्ती, कैंची, चप्पल, बटन आदि का बनाना।
2. वे उद्योग, जो बड़े उद्योगों के साथ संलग्न होकर वस्तु के किसी अंश के उत्पादन में भाग ले सकते हैं, जैसे बिजली का सामान, साइकिल आदि।
3. वे उद्योग, जिन्हें बड़े उद्योगों के साथ प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है, जैसे कपड़ा।

जहाँ तक प्रथम वर्ग के उद्योगों का प्रश्न है, हम उन्हें तो उद्योगों की सामान्य सुविधाएँ, ऋण, विपणन, प्रशिक्षण आदि को प्रदान किए जाने की व्यवस्था करके विकास के लिए स्वतंत्र छोड़ सकते हैं।

छोटे और बड़े उद्योगों का गठबंधन

दूसरे वर्ग में ऐसा बहुत क्षेत्र है, जहाँ यदि हम थोड़ा भी ध्यान दें तो बहुत प्रगति हो सकती है। बड़े उद्योगों और छोटे उद्योगों का संबंध दो प्रकार से हो सकता है; एक जहाँ उत्पादक वस्तुएँ बड़े उद्योग तैयार करें तथा उपभोग वस्तुएँ छोटे उद्योगों द्वारा बनाई जाएँ। जैसे प्लास्टिक का चूर्ण, रेयन के तंतु, इस्पात की चद्दरें, लोहे का तार आदि सामान बड़े पैमाने पर तैयार करके इनके द्वारा उपभोग की हज़ारों प्रकार की वस्तुएँ छोटे पैमाने पर बनानी चाहिए। दूसरी पद्धति में उपभोग वस्तु के उत्पादन में काम में आने वाली वस्तुओं को अलग-अलग छोटे पैमाने पर तैयार करना तथा उनका एकत्रीकरण बड़े कारख़ानों में करना, जैसे स्विट्ज़रलैंड में घड़ियों के पुर्जे छोटे-छोटे शिल्पियों द्वारा तैयार होकर उनको

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

इकट्ठा करके घड़ी के रूप में बड़े कारख़ाने में तैयार किया जाता है। मोटर आदि जितनी बड़ी-बड़ी चीज़ें हैं, उनके बहुत से भाग इस प्रकार तैयार किए जा सकते हैं। जापान में इस दृष्टि से बहुत काम हुआ। वहाँ रेलगाड़ियाँ बनाने में 77 प्रतिशत, जहाज़ बनाने में 70 प्रतिशत तथा मोटर के निर्माण में 62 प्रतिशत इन छोटे उद्योगों द्वारा तैयार सामान प्रयुक्त होता है। भारत में जो बड़े-बड़े कारख़ाने खुल रहे हैं, उनमें विदेशी प्रभाव और अनुकरण होने के कारण इन पुर्जों को विदेशों से ही मँगाया जाता है। छोटे-छोटे उत्पादकों को न तो उनके बाज़ार का ज्ञान है और न उत्पादन विधि का।

यदि उपर्युक्त दो वर्गों के उद्योगों को भलीभाँति स्थापित कर दिया जाए तो प्रतिस्पर्धी उद्योगों का क्षेत्र बहुत सीमित हो जाएगा। इस क्षेत्र में सबसे प्रमुख उद्योग हथकरघा है। शासन ने उसे सहायता पहुँचाने के लिए कुछ क़दम अवश्य उठाए हैं किंतु जब तक इस उद्योग को आर्थिक नहीं बनाया जाएगा, प्रशासनिक संरक्षण से वह उपभोक्ताओं पर भार बनकर ही रहेगा। यदि सूत की सस्ती व्यवस्था की जा सके तो यह कार्य कठिन नहीं। खादी और चरखा (अंबर चरखा सहित) के चक्कर को छोड़कर यदि हाथ-करघा उद्योग पर ही शासन अपनी शक्ति और धन का व्यय करेगा तो अनतिदूर भविष्य में वह अपने पैरों पर खड़ा होकर देश के कपड़ा-उद्योग का एक सबल सहयोगी बन जाएगा।

लघु उद्योगों में किफ़ायत

लघु उद्योगों में संबंध में यह भ्रम भारी घर करके बैठ गया है कि वे कभी आर्थिक (economic) नहीं हो सकते तथा उनके उत्पादन बाज़ार में बड़े उद्योगों की वस्तुओं की तुलना में नहीं टिक सकते। जब विदेशों से प्रतिस्पर्धा का प्रश्न आता है तो छोटे उद्योगों के बड़े-बड़े समर्थकों के पैरों तले से धरती खिसक जाती है। वे इन उद्योगों का राजनीतिक, सामाजिक एवं नैतिक आधार पर समर्थन करते हैं तथा यह मानकर संतोष कर लेते हैं कि अर्थ ही तो सबकुछ नहीं होता। यद्यपि हम उनके अतिरिक्त कारणों से सहमत हैं किंतु साथ ही हम यह भी मानकर चलते हैं कि भारतवर्ष में आर्थिक दृष्टि से छोटे उद्योग ही हमारे लिए वांछित हैं।

यदि हम गंभीरता से विचार करें तो अर्थशास्त्र में बड़े पैमाने पर उत्पादन की जिन किफायतों (economics) का वर्णन किया जाता है, अब उनमें बहुत परिवर्तन हो गया है! सत्य तो यह है कि 'किफ़ायतें' बड़े पैमाने पर उत्पादन से नहीं, अधिक उत्पादन के कारण होती हैं।[4] अगर हम इतिहास को देखें तो ब्रिटेन में बड़े पैमाने पर कपड़ा तैयार होने

4. "It is large production and not large scale production, which gives both to increasing return and to a progressive downward shift in the Cost Curves." C.N. Vakil : Planning for an Expanding Economy.

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पर भी भारत का कपड़ा वहाँ जाकर सस्ता पड़ता था। जापान की वस्तुएँ सस्ती आकर बाज़ार से बाक़ी सब माल को निकाल देती हैं, बड़े कारख़ानों में नहीं, घरों में बनती हैं। यदि अधिक उत्पादन नहीं हुआ तो बड़े पैमाने के उद्योगों की ऊपरी व्यवस्था का ही इतना ख़र्च आता है कि उत्पादन व्यय बिना नहीं रह सकता। आज देश में जो छोटे आधार पर नए उद्योग खड़े हैं, वे प्रतिस्पर्धा में अच्छी तरह टक्कर ले रहे हैं। यदि उनकी असुविधाएँ दूर कर दी जाएँ तथा बड़े उद्योगों को जो सुविधाएँ अर्थातिरिक्त कारणों से प्राप्त हैं, न मिलें तो निश्चित ही वे बाज़ी मार ले जाएँगे। हमे मालूम है कि 1930-37 के काल में छोटे-छोटे मोटर चलाने वालों ने रेलों को प्रतियोगिता में पछाड़ दिया था। यदि शासन और युद्ध रेलों की मदद को नहीं आते तो उनके लिए जीवित रहना कठिन हो जाता।

बड़े उद्योगों की 'किफ़ायत' की सच्चाई

श्री एम.एम. मेहता ने अपनी पुस्तक Structure of Indian Industries (भारतीय उद्योगों का ढाँचा) में बड़े उद्योगों की वृद्धि का विशद विश्लेषण किया है। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि :

1. बड़े उद्योगों की 'किफ़ायतें' मुक्त एवं उचित प्रतियोगिता के कारण नहीं बल्कि उसे दबाकर डाका डालने वाली व्यापारी क्रियाओं से प्राप्त होती हैं।
2. बड़े उद्योगों की दूसरे पक्षों से अपने लिए हितकर और अच्छी शर्तें मनवाने की क्षमता कार्यकुशलता का फल नहीं अपितु आर्थिक एवं वित्तीय सामर्थ्य के परिणामस्वरूप है।
3. बड़े उद्योग बहुधा मज़दूरों का शोषण करते हैं, ऊँचे मूल्य लेते हैं तथा अपने निहित स्वार्थों की रक्षा के लिए वैज्ञानिक सुधारों को दबा देते हैं।
4. एक बार बाज़ार पर आधिपत्य स्थापित करने के बाद उनकी औद्योगिक कुशलता की प्रेरणा नष्ट हो जाती है।
5. अधिकांश बड़े उद्योग धीरे-धीरे विकास के आधार पर नहीं बल्कि वित्तीय और प्रशासनिक एकीकरण के कारण बढ़े हैं। इस बृहदीकरण के पीछे वास्तविक मंशा औद्योगिक कुशलता बढ़ाना नहीं, बल्कि मूल्यों और उत्पादन का नियमन करके प्रतिस्पर्धा का समाप्त कर देना रहा है।
6. ये उद्योग मंदी के समय, जब अपनी अधिकाधिक योग्यता तथा आर्थिक क्षमता दिखाने का अवसर रहता है, नहीं बढ़े बल्कि तेज़ी के उस काल में बढ़े हैं, जबकि सिक्यूरिटियों और स्टॉक से ज़्यादा से ज़्यादा कमाने का मौक़ा रहता है।
7. ये इतने बड़े हैं कि इनका आर्थिक दृष्टि से संचालन नहीं किया जा सकता।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

हम यह जानते हैं कि बैंकों, रेलों, आढ़तियों आदि सबकी सुविधा इन बड़े उद्योगों को सहज मिल जाती है। उद्योगों और बैंकों का परस्पर संबंध होने के कारण वे सदैव ही कम ब्याज पर रुपया प्राप्त कर लेते हैं, जबकि छोटे उद्योगों को भारी ब्याज देकर भी पूँजी प्राप्त नहीं होती। शासन भी सदैव बड़े उद्योगों की ही सहायता करता है। छोटे उद्योग असंगठित होने के कारण आज की बाज़ार अर्थव्यवस्था में कच्चे माल की प्राप्ति से लेकर पक्के माल के बेचने तक की शृंखला पूरी हो गई तो फिर उनका मुक़ाबला करना कठिन होगा। शासन का कर्तव्य है कि वह इस संगठन को खड़ा करने में सहायक हो।

बड़े उद्योगों के क्षेत्र

छोटे उद्योगों के अनेक गुण एवं बड़ों से होने वाली बुराइयों के उपरांत भी कुछ ऐसे क्षेत्र हैं, जहाँ अपरिहार्य रूप से बड़े उद्योगों की स्थापना करनी पड़ेगी, किंतु इस 'अपरिहार्यता' का विचार संपूर्ण पूर्वग्रह एवं पश्चिमी अर्थशास्त्र की मान्यताओं से मुक्त होकर करना होगा। कारण, छोटे उद्योगों का क्षेत्र, जो एक बार काफ़ी संकुचित हो गया था, विशद होता जा रहा है। जिन वस्तुओं के छोटे आधार पर उत्पादन की हम कल्पना नहीं कर सकते, वे अच्छी और आर्थिक आधार पर पैदा की जाने लगी है। हाल ही में चीन के एक समाचार ने कि वहाँ इस्पात भी छोटे आधार पर पैदा किया गया है, औद्योगिक क्षेत्र में छोटे उद्योगों के विकास की संभावनाओं को काफ़ी बढ़ा दिया है। साधारणतया कारीगरी, कुशलता तथा पूँजी और साधनों की आवश्यक मात्रा के आधार पर उद्योगों का हम निम्नलिखित वर्गीकरण कर सकते हैं—

1. न्यून प्रशिक्षण पर एवं हल्के, जैसे वस्त्र, जूते, रबर, ग्लास आदि।
2. अधिक प्रशिक्षण पर किंतु हल्के, जैसे अभियांत्रिक, पच्चीकारी आदि।
3. न्यून प्रशिक्षण पर और भारी, सीमेंट, उर्वरक आदि।
4. अधिक प्रशिक्षण पर और भारी, खनिज तेल, इस्पात आदि।

तीसरे और चौथे प्रकार के ऐसे उद्योग हैं, जिन्हें हमें बड़े पैमाने पर प्रारंभ करना पड़ेगा। किंतु इनका क्षेत्र सीमित है तथा देश के उद्योग-धंधों के लिए आधारभूत वस्तुओं की व्यवस्था करते हुए भी देश के औद्योगिक मानचित्र में उनका स्थान छोटा ही रहेगा। इन उद्योगों की स्थापना में हमें उपलब्ध उत्पादनों का, जिनका पीछे विवेचन किया जा चुका है, विचार करना होगा।

उद्योगों का स्वामित्व

उद्योगों के स्वामित्व के प्रश्न को पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के प्रादुर्भाव एवं उसकी प्रतिक्रिया के रूप में समाजवादी विचारधारा के जन्म के बाद से काफ़ी महत्त्व प्राप्त हो

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

गया है। जहाँ पूँजीवादी व्यक्ति को ही स्वामित्व का प्रधान एवं एकमेव अधिकार देते हैं, वहाँ समाजवादी वह अधिकार राज्य को देते हैं। स्वामित्व के साथ अनिर्बंध नियंत्रण एवं मनमाने उपभोग की धारणाओं ने इस विषय को ग़लत पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया है। किसी भी वस्तु के ऊपर मेरा स्वामित्व होने के बाद भी मुझे यह अधिकार प्राप्त नहीं कि मैं उसका चाहे जैसा उपभोग करूँ। स्वामित्व एवं उपभोग की दोनों भावनाओं को जब तक हम अलग-अलग नहीं करेंगे, तब तक हम होने वाली बुराइयों को नहीं रोक सकेंगे। जिस वस्तु का मैं स्वामी हूँ, उसका उपभोग समाज हित में करने का ही मुझे अधिकार है, यह विचार प्रत्येक व्यक्ति के सम्मुख होना चाहिए। यदि यह विचार नहीं तो उसके हाथ से स्वामित्व छीन लेने का भी कोई अर्थ नहीं। राज्य भी जब स्वामित्व ग्रहण कर लेता है तो वह व्यक्तियों के द्वारा ही व्यवस्था करता है। यदि समाज हित का विचार करने वाले व्यक्तियों का अभाव रहा तो इस अवस्था में भी ठीक-ठीक व्यवस्था नहीं हो पाएगी। जो व्यक्ति आज अपनी चीज़ का मनमाना उपयोग करने से नहीं डरता, वह समाज की वस्तु का उपयोग वैसे नहीं करेगा, इसकी गारंटी नहीं दी जा सकती। यदि उसके दुरुपयोग को रोकने के लिए दंडनीति का उपयोग करना आवश्यक समझते हैं तो वह तो उसके पास स्वामित्व का अधिकार रहते हुए भी काम में लाई जा सकती है। समाजवादी यह धारणा लेकर चलते हैं कि किसी भी देश के उद्योगपति सदैव ही समाजहित के विरोध में तथा अफ़सर समाजहित में व्यवहार करते हैं।[5] वास्तविकता तो यह है कि एक बार समाज का स्वामित्व आने पर दंडनीति और अर्थनीति का अधिकार एक ही जगह केंद्रित हो जाता है और इसीलिए दंडनीति का समयोचित प्रयोग करके व्यवस्था के उल्लंघन को रोकना संभव नहीं रहता।

गंभीरता से देखें तो स्वामित्व का अधिकार वास्तव में निश्चित मर्यादाओं और निश्चित उद्देश्यों के लिए किसी वस्तु के उपयोग का ही अधिकार है। समय के साथ इन अधिकारों में परिवर्तन होता रहता है। अत: हम सैद्धांतिक दृष्टि से व्यक्ति और समाज के अधिकारों के झगड़े में नहीं पड़ेंगे। हमारे यहाँ तो समाज का केवल एक ही स्वरूप अर्थात् राज्य नहीं माना गया। व्यक्ति, कुटुंब, कुल, जाति, राज्य आदि अनेक रूपों में समाज अपने आपको अभिव्यक्त एवं उनके माध्यम से अपना मनोरथ सिद्ध करता है। व्यक्ति में समाजहित की भावना बनी रहे, इसलिए हमारे यहाँ सम्मिलित कुटुंब की एक व्यावहारिक इकाई रखी गई, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति कमाने का अधिकारी है तथा संपत्ति का स्वामी कुटंब रहता है। संपत्ति का उपभोग कुटुंब के हित में होता है, मनमाने ढंग से नहीं। ट्रस्टीशिप का यही भारतीय सिद्धांत गांधीजी, गुरुजी आदि विचारकों ने समाज के सम्मुख रखा है।

---

5 The contention that the 'private sector' acts in self-interest and the 'public sector' in general interest is "crude and misleading."
P.T. Baner & B.S. Yamey : The Economics of Underdeveloped Countries.

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

जहाँ तक छोटे-छोटे उद्योगों का संबंध है, जिन्हें हमने अपने औद्योगिक कार्यक्रम का आधार बनाया है, वे निश्चित ही व्यक्तिगत स्वामित्व में रहेंगे। उनके राज्य के अधीन जाने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। पूर्वी यूरोप के अनेक साम्यवादी देश तरह-तरह के प्रयत्न करने के बाद भी उनका राष्ट्रीयकरण नहीं कर पाए हैं। हंगरी में पिछली बार जो बड़ी भारी क्रांति हुई, वह इस प्रकार के छोटे-छोटे व्यापारियों और शिल्पियों द्वारा भड़काई गई थी।

निजी और सार्वजनिक क्षेत्र

अब प्रश्न बड़े उद्योगों का आता है। इस संबंध में आज, जबकि हम देश का विकास कर रहे हैं, कोई बड़ा रूढ़िवादी और सैद्धांतिक (theoretical) दृष्टिकोण अपनाना ठीक नहीं होगा। विश्व बैंक के अध्यक्ष श्री ब्लैक ने अक्तूबर 1957 में विश्व के प्रमुख उद्योगपतियों के एक सम्मेलन में कहा था, ''मैं पूँजीवाद के पुजारियों से, जो यह प्रचार करते हैं, उतना ही परेशान हूँ जितना समाजवादियों से, जो ये दावा करते हैं कि सार्वजनिक उद्यम ही संपूर्ण माँग को संतुष्ट कर सकता है।'' अविकसित देशों में व्यावहारिक दृष्टि से निजी उद्योग और शासन दोनों की अपनी-अपनी मर्यादाएँ रहती हैं। जहाँ एक ओर शासन के पास उद्योग-धंधों और व्यवसायों का ज्ञान रखने वाले योग्य, कार्यकुशल एवं ईमानदार कर्मचारियों का अभाव रहता है, वहाँ निजी क्षेत्र के पास पूँजी एवं अन्य साधनों की कमी रहती है। भारी उद्योगों में पूँजी बहुत लगानी होती है। निजी क्षेत्र में ऐसे लोग प्रायः नहीं मिलते, जो यह जोखिम उठा सकें। इसलिए कहा गया है कि अविकसित देशों में सबसे दुर्लभ उत्पादन यदि कोई है तो वह 'जोखिम उठाने वाला'[6] उद्यमी (entrepreneur) है। ऐसी अवस्था में राज्य को स्वाभाविक ही आगे आना पड़ता है। समाजवाद से कोसों दूर भागने वाले कई देशी राज्यों ने इसी कारण अपनी ओर से उद्योग-धंधों की स्थापना की। अतः व्यावहारिक नियम यही बनाया जा सकता है कि जहाँ निजी क्षेत्र न आ सकता हो, शासन प्रवेश करे। शासन का कार्य साधारणतया अर्थोत्पादन नहीं है।

उपर्युक्त व्यावहारिक मर्यादाओं के अंतर्गत आज यह कह सकते हैं कि सुरक्षा और आधारभूत उद्योगों को राज्य के स्वामित्व में रहना चाहिए। इनके विकास का दायित्व आज शासन को लेना आवश्यक है। किंतु इन क्षेत्रों में भी (सुरक्षा उद्योगों को छोड़कर जो कि राज्य के अधीन ही रहने चाहिए) यदि निजी प्रयत्नों से कुछ उद्योग स्थापित हो गए हैं तो उनका राष्ट्रीयकरण करने की आवश्यकता नहीं। यदि हम किसी वाद विशेष से बँधे नहीं हैं तो राज्य के साधनों का उपयोग पुराने उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करने की अपेक्षा राष्ट्र के लिए आवश्यक नए उद्योग-धंधों की स्थापना में करना अधिक अच्छा होगा।

---

6. उपयोग के अंतर्गत उपभोग, संविदा (Contract), दान, वसीयत एवं उत्तराधिकार आते हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

निजी उद्योगों का स्वामित्व

साधारणतया स्वामित्व का संबंध पैसे से लगाया जाता है। पण्य-व्यवस्था की यह देन है। उद्योगों में भी पैसा लगाने वाला मालिक बन जाता है। जब पैसा लगाने वाला स्वयं ही प्राप्त औजारों और साधनों का प्रयोग करके निर्माण करता है तो कोई कठिनाई पैदा नहीं होती, क्योंकि वह संपूर्ण मूल्य का स्वामी होता है। किंतु जब उन औजारों का उपयोग करके कोई दूसरा उत्पादन करता है तो दोनों में उत्पादित मूल्यों के बँटवारे की समस्या के साथ उन औजारों के स्वामित्व का प्रश्न भी उपस्थित हो जाता है। कारण, मज़दूर का औजारों और यंत्र के साथ घनिष्ठ संबंध आता है। उसके ठीक-ठीक उपयोग पर ही उसकी उपजीविका निर्भर करती है। यदि उन यंत्रों को बेच दिया जाए या अन्य किसी प्रकार से हस्तांतरण कर दिया जाए तो उसका परिणाम मज़दूर पर भी पड़ता है। अचल उत्पादन के साधन जैसे भूमि में श्रम करने वाले उत्पादक का स्वामित्व अधिकार स्वीकार किया गया है। फिर क्यों न उद्योगों में भी मज़दूर का स्वामित्व स्वीकार किया जाए? यह आश्चर्य का ही विषय है कि आजकल की संयुक्त पूँजी कंपनियों में एक शेयर होल्डर तो, जो बहुधा किसी उद्योग से लाभांश के अतिरिक्त और कुछ संबंध नहीं रखता, स्वामित्व के अधिकार का उपयोग करे और जो मज़दूर उस कारख़ाने में बराबर काम करता है, वास्तविक रूप से कलों को सक्रिय बनाता है तथा जिसकी पूरी जीविका उस उद्योग के भले-बुरे पर निर्भर है, सदैव ही परायापन अनुभव करता रहे। निस्पृहता की यह भूमिका ठीक नहीं। अत: आवश्यक है कि अंशधारी के साथ मज़दूर को भी स्वामित्व के अधिकार प्राप्त हों तथा उसे लाभ प्रबंध में भागीदार बनाया जाए। इस प्रकार श्रमिकों के प्रतिनिधि संचालक मंडल में रहेंगे।

भारतीय शासन ने 1948 में एक समिति लाभ में बँटवारे के प्रश्न पर विचार करने के लिए बिठाई थी। समिति का मत था कि इससे औद्योगिक शांति बनाए रखने में सहायता मिलेगी तथा श्रम प्रबंध में उत्तरोत्तर हिस्सा ले सकेगा। उसने यह भी निर्णय किया कि किसी भी उद्योग में चुकता पूँजी पर 6 प्रतिशत का लाभ तथा अन्य संचित निधियों से अंशदान काटकर शेष का 50 प्रतिशत श्रमिकों में बाँटा जाए। प्रत्येक श्रमिक का भाग उसके विगत 12 महीनों के वेतन के अनुपात में रहे। समिति ने यह भी सिफ़ारिश की थी कि कम-से-कम 6 उद्योगों सूती वस्त्र, जूट, इस्पात, सीमेंट, सिगरेट तथा टायर-निर्माण में इसे प्रयोग के रूप में तुरंत लागू किया जाए, किंतु शासन ने अभी तक कोई सक्रिय पग नहीं उठाया है।

सार्वजनिक उद्योगों का प्रबंध

सार्वजनिक उद्योगों के कारण अधिकाधिक शक्ति राज्य के हाथ में आती है। राज्य

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

का प्रजातंत्र में व्यावहारिक अर्थ होता है। वह दल जिसके हाथ में शासन के सूत्र हों। इस प्रकार शासकीय दल के हाथ में अधिकाधिक शक्ति आ जाती है। यह केंद्रीकरण सदैव ही प्रजातंत्र के लिए घातक होता है।

उद्योग-धंधों को यदि सफलतापूर्वक चलाना है तो यह आवश्यक है कि उन्हें पूर्णतया आर्थिक आधार पर, सार्वजनिक हितों के अधीन चलाया जाए। अतः उन्हें दिन-प्रतिदिन बदलने वाली दलीय राजनीति से अलिप्त रखना होगा। इस दृष्टि से उन्हें स्वायत्त निगमों के द्वारा परिचालित करना चाहिए। दिन-प्रतिदिन के व्यवहार में उन्हें स्वतंत्रता प्राप्त हो सके। किंतु यह व्यवस्था भी करनी होगी कि उन पर संसदीय नियंत्रण रह सके। श्रमिकों को प्रबंध में सहभागी बनाने की दृष्टि से सार्वजनिक उद्योगों को शेष का मार्गदर्शन करना चाहिए।

कर्मचारियों का स्वर

सार्वजनिक उद्योगों की सफलता भृत्य वर्ग की कुशलता और ईमानदारी पर बहुत निर्भर करती है। अभी तक हमें अंग्रेज़ों से जो प्रशासन विरासत में मिला है, वह अकेले शासन की दृष्टि से जनता से विलग, अपनी कुछ विशेष प्रतिष्ठा की भावना लिये हुए बहूद्देशीय आई.सी.एस. के बलबूते पर चलता आया है। शासन ने हाल में यद्यपि अपने हाथ-पाँव तो बहुत फैला दिए हैं, किंतु विशेष उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने के लिए विशेष प्रशिक्षण प्राप्त एवं योग्यता के कर्मचारियों की नियुक्ति और व्यवस्था की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। हाल ही 600 नए आई.ए.एस. अफ़सरों की अवश्य वृद्धि की गई है। यह भी निश्चय किया गया है कि उत्पादन, परिवहन, संचार, लोहा और इस्पात तथा व्यापार और उद्योग मंत्रालयों के अधीन एक औद्योगिक प्रबंध सेवा क़ायम की जाए, किंतु इसमें भरती मुख्यतः सरकारी पदाधिकारियों में से ही होने वाली है। वे अपने दायित्व का ठीक निर्वाह नहीं कर पाएँगे। भ्रष्टाचार की व्यापकता सुपरिचित है। हमें उसे दूर करने के लिए भी कठोर क़दम उठाने पड़ेंगे। यदि सार्वजनिक उद्योगों का ठीक प्रबंध नहीं हुआ तो वे भारत के भावी औद्योगीकरण की नींव रखने के स्थान पर जो कुछ निजी प्रेरणा से चल रहा है, उसके मार्ग में रोड़े ही अटकाएँगे।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

11

यातायात और व्यापार

कृषि और उद्योग के अतिरिक्त यातायात, वाणिज्य और समाज सेवाओं का तथा मुद्रा, कर और मूल्य नीतियों के साथ संबंध आता है। विकासशील अर्थव्यवस्था में ये साधक और बाधक दोनों ही सिद्ध हो सकते हैं। इनके प्रकार और मात्रा दोनों परिणामकारी होते हैं।

यातायात

यातायात का विकास, यदि युद्ध जैसे बाह्य कारण छोड़ दें, तो मुख्यतया पण्य-व्यवस्था के साथ-साथ हुआ है। जैसे-जैसे यातायात की सुविधाएँ बढ़ती गई हैं, किसी भी वस्तु का बाज़ार भी विस्तृत होता गया है। विधायन और निर्माण के लिए भी माल को इधर-उधर ढोने की आवश्यकता रहती है। यह आवश्यकता बहुत बढ़ जाती है, यदि पश्चिमी ढंग की केंद्रीकृत उत्पादन प्रणाली अपनाई जाए। आज सिंदरी के खाद के कारख़ाने के लिए प्रतिदिन एक पूरी मालगाड़ी सुदूर राजस्थान से जिप्सम ले जाने के लिए चलानी पड़ती है। विस्तृत पण और बड़े पैमाने पर स्थानबद्ध उत्पादन प्रणाली ने यातायात पर बहुत भार डाल दिया है। यहाँ तक कि बिना उसका पर्याप्त विकास किए औद्योगीकरण प्रतीत होता है। फलतः उद्योगों के प्रारंभ करने के पहले हमें अपने साधन और पूँजी का बहुत बड़ा भाग रेलों के विकास पर लगा देना पड़ता है, द्वितीय पंचवर्षीय योजना में संशोधित आँकड़ों के अनुसार रेलों पर 896.5 रुपया ख़र्च किया जाने वाला है, जो कि अन्य किसी भी मद में किए जाने वाले खर्चे से अधिक है, फिर भी हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति रेलें नहीं कर पाएँगी। आयोग ने अनुमान लगाया है कि सन् 1960-61 में 6.1 करोड़ टन माल ढोने की आवश्यकता पड़ेगी। किंतु रेलें केवल 4.2 करोड़ टन ही ढो पाएँगी। यही हाल यात्रियों का है। उसमें भी भीड़ के कम होने की संभावना नहीं। कपड़े

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

से सिलाई के दाम अधिक वाली कहावत चरितार्थ हो रही है। इसमें इस कठिनाई पर गंभीरता से विचार करना होगा।

यातायात की विषम समस्या हमारी उलटी उद्योग नीति एवं यातायात के सभी साधनों के समन्वित विकास की योजनाओं के अभाव का परिणाम है। यदि हम विकेंद्रित उत्पादन प्रणाली अपनाएँ तथा जहाँ कच्चा माल पैदा होता है, पक्के माल के बाज़ार भी हैं, वहीं उत्पादन करें तो यातायात पर से भार कम किया जा सकता है।

सड़क यातायात-बैलगाड़ी

रेलों के अतिरिक्त हमें सड़क और जल यातायात के साधनों का भी विकास करना चाहिए। अभी तक बैलगाड़ी और नावों से हमारा बहुत सा आंतरिक व्यापार होता था। किंतु धीरे-धीरे उपेक्षा ने उनको समाप्तप्राय कर दिया है। किसान अपने माल को मंडियों तक पहुँचाने के लिए अभी भी बैलगाड़ियों का उपयोग करता है, किंतु हम यदि उनके पहियों में थोड़ा सा सुधार कर दें तो वे कम-से-कम 50 मील की दूरी तक माल ढोने के काम आ सकती हैं। बैलगाड़ियों के द्वारा देश में लगभग 1 करोड़ लोग अंशकालिक अथवा पूर्णकालिक काम पाते हैं। युद्ध के पूर्व भारत में बैलगाड़ियों में 250 करोड़ रुपए की पूँजी का अनुमान था। हाल के अनुमानों से वह 800 करोड़ रुपए की आँकी गई है, जबकि रेलों में लगी पूँजी 1956-57 में 1071.71 करोड़ रुपए है। बैलगाड़ी का उपहास करके इतनी बड़ी पूँजी का ह्रास होने देना तथा यातायात के नए साधनों में पूँजी का अभाव करना योग्य नहीं होगा।

मोटर यातायात

यातायात के आधुनिक साधनों में मोटर यातायात के विकास की बहुत संभावनाएँ हैं। खनिज तेल की जब तक खोज और उत्पादन पर्याप्त मात्रा में नहीं होता, तब तक मोटरें देश की आत्मनिर्भरता[1] की नीति के साथ अवश्य बेमेल रहेंगी, किंतु यातायात के संकट को दूर करने में उनकी भारी सहायता हो सकती है। दुर्भाग्य से शासन जिस नीति को लेकर चला है। वह अभी तक सन् 1930 के बाद की मंदी के काल में रेल-मोटर प्रतिस्पर्धा से उत्पन्न परिस्थितियों के आधार पर ही बनी हैं। दोनों के बीच समन्वय के नाम पर मोटर यातायात को बिल्कुल कुंठित कर दिया गया है। 'मोटर व्हीकल्स क़ानून' में संशोधन के उपरांत भी स्थिति सुधरी नहीं है। टैक्सों का बहुत भारी बोझा उन्हें सहन करना पड़ता है। विभिन्न प्रकार के करों से शासन को 78.73 करोड़ रुपए की आय होती

1. भारत को 1956-57 में 81.88 करोड़ रुपए तथा 1957-58 में 67.08 करोड़ रुपए के खनिज तेल का आयात करना पड़ा था।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

है। इसमें से 14.94 करोड़ आयात कर के रूप में प्राप्त होता है। व्यय की दृष्टि से 27 करोड़ 94 लाख रुपए सब प्रकार की सड़कों के रखरखाव पर तथा 4.5 करोड़ रुपए केंद्रीय सड़क फंड कोष में विनियुक्त होता है। शेष लगभग 37 करोड़ रुपए की शासन को निवल आय होती है। 1955-56 तक सड़कों पर 456 रुपए के पूँजी-विनियोग का अनुमान था। इस प्रकार शासन को लगभग 8 प्रतिशत का लाभ होता है, जबकि रेलों से 1950-51 के अभिसमय के अनुसार अलाभकारी एवं यौद्धिक लाइनों को छोड़कर शेष में लगी पूँजी पर केवल 4 प्रतिशत का लाभांश मिलता है। प्रति गाड़ी कर जो कि 1944-45 में केवल 611 रुपए था, 1954-55 में 1906 रुपए तथा 1957-58 में 2100 रुपए हो गया। टैक्सों का भार ही नहीं, उसकी वसूली भी बड़ी असुविधाजनक है। अनेक शासन-संस्थाओं द्वारा वह वसूल होता है, जिसमें समय के अपव्यय के साथ अन्य कठिनाइयाँ भी उठानी पड़ती हैं। भारवाहक ट्रकों का कम-से-कम दस प्रतिशत समय चुंगी के नाकों पर खड़े रहने में बीतता है। इसका परिणाम उनकी संचालन कुशलता (Operational efficiency) पर पड़ता है। अच्छा हो कि चुंगी का भाग बिक्रीकर या उत्पादन कर में जोड़ दिया जाए। पंचवर्षीय योजना के अंत में भारत में रेलों और मोटरों की संख्या इस प्रकार थी—रेल, सवारी डिब्बे : 23,155, माल के डिब्बे : 2,35,198; मोटर, बसें : 44612; भारवाहक : 1,30,968।

सन् 1955-56 में सवारी गाड़ियों से 129.7 करोड़ यात्रियों ने 30 मील के औसत से यात्रा की, जबकि मोटर बसों से 300 करोड़ यात्रियों ने 12 मील के औसत से यात्रा की।

राष्ट्रीयकरण की अनुपयुक्तता

शासन की मोटर यातायात के राष्ट्रीयकरण की नीति भी उचित नहीं। विकास की आवश्यकताओं के अतिरिक्त इस क्षेत्र में काम करने वाले अधिकांश मध्यवर्गीय व्यक्ति हैं। प्रथम पंचवर्षीय योजना में दिए गए आँकड़ों के अनुसार 1951 में 47575 मोटर चालक थे। इनमें 25 के पास 100 से अधिक मोटरें, 50 के पास 50 और 100 के मध्य तथा 1500 के पास 5 और 50 के बीच मोटरें थीं। शेष 46000 से ऊपर संचालक थे, जिनके पास 5 से कम मोटरें थीं। इन्हें हम पूँजीपति नहीं कह सकते। राष्ट्रीयकरण द्वारा इस प्रकार स्वतंत्र व्यवसायियों को समाप्त करना ठीक नहीं है। राष्ट्रीयकृत मोटर यातायात का अनुभव भी कोई अच्छा नहीं। उसमें ख़र्चा और किराया दोनों की वृद्धि होती है।

आज जब शासन के पास धन का अभाव है, यह बुद्धिमानी नहीं होगी कि वह उसे बसों का राष्ट्रीयकरण करने में लगाए। वास्तव में यदि उन्हें निजी क्षेत्र को सौंप दिया जाए तो शासन बहत बड़े भार से मुक्त हो जाएगा। विकास की दृष्टि से भी आगे मोटरों को बढ़ाने की बहुत आवश्यकता है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

रेलों के स्थान पर सड़कों का विकास विकेंद्रित अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यक है। बहुधा तो रेलें केंद्रीयकरण में ही सहायक होती हैं। इस प्रश्न पर राष्ट्र संघ के आर्थिक आयोग का 'यूरोप का आर्थिक सर्वेक्षण 1956' निम्न प्रकाश डालता है : यूरोप के औद्योगिक देशों में यातायात नीति के सम्मुख विषम समस्याएँ हैं। प्रारंभिक औद्योगीकरण एवं घनी आबादी के कारण उनके यहाँ रेलों, आंतरिक जलमार्गों एवं तटीय नौकावहन का एक जाल बिछा हुआ है। ये वहाँ जनसंख्या के केंद्रीयकरण तथा संपूर्ण आर्थिक हलचलों के कुछ नगरों में सीमित होने के लिए ज़िम्मेदार हैं। सड़क और हवाई यातायात विकेंद्रीकरण में सहायता दे सकता है, जैसा कि वह अमरीका में कर रहा है। यद्यपि कुछ सरकारें सार्वजनिक स्वामित्व की रेलों की, सड़क यातायात की प्रतिस्पर्धा से रक्षा कर रही हैं।

नौकायन

नौकायन की ओर तो बहुत ही कम ध्यान दिया गया है। आज भारत की नदियों से केवल 1557 मील शक्तिचालित नौकाएँ तथा 3587 मील डाँड़ से खेने वाली नौकाएँ बची हैं। नहरों के लिए बड़े-बड़े बाँधों में नदियों के ऊपरी भाग में पानी रोक लेने के कारण उनके तल छिछले हो गए। इस सबका परिणाम निषाद वर्ग की रोटी पर बहुत भारी पड़ा है। अभी भी लगभग एक करोड़ लोग नौकायन पर उपजीविका के लिए आश्रित हैं। यदि इसका विकास किया जाए तो यातायात का सबसे सस्ता साधन हो सकता है।

जहाज़रानी

भारत यद्यपि किसी समय जलपोतों के निर्माण में अग्रणी था, किंतु आज स्थिति अत्यंत निराशाजनक है। आज भारत के विदेशी व्यापार का केवल 6 प्रतिशत भारतीय जहाज़ों के द्वारा ढोया जाता है। यह अनुपात लगाया गया है कि लगभग 205 करोड़ रुपए की विदेशी मुद्रा प्रतिवर्ष हमें जहाज़ों द्वारा माल की ढुलाई, इंश्योरेंस आदि में व्यय करनी पड़ती है। व्यापार की दृष्टि से ही नहीं सुरक्षा की दृष्टि से भी हमें जलयानों के विकास की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए। हाल ही में केंद्र द्वारा पारित मर्चेंट शिपिंग एक्ट में भारतीय हितों का उचित ध्यान नहीं रखा गया। शासन ने यद्यपि निर्णायक शक्तियाँ अपने हाथ में रखी हैं किंतु विदेशी हितों के प्रवेश की व्यवस्था करके हमने भविष्य के लिए ख़तरा मोल लिया है। अन्य क्षेत्रों के समान यहाँ भी तटीय नौवहन में छोटी-छोटी नौकाएँ बहुत काम करती हैं। 1949 की सेलिंग वेसल्स समिति की रिपोर्ट के अनुसार 'उनकी संख्या लगभग 2600' थी, जो प्रतिवर्ष 15 लाख टन तक माल ढोती हैं। उन पर काम

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

करने वालों की संख्या का अनुमान 40,000 था। उनके विकास की कोई योजना नहीं बनाई गई।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र में भी आधुनिकता का शिकार बनकर अधिक पूँजीसाध्य योजनाओं को हाथ में लेने के बजाय अपने पास उपलब्ध साधनों का ही अधिकाधिक लाभ उठाना चाहिए। साथ ही अर्थव्यवस्था के विकास के लिए, जहाँ यातायात के साधनों का विकास आवश्यक है, वहाँ विकास की दिशा और गति भी इन साधनों की विकास क्षमता के अनुसार निश्चित करनी चाहिए।

वाणिज्य

व्यापारी साधारणतया बिचौलिया समझा जाता है, किंतु उसका स्थान महत्त्वपूर्ण है। अनेक क्षेत्रों में सहकारी समितियाँ वह स्थान ग्रहण कर रही हैं, परंतु वे उसे पूरी तरह विस्थापित कर पाएँगी, यह कहना कठिन है। भारत में व्यापार की द्विविध समस्याएँ हैं। एक तो यहाँ उपभोक्ता के हाथ में वस्तु के क्रय होने तक उसे अनेक हाथों से गुज़रना होता है। फलतः मुनाफ़ा लेने वालों की संख्या बढ़ती जाती है। दूसरे, कच्चे माल का मूल्य निर्धारण दूर बाज़ारों की माँग और भावों के अनुसार होता है। यहाँ भी किसान को तरह-तरह की कटौतियाँ देनी होती हैं।

यदि औद्योगीकरण का जो ढाँचा हमने सुझाया है, उसे अपनाया गया तो यह समस्या बहुत कुछ दूर जाएगी। साथ ही मंडियों की योग्य व्यवस्था के लिए कई प्रदेशों में क़ानून बनाए गए हैं। शासन ने गोदामों की व्यवस्था का कार्यक्रम भी बनाया है।

यद्यपि भारत का अंतरदेशीय व्यापार विदेशी व्यापार की तुलना में कहीं अधिक है, फिर भी उसके ऊपर विपणन की दृष्टि से विदेशी प्रभाव अभी भारी मात्रा में है। श्री सेन[2] के अनुसार भारत का आंतरिक व्यापार लगभग 28000 करोड़ रुपए का है, जबकि विदेशी व्यापार 1300 करोड़ का। इस व्यापार का लगभग 60 प्रतिशत बंदरगाहों तथा देश के विभिन्न भागों के बीच प्रभावित होता है। बंबई, मद्रास व कलकत्ता उद्योग-धंधे के ही नहीं, व्यापार के भी केंद्र बन गए हैं। देश के आंतरिक क्षेत्रों में सर्वप्रकार के विकास के साथ इस स्थिति में परिवर्तन आएगा।

सरकारी व्यापार

जैसे-जैसे शासन आर्थिक क्षेत्र में अग्रसर हुआ है, व्यापार की ओर भी उसकी दृष्टि गई है तथा उस हेतु स्टेट ट्रेडिंग कॉरपोरेशन की स्थापना हुई है। सैद्धांतिक दृष्टि से शासन द्वारा व्यापार का समर्थन नहीं किया जा सकता। हमारे यहाँ तो कहा है कि शासन

2. सेन : इकोनॉमिक रिकंस्ट्रक्शन ऑफ इंडिया, पृ. 36

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

को व्यापार तथा व्यापारी को शासन नहीं करना चाहिए। सरकारी व्यापार का समर्थन व्यापार नीति से तो नहीं, किंतु मौद्रिक एवं वित्तीय नीतियों पर अवश्य किया जा सकता है। इसके द्वारा शासन बढ़ते हुए मूल्यों के समय अधिक राजस्व का अर्जन तथा कुछ महत्त्वपूर्ण वस्तुओं के मूल्यों का स्थिरीकरण भी कर सकता है। परंतु इस बात का अत्यंत गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए कि राज्य किन वस्तुओं के व्यापार को अपने हाथ में लेगा। साथ ही जब तक अन्य उपायों से काम चल जाए इसका अवलंबन नहीं करना चाहिए, क्योंकि राज्य के व्यापार के राष्ट्रीयकरण से पुरानी अवस्था को धक्का लगता है तथा कर जाँच आयोग (1953-54) के प्रतिवेदन के अनुसार व्यापारी ज्ञान के विशेषज्ञ कर्मचारियों के अभाव में नई व्यवस्था ज़माना सहज और शीघ्र संभव नहीं होगा।

जहाँ तक विदेशी व्यापार का संबंध है और वह भी साम्यवादी देशों से, उनकी नियंत्रित अर्थनीति के कारण राज्य द्वारा व्यापार उपयोगी सिद्ध हो सकता है। लौह चूर्ण, मशीनें तथा कुटीर-उद्योगों की वस्तुओं में अभी तक स्टेट ट्रेडिंग कॉर्पोरेशन ने अच्छा मुनाफ़ा भी कमाया है।

गल्ले के व्यापार का राष्ट्रीयकरण

शासन ने हाल ही में गल्ले के व्यापार के राष्ट्रीयकरण का निर्णय लिया है। यह निर्णय अपनी पुरानी नीतियों की असफलता को छिपाने का एक प्रयास मात्र है। गल्ले के मूल्यों के स्थिरीकरण की आवश्यकता होते हुए भी शासन के इस पग का किसी भी दृष्टि से औचित्य नहीं ठहराया जा सकता। प्रथम तो शासन को इस व्यापार में लगभग 400 करोड़ रुपए लगाना पड़ेगा। यह धन आज की शासन की राजस्व स्थिति में जुटाना कठिन पड़ेगा। फिर यदि इसे कृषि उत्पादन वृद्धि के कार्यक्रमों पर ख़र्च किया जाए तो हमें अधिक लाभ होगा। देश में 30 हज़ार गल्ले के थोक व्यापारी तथा 30 लाख परचून के व्यापारी हैं। शासन इन्हें कैसे स्थानांतरित करेगा? क्या यह देश की बेरोज़गारी में भारी वृद्धि नहीं करेगा? फिर सरकारी अफ़सरों व कर्मचारियों की एक भारी संख्या शासन के इस कार्यक्रम को पूरा करने के लिए लगेगी। शासन द्वारा व्यापार का राष्ट्रीयकरण केवल निर्धारित मूल्यों पर गल्ला ख़रीदने तक ही सीमित नहीं रहेगा, अपितु उसके अगले स्वाभाविक पग जबरिया गल्ला वसूली तथा राशनिंग भी होंगे। हम कंट्रोल की बुराइयों का अनुभव कर चुके हैं। फिर से पुरानी ग़लतियों को दुहराना ठीक नहीं होगा।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

12

समाज सेवाएँ

विकासशील अर्थव्यवस्था में समाज सेवाओं का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा और स्वास्थ्य की अवस्था पर व्यय किया हुआ धन एक प्रकार का विनियोजन है। अचल पूँजी के समान मानवीय पूँजी की भी उत्पादन वृद्धि के लिए आवश्यकता है। श्रमिक का प्रशिक्षण तथा उसे स्वस्थ बनाए रखने की व्यवस्था से हम श्रम का अधिकाधिक प्रतिफल प्राप्त कर सकते हैं। यह आवश्यक है कि उत्पादन व्यवस्था के अनुरूप हम शिक्षा की व्यवस्था करें। शिक्षा और चिकित्सा दोनों ही दृष्टियों से उपलब्ध साधनों को अधिक कार्यक्षम बनाना ही उपयोगी होगा। अभियांत्रिकी एवं औद्योगिकीय प्रशिक्षण के लिए विशेष केंद्रों को खोलने के साथ-साथ प्रशिक्षार्थी पद्धति का भी उपयोग करना चाहिए। छोटे-छोटे उद्योगों में उसके लिए हमारे यहाँ पर्याप्त व्यवस्था है। यदि शासन इस प्रकार निजी तौर पर प्रशिक्षित व्यक्तियों की परीक्षा की व्यवस्था करके उन्हें प्रमाण-पत्र दे दे तो हम बहुत तेज़ी से इस ओर आगे बढ़ सकते हैं। चिकित्सा के हेतु आयुर्वेद की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इस क्षेत्र में कोई सैद्धांतिक एवं विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों के तौलनिक वैज्ञानिकता के चक्कर में पड़ने की ज़रूरत नहीं। अधिकांश लोगों को तो साधारण चिकित्सा की आवश्यकता होती है। हाँ, इस प्रकार के चिकित्सक व्यापक रूप से उपलब्ध हो सकें तथा चिकित्सा सस्ती हो सके, यही महत्त्व का विषय है। निस्संदेह आयुर्वेद ही इस आवश्यकता की पूर्ति कर सकता है।

आर्थिक दृष्टि से

समाज सेवा के कार्यक्रमों का एक अन्य आर्थिक पहलू भी है। शिक्षित बेकारों की समस्या को सुलझाने में इससे भारी सहायता मिलती है। यदि हमने प्राथमिक शिक्षा एवं साक्षरता का एक व्यापक कार्यक्रम लिया तो साधन स्रोतों का विचार करते हुए शिक्षा का

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

यह क्षेत्र यदि विकेंद्रित करके ग्राम पंचायतों के सुपुर्द कर दिया जाए तो ठीक रहेगा।

समाज सेवाओं और भवन निर्माण के कार्यक्रम साधारणतया जनता में क्रयशक्ति बढ़ाने और इस प्रकार शिथिल अर्थव्यवस्था को चेतन करने के हेतु अपनाए जाते हैं। छोटे-छोटे उद्योग-धंधों के बने माल को खपाने के लिए जहाँ एक ओर कृषक को फ़सल का उचित मूल्य प्रदान कर उसके हाथ में अधिक क्रयशक्ति देनी होगी, वहाँ दूसरी ओर उक्त कार्यक्रमों से अन्यथा बेकारों की आमदनी बढ़ानी होगी। यह बढ़ी हुई क्रयशक्ति अपने गुणक प्रभाव (Multiple effect) से अनेक उद्योग-धंधों को चालू रख सकेगी। विदेशों से पूँजी मँगाने और इस प्रकार समाज सेवाओं पर ख़र्च करने में से यदि किसी एक ही को चुनना पड़े तो हम दूसरे को चुनेंगे। संविधान के निर्देशक सिद्धांतों में सन् 1961 तक 6 से लेकर 11 वर्ष की अवस्था तक के बच्चों के लिए निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा का प्राविधान होते हुए भी शासन इसे बराबर टालता जा रहा है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अनुसार केवल इस उम्र के बालक-बालिकाओं में से केवल 68.7 प्रतिशत के शिक्षण की व्यवस्था हो पाएगी। मई 1958 में आयोग द्वारा संशोधित आँकड़ों में शिक्षा, चिकित्सा आदि सभी समाज सेवाओं पर किए जाने वाला व्यय 945 करोड़ रुपए से घटाकर 833 करोड़ रुपए कर दिया गया है।

सार्वजनिक निर्माण

सार्वजनिक निर्माण एवं भवन निर्माण के कार्यक्रमों का भी अर्ध-विकसित देश के विकास कार्यक्रमों में विशेष स्थान है। इसके द्वारा उन अनेक लोगों को काम मिलता है, जिनके पास विशेष प्राविधिक ज्ञान तथा पूँजी नहीं होती। यदि उनके पास कुछ आय आती है तो उसमें से बचत और पूँजीकरण की संभावनाएँ भी बढ़ जाती हैं। पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत निर्माण के काम तो बहुत हुए हैं, किंतु उनमें हमने मशीनों का बहुत अधिक सहारा लिया है। फलतः व्यय धन का जितना भाग जनता में वितरित होना चाहिए था, उतना नहीं हुआ। सड़क पर और मकानों के बनाने में भी मानवीय श्रम की अपेक्षा मशीनों पर अधिकाधिक बल दिया जाने लगा है। यह ग़लत अर्थशास्त्र है। यदि हम लोगों को काम पर लगाएँगे तो केवल वे ही कुछ नहीं बचाएँगे, बल्कि इससे उनके कुटुंब की, जिसके ऊपर वे बेरोज़गारी की अवस्था में आश्रित रहते हैं, आय में से भी बचत संभावनाएँ बढ़ जाएँगी।[1]

---

1. "It is perhaps surprising that relatively little attention has been given in recent literature on economic development to the great opportunity for increasing capital formation in the under-developed countries by putting unemployed rural labour to work on various capital creating projects, without any necessary belt tightening."
Charles Welf & Sidney Surfrin : Capital Formation and Investment in under-developed Areas.

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मकान

आवास की समस्या भारत के लिए एक मुख्य समस्या है। केवल नगरों में ही 1951 तक 25 लाख मकानों की कमी थी। 1961 तक नगरों की आबादी में 2.07 करोड़ की वृद्धि का अनुमान है। उसके लिए 89 लाख मकानों की आवश्यकता होगी। जबकि प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में कुल 13 लाख मकान बने तथा दूसरी की अवधि में 19 लाख बनने का अनुमान है। इस प्रकार 1961 में 57 लाख मकानों का केवल नगरों में अभाव होगा। गाँवों में यदि देखेंगे तो वहाँ भी कम-से-कम पुराने मकानों की दुरुस्ती तथा नयों की निर्मिति का आँकड़ा लगभग 5 करोड़ तक पहुँचेगा। यह काम बहुत बड़ा है। यदि इसको ही तरीक़े से हाथ में लिया जाए तो देश में बहुत बड़े पैमाने पर काम किया जा सकता है, किंतु इसके लिए हमें सीमेंट और फेरो कंक्रीट आदि के स्थान पर देश में प्राप्त साधनों के उपयोग पर ही अधिक बल देना होगा, सादा चूना और ईंटें तथा लकड़ी का उपयोग करके हम अधिक मकान बना सकते हैं। सस्ते मकानों के कुछ डिज़ाइन प्रदर्शनी में तो दिखाए गए किंतु उन्हें लोकप्रिय करने के लिए कोई ठोस क़दम नहीं उठाए गए। यह एक ऐसा क्षेत्र है, जिसमें व्यक्तिगत प्रयत्नों को काफ़ी अवसर प्राप्त हो सकता है। साथ ही यदि विकेंद्रित अर्थव्यवस्था अपनाई गई तो मकानों की समस्या काफ़ी हल्की हो जाएगी, क्योंकि फिर उद्योग-धंधे गाँवों में पहुँचेंगे। आज बड़े नगरों में मकान की ज़मीन का दाम उसके मूल्य का काफ़ी बड़ा भाग होता है।

शासन का दायित्व

विकासोन्मुख भारतीय अर्थनीति की दिशा की ओर संकेत पिछले परिच्छेदों में किया गया है। यह निश्चित है कि काफ़ी लंबे अरसे से परागति की ओर जाने वाली अवस्था को प्रगति की दिशा में बदलने के लिए प्रयास करने होंगे। स्वतः वह ह्रास से विकास की ओर नहीं मुड़ सकती। वास्तव में तो जब कोई व्यवस्था शिथिल हो जाती है तो उसके स्वतः सुधार (Self-correcting) का सामर्थ्य जाता रहता है। विकास की शक्तियों का प्रादुर्भाव होने एवं गति देने के लिए योजनापूर्वक प्रयास करने पड़ते हैं। स्वतंत्र देश के शासन के ऊपर स्वाभाविक रूप से यह ज़िम्मेदारी आती है।

अपने इस दायित्व का निर्वाह करने के लिए योजना और नीतियों के निर्धारण की आवश्यकता होती है। किंतु शासन कई बार ग़लती कर जाता है। वह अर्थव्यवस्था को गति देने के स्थान पर स्वयं ही उसका अंग बनकर खड़ा हो जाता है, इस प्रयास में उसे उन लक्ष्यों एवं उद्देश्यों का भी विस्मरण हो जाता है, जिनको लेकर उसने अपने प्रयत्न प्रारंभ किए थे।

अर्थव्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन संपूर्ण जनता के प्रयत्नों से ही संभव हैं। कोई

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भी शासन, चाहे वह जनता के नाम पर 'पीपुल्स डेमोक्रेसी' के नामाभिधान से तानाशाही चलाए और चाहे वह सही माने में प्रतिनिधि शासन हो, जनता का स्थान नहीं ले सकता। वह जनता का मार्गदर्शन कर सकता है, सहायक बन सकता है, उसका नियंत्रण कर सकता है, आदेश दे सकता है। इस पर ही उसकी योजनाओं की मर्यादाएँ और स्वरूप निर्भर करेंगे।

नियोजन का स्वरूप

'नियोजन' शब्द का सबसे पहले रूस द्वारा व्यवहार होने के कारण उसे साम्यवादी अर्थव्यवस्था का आवश्यक अंग ही नहीं, नियोजित अर्थनीति का अपरिहार्य परिणाम भी साम्यवाद ही माना जाता है। किंतु आज नियोजन साम्यवादियों तक ही सीमित नहीं। अमरीका और ब्रिटेन भी नियोजन में विश्वास करते हैं। पर रूस और इन देशों की नियोजन की कल्पनाएँ भिन्न-भिन्न हैं। चूँकि साम्यवादी देश एक अत्यंत ही नियंत्रित एवं कठोर जीवन व्यवस्था में विश्वास करते हैं, इसलिए अर्थनीतिक कारणों की नहीं अपितु उनके वाद विशेष की माँग है कि वे एक अत्यंत ही सूत्रबद्ध योजना बनाएँ तथा संपूर्ण आर्थिक गतिविधियों, उत्पादन, वितरण और उपभोग का पूरी तरह नियंत्रण करें। इसके विपरीत प्रजातंत्रवादी अपने विशेष दृष्टिकोण के कारण ही बहुत अधिक नियंत्रित योजना को, यदि वह आर्थिक कारणों से संभव भी हो, नहीं अपनाएँगे। इसी आधार पर 1948 में ब्रिटेन की चतुर्वर्षीय योजना में लिखा था, "यूनाइटेड किंगडम का आर्थिक नियोजन इन मूलभूत तथ्यों पर आधारित है : आर्थिक तथ्य कि यू.के. की अर्थव्यत्रस्था अंतरराष्ट्रीय व्यापार पर अत्यधिक निर्भर है; राजनीतिक तथ्य कि वह (यू.के.) एक प्रजातंत्र है और रहेगा; तथा प्रशासनिक तथ्य कि कोई भी नियोजक भावी आर्थिक विकास की सामान्य प्रवृत्तियों से अधिक का ज्ञान नहीं रख सकता।"

नियोजन और प्रजातंत्र

आर्थिक नियोजन में यह अंतिम तथ्य अत्यधिक महत्त्व का है। जब कोई भी मनुष्य किसी जीवमान एवं विकासशील अर्थव्यवस्था के भावी व्यवहार के संबंध में भविष्यवाणी करता है तो वह केवल अपने पिछले अनुभवों एवं कल्पनाओं के आधार पर ही कुछ अनुमान लगाता है। यह निश्चित नहीं कि वे पूरी तरह सत्य उतरें। अतः उस्मे उनमें सदैव परिवर्तन के लिए तैयार रहना चाहिए। किंतु तानाशाही शासन परिवर्तन स्वीकार करने के स्थान पर अर्थ की गतियों को अपनी भविष्यवाणी के अनुसार बदलने का आग्रह करता है, उसमें से संकट पैदा होते हैं। इसी प्रकार जब कोई नियोजक योजना के विभिन्न संबद्ध अंगों में संभाव्य परिवर्तनों के लिए गुंजाइश छोड़कर नहीं

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

चलता तो विभिन्न प्रकार के संकट खड़े हो जाते हैं। उन्हें टालने के लिए शासन अधिकाधिक शक्ति अपने हाथ में लेता जाता है। रूस आदि साम्यवादी देशों में यदि पहला प्रकार दिखता है तो भारत में दूसरा। एक में तानाशाही अर्थनीति का नियंत्रण करती है तो दूसरे में अर्थनीति की कठिनाइयाँ तानाशाही को जन्म दे रही हैं। हमें दोनों से बचना होगा।

मानव ज्ञान की इन सीमाओं के अतिरिक्त भी नियोजन की मर्यादाएँ जीवन के अन्य मूल्यों के आधार पर निश्चित करनी पड़ती हैं। जहाँ शासन ही संपूर्ण अर्थोत्पादन का स्वामी है, वहाँ योजना बनाना और कार्यान्वित करना सरल है। जहाँ व्यक्तियों को आर्थिक क्षेत्र में खुली छूट है, वहाँ भी अधिक कठिनाई नहीं, किंतु जहाँ एक मिश्रित अर्थव्यवस्था है, वहाँ नियोजन एक दुष्कर कार्य है। उदाहरण के लिए, जहाँ केवल सैन्य संचालन का कार्य करना है, वह सरलता से किया जा सकता है। जहाँ सामान्य रूप से सड़क पर यातायात की व्यवस्था करनी हो, वह भी ट्रैफिक पुलिस के नियंत्रण एवं संचार-नियमों के पालन से की जा सकती है; किंतु जब प्रधानमंत्री के आगमन पर एकाएक रास्ता रोक दिया जाता है तो भारी कठिनाई और क्षोभ उत्पन्न हो जाता है। यदि प्रधानमंत्री की गाड़ी भी अन्य यातायात के साधनों के साथ ही ट्रैफिक के नियमों का पालन करती हुई जाए तो इस क्षोभ को टाला जा सकता है, किंतु साधारण प्रवृत्ति शासन की योजनाओं को प्राथमिकता देने की होती है।

नीति और नियोजन

प्रजातंत्रीय देशों में शासन मौद्रिक एवं वित्तीय नीतियों, अंतरराष्ट्रीय व्यापार के नियंत्रण आदि से अर्थव्यवस्था की गतिविधि को ठीक रखता है। उनका नियोजन नीति निर्धारण, बजट आदि तक सीमित रहता है। वे एक-एक क्षेत्र और एक-एक इकाई की गतिविधि की चिंता नहीं करते। इसे हम बृहत् आर्थिक नियोजन (macro-economic planning) कह सकते हैं। इसके विपरीत जहाँ छोटे-छोटे लक्ष्यों का निर्धारण तथा सूक्ष्म से सूक्ष्म आर्थिक गतिविधि का नियोजन किया जाए, उसे अणु आर्थिक (micro-economic) नियोजन कहेंगे। रूस दूसरी पद्धति का पालन करता है तो अमरीका और ब्रिटेन पहली का। हमने दोनों का मेल बिठाने की कोशिश की है किंतु पूर्ण समाजवाद न होने के कारण दूसरा असफल होता है तो सार्वजनिक क्षेत्र का अत्यधिक विस्तार होने के कारण पहला प्रभावी नहीं होने पाता। आवश्यकता है कि शासन अपने हाथ में बहुत ही थोड़े एवं अपरिहार्य उद्योग ले तथा शेष का नियंत्रणों (strategic controls) के द्वारा नियमन करता चला जाए।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

द्वितीय पंचवर्षीय योजना

भारत में अभी तक दो योजनाएँ बनी हैं। पहली तो केवल कुछ स्कीमों का संकलन मात्र था, किंतु दूसरी में देश के आर्थिक ढाँचे में मूलभूत परिवर्तन करने की योजना बनाई गई। राष्ट्रीय आय में 25 प्रतिशत की वृद्धि विषमताओं की कमी, मूल तथा भारी उद्योगों के विकास पर बल देते हुए देश का तेज़ी से औद्योगीकरण तथा रोज़गारों का अधिक विस्तार, ये लक्ष्य इस योजना के सम्मुख रखे गए थे। इन्हें प्राप्त करने के लिए 4800 करोड़ रुपए के व्यय का अनुमान किया गया था। समाजवाद के उद्देश्य के अनुरूप शासन के द्वारा 3800 करोड़ रुपए तथा निजी-क्षेत्र में 2400 करोड़ रुपए के पूँजी विनियोजन की व्यवस्था थी। साधन स्रोतों की पुष्टि से यह अनुमान लगाया गया था कि 800 करोड़ रुपए करों से, 1200 करोड़ रुपए ऋण से, 800 करोड़ रुपए विदेशों से, 400 करोड़ रुपए बजट के अन्य सूत्रों से तथा 1200 करोड़ रुपए घाटे की अर्थव्यवस्था से प्राप्त किया जाएगा। शेष 400 करोड़ रुपए की कमी कैसे पूरी की जाएगी, इसका कोई विधान नहीं किया गया था।

जब यह योजना बनाई गई थी तो इसे अत्यंत महत्त्वाकांक्षिणी तथा उपलब्ध साधनों से बाहर की बताया गया था। साथ ही कृषि की उपेक्षा करके औद्योगीकरण पर और उसमें भी भारी उद्योगों पर बल ग़लत था। देश की बेकारी के उन्मूलन की इसमें कोई व्यवस्था नहीं की गई थी। शासन ने अपनी क्षमता से अधिक भार अपने ऊपर ले लिया था। करों का भार दुर्वह होगा, आदि। पिछले ढाई वर्ष के अनुभव ने इन आलोचनाओं को सत्य सिद्ध किया है।

योजना आयोग ने मई 1958 में जो योजना के क्रियान्वयन का सिंहावलोकन किया है, उसके अनुसार उपर्युक्त आँकड़ों और अनुमानों में बदल हुआ है। अब राजस्व की आय में से बचत 759 करोड़ रुपए, रेलों से 240 करोड़ रुपए, ऋण से 984 करोड़ रुपए, तथा घाटे की अर्थव्यवस्था से 1200 करोड़ रुपए का अनुमान लगाया गया है। इस प्रकार कुल आय का अनुमान 4260 करोड़ रुपए का होता है। अत: योजना को घटाकर 4500 करोड़ रुपए की करने का सुझाव रखा गया। नवंबर 1958 के आयोग के एक नोट के अनुसार 4500 करोड़ रुपए भी जुटाना संभव नहीं होगा। अत: घटाकर 4200 करोड़ रुपए किया जाए, ऐसा सुझाव रखा गया। आवंटनों में भी अनेक परिवर्तन किए गए। राष्ट्रीय विकास परिषद् ने उसके सुझावों को अमान्य किया है।

योजना के लक्ष्यों (targets) और अनुमानों (estimates) की ग़लतियाँ मानव सुलभ हैं, यद्यपि यदि थोड़ा-अधिक ध्यान दिया जाता तो उन्हें काफ़ी सुधारा जा सकता था। किंतु हमारे देश में आँकड़ों के एकत्रीकरण और विवेचन की न तो कोई अच्छी, विश्वसनीय एवं अविलंबकारी व्यवस्था है और न शासन की लालफीताशाही में वह

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

संभव ही है। महत्त्व का प्रश्न तो यह है कि यदि वे अंदाज़े ठीक भी निकल जाते तो भी योजना से भारत की समस्याएँ सुलझना तो दूर रहा, उसका सामर्थ्य प्राप्त करने की दिशा में भी हम आगे नहीं बढ़ पाते।

योजना की मौलिक ग़लती

योजना की सबसे बड़ी ग़लती है उसके द्वारा भारत की परिस्थितियों पर विचार न किया जाना। उसने न तो भारत के साधनों का विचार किया और न उन सबकी आवश्यकताओं का। वह रूस और यूरोप के औद्योगीकरण के अनुकरण का एक क्षीण प्रयास मात्र है। उसमें भी इन देशों के सम्मुख औद्योगीकरण के काल में और उसके परिणामस्वरूप जो समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं, उनका भी विचार नहीं किया गया। विभिन्न परियोजनाओं और क्षेत्रों के बीच न तो संतुलन बिठाया गया और न समन्वय ही। किसी भी योजना की पूर्ति के लिए धन ही नहीं, भौतिक और मानवी साधनों की भी आवश्यकता है। हमारा संपूर्ण ध्यान धन की प्राप्ति के स्रोत ढूँढ़ना और उसके व्यय की मात्रा के अनुसार सफलता को आँकने की ओर लग गया है। कम-से-कम व्यय से अधिकतम लाभ का विचार ही भूल गए। जहाँ हमें मानवीय विकास का लक्ष्य रखना चाहिए था, वहाँ हमने भौतिक लक्ष्य रखे और उनका आधार भी वित्तीय लक्ष्य मान लिया।

तीसरी योजना

आज तीसरी योजना की चर्चा शुरू हो गई है। योजना का आधार भारत की कृषि और उसके विभिन्न अंग के रूप में खड़े हुए विकेंद्रित उद्योग हों, इस ओर हम पिछले पृष्ठों में पर्याप्त ध्यान खींच चुके हैं। विकेंद्रित कृषि औद्योगिक ग्राम समाज ही हमारे राष्ट्र की रीढ़ की हड्डी हो सकती है। उसका विकास करने के लिए संस्था संबंधी व्यवस्थाएँ निर्माण करना, यही शासन की योजनाओं का काम हो सकता है।

देश की अर्थव्यवस्था के क्रांतिकारी विकास का कार्यक्रम बनाते हुए भी हमें यह ध्यान में रखना होगा कि तीसरी योजना दूसरी से असंबद्ध न हो। घड़ी के पेंडुलम के समान परिस्थितियों के थपेड़े से इधर से उधर झूलते रहने से हम समय, शक्ति और साधनों का अपव्यय ही करेंगे। भारी ख़र्चा करके दूसरी योजना की अवधि में प्राप्त साधनों का इस प्रकार उपयोग करना होगा, जिससे हम उन्हें व्यर्थ न जाने दें तथा अपनी अर्थव्यवस्था में हमने जो असंतुलन पैदा कर लिए हैं, उन्हें ठीक करते हुए आगे के विकास की व्यवस्था कर सकें।

—पुस्तक, 1958

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

परिशिष्ट

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

परिशिष्ट

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भारतीय जनसंघ की पंजाब और हिमाचल कार्यसमिति की बैठक

भारतीय जनसंघ की पंजाब व हिमाचल कार्यसमिति की आकस्मिक बैठक 10 जनवरी, 1958 को सायं 7 बजे यहाँ अंबाला में आचार्य रामदेवजी की अध्यक्षता में हुई। तय किया गया कि भारतीय जनसंघ की अगली वार्षिक बैठक पंजाब के हरियाणा क्षेत्र में बुलाई जाए। जनसंघ के महामंत्री पंडित दीनदयाल उपाध्याय और जम्मू-कश्मीर, पंजाब, हिमाचल और दिल्ली क्षेत्र के प्रभारी बलराज मधोक ने भी इस बैठक में हुई चर्चाओं में भाग लिया। पंजाब विधानसभा के विधायकों और विधान परिषद् के सदस्यों ने बैठक में हिस्सा लिया। बैठक में चर्चा रात को साढ़े ग्यारह बजे तक चलती रही।

मोहरी रेल दुर्घटना

कार्यसमिति के सदस्यों ने मोहरी में दो रेलगाड़ियों की भिड़ंत से हुई दुर्घटना पर गहरा दु:ख जताया और लगातार बढ़ रही रेल दुर्घटनाओं पर केंद्र सरकार को सजग और सतर्क रहने की चेतावनी दी। दुर्घटना में जान गँवाने वाले लोगों को श्रद्धांजलि देने के लिए कार्यसमिति के सदस्यों ने दो मिनट का मौन भी रखा।

शहीदों को श्रद्धांजलि

चूँकि हिंदी बचाओ सत्याग्रह के बाद पंजाब व हिमाचल जनसंघ की पूर्ण कार्यसमिति की यह पहली बैठक थी, इसलिए सत्याग्रह के दौरान सरकार के दमन व अत्याचार के शिकार, जिनमें श्री सुमेर सिंह भी थे, हुए शहीदों को कार्यसमिति ने भावभीनी श्रद्धांजलि दी। समिति ने गंभीर रूप से घायल हुए प्रमुख लोगों, जिनमें विधायक श्री लाल चंदजी, विधायक मंगल सेनजी, पठानकोट के श्री सत्यपाल महाजनजी, सनौर (पटियाला) के सीताराम महाजन, फाजिल्का के श्री जगन्नाथजी और कई ऐसे लोग, जिनके नाम मालूम नहीं, के प्रति गहरी सहानुभूति व्यक्त की।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

हिंदी आंदोलन का स्थगन

कार्यसमिति ने अखिल भारतीय भाषा स्वातंत्र्य समिति के बैनर तले सफलतापूर्वक भाषा आंदोलन चलाए जाने के बाद इसके स्थगन पर संतोष व्यक्त किया। समिति ने मातृभूमि की एकता और अखंडता के लिए लड़ने वाले सभी लोगों को हार्दिक बधाई दी। कार्यसमिति यह जानकर बहुत ख़ुश हुई कि इस भीषण संघर्ष में से जनसंघ एक मज़बूत एवं प्रतिष्ठित संगठन के रूप में उभरकर निकला है। कार्यसमिति ने इस बात पर भी ख़ुशी जताई कि इस ऐतिहासिक आंदोलन में जनसंघ के विधायकों, विधान परिषद् के सदस्यों, नगरपालिका आयुक्तों, जिला व मंडल के सदस्यों तथा स्थानीय समिति के सदस्यों ने बहादुरी के साथ बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया।

इस आंदोलन का एक और महत्त्वपूर्ण असर यह रहा कि पूरे देश के राष्ट्रवादी, देशभक्त और मज़बूत व आत्मविश्वास से लबालब हो गए। इस नज़रिये से देखें तो बेशक़ यह राष्ट्रवादी ताक़तों की जीत रही। कार्यसमिति यह अपेक्षा करती है कि सभी स्तर के कार्यकर्ता निकट या दूर भविष्य में जब भी आवश्यकता पड़े, वैसी ही भावना और अदम्य इच्छाशक्ति का प्रदर्शन करेंगे, जैसा कि उन्होंने इस आंदोलन में किया है।

देशविरोधी तत्त्वों का विध्वंस

कार्यसमिति दुःख के साथ कहना चाहती है कि केंद्र सरकार एवं भाषा स्वातंत्र्य समिति ने जो भरोसा एक-दूसरे पर जताया, उसे पंजाब सरकार के इन कारनामों ने पूरी तरह से तोड़कर रख दिया।

(अ) हिंदी सत्याग्रहियों के ख़िलाफ़ जगह-जगह दायर मुकदमे वापस नहीं लिए गए।

(ब) हिंदीप्रेमियों के आयुध लाइसेंस रद्द कर दिए गए।

(स) बहू अकबरपुर और फिरोजपुर जेल त्रासदी के शिकार हुए लोगों को क्षतिपूर्ति नहीं दी गई।

(द) बहू अकबरपुर और फिरोजपुर जेल त्रासदी के लिए ज़िम्मेदार अधिकारियों के ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं की गई।

(य) स्थानीय निकायों से सदस्यों का निष्कासन कर दिया गया और चुनाव लड़ने से उन्हें अयोग्य ठहराने का ठप्पा लगा दिया गया।

कार्यसमिति केंद्र सरकार और कांग्रेस आलाकमान से यह अनुरोध करती है कि हमारे राज्य में भाषा विवाद के सम्मानजनक समाधान के लिए जो उन्होंने एक भरोसा जताया है, उसे बचाए रखने और उसका सम्मान करने के लिए सजग व सतर्क रहें।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पटवारियों की हड़ताल

कार्यसमिति का स्पष्ट मानना है कि पंजाब पटवारी संघ की माँग जायज़ और तार्किक है। कार्यसमिति यह भी स्पष्ट कर देना चाहती है कि पंजाब सरकार की वास्तविकता से परे तानाशाही नीतियाँ ही पटवारियों को हड़ताल और सत्याग्रह के लिए मज़बूर करने के लिए सीधे ज़िम्मेदार हैं। आज राज्यव्यापी हड़ताल का 30वें दिन में प्रवेश ही पंजाब सरकार की उद्दंडता और नीयत बता रहा है।

इसलिए कार्यसमिति पंजाब सरकार से यह ज़ोरदार माँग करती है कि वह पंजाब के पटवारियों की जायज़ माँग को पूरा करे और इस दु:खद टकराव को ख़त्म करे।

कश्मीर समस्या

कार्यसमिति का स्पष्ट मानना है कि भारत सरकार को किसी भी स्थिति में डॉ. ग्राहम से बातचीत नहीं करनी चाहिए। सरकार ने जो रुख़ अख़्तियार कर रखा है, उसके तार्किक परिणाम के लिए अनुच्छेद 370 को हटाकर तुरंत ऐसे क़दम उठाए जाने चाहिए, जिससे जम्मू-कश्मीर और भारत के अन्य राज्यों के बीच मौजूद सभी विभेद ख़त्म किए जा सकें। जब तक झंडे, नागरिकता आदि में भेद बना रहेगा, तब तक कश्मीर समेत भारत को नुक़सान पहुँचाने वाले देशविरोधी तत्त्वों के लिए इस मुद्दे को भुनाने की संभावना बनी रहेगी।

पुराना नगरपालिका क़ानून-1911

भारतीय जनसंघ की पंजाब व हिमाचल कार्यसमिति स्पष्ट रूप से यह मानती है कि आज़ादी के बाद से ही राज्य में कांग्रेस सरकार के अधीन स्थानीय निकायों की प्रवृत्ति लगातार क्षरण और ग़ैर-कांग्रेसी लोकप्रिय समूहों को ख़त्म करने की रही है। ताज़ा मामला है कि ज़िला बोर्ड के निर्वाचित सदस्यों को नामित बोर्ड अधिकारियों की जगह स्थापित कर दिया गया है और सभी नगरपालिका समितियाँ तीन वर्ष के सामान्य कार्यकाल के बजाय पाँच से 18 वर्ष तक काम कर रही हैं। पंजाब जिला बोर्ड अधिनियम-1883 और पंजाब नगरपालिका अधिनियम-1911 अभी भी प्रभावी हैं और ये सत्ताधारी पार्टी को स्थानीय निकायों को अपने अनुसार चलाने का तंत्र मुहैया कराते हैं। ग़ैर-कांग्रेसी सदस्यों का निष्कासन, उनकी सीटों को ख़ाली रखना, उन्हें पाँच साल तक चुनाव लड़ने के लिए अयोग्य घोषित करना और क़ानून में वर्णित किसी तार्किक कारण के बिना कुछ स्थानीय इकाइयों का दमन और भ्रष्ट तथा बेईमान सदस्यों को लंबे समय तक बनाए रखना इन पुराने अधिनियमों की आड़ में चलता रहता है।

कार्यसमिति को यह दु:ख के साथ कहना पड़ता है कि 1993 में गठित स्थानीय

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

निकाय जाँच कमेटी ने चार साल की मेहनत के बाद भी, सार्वजनिक खर्चे पर पूरे देश की यात्रा करने के बाद भी, संबंधित मंत्री महोदय द्वारा विदेशों की यात्रा के बाद भी स्थानीय निकायों के सुचारु ढंग से संचालन के लिए किसी संवैधानिक मशीनरी का सुझाव नहीं दिया। केवल यह सलाह दी कि इसके संविधान और प्रशासन का प्रावधान भारत के संविधान में होना चाहिए और इसके चुनाव की ज़िम्मेदारी भारत के चुनाव आयोग को दी जानी चाहिए।

आर्थिक मामले

हालाँकि कार्यसमिति ने कुछ वस्तुओं पर से बिक्री-कर हटाने और उसे उत्पाद शुल्क से प्रतिस्थापित करने के निर्णय का स्वागत किया, लेकिन राज्य सरकार द्वारा भंडारित मालों पर लगने वाले बिक्री कर पर लेवी लगाने का ज़ोरदार विरोध किया; क्योंकि ख़रीद कर पर लगी यह लेवी पंजाब के खुदरा व्यापारियों के हित पर चोट पहुँचाती है। कार्यसमिति राज्य सरकार से यह माँग करती है कि खुदरा व्यापारियों के वास्तविक हितों के ख़िलाफ़ इस कर की वसूली पर तत्काल रोक लगाए। देखा जाए तो यह लेवी अखिल भारतीय कराधान जाँच कमेटी के सुझावों के ख़िलाफ़ है।

कार्यसमिति ने अपना अधिकतम समय समाज के ग़रीब और मध्य आय वर्ग के लोगों पर लादे जा रहे करों से बचने के उपायों को अंतिम रूप देने में लगाया। कार्यसमिति ने इस स्थिति से लड़ने के लिए ठोस कार्यक्रम बनाने हेतु एक उप समिति का भी गठन किया।

—ऑर्गनाइज़र, 20 जनवरी, 1958

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

परिशिष्ट-II

1000 मंडल इकाइयाँ स्थापित की जाएँगी

विराटनगर (अंबाला) 5 अप्रैल : भारतीय जनसंघ ने आगामी वर्ष में 1000 मंडल इकाइयाँ स्थापित करने का लक्ष्य निर्धारित किया है और साथ ही उन राज्यों और क्षेत्रों में पार्टी शाखाएँ स्थापित करने का निर्णय लिया है, जहाँ अभी तक ये नहीं हैं। यह बात पार्टी के महामंत्री श्री दीनदयाल उपाध्याय ने यहाँ शाम को भारतीय जनसंघ के खुले सत्र में पेश अपनी वार्षिक रिपोर्ट में कही।

उन्होंने कहा कि जनसंघ की गतिविधियाँ इस विशेष उद्देश्य से संचालित की जाएँगी कि पार्टी की हर समिति में महिलाओं को प्रतिनिधित्व प्राप्त हो। उन्होंने कहा कि पहाड़ी जनजातियों और हरिजनों के बीच सांगठनिक कार्य में प्रगति हुई है, लेकिन अभी बहुत कुछ किया जाना बाक़ी है। उन्होंने कहा कि चुनाव में जनसंघ और साम्यवादी दल (कम्युनिस्ट पार्टी) ने समानुपातिक रूप से समान प्रगति की है और कांग्रेस की अपराजेयता के मिथक को भंग कर दिया है। वर्तमान में पार्टी के लोकसभा में 4, राज्यसभा में एक, विभिन्न विधानसभाओं में 54 और विधान परिषदों में 6 सदस्य हैं।

उन्होंने कहा कि जनसंघ की स्थानीय निकायों में सदस्यता विशेष रूप से बढ़ी है। इसकी वजह से स्थानीय निकायों के चुनावी क्षेत्रों में पार्षदों की संख्या बढ़ गई है। दिल्ली नगर निगम में जनसंघ प्रत्याशियों की सफलता से संकेत मिला है कि यह अकेला संगठित दल है, जो ख़ाली स्थान को भरने में सक्षम साबित हुआ है। उत्तर प्रदेश के निकाय चुनावों में पिछली बार सात नगर निगमों की अपेक्षा इस बार सिर्फ़ तीन नगर निगमों में जीत संभव हो पाई है। इसका मुख्य कारण चुनाव के तौर-तरीक़े में बदलाव है। मध्य प्रदेश में 74 में से 27 प्रत्याशी सफल हुए हैं। महाराष्ट्र में जनसंघ नामित कुल 104 में 82 प्रत्याशी जीते हैं, जिनमें 9 महिलाएँ हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रजा परिषद् नेता पंडित डोगरा ने कहा कि भारत सरकार और जनता को यह बात समझनी चाहिए कि कश्मीर समस्या के हल के लिए उन्हें अपनी ही अंतर्निहित शक्ति और दृढ निश्चय पर निर्भर रहना होगा। इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए पहला क़दम शेष भारत और जम्मू एवं कश्मीर के बीच मौजूद संवैधानिक अंतर को समाप्त करना होगा। पंडित डोगरा ने खुले सत्र में कश्मीर पर प्रस्ताव पेश किया, जिसे बाद में विषय समितियों (सब्जेक्ट्स कमेटीज) द्वारा स्वीकार कर लिया गया।

पंडित डोगरा ने कहा कि कश्मीर मामले में संदेह की स्थिति ने उपद्रवी और पृथकतावादी प्रवृत्तियों को बढ़ावा दिया है और इससे भारत व पाकिस्तान के संयुक्त राष्ट्र में प्रतिनिधि डॉ. ग्राहम को नए मुद्दे उठाने और अजीब प्रकार के सुझाव पेश करने का मौक़ा भी मिल गया। उन्होंने कहा कि भारत सरकार ने डॉ. ग्राहम के नए प्रस्ताव को निरस्त कर सराहनीय कार्य किया है।

समय आ गया है, जबकि संयुक्त राष्ट्र को स्पष्ट शब्दों में बता दिया जाना चाहिए कि अगर वह पाकिस्तान के क़ब्ज़े वाले क्षेत्र को ख़ाली कराने में भारत के साथ न्याय करने का साहस नहीं रखता है तो वह स्वयं को कश्मीर के मुद्दे से दूर ही रखे। कश्मीर मामले में संयुक्त राष्ट्र का मात्र एक ही काम है कि वह पाकिस्तान को कश्मीर के क़ब्ज़े वाले क्षेत्रों को शांतिपूर्वक ख़ाली करने के लिए राजी करे।

पंडित डोगरा ने माँग की कि जम्मू व कश्मीर और शेष भारत के बीच के संवैधानिक अंतर को समाप्त किया जाना चाहिए। जब तक यह काम नहीं किया जाता, तब तक अलगाववादी शक्तियाँ मौजूदा स्थिति का दुरुपयोग करती रहेंगी, जो भारत के लिए परेशानी का कारण होगा। यह आश्चर्यजनक है कि बक्शी ग़ुलाम मोहम्मद और कांग्रेस सरकार के प्रवक्ता दोनों ही यह कहते हुए कभी नहीं थकते कि कश्मीर भारत है, लेकिन भारतीय संविधान को पूरी तरह से वास्तविक रूप में कश्मीर में लागू करने में शर्म महसूस करते हैं। उन्होंने कहा कि सरकार को इस मामले में यथार्थपरक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।

थोपी गई शर्तें

प्रजा परिषद् नेता ने कहा कि कश्मीर समस्या नेहरू की देन है, क्योंकि उन्होंने जम्मू और कश्मीर को भारत में मिलाने की स्वीकृति देने से इनकार किया और कई प्रकार की शर्तें थोप दीं, जिसका उन्हें कोई निजी अधिकार नहीं था और न ही उनके पास कोई शासनादेश ही था। उन्होंने कहा कि बक्शी गुलाम मोहम्मद कश्मीर में संदेह और अस्थिरता जारी रखते हुए भारत सरकार और जनता को ब्लैकमेल कर रहा है।

सत्र में पंजाब की स्थिति पर भी प्रस्ताव पारित किया गया, जिसे विषय समितियों

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ने स्वीकार कर लिया।

पंजाब की स्थिति पर पारित प्रस्ताव में केंद्र सरकार से जनता में व्यापक रूप से फैले वैमनस्य से उत्पन्न स्थिति के समाधान के लिए अविलंब प्रभावी क़दम उठाने का आग्रह किया गया।

—ऑर्गनाइज़र, अप्रैल 17, 1958

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

परिशिष्ट-III

भारतीय जनसंघ के प्रस्ताव

चार से छह अप्रैल तक अंबाला कैंट में चले छठवें वार्षिक सत्र में भारतीय जनसंघ ने कई महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किए। इन प्रस्तावों का मूल पाठ निम्नवत् है।

आर्थिक परिदृश्य

देश कठिन आर्थिक परिस्थितियों का सामना कर रहा है, जो सरकार और जनता दोनों के लिए गहरी चिंता का विषय है। खाद्यान्न में कमी, औद्योगिक उत्पादन में गिरावट, महँगाई, आम आदमी की क्रयशक्ति में कमी, बेरोज़गारी, कर बोझ में बढ़ोतरी, मुद्रास्फीति और विदेशी मुद्रा संकट आदि के चलते यह चिंताजनक परिस्थिति स्पष्ट है।

विकासात्मक अर्थव्यवस्था का स्वाभाविक प्रभाव मात्र कहकर इस समस्या की अनदेखी नहीं की जा सकती है। यह सत्य है कि एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के आर्थिक ढाँचे में परिवर्तन के प्रयास में कुछ क्षेत्रों में कई प्रकार के दबाव और विसंगतियाँ परिलक्षित होती हैं, लेकिन अर्थव्यवस्था में चौतरफ़ा गिरावट के प्रमुख कारण बहुत हद तक हमारी योजना निर्धारण प्रक्रिया की मूलभूत ग़लतियों के अलावा सतर्कता, दूरदर्शिता और सरकार के मंत्रालयों व नीतियों के मध्य तालमेल का अभाव है।

जनसंघ आरंभ से ही सतत इस बात पर ज़ोर देता रहा है कि हमारे योजना निर्धारण में कृषि उत्पादन को पहली प्राथमिकता दी जानी चाहिए। यद्यपि सरकार ने कृषि विकास कार्यक्रम को प्राथमिकता नहीं देने की अपनी ग़लती को मान लिया है, लेकिन ऐसे कार्यक्रमों के कार्यान्वयन की दिशा में कोई भी ठोस और रचनात्मक क़दम नहीं उठाए गए। जब तक प्रत्येक कृषि परिवार, गाँव और क्षेत्र की ज़रूरतों और क्षमताओं को ध्यान में रखते हुए कृषि विकास कार्यक्रमों और उत्पादन लक्ष्यों को सुनिश्चित नहीं किया जाता तब तक ये वास्तविक ज़रूरतों से बहुत दूर बने रहेंगे। प्रत्येक इकाई द्वारा ज़रूरी योगदान नहीं किए जाने से इन लक्ष्यों को मुश्किल से ही प्राप्त किया जा सकता है।

अभी तक सरकार ने लघु सिंचाई परियोजनाओं, उन्नत बीजों व उर्वरकों और देशी खाद की उपलब्धता, भू-स्वामित्व को सीमित करने और ज़मीन के उचित किराए;

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बाक़ी के निर्धारण पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया है, जो तीव्र कृषि विकास के लिए बहुत आवश्यक है, जिससे प्रति एकड़ अधिकतम उत्पादन हासिल किया जा सके। इसके विपरीत सरकार ने बड़ी-बड़ी सिंचाई परियोजनाओं को चालू किया। ऊँची शुल्क दरों के चलते इनका सदुपयोग नहीं हो पाया, क्योंकि किसानों के लिए ये अलाभकारी प्रमाणित हुईं। इसके साथ ही सरकार ने सुधार शुल्कों और सहकारी कृषि के नाम पर सामूहिकीकरण, भू-सुधार क़ानूनों में बार-बार परिवर्तनों और कृषि यांत्रिकीकरण पर ज़्यादा ध्यान दिया, जिससे नुक़सान उठाना पड़ा। उर्वरकों को बढ़ावा देते हुए सरकार ने भू परिस्थितियों और सिंचाई साधनों के बारे में नहीं सोचा। यह नहीं सोचा कि कौन सी उर्वरक किस प्रकार की भूमि के अनुकूल नहीं है या भारत में कृषि और किसानों के लिए घातक है।

पिछले पाँच सालों की अवधि में औद्योगिक क्षेत्र में कुछ प्रगति हुई है, लेकिन हाल ही में कुछ उद्योगों में हल्की गिरावट आई है। पश्चिमी अर्थव्यवस्थाओं के सिद्धांतों के अनुसार ऐसे समय जब सरकारी व्यय बढ़ रहा है, उद्योगों में मंदी विरोधाभासी है। सरकार ने अपनी योजनाओं के निर्धारण के लिए आधारस्वरूप इन्हीं पश्चिमी अर्थव्यवस्थाओं को अपना रखा है, जो भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल नहीं हैं। सरकार की ऋण एवं मुद्रा नीतियों और औद्योगिक एवं कराधान कार्यक्रमों के बीच सामंजस्य का अभाव है। लघु उद्योग, जो देश में औद्योगीकरण की नींव बन सकते हैं, पर उचित ध्यान नहीं दिया गया है। पिछले 18 महीनों के दौरान हुई वस्तुओं के मूल्यों में बढ़ोतरी अभी तक कम नहीं की जा सकी है। मूल्यों में बढ़ोतरी ने जहाँ एक ओर स्थिर आय समूहों के लिए कठिनाइयाँ पैदा की है, वहीं दूसरी ओर विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग समय में जिंसों के मूल्यों के साथ ही उद्योग निर्मित वस्तुओं और कृषिगत उत्पादों के मूल्यों में उतार-चढ़ाव से किसी और को नहीं बल्कि सिर्फ़ सट्टेबाजों और ज़माखोरों को ही फ़ायदा मिलता है। अभी तक सरकार देश में स्थिर मूल्य स्तर क़ायम करने असफल साबित हुई है। इससे अर्थव्यवस्था में एक दुष्चक्र बन जाता है। वस्तुओं के मूल्यों में बढ़ोतरी से वेतन और मज़दूरी में बढ़ोतरी की माँग पैदा होती है और उत्पादन की लागत बढ़ती है और इसके परिणामस्वरूप वस्तुओं के मूल्यों में और बढ़ोतरी हो जाती है। इसी प्रकार महत्त्वाकांक्षी योजनाओं से कराधान में बढ़ोतरी होती है और व्यय से होने वाले घाटे को वित्तपोषित करना पड़ता है, जिससे मूल्यों में बढ़ोतरी शुरू हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप सरकार के अनुमानित व्ययों में बढ़ोतरी हो जाती है। इससे कर वसूली में बढ़ोतरी और घाटे के वित्तपोषण का दबाव बढ़ता है। भारतीय अर्थव्यवस्था इन्ही दुष्चक्रों की गिरफ़्त में है। सामान्य स्तर पर स्थिर मूल्य व्यवस्था स्थापित करने को केंद्र में रखते हुए ही हम इस संकट से पार पा सकते हैं। सरकार की कराधान नीति भी उसके द्वारा घोषित आम आदमी के जीवन स्तर को उठाने और आर्थिक अनियमितताओं को कम

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

करने के अनुकूल नहीं है। अप्रत्यक्ष कर, जो मुख्य रूप से आम आदमी को प्रभावित करते हैं, प्रत्यक्ष करों की तुलना में बहुत अधिक बढ़ गए हैं। जीवन की आवश्यक वस्तुएँ भी ऐसे करों जैसे उत्पाद शुल्क, बिक्री कर और क्रय कर आदि से मुक्त नहीं हैं।

सरकारी व्यय इतनी तेज़ी से बढ़ता जा रहा है कि पिछले दो सालों के दौरान 225 करोड़ रुपए अतिरिक्त कराधान के बावजूद 600 करोड़ रुपए के घाटे को वित्तपोषित किया गया है, जो ख़तरनाक स्थिति है। पंचवर्षीय योजना के सफल कार्यान्वयन के लिए विदेशी ऋण लेना अनिवार्य हो गया है, लेकिन इन ऋणों के भुगतान के लिए कोई निश्चित योजना नहीं दिखती। साथ ही ऐसे ऋणों के हमारी अगली पंचवर्षीय योजनाओं में संभावित प्रभावों पर भी कोई विचार नहीं किया गया है।

वर्तमान परिस्थिति में जनसंघ निम्न समाधानात्मक उपायों का सुझाव प्रस्तुत करता है।

1. सरकारी व्यय में भारी कमी की जानी चाहिए।
2. जनता को राज्य स्तरीय कंपनियों के शेयरों को क्रय करने की अनुमति दी जानी चाहिए। केंद्र सरकार इन कंपनियों में स्वामित्व बनाए रखने के लिए ज़रूरी शेयरों को राज्य सरकारों के पास रखने की अनुमति दे।
3. योजना की अवधि बढ़ाई जानी चाहिए।
4. उन परियोजनाओं को, जो तुरंत लाभदायक हो सकती हैं, जहाँ तक संभव हो जल्द से जल्द पूरा किया जाना चाहिए।
5. आयात में कमी की जानी चाहिए और घरेलू माल का उपयोग करते हुए योजना को पूरा किया जाए।
6. 2000 रुपए से अधिक के वेतनभोगियों को दो हज़ार रुपए की सीमा से अधिक के राष्ट्रीय योजना बांड दिए जाने चाहिए।

भाषा

हाल ही में सरकारी भाषा की समस्या को लेकर उठा विवाद अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है। यह अविवादित तथ्य है कि एक स्वतंत्र एवं आत्मसम्मानी राष्ट्र का प्रशासन विदेशी भाषा के माध्यम से नहीं किया जा सकता है। संविधान सभा की ओर से अंग्रेज़ी के स्थान पर धीरे-धीरे भारतीय भाषाओं को लाने के लिए 15 वर्षों की अवधि निर्धारित की गई। इसका उद्देश्य हमें इस तैयारी के लिए पर्याप्त समय प्रदान करना था कि हम स्वतंत्र और संप्रभु भारत के नागरिक के रूप में भारतीय भाषाओं के माध्यम से अपने सभी दायित्वों को पूरा करें। यह ख़ेदजनक है कि इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए अपने समस्त संसाधनों और ऊर्जा को केंद्रित करने के बजाय हम उन्हीं मुद्दों पर फिर से विवाद कर

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

रहे हैं, जिनका हमेशा के लिए पटाक्षेप हो गया था। संविधान द्वारा निर्धारित अवधि को बढ़ाने की अपीलें न तो लाभदायक हैं और न ही उनके लिए यह समय ही उचित है। संविधान की धारा 343 (3) संसद् को अधिकृत करती है कि वह जहाँ भी ज़रूरी हो, इस 15 साल की अवधि के उपरांत भी निश्‍चित अवधि के लिए हिंदी के साथ अंग्रेज़ी के प्रयोग की व्यवस्था कर सकती है। इसलिए जनता के किसी भी वर्ग को अपने भविष्य को लेकर इस बात से क़तई चिंतित होने की ज़रूरत नहीं है कि वह किसी ख़ास भाषा को जानता है अथवा नहीं।

भारतीय जनसंघ सदैव से ही समस्त भारतीय भाषाओं को राष्ट्रीय ही मानता है। देश भर में इनके प्रयोग और विकास को लेकर कोई प्रतिबंध नहीं होना चाहिए। जनसंघ सरकार से निम्न उपायों को लागू करने का आग्रह करता है।

1. क्षेत्रीय भाषाओं को अपने संबंधित राज्यों में सरकारी भाषा के रूप में लागू किया जाए और उनके अधिकाधिक प्रयोग को सुनिश्‍चित करने के लिए क़दम उठाए जाने चाहिए।
2. विदेश से हमारे संवाद में सदैव संघीय भाषा अर्थात् हिंदी का ही प्रयोग किया जाना चाहिए।
3. केंद्र और राज्यों के बीच सारा पत्राचार संघीय भाषा में ही होना चाहिए। एक निश्चित अवधि के लिए उसका अंग्रेज़ी अनुवाद उपलब्ध कराया जाना चाहिए।
4. अंग्रेज़ी के साथ संविधान की आठवीं अनुसूची में उल्लिखित सभी भाषाओं को यू.पी.एस.सी. परीक्षाओं का माध्यम बनाया जाना चाहिए और सेवा में चयन के पश्‍चात् ही हिंदी का ज्ञान अनिवार्य किया जाए।
5. राज्य सरकारों को उनके विधानमंडलों द्वारा अपनी क्षेत्रीय भाषाओं में पारित सभी विधेयकों का हिंदी और अंग्रेज़ी अनुवाद उपलब्ध कराने का प्रावधान निर्धारित करना चाहिए।
6. केंद्र सरकार को भाषाविदों और विद्वानों के सहयोग से वैज्ञानिक एवं तकनीकी विषयों की सामान्य शब्दावली तैयार करनी चाहिए, जिसका प्रयोग भारत की सभी भाषाओं में समान रूप से संभव हो सके।
7. विभिन्न राज्यों में निर्देशों का माध्यम अपनी संबंधित क्षेत्रीय भाषाएँ होनी चाहिए और माध्यमिक स्तर से हिंदी का अध्ययन अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए, जबकि प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा में ही होनी चाहिए। विद्यालयों पर इसका कोई प्रतिबंध नहीं होना चाहिए कि वह किस भाषा में निर्देश देता है। यह भाषा क्षेत्रीय भाषा से भिन्न भी हो सकती है। ऐसे विद्यालयों को बग़ैर किसी भेदभाव के सभी प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

8. सभी माध्यमिक स्कूलों में संस्कृत की अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान निर्धारित करना चाहिए। सभी राज्य समारोहों और औपचारिक कार्यक्रमों में संस्कृत के प्रयोग को अधिकाधिक बढ़ावा दिया जाए।

कश्मीर

कश्मीर में हाल की घटनाओं और जेल से रिहा होने के बाद से शेख़ अब्दुल्ला की गतिविधियों ने सामान्य रूप से कश्मीर समस्या और विशेष रूप से शेख़ अब्दुल्ला को ही लेकर जनसंघ की विचारधारा को पूरी तरह से सच सिद्ध किया है। आज कश्मीर समस्या को लेकर सरकारी प्रवक्ता वैसी ही भाषा बोल रहे हैं और उन्हीं तर्कों पर बल दे रहे हैं, जो जनसंघ अपनी शुरुआत से ही करता आ रहा है। अब यह स्पष्ट हो गया है कि डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी का बलिदान बेकार नहीं गया।

लेकिन अभी तक संतुष्ट होकर बैठने का समय भी नहीं आया है। शेख़ अब्दुल्ला धार्मिक विद्वेष को बढ़ाने वाले भारत विरोधी प्रचार के साथ पाकिस्तान का खेल खेलने के लिए बाहर आ गए हैं। हाल की उनकी कुछ गतिविधियाँ और कुछ विचार हमारे देश और इसके संविधान के विरुद्ध खुलेआम राजद्रोह की श्रेणी में आते हैं। उनके साथ किसी भी क़िस्म की ढिलाई भारत के व्यापक हितों को भारी चोट पहुँचा सकती है। इसलिए यह आवश्यक है कि बग़ैर किसी विलंब के उन पर और उनके सहयोगियों पर अंकुश लगाने के प्रभावी क़दम उठाए जाएँ। हालाँकि यह संतोष का विषय है कि कश्मीर की जनता शेख़ अब्दुल्ला के सांप्रदायिक प्रचार से प्रभावित नहीं हुई है। इसके लिए वहाँ की जनता बधाई की पात्र है।

दूसरी ओर राजधानी में कुछ तत्त्वों की गतिविधियाँ बेचैन करने वाली हैं। हाल ही में सार्वजनिक बैठक के दौरान बख़्शी ग़ुलाम मोहम्मद की ओर से भारत पर लगाए गए आरोप भारत सरकार के लिए गहरी चिंता का विषय होने चाहिए। बख़्शी ग़ुलाम मोहम्मद पाकिस्तानी एजेंटों और अब्दुल्ला के मित्रों की भारत विरोधी गतिविधियों का केंद्र बना हुआ है। इस बारे में प्रधानमंत्री पंडित नेहरू की निजी ज़िम्मेदारी बनती है। जेल से रिहा होने के बाद से श्री अब्दुल्ला की गतिविधियों को लेकर नेहरू की सुविचारित चुप्पी और जम्मू और कश्मीर के पूर्व मुख्यमंत्री के प्रति उनकी निजी सम्मान भावना का दुरुपयोग भारत विरोधी तत्त्वों द्वारा आम लोगों को भ्रमित करने के लिए लगातार किया जा रहा है। इस बारे में प्रधानमंत्री को यह सलाह देना बेहतर होगा कि वे शेख़ अब्दुल्ला को बरखास्त किए जाने और बाद में उन्हें बंदी बनाए जाने के पूर्व वर्ष 1953 में उनके साथ हुए पत्राचार को प्रकाशित करें। उस समय की स्थिति के बारे में जनता के समक्ष साफ़ दृष्टिकोण रखने के लिए यह आवश्यक है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

इसी के साथ ही संविधान की अनुच्छेद 370 को हटाने के क़दम भी उठाए जाने चाहिए, जिससे जम्मू व कश्मीर को भी सभी मायनों में शेष भारत के समकक्ष लाया जा सके। भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के अधिकार क्षेत्र को जम्मू व कश्मीर तक बढ़ाने और सेवाओं का एकीकरण स्वागतयोग्य है। लेकिन स्थिति की माँग यह है कि शेष भारत और कश्मीर के बीच सभी अंतरों को पूरी तरह से समाप्त कर दिया जाए। देश में एकता की भावना पैदा करने और कश्मीर के लोगों में शेष भारत के अपने भाइयों के साथ भावनात्मक एकीकरण स्थापित करने के लिए कश्मीर में समान नागरिकता नियमों को लागू करना व लोकसभा का सीधा चुनाव कराने के साथ ही चुनाव आयोग और सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को वहाँ तक बढ़ाना आवश्यक है।

भारत सरकार को यह भी देखना चाहिए कि कश्मीर के विकास के लिए उदारतापूर्वक दिए जाने वाले वित्तीय अनुदानों को उचित ढंग से व्यय किया जा रहा है अथवा नहीं। ठीक इसी समय राज्य के प्रशासन को साफ़-सुथरा बनाने के लिए भी कदम उठाने की ज़रूरत है। शेख़ अब्दुल्ला और उसके एजेंटों के ज़हरीले प्रचार को दबाने के लिए राज्य में ईमानदार और साफ़-सुथरे प्रशासन की स्थापना आवश्यक है। इसे उद्देश्य को हासिल करने के लिए केंद्र सरकार को पहले से आजमाए हुए प्रशासकों की सेवाएँ कश्मीर सरकार को प्रदान करानी चाहिए।

कश्मीर की आधारभूत समस्या अभी भी हल होनी बाक़ी है। केंद्र सरकार को पाकिस्तान के क़ब्ज़े वाले कश्मीर के हिस्से को मुक्त कराने के लिए तुरंत एवं प्रभावी क़दम उठाने चाहिए।

शरणार्थी पुनर्वास

सर्वप्रथम, पूर्वी बंगाल में हिंदुओं का उत्पीड़न और तेज़ हो गया है। सेना द्वारा तस्करी विरोधी अभियान के तहत आतंक का शासन क़ायम कर दिया गया है। अभागे हिंदू पहले से ही इसलामिक स्टेट में विभिन्न प्रकार के भेदभावों के चलते कराह रहे हैं। इसके चलते उनका जीवन लगभग असहनीय हो गया है और वे इन परिस्थितियों से बाहर आने का रास्ता खोज रहे हैं। हालाँकि भारत सरकार ने आव्रजन प्रमाणपत्र जारी करने की प्रक्रिया रोकते हुए शरणार्थियों का पलायन रोक दिया है। सिर्फ़ ऐसी शर्तों पर ऐसे प्रमाणपत्र दिए जा रहे हैं, जिन्हें पूरा करना असंभव है। लेकिन सरकार औपचारिक रूप से इस बात से इनकार करती है और विनम्रतापूर्वक यह कहती है कि यह पलायन व्यावहारिक रूप से बंद हो गया है या फिर बहुत ही मामूली रह गया है। पलायन के अधिकार को इस प्रकार से समाप्त किया जाना न सिर्फ़ विभाजन के समय बार-बार दिए गए आश्वासन के विरुद्ध है बल्कि यह 1950 में हुए नेहरू-लियाक़त अली समझौते के

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रावधानों के भी विरुद्ध है। इस प्रकार यह पूर्वी बंगाल के हिंदू अल्पसंख्यकों के साथ गहरा विश्वासघात है।

दूसरी बात, पूर्वी बंगाल के बहुत से हिंदुओं के प्रति सम्मान भावना के साथ यह तथ्य रखना आवश्यक है कि सरकारी आँकड़ों के अनुसार 30 लाख से अधिक हिंदू पहले से ही पलायन कर चुके हैं और जिनके पुनर्वास की ज़िम्मेदारी स्वयं सरकार ने ली है। इससे एक गंभीर परिस्थिति पैदा हो गई है। पश्चिमी बंगाल में और अधिक स्थान न होने की बात पर ज़ोर देते हुए सरकार ने बहुत से शरणार्थियों को प्रदेश से बाहर भेजने के प्रयास शुरू कर दिए हैं। इन लोगों को पश्चिम बंगाल से जुड़े हुए राज्यों, जैसे आसाम, बिहार, उड़ीसा, त्रिपुरा और मणिपुर में नहीं बल्कि देश के दूरवर्ती हिस्सों में भेजा जा रहा है। ये स्थान अविकसित, शुष्क और जंगली क्षेत्रों में हैं, जिन्हें दंडकारण्य कहा जाता है। (इनके विकास में 100 करोड़ रुपए से अधिक का व्यय होने का अनुमान है)। इन शरणार्थियों पर यह दबाव बनाया जा रहा है कि वे उन स्थानों पर जाने के लिए राजी हो जाएँ।

इस परिस्थिति को जारी नहीं रखा जा सकता है। परिस्थितियों के अनुसार जनसंघ माँग करता है कि—

सरकार पूर्वी बंगाल से हिंदुओं का पलायन रोकने की नीति में अविलंब बदलाव करे और वहाँ की परिस्थितियों से तंग आकर यहाँ आना चाह रहे सभी हिंदुओं को आने दिया जाए। जहाँ तक संभव हो, उन्हें पश्चिमी बंगाल में ही बसाया जाए और इसके बाद उन्हें समान आचार-व्यवहार वाले क्षेत्रों जैसे आसाम, बिहार, उड़ीसा, त्रिपुरा और मणिपुर में पुनर्वासित किया जाए। इन राज्यों में पहले से बंगाली बोलने वाली बड़ी जनसंख्या मौजूद है। इसके बाद अंतिम उपाय के रूप में ही उन्हें दंडकारण्य जैसे दूरवर्ती स्थानों या अन्य स्थानों पर भेजा जाए। इसके साथ ही दंडकारण्य के बारे में एक सुनिश्चित योजना सार्वजनिक की जाए और यह क्षेत्र आम लोगों के प्रतिनिधियों और शरणार्थी नेताओं को दिखाया जाए, जिससे उन्हें पता चल सके कि संबंधित योजना किस हद तक व्यावहारिक और उनकी ज़रूरतों के अनुकूल है। ऐसी किसी योजना को लेकर कोई पूर्वग्रही आपत्ति नहीं है, लेकिन बग़ैर किसी प्रारंभिक तैयारी और शुरुआती व्यवस्था के ऐसी योजना को शरणार्थियों पर ज़बरदस्ती थोपने का विचार वर्तमान सरकार को त्याग देना चाहिए।

सरकार के इस रवैये से दुर्भाग्यवान शरणार्थी कुछ लोगों के शोषण के शिकार होते हैं। ऐसी परिस्थितियों में कभी-कभी वे अनचाहे रास्तों पर चलने के लिए मजबूर कर दिए जाते हैं। जनसंघ शरणार्थियों की समस्या के इस अनिच्छापूर्ण और अनैतिक शोषण के विरुद्ध है और इच्छा प्रगट करता है कि समस्या को मानवीय तरीक़े से हल किया

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

जाए, जिससे पुनर्वास की प्रक्रिया को संतोषजनक ढंग से संपन्न किया जा सके।

दंडकारण्य स्कीम की भी जनसंघ किसी पूर्वग्रह से निंदा नहीं करता है बल्कि यह चाहता है कि परियोजना को सार्वजनिक क्षेत्र और शरणार्थियों के प्रतिनिधियों के सहयोग से उचित तरीक़े से कार्यान्वित किया जाए, जिससे कि लक्ष्य हासिल करने में वास्तविक सफलता मिल सके।

इस लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए जनसंघ आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश और पश्चिमी बंगाल के अपने कुछ सांसदों की समिति बनाने का प्रस्ताव करता है, जो केंद्र सरकार के साथ ही संबंधित राज्य सरकारों, परियोजना प्रशासक और शरणार्थियों के साथ भी संपर्क क़ायम रखेगी। इसका केंद्रीय कार्यालय कलकत्ता में रहेगा, जिससे सभी इच्छुक लोग अपनी सुविधानुसार समिति से मिल सकें।

भाग-दो

पश्चिमी पंजाब, सिंध और एन.डब्ल्यू.एफ.पी. से बड़ी संख्या में आए शरणार्थियों के उचित पुनर्वास को लेकर सरकार न सिर्फ़ बुरी तरह से असफल साबित हुई है बल्कि लगातार ऐसी नीतियों को लागू करती रही है, जिन्होंने शरणार्थियों की समस्या को सिर्फ़ बढ़ाया ही है।

जनसंघ माँग करता है कि

1. मुआवजे तौर पर दी जाने वाली नकद राशि को 1000 रुपए तक सीमित न रखा जाए और पहले की मूल व्यवस्था को फिर से लागू किया जाए।
2. निष्क्रांती की संपत्तियों की जीर्णोद्धार प्रक्रिया को रोक दिया जाना चाहिए।
3. पुनर्वास मंत्री के आश्वासन के मुताबिक पंजाब से आए शरणार्थियों को बाढ़ के दौरान अधिकृत स्थानों पर तब तक रहने की अनुमति प्रदान की जाए, जब तक कि उन्हें कोई वैकल्पिक व्यवस्था उपलब्ध नहीं करा दी जाती।
4. शरणार्थियों को लाभ और नुक़सान को ध्यान में रखे बग़ैर घर और दुकानें उपलब्ध कराई जाएँ और उनका मूल्य 30 किस्तों में वसूल किया जाए।
5. पहले से लिये गए किराए को संपत्ति मूल्य का आंशिक भुगतान माना जाए।

इस प्रस्ताव को आगे बढ़ाने के लिए जनसंघ के अध्यक्ष आचार्य घोष ने प्रस्तावित समिति के गठन की घोषणा की। यह समिति निम्नवत् है।

1. चेयरमैन, श्री नरेंद्र नाथ दास, उपाध्यक्ष बंगाल जनसंघ
2. सचिव, श्री सत्येंद्र नाथ बसु, उपाध्यक्ष बंगाल जनसंघ,
3. सदस्य, श्री अटल बिहारी वाजपेयी, सांसद
4. श्री गोपाल राव ठाकुर (आंध्र)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

5. श्री जे. रामचंद्र मूर्ति (आंध्र)
6. श्री वी.के. सचलेचा (एम.एल.ए. मध्य प्रदेश)
7. श्री कुशाभाऊ ठाकुर (मध्य प्रदेश)
8. श्री नाना देशमुख, संगठन सचिव, पूर्वी क्षेत्र, जनसंघ

अंतरराष्ट्रीय परिस्थिति

दुनिया के दो शक्ति संपन्न गुटों के बीच जहाँ एक ओर निरस्त्रीकरण और शांति के प्रति आम आदमी की सार्वभौम इच्छा के बारे में बात चल रही है, वहीं दूसरी ओर इनके बीच हथियारों की दौड़ भी चालू है। दुनिया के ये दोनों परस्पर विरोधी परिदृश्य हैं। शांति की लोकप्रिय माँग को नज़रअंदाज़ करने का काम कठिन समझते हुए दोनों ही शक्ति संपन्न गुट शांति को लेकर एक-दूसरे से बढ़-चढ़ कर बातें कर रहे हैं। लेकिन उनकी कारगुजारियाँ उनके शांति के दावों को झुठलाती हैं। जब तक परमाणु हथियारों का उत्पादन और प्रयोग पूरी तरह से प्रतिबंधित नहीं किया जाता है, तब तक परमाणु हथियारों के परीक्षण पर प्रतिबंध को स्वीकृत या अस्वीकृत करने के विवाद का कोई ख़ास महत्त्व नहीं रह जाता है।

एक ओर रूस ने सर्वसत्तावादी रुझानों पर फिर से ज़ोर देने के साथ ही पूर्वी यूरोप के उपग्रह देशों पर मज़बूत पकड़ बनाई है। हंगरी का मामला इस प्रक्रिया की फिर से याद दिलाने वाली सर्वाधिक पीड़ादायक घटना है। साथ ही वह साम्यवादी साम्राज्य स्थापित करने पर ज़ोर दे रहा है। वहीं दूसरी ओर जनतांत्रिक खेमे द्वारा गोवा में पुर्तगाली उपनिवेशवाद, अल्जीरिया में फ्रांसीसियों द्वारा चलाए जा रहे दमनचक्र और अफ्रीका में फैले कट्टर नस्लवाद का निर्लज्ज समर्थन किया जा रहा है। इससे दुनिया के शांति चाहने वालों और तटस्थ देशों की दृष्टि में दोनों शक्ति गुटों को लेकर शक़ पैदा हो गया है।

दुनिया में न्यायपरक और स्थायी शांति स्थापित करने के लिए यह आवश्यक है कि जाति, संप्रदाय, क्षेत्र और रंग आदि के भेदभाव को दरकिनार करते हुए सभी के लिए समान अवसर और निजी स्वतंत्रता पर आधारित जनतंत्र की स्थापना हो। इसके साथ ही सभी लोगों को इस बात का अधिकार दिया जाए कि वे अपनी पसंद से सरकार के स्वरूप को तय कर सकें।

इस मामले में पश्चिम के जनतांत्रिक देशों की विशेष ज़िम्मेदारी बनती है। अगर जनतंत्र को वास्तविक तरीक़े से लागू किया जाता है तो यह शांति स्थापित करने के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपाय होगा। लेकिन दुनिया के विभिन्न हिस्सों में ढुलमुल और गंभीर रूप से प्रतिक्रियावादी शासनों जैसे कि पाकिस्तान आदि के समर्थन से उन्होंने जनतांत्रिक प्रक्रियाओं को बढ़ावा देने वाले एशियाई और अफ्रीकी राष्ट्रों की आस्था को

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कमज़ोर किया है। यह बैठक महसूस करती है कि ऐसी परिस्थिति में शांति क़ायम करने के लिए दुनिया के तटस्थ देश मज़बूत कारक हैं। इसलिए यह ज़रूरी है कि ऐसे देशों के लोग किसी एक या दूसरे गुट के प्रति समर्पित रहने के सभी प्रयासों का सैन्यशक्ति या आर्थिक दबावों के जरिए विरोध करें।

भारतीय जनसंघ जनतंत्र में दृढ विश्वास रखता है और इसे सफल होते देखना चाहता है, जिससे कि दुनिया को बढ़ते हुए सर्वसत्तावादी ज्वार से बचाया जा सके। इसके लिए आवश्यक है कि भारत सरकार स्वतंत्र एवं गुट निरपेक्ष नीति का अनुसरण करे और दुनिया को ऐसा संकेत न दे कि वह इस या उस गुट की ओर झुकी हुई है। ऐसा करना न तो भारत के महत्त्वपूर्ण आत्महितों के अनुकूल होगा और न ही दुनिया में शांति और जनतंत्र स्थापित करने के हित में होगा।

गोहत्या पर प्रतिबंध

गाय हमारे राष्ट्रीय सम्मान का प्रतीक और हमारे आर्थिक ढाँचे का आधार है। इसलिए हमारे लिए गो प्रजातियों की रक्षा और कल्याण राष्ट्रीय कर्तव्य है। यहाँ तक कि स्वतंत्रता से पहले भी कई प्रदेशों, जैसे कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, सौराष्ट्र और मध्य प्रदेश में गोहत्या प्रतिबंधित थी। यह उम्मीद की गई थी कि स्वतंत्रता मिलने के बाद यह प्रतिबंध पूरे देश में लागू किया जाएगा। यह उम्मीद अब झुठला दी गई है और इसके परिणामस्वरूप देश के विभिन्न हिस्सों में गोहत्या के ख़िलाफ़ प्रतिबंध लगाने के लिए ज़ोरदार आंदोलन हुए। इन आंदोलनों के चलते ही उत्तर प्रदेश, पंजाब, बिहार, मध्य प्रदेश और मैसूर सरकार ने अपने-अपने राज्यों में गोहत्या रोकने वाले क़ानून लागू किए। आंध्र प्रदेश और उड़ीसा में भी ऐसे विधेयक विचाराधीन हैं। बंबई के कृषि मंत्री ने आश्वासन दिया है कि उनके राज्य में जल्द ही ऐसा क़ानून लागू किया जाएगा।

गोहत्या पर प्रतिबंध न लगाने वाले सभी राज्यों से यह सम्मेलन माँग करता है कि इस दिशा में वे जल्द से जल्द क़दम उठाएँ। सम्मेलन उन राज्यों से आह्वान करता है कि जहाँ ऐसे क़ानून मौजूद हैं, वहाँ इन्हें सख़्ती से लागू किया जाए।

स्थानीय निकाय

स्थानीय निकाय जनतंत्र की आधारभूत इकाइयाँ हैं। उनकी सुयोग्य एवं प्रभावी कार्यप्रणाली के ज़रिए ही विकेंद्रीकृत प्रशासन के आदर्श को हासिल किया जा सकता है।

यह पश्चात्ताप का विषय है कि संविधान ने इससे संबंधित प्रावधान बनाए जाने का मामला छोड़ दिया है। इन प्रावधानों के ज़रिए ही नागरिक निकाय आधारभूत और महत्त्वपूर्ण राजनीतिक मंच की भूमिका का निर्वाह अच्छे ढंग से कर सकते हैं। इन पर ही

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

हमारा संघीय ढाँचा निर्भर करता है। इसके परिणामस्वरूप स्वतंत्रता हासिल होने के बाद से पूरा एक दशक निकल गया और स्थानीय स्वशासित निकाय कोई निश्चित आकार लेने, कार्य करने का सहयोगात्मक तरीक़ा पैदा करने और ख़ुद को स्वस्थ तरीक़े से सक्षम बनाने में असफल साबित हुए हैं जिससे कि वे प्रादेशिक सरकारों और नौकरशाही के प्रभाव से मुक्त होकर कार्य कर सकें। पिछले कुछ सालों के दौरान प्रादेशिक सरकारों ने नागरिक निकायों को लेकर कई प्रकार के क़ानून लागू किए, लेकिन ठोस वैचारिक क्षमता और साझा नीति के अभाव के चलते इन क़ानूनों ने अत्यंत भ्रामक स्थिति ही पैदा की है। इसकी वजह से ही पंचायतों, जनपद सभाओं, ज़िलों और केंद्रीय बोर्डों के बीच न तो स्पष्ट कार्य विभाजन हो सका है और न ही आय स्रोतों के आवंटन को ही स्पष्ट किया जा सका है। यह भी साफ़ नहीं हो सका है कि उनकी गतिविधियों में आपसी समन्वय कैसे स्थापित किया जाए। इन निकायों और विभिन्न सामुदायिक विकास योजनाओं अथवा राष्ट्रीय विस्तार ब्लॉकों के बीच अपने-अपने संबंधित क्षेत्रों में कोई तालमेल नहीं पैदा किया जा सका है।

इससे भी अधिक असंतोष का विषय यह है कि वर्तमान निकाय भी प्रादेशिक सरकारों द्वारा हर तरीक़े से शक्तिविहीन कर दिए गए हैं। कई सालों से पंजाब के ज़िला बोर्ड और उत्तर प्रदेश के के.ए.बी.ए.एल. शहरों (कानपुर, आगरा, बनारस, इलाहाबाद और लखनऊ) के नागरिक निकायों को सरकार द्वारा नियुक्त प्रशासकों द्वारा ही संचालित किया जा रहा है। पिछले 9 साल से यू.पी. ज़िला बोर्डों में कोई चुनाव नहीं कराए गए हैं। इस प्रकार इन निकायों को अपने सार्वजनिक प्रतिनिधित्व चरित्र से वंचित कर दिया गया है। मौजूदा निर्वाचित निकायों का अस्तित्व बचा रहना पूरी तरह से प्रादेशिक सत्ता में बैठे शासकों की सनक और इच्छा पर निर्भर करता है। ये सत्तारूढ़ शासक उनकी शक्तियों का इस्तेमाल सदस्यों को हटाने, निलंबित करने और अधिकांश रूप से मनमाने तरीक़े से नागरिक निकायों को भंग करने के लिए करते हैं। प्रभावी ढंग से कार्य करने के लिए स्थानीय निकायों की निर्भरता राज्यों के अनुदानों पर रहती है। इससे वे पूरी तरह से राज्य सरकारों की दया पर निर्भर हो जाते हैं। इन परिस्थितियों में वे न तो किसी दबाव से मुक्त होकर कार्य कर सकते हैं और न ही सार्वजनिक सेवा के अपने दायित्वों को ही भलीभाँति पूरा कर सकते हैं। जहाँ ये निकाय विरोधी दलों द्वारा नियंत्रित हैं, प्रदेश सत्ता में बैठा दल हर क़दम पर अवरोध उत्पन्न करता है और इन निकायों के अधिकारों को कम करते हुए अपना वर्चस्व स्थापित करने के बहाने खोजता है। पंजाब में बग़ैर किसी न्यायोचित कारण के ही सरकार ने जनसंघ के कई सदस्यों को हिंदी बचाओ आंदोलन के बहाने हटा दिया। यद्यपि स्थानीय निकायों के सदस्य के रूप में उनके कर्तव्यों और आंदोलन के उद्देश्यों के बीच कोई अंतर्निहित आंतरिक विरोधाभास नहीं था।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भारतीय जनसंघ पुनः निम्न माँगों पर बल देता है—

1. संविधान में स्थानीय निकायों की प्रवृत्ति, उनके अधिकारों और आय के स्रोतों को स्पष्ट किया जाए और चुनाव आयोग की निगरानी में उनके चुनाव कराए जाएँ।
2. इन निकायों को राष्ट्रीय विकास कार्यक्रमों का आधार बनाया जाए और सभी विकास योजनाओं को उनके सहयोग से संचालित किया जाए।
3. मौजूदा क़ानूनों में आवश्यक संशोधन किए जाएँ, ताकि राज्य सरकारों को अनुचित हस्तक्षेप से रोका जा सके। निर्वाचित प्रतिनिधियों को तब तक न हटाया या निलंबित किया जाए जब तक कि न्यायाधिकरण के समक्ष उन पर लगे आरोप सही प्रमाणित न हो जाएँ। स्थानीय निकायों का चरित्र पूरी तरह से जनतांत्रिक होना चाहिए और राज्य सरकारों द्वारा सदस्यों का कोई मनोनयन नहीं होना चाहिए।
4. जिन निकायों में चुनाव विलंबित हैं, वहाँ इन्हें अविलंब संपन्न कराया जाए।

पंजाब की स्थिति

पंजाब की मौजूदा स्थिति पर भारतीय जनसंघ गहरी चिंता व्यक्त करता है। जहाँ एक ओर जनता में राज्य के पुनर्गठन, भाषा, आर्थिक ढाँचे व कराधान को लेकर सरकारी नीतियों के प्रति चौतरफ़ा भारी असंतोष व्याप्त है, वहीं दूसरी ओर नागरिक स्वतंत्रता के संरक्षण के लिए क़ानून व्यवस्था क़ायम करने में भी सरकार असफल हो गई है। इन परिस्थितियों ने वर्तमान शासन के प्रति आम लोगों के विश्वास को बहुत गहरे तक झकझोर दिया है। सिरसा में पुलिस की बढ़ोतरी, होशियारपुर में निर्मम लाठीचार्ज, नया बैंस और बहू अकबरपुर में अमानवीय यातनाएँ, फिरोजपुर जेल में हिंदी रक्षा क़ैदियों पर भारी हमला और जालंधर में फायरिंग आदि ऐसी घटनाएँ हैं, जिन्होंने पंजाब सरकार के अत्याचारी चरित्र को पूरी तरह से नंगा कर दिया है। जिस प्रकार से थानों में निर्ममतापूर्वक सम्माननीय नागरिक पीटे जाते हैं, पुलिस हिंसा के तहत उन्हें थर्ड डिग्री यातना का शिकार बनाया जाता है, इससे साफ़ है कि पंजाब पुलिस और उसके मालिकों में क़ानून के प्रति कोई सम्मान-भावना नहीं है। इतना हीं नहीं, वे सभ्य जनतंत्र के आरंभिक सिद्धांतों से भी अनभिज्ञ हैं। इन घटनाओं की पड़ताल के लिए गठित विभिन्न जाँच निकायों ने इस बात को सही ठहराया है कि उन्होंने शक्तियों का भारी दुरुपयोग और अपनी आधिकारिक सीमाओं का उल्लंघन किया है। जाँच रिपोर्टों में इस खुलासे के बावजूद दोषियों के ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं की गई है। इस बात को साबित करने के पर्याप्त कारण मौजूद है कि जो अधिकारी हिंसा में शामिल थे, जिन्होंने नागरिकों की स्वतंत्रता को अपने

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

जूतों तले रौंद डाला और सचमुच में लोगों की ज़िंदगी से खिलवाड़ किया; विडंबना यह है कि उन्हें उनके 'प्रदर्शन' के लिए पुरस्कृत किया गया।

यह सरकार, जिसका उद्भव ही सांप्रदायिकता से समझौते की बुनियाद पर हुआ है, अपने अस्तित्व की सुरक्षा और सत्ता में बने रहने के लिए भी सांप्रदायिकता पर ही निर्भर है, जिससे यह पोषित होती है। आम लोगों में फूट डालो और राज करो को अपनी नीतियों का आधारभूत सिद्धांत बनाते हुए पंजाब सरकार सोची-समझी रणनीति के तहत जनता के विभिन्न वर्गों के बीच दुर्भावना और विद्वेष पैदा करती रही है। इसके लिए वह एक वर्ग को बढ़ावा देती है जबकि दूसरे को दबाती है। इस नीति ने नागरिक सेवाओं को भी प्रभावित किया है और अधिकारियों के लिए निष्पक्ष एवं स्वतंत्र ढंग से अपने दायित्वों का निर्वहन कठिन हो गया है। उनके मन में अपने भविष्य को लेकर कई प्रकार की शंकाएँ पैदा हो गई हैं और वे स्वयं को सुरक्षित महसूस नहीं कर पा रहे हैं।

पंजाब जैसे सीमावर्ती राज्य में ऐसी गतिविधियों का जारी रहना समूचे राष्ट्र की सुरक्षा के लिए संकट को आमंत्रण है। इस मामले में केंद्र सरकार की विशेष ज़िम्मेदारी बनती है। जनसंघ केंद्र सरकार से माँग करता है कि वह अपने दायित्व का परिपालन करने के लिए तुरंत प्रभावी क़दम उठाए। जनसंघ पंजाब की जनता को बधाई भी देता है, जिसने इन गंभीर और अराजकता को प्रेरित करने वाली परिस्थितियों में भी उसने दृढता, एकता, शौर्य और सहनशीलता का परिचय दिया। जनसंघ उन्हें आश्वस्त करता है कि न्यायोचित संघर्ष में देश की सभी राष्ट्रवादी शक्तियाँ उनके साथ हैं।

भारतीय जनसंघ वीर सुमेर सिंह और अन्य शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पित करता है, जिन्होंने इस संघर्ष में अपने जीवन का बलिदान किया।

—ऑर्गनाइज़र, अप्रैल 21, 1958

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मध्य-पूर्व में बढ़ती राजनीतिक हिंसा

भारतीय जनसंघ कार्यकारिणी की बैठक

भारतीय जनसंघ की कार्यसमिति की बैठक 19-20 जुलाई को बंबई में संपन्न हुई। इसकी अध्यक्षता आचार्य देवा प्रसाद घोष ने की। समिति ने श्रद्धेय डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी की पूजनीय माताजी श्रीमती जोगमाया देवी और कार्य समिति के सदस्य राजनारायण लाल बंसीलाल पित्ती की पूजनीया माताजी के निधन पर शोक व्यक्त किया। इसके पश्चात् समिति ने राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर की गंभीर समस्याओं पर विचार किया।

मध्य-पूर्व संकट

हाल में मध्य-पूर्व के घटनाक्रम पर पारित प्रस्ताव में दुनिया के दोनों शक्ति गुटों के लड़ाकू रवैये की निंदा की गई। प्रस्ताव में कहा गया कि

भारतीय जनसंघ का दृढ मत है कि राष्ट्रवाद और जनतंत्र की शक्तियों का सम्मान किया जाना चाहिए और हर देश को इस बात की स्वतंत्रता दी जानी चाहिए कि वह अपने जीवन को उन्हीं के अनुरूप ढाल सके। दूसरी ओर दोनों ही शक्ति गुट इन स्वाभाविक भावनाओं के विरुद्ध नीति का अनुसरण कर रहे हैं। वे विभिन्न देशों की जनता पर उनकी जनतांत्रिक इच्छा और आकांक्षा के विरुद्ध कठपुतली शासन थोपने का प्रयास कर रहे हैं। रूस पोलैंड, हंगरी और पूर्वी यूरोपीय देशों में लोकप्रिय क्रांति को दबाने का प्रयास करता है। एक ओर इमरे नैगी और हंगरी के अन्य राष्ट्रभक्तों की बीभत्स हत्या और दूसरी ओर अमरीका और ब्रिटेन की लेबनान तथा जॉर्डन के आंतरिक मामलों में दखलंदाजी इन दोनों ही शक्ति गुटों की इसी नीति के उदाहरण हैं।

भारतीय जनसंघ ऐसी सभी घटनाओं की ज़ोरदारी से भर्त्सना करता है और माँग करता है कि

1. दूसरे देशों के भूभाग में सभी बाहरी सैन्य शक्तियों को तुरंत हटा लिया जाना चाहिए। किसी भी देश में विदेशी सेना की उपस्थिति उसकी राष्ट्रीय स्वाधीनता

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

और संप्रभुता को कमज़ोर करती है।

2. किसी भी शक्ति गुट के साथ सभी सैन्य समझौतों को समाप्त कर दिया जाना चाहिए, क्योंकि ये समझौते दुनिया में शांति बनाए रखने में सहायक होने के बजाय विभिन्न देशों में भय और संदेह का वातावरण तैयार कर वास्तव में दुनिया में तनाव को ही बढ़ा रहे हैं।

जनसंघ मानता है कि दुनिया को विध्वंस की ओर धकेलने वाली शक्तियों को राष्ट्रवाद, जनतांत्रिक जीवन पद्धति और विश्व शांति पर अचल आस्था रखने वाली जनता के ज़रिए ही पराजित किया जा सकता है।

पाकिस्तान भारत के विरुद्ध दूसरा मोरचा

कार्यसमिति ने कश्मीर में पाकिस्तान द्वारा फैलाई जा रही गड़बड़ियों और नहर के पानी से संबंधित मामले में उसके द्वारा भारी ग़लतफ़हमी पैदा किए जाने पर भी विचार विमर्श किया।

पाकिस्तान भारत में आक्रमण के नए मोरचे खोल रहा है। इसके तहत वह कश्मीर मोरचे से अलग पूर्वी भारत की आसाम और बंगाल सीमाओं पर स्थायी रूप से दूसरा मोरचा तैयार करने का प्रयास कर रहा है। पाकिस्तान कश्मीर मोरचा इसलिए खोल सका, क्योंकि नेहरू सरकार इस मोरचे पर कमज़ोर, अपेक्षाकृत अक्षम और गतिविधि शून्य रही है। वह आसाम और बंगाल सीमा पर अपनी सैन्य टुकड़ियों को आगे लाकर सीमाओं में क़िलेबंदी करते हुए भारतीय क्षेत्र में अतिक्रमण कर रहा है। वह नागा विद्रोहियों को भड़काता है, गोलीबारी करता है। वह व्यावहारिक रूप से इन सीमाओं पर निर्जन भूमि का जोन तैयार कर रहा है। नेहरू सरकार सिर्फ़ मौखिक रूप से विरोध दर्ज करके ही संतुष्ट है। इस प्रकार के विरोध को पाकिस्तान अनवरत रूप से तनिक भी महत्त्व नहीं दे रहा है। पश्चिमी सीमाओं पर भी यही स्थिति है। उदाहरण के रूप में फाजिल्का जहाँ पाकिस्तान अकसर ही भारत के बिना किसी उकसावे के ही गोलीबारी करता है और उत्पात मचाता है।

कार्यसमिति ने सीमावर्ती लोगों की नागरिक सेना तैयार करने, देशद्रोही गतिविधियों को कुचलने और नहर सुविधा का शुल्क पाकिस्तान द्वारा न अदा किए जाने पर जलापूर्ति रोकने की माँग की।

इन सबके अतिरिक्त विभाजन के समय खाली की गई संपत्तियों की समस्या का समाधान करने और विभाजन से पहले के क़र्ज़ का अपना हिस्सा और अन्य बकाया देनदारी से पाकिस्तान लगातार इनकार कर रहा है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

तमिल-सिंघली दंगे

समिति ने हाल ही में श्रीलंका में भाषा समस्या को लेकर हुए दंगों पर भी विचार किया।

श्रीलंका सरकार द्वारा अचानक ही सिंघली को एकमात्र सरकारी भाषा बनाने और तमिल भाषा को निचला दर्ज़ा दिए जाने के फ़ैसले से समस्या पैदा हुई। यद्यपि श्रीलंका की एक-तिहाई जनसंख्या तमिलभाषी है। इस फ़ैसले से तमिलभाषी लोग स्वाभाविक रूप से ऐसा महसूस करने लगे हैं कि उन्हें दोयम दर्जे का नागरिक बना दिया गया। इस पर उन्होंने तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की है। यह वास्तव में श्रीलंका सरकार का बहुत ही अनुचित, अविवेकी और अन्यायपूर्ण निर्णय है।

समिति ने इस बात पर भी चर्चा की कि श्री भंडारनायके को जनसंघ अध्यक्ष की ओर से पिछले साल एक मित्रतापूर्ण संदेश भेजकर यह क़दम न उठाने का अनुरोध किया गया था। उनके समक्ष कनाडा और स्विट्जरलैंड के समांतर उदाहरण रखते हुए यह तथ्य प्रस्तुत किया गया था कि वहाँ मौजूदा सभी मुख्य भाषाओं को सरकारी तौर पर समान दर्ज़ा दिया गया है और चेतावनी भी दी गई थी कि अगर श्रीलंका सरकार अपने पुराने रुख़ पर अड़ी रही तो भविष्य में श्रीलंका की एकता खतरे में पड़ जाएगी। लेकिन उस मित्रतापूर्ण चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया गया है और आज श्रीलंका स्वयं को आंतरिक कलह से घायल महसूस कर रहा है। तमिलभाषी और सिंघली भाषी दोनों ही एक-दूसरे के ख़िलाफ़ छुरा ताने खड़े हैं। यह पछतावे वाली बात है कि इस मामले में भारत सरकार ने श्रीलंका सरकार को कोई मित्रतापूर्ण सलाह देने पर विचार नहीं किया है, जबकि दोनों देशों के बीच निकटता और बंधुत्व को ध्यान में रखते हुए सरकार को इस दिशा में क़दम उठाना चाहिए था।

लगभग दस लाख तमिलभाषियों के दर्जे को लेकर श्रीलंका में लगातार ख़राब हो रही स्थिति पर कार्यसमिति चिंता व्यक्त करती है। इस मामले में भारत सरकार और श्रीलंका सरकार के बीच कई बार समझौते भी हो चुके हैं, लेकिन व्यावहारिक रूप से ये सब बेकार ही साबित हुए हैं और श्रीलंका सरकार की हठधर्मिता के चलते मात्र रद्दी काग़ज़ ही बनकर रह गए हैं। परिणामस्वरूप इन भारतीयों का श्रीलंकाई नागरिक के रूप में पंजीकरण सिर्फ़ मज़ाक बनकर रह गया है। 10 लाख में कुछ हज़ार से ज़्यादा का पंजीकरण अभी तक नहीं हो सका है और बाक़ियों को राज्यविहीन लोगों का दर्ज़ा देने का प्रयास किया जा रहा है। उन्हें उत्पीड़ित और अपमानित किया जाता है। जनसंघ भारत सरकार से माँग करता है कि वह अविलंब समस्या के संतोषजनक समाधान के लिए प्रभावी क़दम उठाए।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सर्वोच्च न्यायालय और गोवध

कार्यसमिति ने सर्वोच्च न्यायालय द्वारा गोवध पर प्रतिबंध लगाने के फ़ैसले पर विभिन्न राज्यों में उत्पन्न स्थिति पर भी विचार किया। समिति का विचार है कि इस फ़ैसले में बूढ़ी गायों और अक्षम बैलों के वध को क़ानून सम्मत बनाए जाने से राज्यों को व्यावहारिक रूप से गोवध पर लागू प्रतिबंध को अप्रभावी बनाने का ही बढ़ावा मिला है।

इसलिए यह आवश्यक हो गया है कि सर्वोच्च न्यायालय के फ़ैसले को ध्यान में रखते हुए संविधान की राज्यनीति के दिशा निर्देशक सिद्धांतों की धारा 46 में आवश्यक संशोधन किए जाएँ। जब तक ऐसा संशोधन नहीं किया जाता है, राज्य सरकारों को अपने क़ानूनों में आवश्यक बदलाव के लिए अध्यादेश जारी करना चाहिए, जिससे कि व्यावहारिक रूप से बूढ़ी गायों और अक्षम बैलों के वध को भी ग़ैर क़ानूनी घोषित किया जा सके।

कार्यसमिति बंबई, मद्रास, मैसूर, आंध्र, केरल, उड़ीसा, बंगाल और आसाम राज्यों से माँग करती है कि वे जल्द-से-जल्द अपने-अपने यहाँ गोवध रोकने के लिए क़ानून लागू करें। समिति अपनी सभी शाखाओं का आह्वान करती है कि वे इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जनता को जागरूक करने के लिए कटिबद्ध हों।

पंजाब में हिंदी और पंजाबी के लिए समानता

हिंदी आंदोलन की समाप्ति के बाद पंजाब में पैदा हो रही परिस्थिति पर कार्यसमिति ने विचार किया। समिति ने इस बात पर पश्चात्ताप व्यक्त किया कि अत्यंत सौहार्दपूर्ण वातावरण में सत्याग्रह समाप्त होने के 6 माह बाद भी सरकार ने अभी तक भाषा समस्या के संतोषजनक समाधान की दिशा में कोई क़दम नहीं उठाया है। समिति ने सरकार से अपील की कि वह सांप्रदायिक और अजनतांत्रिक लोगों के तुष्टीकरण की नीति से अपना पल्ला झाड़े और अविलंब ही पूरे पंजाब में प्रशासन और शैक्षिक क्षेत्रों में हिंदी और पंजाबी को समान दर्ज़ा दिए जाने के लिए क़दम उठाए। कार्यसमिति ने भाषा स्वातंत्र्य समिति और हिंदी रक्षा समिति से भी अपील की कि वे जल्दबाज़ी में कोई क़दम न उठाएँ। यह उनके लिए भी परीक्षा की घड़ी है।

पूर्वी बंगाल के शरणार्थी

कार्यसमिति ने सरकार द्वारा लागू की गई नई पूर्वी बंगाल शरणार्थी नीति की निंदा की, जिसके तहत शरणार्थी कैंपों को जल्द ही बंद किए जाने का प्रावधान है। इस नीति के अनुसार बहुत से शरणार्थियों को बंगाल से बाहर सुदूर क्षेत्रों में भेज दिया जाएगा और जो ऐसा मानने से इनकार करेंगे, उन्हें एक औसत राशि देकर ख़ुद कहीं जाने के लिए

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

छोड़ दिया जाएगा। यह बात ध्यान देने की है कि यह नीति बंगाल में पिछले शरणार्थी सत्याग्रह के बाद दिए गए उस आश्वासन के विरुद्ध है, जिसमें कहा गया था कि किसी भी शरणार्थी को उसकी इच्छा के विरुद्ध बंगाल से बाहर नहीं भेजा जाएगा।

जनसंघ ने बेतिया शरणार्थी कैंप के शरणार्थियों पर गोलीबारी की निंदा की और इस पर उचित न्यायिक जाँच की माँग की।

संयुक्त महाराष्ट्र और महागुजरात

कार्यसमिति ने प्रस्ताव किया कि एस.आर. आयोग द्वारा स्वीकृत सिद्धांतों के आधार पर दो अलग प्रदेशों के रूप में महाराष्ट्र और गुजरात बनाए जाएँ। समिति ने कहा कि पिछले साल भर के अनुभव ने साफ़ कर दिया है कि बंबई राज्य का प्रयोग असफल हो गया है और इसे लेकर चौतरफ़ा भारी असंतोष है। इस असंतोष का नाजायज़ लाभ विभिन्न प्रकार की ग़ैर-जनतांत्रिक और विध्वंसकारी शक्तियाँ उठा रही हैं।

स्थिति की माँग है कि सरकार झूठी शान बघारने के बजाय यथार्थपरक ढंग से पूरी स्थिति की समीक्षा करे और राष्ट्रीय एकता, शांतिपूर्ण विकास और स्वस्थ जनतांत्रिक परंपराओं का सृजन करने के लिए बंबई राज्य को अविलंब ही दो राज्यों महाराष्ट्र और गुजरात में विभाजित कर दे।

राजनीतिक हिंसा

कार्यसमिति ने उत्तर प्रदेश, पंजाब और राजस्थान में जनसंघ कार्यकर्ताओं के विरुद्ध हिंसा और उनकी हत्याओं की समीक्षा की और बहुत ही पश्चात्ताप के साथ राजनीतिक उद्देश्य के लिए हिंसा की बढ़ती प्रवृत्ति की कड़े शब्दों में निंदा की। उसने इन दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं के बारे में सरकार का ध्यान खींचा, ताकि इस निंदनीय परिस्थिति को समाप्त करने के लिए प्रभावी क़दम उठाए जा सकें।

—ऑर्गनाइज़र, जुलाई 28, 1958

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

परिशिष्ट-V

पश्चिमी उत्तर प्रदेश में पाँच दिवसीय वर्ग का आयोजन

मेरठ, 31 अगस्त। यहाँ आयोजित पाँच दिवसीय वर्ग में पश्चिमी उत्तर प्रदेश के सभी 14 ज़िलों के कार्यकर्ताओं ने बड़ी संख्या में भागीदारी की। कई ज़िलों से महिला कार्यकर्ता भी इस वर्ग में आईं।

27 अगस्त को नानाजी देशमुख ने इस वर्ग का उद्घाटन किया। अखिल भारतीय स्तर के पदाधिकारियों, जिनमें पंडित दीनदयाल उपाध्याय और श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी शामिल थे, ने इस वर्ग में आए कार्यकर्ताओं को अपने भाषणों के ज़रिये पार्टी नीति के विभिन्न आयामों से परिचित कराया।

जनसंघ का पहले से मौजूद किसी वाद या सिद्धांत के साथ कोई अनुराग नहीं है। हम व्यावहारिक सिद्धांतों को आसानी से अपना सकते हैं। यदि कोई हमें किसी वाद से जोड़ना चाहता है तो वह यथार्थवाद हो सकता है। केवल समाजवाद में तो अधिनायकवाद की ख़ामियाँ हैं और यह सूरज के नाम पर हमसे स्वराज को ही छीन सकता है। पूँजीवाद हमें ग़रीबों के शोषण की ओर ले जाता है, इसलिए ये दोनों वाद मौजूदा स्वरूप में हमें मंजूर नहीं हैं। हम इन दोनों में से कुछ अच्छाइयों को ले सकते हैं और इसीलिए हमने सामान्य और रक्षा उद्योग का राष्ट्रीयकरण और बाक़ी के लिए, औद्योगिक क्षेत्र में लघु उद्योगों के लिए कई छूट समेत, विकेंद्रीकरण और राज्य नियंत्रण को अपनाया और अंगीकार किया।

मनुष्य केवल आर्थिक प्राणी नहीं है। जनसंघ इस देश के 40 करोड़ भाई-बहनों के लिए एक हाथ में राम चाहता है तो दूसरे हाथ में रोटी।

इसमें कोई दो राय नहीं कि अधिक उत्पादन आज की सबसे बड़ी ज़रूरत है। जहाँ तक वितरण की बात है तो हमें इस पुराने सिद्धांत को छोड़ना पड़ेगा कि जो जितना

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भुगतान कर सकता है, उसी के अनुसार वितरण होगा। हम आवश्यकता और क्षमता दोनों के आधार पर समान वितरण करेंगे।

जनसंघ ने अर्थशास्त्रियों को उपभोग से संबंधित नए विचार दिए हैं। हम उपभोग में संयम पर विश्वास करते हैं, क्योंकि न तो ज़्यादा उपभोग उचित है और न कम उपभोग। यह सिद्धांत भले ही पश्चिमी अर्थव्यवस्था के लिए कुछ नुक़सानदेह हो, लेकिन आज के भारत के लिए यह पूरी तरह अनुकूल है।

ऐसा नहीं है कि वितरण व्यवस्था में वे भी शामिल होंगे, जो कुछ नहीं करते, हम सबसे काम लेंगे और सबको काम देंगे। जनसंघ ने काम के अधिकार को भारत के नागरिकों को प्राप्त मूलभूत अधिकारों में से एक के रूप में घोषित किया है। उत्पादन के पाँच कारकों को एक-दूसरे के सहयोग से काम करने के लिए नहीं बनाया गया है। जनसंघ पूँजी का उपयोग कुटीर उद्योग में भी करने का पक्षधर है। जनसंघ यह भी मानता है कि बेरोज़गारी और कम उत्पादन की समस्या का एकमात्र हल उद्योगों के विकेंद्रीकरण में ही है। इसे और स्पष्ट करते हुए पंडित दीनदयाल उपाध्याय कहते हैं कि उद्योगों का केंद्रीकरण 19वीं सदी की ज़रूरत थी, जब ऊर्जा के स्रोत को एक से दूसरी जगह आसानी से नहीं ले जा सकते थे, लेकिन अब जबकि एक स्विच से बिजली कहीं भी जलाई जा सकती है तो ज़रूरी नहीं कि एक छत के नीचे ही हज़ारों हैंडलूम चलाए जाएँ, बल्कि अब कम ख़र्चे पर और आसानी से ये हैंडलूम हज़ारों घरों में लगाए जा सकते हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि हम सिर्फ़ चरखे के पक्ष में है, हम चाहेंगे कि छोटे स्तर पर भी काम करने के लिए बिजली का सहयोग आदमी को मिले।

—ऑर्गनाइज़र, सितंबर 8, 1958

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

परिशिष्ट-VI

नवंबर 2 को नेहरू-नून समझौता विरोधी दिवस

नई दिल्ली में जनसंघ कार्यसमिति की बैठक

नई दिल्ली, अक्तूबर 11। भारतीय जनसंघ की कार्यसमिति की बैठक की शुरुआत आचार्य देवा प्रसाद घोष की अध्यक्षता में नई दिल्ली स्थित 30 विक्टोरिया रोड में हुई। श्रीनगर से आज सुबह यहाँ पहुँचे कश्मीर विधानसभा के सदस्य और जम्मू-कश्मीर प्रजा परिषद् के अध्यक्ष पंडित प्रेमनाथ डोगरा ने कश्मीर की स्थिति के बारे में समिति को अवगत कराया। उन्होंने बताया कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 370 के विशेष प्रावधान के तहत कश्मीर के विलय के बाद लंबे समय तक चले संक्रमण काल ने राज्य के लोगों को आज की तारीख़ तक अनावश्यक रूप से पंगु बना रखा है। उन्होंने बताया कि राज्य में इस तरह की आम भावना व्याप्त थी। उन्होंने विचार व्यक्त किया कि लोगों की आम इच्छा है कि अनुच्छेद 370 के तहत बनाई गई अस्थायी व्यवस्था के तत्काल ख़त्म कर दि़ए जाने मात्र से अलगाववाद की स्थायी होती जा रही भावना को समाप्त किया जा सकता है और शेष भारत के साथ एकात्मता की भावना पैदा की जा सकती है। श्री डोगरा ने समिति को सूचित किया कि राज्य के जम्मू क्षेत्र में रहने वाले लोगों की भी धारणा है कि इन वर्षों के दौरान कश्मीर क्षेत्र को अनुचित तरीक़े से दिए जा रहे महत्त्व के कारण वे अपने आपको उपेक्षित महसूस कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि प्रकारांतर से यह भारत सरकार के विरुद्ध भावना भी निर्मित कर रहा है। उन्होंने ज़ोर दिया कि जम्मू प्रांत के लोगों के बीच की उपेक्षा की भावना को समाप्त करने के लिए राज्य और केंद्र सरकार की ओर से उपयुक्त क़दम उठाए जाने चाहिए। उन्होंने कहा कि क़ानून-व्यवस्था की स्थिति लगातार ख़राब होती जा रही थी और पंचमांगी गतिविधियाँ बढ़ती जा रही थीं। पंडित डोगरा महसूस करते हैं कि कश्मीरी पंडितों पर पाकिस्तान में हाल में हुए घटनाक्रमों के संभावित प्रभावों के संदर्भ के साथ इसने पाकिस्तान समर्थक तत्त्वों को भ्रांति मुक्त बना दिया है। हालाँकि राष्ट्रवादी कश्मीर को कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि पाकिस्तानी क़ब्ज़े

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

वाले कश्मीर में आंतरिक स्थिति बताती है कि वहाँ और पूरे पाकिस्तान में लोकतंत्र नाम की कोई चीज़ नहीं है। उन्होंने आशंका व्यक्त की कि पाकिस्तान की नई सैन्य सरकार कुछ धर्मांध पाकिस्तानियों के साथ लोकप्रियता बनाकर कश्मीर में कुछ पागलपन के कृत्य करने के बारे में सोच सकती है। इसलिए भारत को रक्षा पर ध्यान देना चाहिए और सीमा पर अपने सुरक्षा मानकों को मज़बूत बनाना चाहिए।

एम.एल.सी. और उत्तर प्रदेश के अध्यक्ष श्री पीतांबर दास ने भी राज्य में खाद्य स्थिति पर रिपोर्ट प्रस्तुत की।

दूसरे दिन कार्यसमिति में विदेश नीति पर विचार विमर्श किया गया, लेकिन संबंधित विषय पर कोई प्रस्ताव नहीं पारित किया गया। कार्यसमिति ने अन्य दलों के समक्ष विचार और संभावित स्वीकार्यता के लिए एक आचार संहिता बनाने के लिए तीन सदस्यों एम.एल.सी. श्री कृष्ण लाल, प्रोफेसर महावीर और प्रोफेसर बलराज मधोक की उपसमिति बनाई।

दक्षिण भारत के अंचल सचिव श्री जगन्नाथराव जोशी को दिसंबर 26–28 को बंगलोर में होने वाले वार्षिक सत्र का पूरा प्रभार सौंपा गया। सत्र में क़रीब 2500 प्रतिनिधियों के भाग लेने का अनुमान है, जिसमें 1500 दक्षिण के हो सकते हैं। स्वागत समिति के सदस्यों का नामांकन होना चाहिए, लक्ष्य 200 तक होना चाहिए।

जनसंघ कार्यसमिति ने 2 नवंबर को पूरे देश में नेहरू–नून विरोधी दिवस के रूप में मनाने का फ़ैसला लिया। इसके लिए बैठकें और प्रदर्शन किए जाएँगे। यह प्रस्ताव भी किया गया कि समझौते के अन्याय पर एक छोटी पुस्तिका जारी की जाए।

स्वीकार किए गए प्रस्तावों का मूल पाठ इस प्रकार है—

नेहरू-नून समझौता

1. आसाम–त्रिपुरा सीमाओं पर लंबे समय से की जा रही पाकिस्तानी हरकतों के बाद हाल में किया गया नून–नेहरू समझौता अनवरत हमलों के बारे में कुछ भी नहीं कहता और इस तरह भारतीय जनजीवन तथा संपत्ति को नुक़सान पहुँचाता है, इसके लिए पाकिस्तान से किसी तरह की क्षतिपूर्ति करने या दुःख व्यक्त करने की भी माँग नहीं करता। यहाँ तक कि पाकिस्तान के द्वारा अनधिकृत रूप से क़ब्ज़ा किए गए तुकेरग्राम (आसाम) और लक्ष्मीपुर (त्रिपुरा) के गाँवों पर अभी भी उसके क़ब्ज़े की अनुमति प्रदान की गई है। दूसरी तरफ़ विभाजन के बाद से पिछले 11 वर्षों के दौरान जिसके बारे में कोई विवाद नहीं हुआ, उन मुद्दों को भी समझौते ने फिर से सामने ला दिया है। समझौता जलपाईगुड़ी ज़िले की आधी बेरूबारी यूनियन (जिसमें पूर्वी बंगाल के हज़ारों शरणार्थी रह रहे हैं) और इच्छामती नदी के पाकिस्तान के उपयोग पर (उन

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

क्षेत्रों में भी जहाँ भारत-पाकिस्तान सीमा नदी से काफ़ी दूरी पर है) एक बार फिर से त्रिपुरा सीमा पर पाकिस्तान को उसकी रेल के सरलतापूर्वक कार्य संचालन के लिए भारतीय क्षेत्र के एक हिस्से को प्रदान करने का प्रस्ताव करना। समझौते की ये सभी विशिष्टताएँ भारत के राष्ट्रीय हितों के ख़िलाफ़ हैं और कार्यसमिति इन सभी की निंदा करती है तथा भारतीय संसद् को इसे पूरी तरह अस्वीकार कर देने का आह्वान करती है।

कार्यसमिति विभिन्न राज्यों में अपनी सभी शाखाओं का आह्वान करती है कि वे इस समझौते की राष्ट्र विरोधी प्रकृति और इसके ख़तरनाक प्रभावों के बारे में लोगों को शिक्षित करे।

2. भारत-पाकिस्तान सीमावर्ती क्षेत्र, विशेषकर आसाम-त्रिपुरा वाले इलाकों और पश्चिम बंगाल में (2 परगना ज़िले में इच्छामती नदी के पास और मध्य तथा उत्तर बंगाल में अन्य स्थानों पर) यदि किसी दिन पाकिस्तान चाहेगा तो व्यावहारिक तौर पर असुरक्षित बना देगा, इन क्षेत्रों में तुकेरग्राम और लक्ष्मीपुर की दुखद घटना की पुनरावृत्ति कर सकता है।

इसको ध्यान में रखते हुए कार्यसमिति ने भारत सरकार से अपील की कि वह तत्काल सीमावर्ती क्षेत्रों में सुरक्षा बलों को मज़बूत करे, और इन सीमावर्ती क्षेत्रों से विश्वासघाती तत्त्वों को हटाए, ताकि वे पाकिस्तानी दलालों के साथ साज़िश न कर सकें।

3. सीमावर्ती क्षेत्रों को उपयुक्त सुरक्षा की व्यवस्था की अधिकाधिक असफलता अत्यंत चिंताजनक है और इसकी विभिन्न तरीक़े से निंदा की जानी चाहिए। लोग इस तरह की असहनीय स्थिति को लंबे समय तक स्वीकार नहीं कर सकते। वे स्वतः अपनी सुरक्षा की व्यवस्था करते हैं। जनसंघ इसी तरह सीमावर्ती क्षेत्रों के लोगों से अपील करता है कि वे अपने जीवन व संपत्ति की तथा अपनी महिलाओं के सम्मान की रक्षा के लिए होमगार्ड की तरह सुरक्षा पार्टियाँ बनाएँ। जनसंघ उन्हें इस संदर्भ में हर संभव मदद और सहयोग देगा।

पाकिस्तान में सैन्य विद्रोह

पाकिस्तान में चौंकाने वाले घटनाक्रम के तहत संविधान निरस्त कर दिए जाने और सत्ता पर सैन्य शासन स्थापित हो जाने के कारण भारत में स्वाभाविक रूप से चिंता बढ़ गई है, क्योंकि पाकिस्तान के भीतर होने वाली हलचल जो भारत की सीमाओं से लगा है और जो मात्र कुछ वर्षों पहले ही भारत का एक हिस्सा था, स्पष्ट रूप से भारत में भी तत्काल असर डालती है और भारत इन बदली हुई परिस्थितियों में मात्र निष्क्रिय दर्शक नहीं बना रह सकता। यह घटनाक्रम इस तरह अपने आप में ही अफ़सोसजनक है,

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

क्योंकि इसका अर्थ है कि लोकतंत्र का त्याग कर देना और सैन्य तानाशाही की स्थापना भी भारत के लिए अनिष्टसूचक हो सकती है। बढ़ते असंतोष से ध्यान हटाने के लिए पाकिस्तान किसी भी दिन भारत के विरुद्ध आक्रामक गतिविधियाँ शुरू कर सकता है। इस तरह की आशंका के वास्तविक कारण हैं, क्योंकि नए सैन्य शासन की ओर से की गई हाल की घोषणा से भारत के प्रति या हिंदू अल्पसंख्यकों के पाकिस्तान की शत्रुतापूर्ण प्रवृत्ति में किसी बदलाव का पता नहीं चलता है, अयूब खान के लिए भारत के विरुद्ध पाकिस्तान की लगातार की जाने वाली कथित शिकायतें बताती हैं कि यदि भारत के साथ युद्ध होता है तो यह पाकिस्तान में बहुत लोकप्रिय होगा और मिर्ज़ा का कहना है कि पाकिस्तान के लिए नया संविधान, जिसे उन्होंने अच्छी तरह देखा है, उसे प्रबुद्ध मुसलिम लोगों के लिए अधिक उपयुक्तता के साथ निर्मित किया जाएगा। इसके विपरीत पाकिस्तान में हिंदू अल्पसंख्यकों के संदर्भ में और वहाँ पूर्वी पाकिस्तान में अभी भी क़रीब 80 लाख हिंदू हैं—हमारा दुर्भाग्यपूर्ण अनुभव रहा है कि जब भी पाकिस्तान में गंभीर समस्या उठ खड़ी होती है, हिंदू अल्पसंख्यकों को हमले और उत्पीड़न का निशाना बनाया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप पाकिस्तान से भारत के लिए नए सिरे से विस्थापन अवश्यंभावी हो जाता है। उदाहरण के लिए पूर्वी बंगाल में सेना द्वारा संचालित तथाकथित गुप्त कार्रवाइयों ने हिंदू अल्पसंख्यकों पर उत्पीड़न और बढ़ा दिया है। इन सभी आधारों पर पाकिस्तान में होने वाले इस तरह के घटनाक्रमों के संबंध में भारत को अतिरिक्त सतर्क रहना चाहिए।

जनसंघ यह भी महसूस करता है कि दुनिया भर के लोकतंत्रों को पाकिस्तान में इस लोकतंत्र विरोधी विद्रोह को गंभीरता से लेना चाहिए, जो अनेक अन्य देशों में हालिया अतीत में इस तरह के घटनाक्रमों के परिप्रेक्ष्य में आया है, और भारत सरकार तथा भारत के लोगों को भारत में लोकतांत्रिक ताक़तों की मज़बूती के लिए हर संभव प्रयास करना चाहिए।

खाद्यान्न समस्या

कार्यसमिति माफ़ी के साथ संज्ञान लेती है कि भारत सरकार ने खाद्यान्न समस्या को दूरदर्शिता और व्यावहारिक सोच के साथ सुलझाने की कोशिश की। सरकार को बहुत शुरू में ही समझ लेना चाहिए था कि जिस तरह से दूसरी पंचवर्षीय बनाई गई थी, खाद्यान्न मोरचे पर इस तरह की कठिनाइयाँ आना बाधाकारी थीं और इस संदर्भ में इस आशय की चेतावनी भी पहले दी जा चुकी थी।

देश के विभिन्न हिस्सों में उठ खड़े हो रहे जन-आंदोलनों ने वर्तमान खाद्यान्न संकट की ओर सरकार का गंभीरता से ध्यान खींचा है। लेकिन सरकार द्वारा अभी तक

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

की नीति तात्कालिक सवालों को सुलझाने की ही रही है। जनसंघ यह ज़रूरी मानता है कि एक दीर्घकालिक नीति अपनाई जानी चाहिए और इसे लागू करने के लिए एक स्थायी व्यवस्था बनाई जानी चाहिए।

खाद्यान्न समस्या के चार प्रमुख आयाम हैं—

1. खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि करना।
2. अनाजों की पर्याप्त बिक्री योग्य आपूर्ति उपलब्धता सुनिश्चित करना।
3. उपयुक्त वितरण व्यवस्था और
4. क़ीमतों का स्थिरीकरण।

सरकार को अपनी राजकोषीय और वित्तीय नीतियों और भूमि सुधार, सिंचाई, उर्वरकों, बेहतर बीजों आदि से संबंधित सभी योजनाओं पर सभी आयामों के साथ अपेक्षित ध्यान देकर समेकित तरीक़े से विचार देना चाहिए।

इस दृष्टिकोण के आधार पर जनसंघ यह आवश्यक रूप से महसूस करता है कि

1. भूमि सुधार का एक समेकित कार्यक्रम तैयार किया जाए और उसे तत्काल लागू किया जाए।
2. लघु सिंचाई योजनाओं पर अधिक बल दिया जाए।
3. सिंचाई दर इस तरह की तय की जाए कि खेती करने वाला सिंचाई सुविधाओं का उपयोग करने के लिए उत्साहित हो सके।
4. सरकार फ़सल कटाई के समय उचित मूल्य पर ख़रीदारी करे।
5. उचित मूल्य की दुकान की स्थायी व्यवस्था होनी चाहिए, ताकि आसपास चल रही अन्य अनाज की दुकानों के साथ तय आय वाले लोगों को तयशुदा अनाज की आपूर्ति की जा सके।
6. सामान्य व्यापारिक रास्ते तय होने के बाद खाद्यान्न जोन चिह्नित किए जाने चाहिए और उन्हें समय-समय पर मनमाने तरीक़े से बदला नहीं जाना चाहिए।

भारतीय जनसंघ हमेशा से वकालत करता रहा है कि खाद्यान्न समस्या सभी दलों के सहयोग से सुलझाई जानी चाहिए, सरकार ने इस ज़रूरत के समझे हुए विभिन्न स्तरों पर इस तरह की समितियाँ गठित की हैं। जनसंघ महसूस करता है कि इन्हें अधिक ग्रहणीय और प्रभावी बनाया जाना चाहिए।

कश्मीर

कार्यसमिति ने जम्मू कश्मीर राज्य के बारे में जम्मू और कश्मीर प्रजा परिषद् के अध्यक्ष पंडित प्रेम नाथ डोगरा और इसके उत्तर पश्चिम भारत के लिए क्षेत्रीय सचिव प्रोफेसर बलराज मधोक द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट के संदर्भ में स्थिति की समीक्षा की।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

समिति ने वहाँ लगातार अराजकता की स्थिति बने रहने और इसके परिणामस्वरूप राज्य के लोगों के लोकतांत्रिक अधिकारों व नागरिक स्वतंत्रताओं में कटौती करने और गला घोंटने पर गहरी चिंता व्यक्त किया। समिति मानती है कि अब वह समय आ गया है, जब ऐसे ठोस क़दम उठाए जाने चाहिए, जो जम्मू-कश्मीर और दिल्ली में सत्तासीन शक्तियों की ओर से अकसर दोहरा जाने वाली कार्रवाइयों के रूप में परिवर्तित हो सके कि जहाँ तक भारत का सवाल है, कश्मीर समस्या अंतिम तौर पर सुलझाई जा चुकी है। वह माँग करती है कि जिसकी वजह से लोगों को पंगु बना दिया गया है। जम्मू और कश्मीर राज्य के बारे में भारत के संविधान में संक्रमणकालीन प्रावधानों को हटाया जाना चाहिए और उन्हें वह सभी अधिकार और स्वतंत्रताएँ उपलब्ध कराई जानी चाहिए, जो शेष भारत के उनके देशभक्त साथियों को उपलब्ध हैं, चुनाव आयोग और उच्चतम न्यायालय के पूर्ण क्षेत्राधिकार का विस्तार किया जाना चाहिए। संसद् में इसके प्रतिनिधियों के सीधे चुनाव के प्रावधान, परमिट व्यवस्था का खात्मा, पूर्ण वित्तीय एकरूपता और राज्य के नागरिकों तथा शेष भारत के नागरिकों के बीच इस तरह के अन्य विभेद ऐसे मुद्दे हैं, जिन पर जितनी जल्दी संभव हो आवश्यक क़दम उठाए जाने की आवश्यकता है।

इसी तरह, इन विभेदों के कारण राज्य के लोग महसूस करते है कि भारत सरकार द्वारा उनके साथ भेदभाव किया जाता है। कश्मीर सत्ताधारी समुदाय इस भेदभाव को बढ़ावा देने में अपना हित देखता है, क्योंकि इससे उनको लाभ पहुँचता है। वे उनके द्वारा सक्षम बनाए जाते हैं कि वे चुनावों में धाँधली और अन्य तानाशाही तरीक़ों के माध्यम से सरकार पर पकड़ मज़बूत बनाए रखें। सबसे ख़राब है कश्मीर में अधिकारियों के विरुद्ध लोगों का गुस्सा, जिन्होंने इस हालत में निहित स्वार्थ विकसित कर लिए हैं और जो राज्य की आंतरिक स्वायत्तता के नाम पर इसका बचाव करते हैं। नतीजा यह हुआ कि इसने लोगों का गुस्सा सरकार और भारत के लोगों के विरुद्ध मोड़ दिया है। शेष भारत के भाईचारे के साथ राज्य के लोगों की भावनात्मक एकता राष्ट्रविरोधी और अलगाववादी तत्त्वों के हितों को नुक़सान पहुँचाएगी।

इसलिए समिति चाहती है कि सरकार को स्थितियों को संज्ञान में लेना चाहिए और जम्मू और कश्मीर तथा शेष भारत के बीच इस तरह के विभेदों की निरंतरता के परिणामों के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। राज्य के लोगों का एक बहुत बड़ा हिस्सा इस तरह के भेदभाव उसके परिणामस्वरूप झेलने वाले कष्टों से व्याप्त पंगुता को समाप्त किए जाने का पक्षधर है। इसलिए कार्यसमिति माँग करती है कि जम्मू और कश्मीर के लोगों और पूरे भारत के लोगों के व्यापक हित में भारतीय संविधान के संक्रमणकालीन अनुच्छेद 370 को ख़त्म किया जाए और जम्मू और कश्मीर राज्य को बिना किसी अतिरिक्त विलंब के अन्य राज्यों के साथ लाया जाना चाहिए।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

श्रीलंका में भारतीय अधिवासी भारत में लंबे समय से चिंता का कारण बन रहे श्रीलंका में भारतीय अधिवासियों की स्थिति हाल में अत्यंत गंभीर मोड़ पर पहुँच गई। श्रीलंका की जड़ों को हिला देने वाले हिंसक जातीय दंगों ने अनेकों स्थानों पर भारतीय अधिवासियों को प्रभावित किया, और इन दंगों की पुनरावृत्ति अभी भी समाप्त नहीं हो सकी है। उस दौरान लगाए गए आपातकालीन नियम अभी भी लागू हैं।

इसके अलावा, भारतवंशियों (जिनके पूर्वज पीढ़ियों पहले सिलोन में बस गए) को श्रीलंका के लोगों की तरह की नागरिकता का पंजीकरण जिस पर श्रीलंका की सरकार इस बाबत भारत-श्रीलंका के बीच समझौते के बावजूद वर्षों तक हीलाहवाली करती रही है, हाल में ख़त्म कर दिया, जिसने भारत को स्तंभित कर दिया। अभी तक वहाँ जो कुछ भी घटित हुआ है, क़रीब सात लाख भारतीय अधिवासियों के श्रीलंका की नागरिकता पंजीकरण से इनकार कर दिया गया और उन्हें 'किसी भी देश का नागरिक न होना' घोषित कर दिया गया। शेष क़रीब तीन लाख लोगों के साथ भी इसी तरह के व्यवहार की आशंका व्यक्त की गई है।

जनसंघ का मानना है कि इस तरह की कार्रवाई कर श्रीलंका सरकार ने भारत श्रीलंका सरकार के बीच के समझौते की भावना के ख़िलाफ़ काम किया है और भारत सरकार से अपील की है कि वह इस समस्या के संतोषजनक समाधान के लिए तत्काल क़दम उठाए।

पंजाब

भारतीय कार्यसमिति अपनी इस मान्यता को दोहराती है कि भारत और पंजाब के लोगों का सर्वाधिक कल्याण और हित संयुक्त और एकीकृत पंजाब में है। इसने जनसंघ की प्रांतीय इकाई को निर्देश दिया कि वह राज्य में लोगों की एकजुटता मज़बूत बनाने के लिए रचनात्मक और ठोस क़दम उठाए और लोगों की भावनात्मक एकता का पोषण करे, जिन्हें अवास्तविक और कृत्रिम मुद्दों पर दिग्भ्रमित और विभक्त किया गया हो। समिति आशा करती है कि पंजाब के लोग पहले की तरह विभाजन के सभी तरह के प्रयासों के विरुद्ध सफलतापूर्वक इसका सामना करेंगे।

तुकेरग्राम और बेरुबारी के बारे में नेहरू के स्पष्टीकरण पर चटर्जी

हिंदू महासभा के अध्यक्ष श्री एन.सी. चटर्जी ने 13 अक्तूबर, 1958 को नई दिल्ली में एक बयान में कहा कि जलपाईगुड़ी ज़िले में बेरुबारी संगठन (यूनियन) कोई अंत:क्षेत्र नहीं था और 'इसका समर्पण (पाकिस्तान को) अंत: क्षेत्रों के आदान-प्रदान के तर्क के

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

जरिए न्यायसंगत नहीं ठहराया जा सकता है।'

श्री चटर्जी की यह टिप्पणी श्री नेहरू द्वारा अंत:क्षेत्रों को पाकिस्तान को सौंपने पर रविवार को संवाददाता सम्मेलन में व्यक्त टिप्पणी के संदर्भ में थी।

तुकेर ग्राम के बारे में उन्होंने कहा—इस स्थान पर दो महीने पहले पाकिस्तान द्वारा क़ब्ज़ा किया गया था। यह अंत:क्षेत्र नहीं है और न ही वहाँ सीमा के परिशोधन का कोई सवाल था। पाकिस्तान ने कभी इसका दावा नहीं किया था और न ही इसके लिए कोई दावा कर सकता है।

उन्होंने यह भी जोड़ा—इस सवाल से इतर कि क्या प्रधानमंत्री संसद् की विशिष्ट स्वीकृति के बिना भारतीय अधिकार क्षेत्र के किसी हिस्से को क़ानूनी तौर पर उपहार स्वरूप दे सकते हैं। इसे याद रखा जाना चाहिए कि तुकेर ग्राम के नाम से जाने जाने वाले क्षेत्र की अपनी एक महत्त्वपूर्ण सामरिक स्थिति है। यहाँ तक कि इसके अस्थायी समर्पण या पाकिस्तानी सेना को इस पर क़ब्ज़े की अनुमति देने का मतलब पाकिस्तानी आक्रामकता के ख़तरे को छाछर के ज़िले को अरक्षित कर देना है।

—ऑर्गनाइज़र, अक्तूबर 20, 1958

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

संदर्भिका

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ऋ

ए

ओ

औ

क

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ख

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ट

ड

त

थ

द

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ध

न

प

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

फ

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

म

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ल

व

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ह

□□□

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

परिचय

भूमिका लेखक

श्री शांता कुमार

12 सितंबर, 1934 को जन्म। 1977 में पहली बार हिमाचल प्रदेश के मुख्यमंत्री बने। 1986-90 तक राज्य भा.ज.पा. के अध्यक्ष रहे। 1990 में दूसरी बार हिमाचल प्रदेश के मुख्यमंत्री बने। केंद्र में श्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन सरकार में भी मंत्री रहे।

वह काल लेखक

श्री के.एन. गोविंदाचार्य

आंध्र प्रदेश के तिरुपति में 2 मई, 1943 को जन्म। काशी हिंदू विश्वविद्यालय से अध्ययन। भारतीय जनता पार्टी के राष्ट्रीय महामंत्री रहे। राष्ट्रीय स्वाभिमान आंदोलन के संस्थापक।
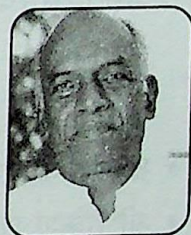
समर्पण परिचय लेखक

श्री प्रफुल्ल केतकर

जन्म 10 जुलाई, 1977 को पालघर, ठाणे (महाराष्ट्र) में। पुणे विश्वविद्यालय से राजनीति शास्त्र में एम.ए.। नई दिल्ली स्थित जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से अंतरराष्ट्रीय अध्ययन में फोर्ड स्कॉलरशिप के अंतर्गत काम किया। 'ऑल्टरनेटिव एंड अप्रोचेज़ टु सिक्योरिटीज़' पुस्तक के सहलेखक। कई वर्ष एक कॉलेज में अध्यापन के बाद अब 'ऑर्गनाइज़र' के संपादक।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अनुसंधान एवं संपादन सहायक

श्री इष्ट देव सांकृत्यायन

- श्री राजेश राजन
- डॉ. विकास द्विवेदी
- श्रीमती सुमेधा मिश्रा
- श्री देवेश खंडेलवाल
- श्री राम शिरोमणि शुक्ल
- डॉ. अरुण भारद्वाज

टंकण एवं सज्जा

- श्री प्रेम प्रकाश राय
- श्री राकेश शुक्ल
- श्री नरेंद्र कुमार
- श्रीमती दीपा सूद

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

…शुक्र ४ शके १८७७ [र. उ. ७।१७, र. अ. ६।२१

જાનેવારી તા. ૧૭ વાર મંગળ પોષ શુદી ૪ સંવત ૨૦૧૨

2.. TUESDAY 17th JANUARY 1956

संघ का कार्य हिन्दू संगठन का है। भावात्मक हिन्दुत्व हमारे सम्मुख है। हिन्दू शब्द से जिस समाज की कल्पना होती है और कुछ लक्षण रहे। क्योंकि आगे राष्ट्र विशाल समाज की ... मातृभूमि, उसके पुत्र के रूप में रहनेवाला एक ... चलानेवाला। हिन्दू समाज। अन्य कार्य होते हुए भी हमने संगठन का ही कार्य हाथ में लिया है और कार्य करें।

१. ज्ञान का लक्षण = एकत्व का बोध है; अनेकता का बोध - अज्ञान। एकात्मता का बोध कराने का प्रयत्न करना होगा।

अपने हृदय में सबके लिये समान आदर होना चाहिये जो बातें इसके पोषक न हों उन्हें व्यवहार से निकाले। हिन्दुत्व के लक्षण सबमें समान रूप से मिलेंगे। भगवान का दर्शन सभी कर सकते हैं। सभी भाषाओं में एक ही भाव व्यक्त होता है। १०० वर्ष पूर्व Father Goodwin ने ... प्रचार किया। किन्तु ... में धर्म, अर्थ ...

Import of … … 18 months … total sum of 4.3… value of imports of 8… machinery in 19… 325 crores:

Some industries licensed for a cap… excess of the Pl… same have capacity near the targe… for the end of the … These are sup… rubber, tyres & t… alcohol, soda a… soda, refracto… transmitter for… and rayon …
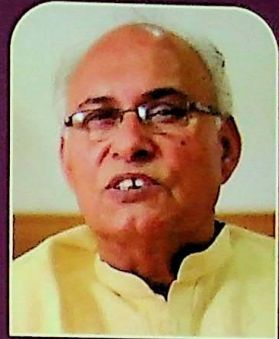
डॉ. महेश चंद्र शर्मा

जन्म : राजस्थान के चुरू कस्बे में 7 सितंबर, 1948 को।

शिक्षा : बी.ए. ऑनर्स (हिंदी), एम.ए. एवं पी-एच.डी. (राजनीति शास्त्र)।

कृतित्व : 1973 में प्राध्यापक की नौकरी छोड़कर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक बने। आपातकाल में अगस्त 1975 से अप्रैल 1977 तक जयपुर जेल में 'मीसा' बंदी रहे। सन् 1977 से 1983 तक अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् में उत्तरांचल के संगठन मंत्री, 1983 से 1986 तक राजस्थान विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. की उपाधि के लिए 'दीनदयाल उपाध्याय का राजनैतिक जीवन चरित—कर्तृत्व व विचार सरणी' विषय पर शोधकार्य। 1983 से साप्ताहिक 'विश्ववार्ता' व 'अपना देश' स्तंभ नियमित रूप से भारत के प्रमुख समाचार-पत्रों में लिखते रहे।

सन् 1986 में 'दीनदयाल शोध संस्थान' के सचिव बने। शोध पत्रिका 'मंथन' का संपादन। 1986 से वार्षिक 'अखंड भारत स्मरणिका' का संपादन। 1996 से 2002 तक राजस्थान से राज्यसभा सदस्य एवं सदन में भाजपा के मुख्य सचेतक रहे। 2002 से 2004 तक नेहरू युवा केंद्र के उपाध्यक्ष। 2006 से 2008 तक भाजपा राजस्थान के अध्यक्ष। 2008-2009 राजस्थान विकास एवं निवेश बोर्ड के अध्यक्ष। 1999 से एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान के अध्यक्ष। पंद्रह खंडों में प्रकाशित 'पं. दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाड्मय' के संपादक।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पं. दीनदयाल उपाध्याय का बचपन बहुत ही विकट स्थितियों में बीता, तो भी वे सदैव एक मेधावी छात्र के रूप में रेखांकित हुए। द्वि-राष्ट्रवाद की छाया ने जब भारत की आजादी की लड़ाई को आवृत्त कर लिया था, तब 1942 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के माध्यम से उन्होंने अपना सार्वजनिक जीवन प्रारंभ किया। वे उत्तम संगठक, साहित्यकार, पत्रकार एवं वक्ता के नाते संघ-कार्य को बल देते रहे।

1951 में जब डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के नेतृत्व में भारतीय जनसंघ की स्थापना हुई, तभी उनका राजनीति में प्रवेश हुआ। देश की अखंडता के लिए कश्मीर आंदोलन, गोवा मुक्ति आंदोलन तथा बेरुबाड़ी के हस्तांतरण के विरुद्ध आंदोलन चलाकर उन्होंने भारत की राजनीति में स्वतंत्रता संग्राम के मुद्दों को जीवित रखा। भारत की अखंडता के लिए उनका पूरा जीवन लगा।

देश के लोकतंत्र को सबल विपक्ष की आवश्यकता थी; प्रथम तीन लोकसभा चुनावों के दौरान भारतीय जनसंघ एक ताकतवर विपक्षी दल के रूप में उभरा। वह विपक्ष कालांतर में विकल्प बन सके, इसकी उन्होंने संपूर्ण तैयारी की।

केवल तंत्र ही नहीं, मंत्र का भी विकल्प आवश्यक था। विदेशी वादों के स्थान पर उन्होंने एकात्म मानववाद, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद एवं भारतीयकरण का आह्वान किया। 1951 से 1967 तक वे भारतीय जनसंघ के महामंत्री रहे। 1968 में उन्हें अध्यक्ष का दायित्व मिला। अचानक उनकी हत्या कर दी गई। उनके द्वारा विकसित किया गया दल 'भारतीय जनता पार्टी' ही देश में राजनैतिक विकल्प बना।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu.